तेतिरीय संहिता

Colophon

This document was typeset using $X_{\underline{1}}M_{\underline{1}}X$, and uses the Siddhanta font extensively. It also uses several $M_{\underline{1}}X$ macros designed by H. L. Prasād. Practically all the encoding was done with the help of Ajit Krishnan's mudgala IME (http://www.aupasana.com/).

Acknowledgements

The initial ITRANS encodings of some of these texts were obtained from http://sanskritdocuments.org/ and https://sa.wikisource.org/. Thanks are also due to Ulrich Stiehl (http://sanskritweb.de/) for hosting a wonderful resource for Yajur Veda, and also generously sharing the original Kathaka texts edited by Subramania Sarma.

See also http://stotrasamhita.github.io/about/

For Personal Use Only
Not For Commercial Printing/Distribution

| अनुक्रमणिका | | | | | | | | | | | | | |
|------------------|-----|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|--|
| अनुऋमणिका | | | | | | | | | | | | | |
| काण्डम् १ | 1 | | | | | | | | | | | | |
| प्रथमः प्रश्नः | 1 | | | | | | | | | | | | |
| द्वितीयः प्रश्नः | 13 | | | | | | | | | | | | |
| तृतीयः प्रश्नः | 26 | | | | | | | | | | | | |
| चतुर्थः प्रश्नः | 38 | | | | | | | | | | | | |
| पञ्चमः प्रश्नः | 55 | | | | | | | | | | | | |
| षष्ठमः प्रश्नः | 75 | | | | | | | | | | | | |
| सप्तमः प्रश्नः | 94 | | | | | | | | | | | | |
| अष्टमः प्रश्नः | 113 | | | | | | | | | | | | |
| काण्डम् २ | 132 | | | | | | | | | | | | |
| प्रथमः प्रश्नः | 132 | | | | | | | | | | | | |
| द्वितीयः प्रश्नः | 155 | | | | | | | | | | | | |
| तृतीयः प्रश्नः | 182 | | | | | | | | | | | | |
| चतुर्थः प्रश्नः | 203 | | | | | | | | | | | | |
| पञ्चमः प्रश्नः | 220 | | | | | | | | | | | | |
| षष्ठमः प्रश्नः | 233 | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| काण्डम् ३ | 245 | | | | | | | | | | | | |
| प्रथमः प्रश्नः | 245 | | | | | | | | | | | | |
| द्वितीयः प्रश्नः | 253 | | | | | | | | | | | | |
| तृतीयः प्रश्नः | 261 | | | | | | | | | | | | |

| अनुऋमणिका | | ii |
|------------------|-------|-----|
| चतुर्थः प्रश्नः | | 268 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | 276 |
| काण्डम् ४ | | 284 |
| प्रथमः प्रश्नः | | 284 |
| द्वितीयः प्रश्नः | | 292 |
| तृतीयः प्रश्नः | | 301 |
| चतुर्थः प्रश्नः | | 308 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | 315 |
| षष्ठमः प्रश्नः | | 320 |
| सप्तमः प्रश्नः | | 328 |
| काण्डम् ५ | | 336 |
| प्रथमः प्रश्नः | | 336 |
| द्वितीयः प्रश्नः | | 346 |
| तृतीयः प्रश्नः | | 357 |
| चतुर्थः प्रश्नः | | 365 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | 376 |
| षष्ठमः प्रश्नः | | 386 |
| सप्तमः प्रश्नः | | 396 |
| काण्डम् ६ | | 407 |
| प्रथमः प्रश्नः | | 407 |
| द्वितीयः प्रश्नः | • | 419 |
| iQ/II Tr FI CIT | • | ליד |
| | | |

| अनुऋमणिका | | | | | | | | | | | | | iii |
|------------------|--|--|--|---|--|--|--|--|--|---|---|--|-----|
| तृतीयः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 430 |
| चतुर्थः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 441 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 450 |
| षष्टमः प्रश्नः | | | | • | | | | | | • | • | | 457 |
| काण्डम् ७ | | | | | | | | | | | | | 466 |
| प्रथमः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 466 |
| द्वितीयः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 475 |
| तृतीयः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 485 |
| चतुर्थः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 493 |
| पञ्चमः प्रश्नः | | | | | | | | | | | | | 503 |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | |

॥काण्डम् १॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

ड्षे त्वोर्जे त्वां वायवंः स्थोपायवंः स्थ देवो वंः सिवता प्रापंयतु श्रेष्ठंतमाय कर्मण आ प्यांयध्वमित्रया देवभागमूर्जंस्वतीः पयंस्वतीः प्रजावंतीरनमीवा अयुक्ष्मा मा वंः स्तेन ईशत माऽघश्रंसो रुद्रस्यं हेतिः पिरं वो वृणक्तु ध्रुवा अस्मिन्गोपंतौ स्यात बह्वीर्यजंमानस्य पृशून्पांहि॥ (१)

डुषे त्रिचंत्वारि श्रात्॥——[१]

यज्ञस्यं घोषदंसि प्रत्युंष्ट्र रक्षः प्रत्युंष्टा अरांतयः प्रेयमंगाद्धिषणां बर्हिरच्छ् मनुंना कृता स्वधया वितंष्टा त आवंहन्ति क्वयंः पुरस्तांद्देवेभ्यो जुष्टंमिह बर्हिरासदे देवानां परिषूतमंसि वर्षवृंद्धमिस देवंबर्हिमां त्वाऽन्वङ्गा तिर्यक्पर्वं ते राध्यासमाच्छेत्ता ते मा रिषं देवंबर्हिः श्तवंल्शं वि रोह सहस्रंवल्शा (२)

वि वय र्रहेम पृथिव्याः सम्पृचंः पाहि सुसम्भृतां त्वा

सम्भंगम्यदित्यै रास्नांऽसीन्द्राण्यै सन्नहंनं पूषा ते ग्रन्थिं ग्रंशातु स ते माऽऽस्थादिन्द्रंस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यंच्छे बृह्स्पतेंर्मूर्प्रा हंराम्युर्वन्तरिक्षमन्विंहि देवङ्गममंसि॥ (३)

स्हसंवल्शा अष्टात्रिरंशच॥——[२] श्-धंध्वं दैव्यांय कर्मणे देवयज्यायें मातरिश्वंनो घर्मोऽसि

शुन्धध्व देव्याय कर्मण देवयुज्याय मात्रिश्वनी घुमीऽसि द्यौरंसि पृथिव्यंसि विश्वधांया असि पर्मेण धाम्ना द॰हंस्व मा ह्वार्वसूनां प्रवित्रंमिस शृतधांरं वसूनां प्रवित्रंमिस स्हस्रंधार॰ हुतः स्तोको हुतो द्रफ्सौंऽग्नये बृहते नाकांय स्वाहा द्यावांपृथिवीभ्या॰ सा विश्वायुः सा विश्वव्यंचाः सा विश्वकंमा सम्पृंच्यध्वमृतावरीरूर्मिणीर्मधुंमत्तमा मन्द्रा धनंस्य सातये सोमेन त्वाऽऽतंन्च्मीन्द्रांय दिध विष्णों हव्य॰ रक्षस्व॥ (४)

सोमेंनाष्टौ चं॥-----[३]

कर्मणे वां देवेभ्यः शकेयं वेषाय त्वा प्रत्युष्ट्र रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो धूरेसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं यौऽस्मान्धूर्वित तं धूर्व यं वयं धूर्वामस्त्वं देवानामिस् सिस्नितम् पप्रितम् जुष्टेतम् वहिंतमं देवहूतंममहुंतमसि हविर्धानं द॰हंस्व मा ह्वांर्मित्रस्यं त्वा चक्षुंषा प्रेक्षे मा भेमी सं विंक्था मा त्वां (५)

हिश्सिषमुरु वातांय देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्वैं-ऽश्विनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यामुग्नये जुष्टं निर्वपाम्यग्नी-षोमौभ्यामिदं देवानांमिदम् नः सह स्फात्यै त्वा नारौत्यै सुवंर्भि वि ख्येषं वैश्वान्रं ज्योतिर्दश्हेन्तान्दुर्या द्यावांपृथिव्योर्ज्वन्तिरक्षमिन्वह्यदित्यास्त्वोपस्थे सादयाम्यग्ने ह्व्यश्रेक्षस्व॥ (६)

देवो वंः सिवतोत्पुनात्विच्छिद्रेण प्वित्रेण वसोः सूर्यस्य रिश्मिभिरापो देवीरग्रेपुवो अग्रेगुवोऽग्रं इमं यज्ञं नयताग्रें यज्ञपतिं धत्त युष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिताः स्थाग्नये वो जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्या । श्रुन्यंध्वं दैव्यांय कर्मणे देवयुज्याया अवंधूत रक्षोऽवंधूता अर्गत्योऽदित्यास्त्वगंसि प्रतिं त्वा (७)

पृथिवी वें त्विधिषवंणमिस वानस्पृत्यं प्रित् त्वा-ऽदित्यास्त्वग्वें त्वुग्नेस्तुनूरंसि वाचो विसर्जनं देववींतये त्वा त्वा भाग एकांदश च॥

गृह्णाम्यद्रिरिस वानस्पृत्यः स इदं देवेभ्यों ह्व्य स् सुशिमं शिमुष्वेषमा वदोर्जुमा वद द्युमद्वेदत वय स् संङ्घातं जैष्म वर्षवृद्धमिस् प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेतु पर्रापृत् रक्षः पर्रापृता अरातयो रक्षंसां भागोंऽसि वायुर्वो विविनक्त देवो वंः सिवृता हिरंण्यपाणिः प्रति गृह्णातु॥ (८)

अवंधूत् रक्षोऽवंधूता अरांत्योऽदिंत्यास्त्वगंसि प्रतिं त्वा पृथिवी वैत्त दिवः स्कम्भिनिरंसि प्रति त्वाऽदिंत्यास्त्वग्वेत्त धिषणांऽसि पर्वत्या प्रतिं त्वा दिवः स्कम्भिनिर्वेत्त धिषणां-

धिषणांऽसि पर्वत्या प्रतिं त्वा दिवः स्कंम्भृनिर्वेत्त धिषणां-ऽसि पार्वतेयी प्रतिं त्वा पर्वतिर्वेत्त देवस्यं त्वा सिवृतः प्रस्वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामधिवपामि धान्यंमसि धिनुहि देवान्प्राणायं त्वाऽपानायं त्वा व्यानायं त्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुंषे धां देवो वंः सिवृता हिरंण्यपाणिः प्रति गृह्णातु॥ (९)

प्राणायं त्वा पञ्चंदश च॥———[६]

धृष्टिंरसि ब्रह्मं युच्छापाँ उग्ने ऽग्निमामादं जिह् निष्क्रव्याद र सेधा देवयर्जं वह निर्देग्धर रक्षो निर्देग्धा अरातयो ध्रुवमंसि पृथिवीं हुर्हाऽऽयुंर्दरह प्रजां हुर्ह सजातान्स्मै यजमानाय पर्यूह धूर्त्रमस्यन्तिरक्षं हुरह प्राणं हुर्ह हापानं हुर्ह सजाता-न्स्मै यजमानाय पर्यूह धुरुणमिस् दिवें हुरह चक्षुर् (१०)

दश्ह श्रोत्रं दश्ह सजातान्समे यजंमानाय पर्यूह् धर्माऽसि दिशों दश्ह योनिं दश्ह प्रजां दश्ह सजातान्समे यजंमानाय पर्यूह् चितः स्थ प्रजाम्समे र्यिम्समे संजातान्समे यजंमानाय पर्यूह् भृगूंणामङ्गिरसां तपंसा तप्यध्वं यानिं घुमें कृपालांन्युपचिन्वन्ति वेधसंः। पूष्णस्तान्यपि वृत इंन्द्रवायू वि मुंश्चताम्॥ (११)

चक्षं र्ष्टाचंत्वारिश्यचा——[७] सं वंपामि समापो अद्भिरंग्मत समोषंधयो रसेन् स॰ रेवती र्जगंती भिर्मधुंमती र्मधुंमती भिः सृज्यध्वम् द्यः परि प्रजांताः स्थ समद्भिः पृंच्यध्वं जनंयत्ये त्वा सं यौंम्युग्नये त्वा उग्नीषोमा म्यां म्खस्य शिरों ऽसि घृमों ऽसि विश्वायुं रुरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपंतिः प्रथतां त्वचं गृह्णीष्वा ऽन्तरित् १ रक्षो ऽन्तरिता अरांतयो देवस्त्वां सिवता श्रंपयतु वर्षिष्ठे अधि नाकेऽग्निस्तें तुनुवं माऽतिं धागग्नें ह्व्यः रक्षस्व सं ब्रह्मणा पृच्यस्वैकृताय स्वाहां द्विताय स्वाहां त्रिताय स्वाहां॥ (१२)

स्विता द्वाविर्शतिश्वा——[८] आदंद इन्द्रंस्य बाह्रंसि दक्षिणः सहस्रंभृष्टिः शततेंजा

आदद् इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः श्ततेजा वायुरंसि तिग्मतेजाः पृथिवि देवयज्ञन्योषंध्यास्ते मूलं मा हि सिष्मपहतोऽररुः पृथिव्ये व्रजं गंच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः पर्मस्यां परावितं शतेन पाशैर्यो-ऽस्मान्द्वेष्टि यं चं व्यं द्विष्मस्तमतो मा मौगपहतोऽररुः पृथिव्ये देवयजंन्ये व्रजं (१३)

गंच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः पर्मस्यां परावितं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तमतो मा मौगपहतोऽररुः पृथिव्या अदेवयजनो व्रजं गंच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः पर्मस्यां परावितं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मस्तमतो मा (१४)

मौंग्ररुंस्ते दिवं मा स्कान् वसंवस्त्वा परिंगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दंसा रुद्रास्त्वा परिंगृह्णन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसाऽ- ऽदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागंतेन छन्दंसा देवस्यं सिवतुः सवे कर्मं कृण्वन्ति वेधसं ऋतमंस्यृतसदंनमस्यृतश्रीरंसि धा असि स्वधा अस्युर्वी चासि वस्वी चासि पुरा ऋरस्यं विसृपो विरिष्शन्नदादायं पृथिवीं जीरदानुर्यामैरंयं चन्द्रमंसि स्वधाभिस्तान्धीरांसो अनुदृश्यं यजन्ते॥ (१५)

देव्यजंन्ये ब्रजन्तमतो मा विरिष्शित्रेकांदश च॥———[९] प्रत्युष्ट्र रक्षः प्रत्युष्ट्रा अरातयोऽग्नेर्वस्तेजिष्ठेन तेजसा निष्टपामि गोष्ठं मा निर्मृक्षं वाजिनं त्वा सपत्रसाहर

निष्टपामि गोष्ठं मा निर्मृक्षं वाजिन त्वा सपत्नसाहर सम्मांजिर्म् वाचं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं प्रजां योनिं मा निर्मृक्षं वाजिनीं त्वा सपत्नसाहीर सम्मांज्म्या्शासाना सौमन्सं प्रजार सौभांग्यं तनूम्। अग्नेरनुंव्रता भूत्वा सन्नंह्ये सुकृताय कम्। सुप्रजसंस्त्वा वयर सुपत्नीरुपं (१६)

सेदिम। अग्नें सपत्नदम्भेनमदेब्धासो अदाँभ्यम्। इमं विष्यांमि वर्रुणस्य पाशं यमबंध्रीत सविता सुशेवंः। धातुश्च योनौं सुकृतस्यं लोके स्योनं में सह पत्यां करोमि। समायुंषा सम्प्रजया समंग्ने वर्चसा पुनेः। सम्पत्नी पत्याऽहं गंच्छे समात्मा तनुवा ममं। महीनां पयोऽस्योषंधीनाः रसुस्तस्य तेऽक्षींयमाणस्य निर् (१७)

वंपामि महीनां पयोऽस्योषंधीनाः रसोऽदंब्धेन त्वा चक्षुषाऽवेंक्षे सुप्रजास्त्वाय तेजोंऽसि तेजोऽनु प्रेह्यग्निस्ते तेजो मा वि नैद्ग्नेर्जिह्वाऽसिं सुभूर्देवानां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यज्ञंषयज्ञ्षे भव शुक्रमंसि ज्योतिरिस तेजोंऽसि देवो वंः सिवतोत्पुंनात्वच्छिंद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रिश्मिभिः शुक्रं त्वां शुक्रायां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यज्ञंषयज्ञ्षे गृह्णामि ज्योतिस्त्वा ज्योतिष्य्विस्त्वाऽर्चिषि धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यज्ञंषयज्ञ्षे गृह्णामि॥ (१८)

उप नी रुश्मिभिः शुक्र षोडंश च॥———[१०]

कृष्णों ऽस्याखरेष्ठों ऽग्नयं त्वा स्वाहा वेदिरिस बर्हिषं त्वा स्वाहां बर्हिरेसि स्रुग्भ्यस्त्वा स्वाहां दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्ये त्वा स्वधा पितृभ्य ऊर्ग्भव बर्हिषद्धं ऊर्जा पृथिवीं गंच्छत विष्णोः स्तूपोऽस्यूर्णां म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वास्थं देवेभ्यो गन्ध्वोंऽसि विश्वावंसुर्विश्वंस्मादीषंतो यजंमानस्य परिधिरिड ईडित इन्द्रंस्य बाहुरंसि (१९)

दक्षिणो यजंमानस्य परिधिरिड ईडितो मित्रावर्रणौ त्वोत्तर्तः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा यजंमानस्य परिधिरिड ईडितः सूर्यस्त्वा पुरस्तौत्पातु कस्यौश्चिद्भिशंस्त्या वीतिहौतं त्वा कवे द्युमन्त्र सिधीम्ह्यग्ने बृहन्तंमध्वरे विशो यन्ने स्थो वसूना र रुद्राणांमादित्याना सदंसि सीद जुहूरुंपभृद्धुवाऽसि घृताची नाम्नौ प्रियेण नाम्नौ प्रिये सदंसि सीदेता अंसदन्थसुकृतस्य लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपंतिं पाहि मां यंज्ञनियम्॥ (२०)

बाहुरंसि प्रिये सर्दसि पश्चंदश च॥_____[११]

भुवंनमिस् वि प्रंथस्वाग्ने यष्टंरिदं नमंः। जुह्वेह्यग्निस्त्वां ह्यति देवयज्याया उपंभृदेहिं देवस्त्वां सिवता ह्वंयति देवयज्याया अग्नांविष्णू मा वामवं ऋमिषं वि जिहाथां मा मा सन्तांतं लोकं में लोककृतौ कृणुतं विष्णोः स्थानंमसीत इन्द्रों अकृणोद्वीर्याणि समारभ्योर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृश्महुंतो यज्ञो यज्ञपंतिरिन्द्रांवान्थ्स्वाहां बृहद्भाः पाहि माँउग्ने दुर्श्वरितादा मा सुचंरिते भज मखस्य शिरोंऽसि सं

ज्योतिषा ज्योतिरङ्काम्॥ (२१)

अहुंत् एकंवि श्शतिश्च।

वार्जस्य मा प्रस्वेनौंद्वाभेणोदंग्रभीत्। अथां स्पत्ना इन्द्रों मे निग्राभेणाधंरा अकः। उद्घाभं चं निग्राभं च ब्रह्मं देवा अवीवृधत्र्। अथां स्पत्नांनिन्द्राग्नी में विषूचीनान्व्यंस्यताम्। वसुंभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यंस्त्वाऽऽदित्येभ्यंस्त्वाऽक्त रिहांणा वियन्तु वर्यः। प्रजां योनिं मा निर्मृक्षमा प्यांयन्तामाप्

ओषंधयो मुरुतां पृषंतयः स्था दिवं (२२)
गच्छा ततों नो वृष्टिमेरंय। आयुष्पा अंग्रेऽस्यायुंमें पाहि
चक्षुष्पा अंग्रेऽसि चक्षुंमें पाहि ध्रुवाऽसि यं पंरिधिं पर्यधंत्था
अग्ने देव पणिभिवींयमांणः। तन्तं एतमनु जोषं भरामि नेदेष

त्वदंपचेतयांतै यज्ञस्य पाथ उप समितः सङ्स्रावभागाः स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बंर्हिषदंश्च (२३)

देवा इमां वाचंमभि विश्वं गृणन्तं आसद्यास्मिन्बर्हिषिं मादयध्वमृग्नेर्वामपंत्रगृहस्य सदिस सादयामि सुम्नायं सुम्निनी सुम्ने मां धत्तं धुरि धुर्यौ पात्मग्नेंऽदब्धायोऽशीततनो पाहि माऽद्य दिवः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ठौ पाहि दुंरद्मन्यै पाहि दुश्चंरितादविषन्नः पितुं कृणु सुषदा योनि इस्वाहा देवां गातुविदो गातुं वित्वा गातुर्मित मनंसस्पत इमं नो देव देवेषुं यज्ञ इस्वाहां वाचि स्वाहा वातें धाः॥ (२४)

दिवंश्च वित्वा गातुत्रयोंदश च॥——[१३]

उभा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्यां उभा राधंसः सह मांद्यध्यैं। उभा दातारांविषाः रयीणामुभा वार्जस्य सातये हुवे वाम्। अश्रंवः हि भूरिदावंत्तरा वां वि जांमातुरुत वां घा स्यालात्। अथा सोमंस्य प्रयंती युवभ्यामिन्द्रांग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्। इन्द्रांग्नी नवृतिं पुरो दासपंत्रीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा। शुचिं नु स्तोमं नवंजातम्द्येन्द्रांग्नी वृत्रहणा जुषेथांम्॥ (२५)

उभा हि वार्र सुहवा जोहंवीमि ता वाजर्र सद्य उंशते धेष्ठां। वयमुं त्वा पथस्पते रथं न वाजंसातये। धिये पूंषन्नयुज्मिह। पथस्पंथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानड्रकम्। स नों रासच्छुरुधंश्चन्द्राग्रा धियं धियर सीषधाति प्र पूषा। क्षेत्रंस्य पतिना वयर हितेनेव जयामिस। गामश्वं पोषिय्व्वा स नों (२६) मृडातीहशैं। क्षेत्रंस्य पते मधुंमन्तमूर्मिं धेनुरिंव पयों अस्मासुं धुक्ष्व। मधुश्चतं घृतिमेव सुपूंतमृतस्यं नः पतंयो मृडयन्त्। अग्ने नयं सुपथां राये अस्मान् विश्वांनि देव वयुनांनि विद्वान्। युयोध्यंस्मज्ञंहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमं उक्तिं विधेम। आ देवानामपि पन्थांमगन्म यच्छुक्रवांम तदनु प्रवोंदुम्। अग्निर्विद्वान्थ्स यंजा्थ् (२७)

सेदु होता सो अध्वरान्थ्स ऋतून्कंल्पयाति। यद्वाहिष्टं तद्ग्रये बृहदेर्च विभावसो। मिहंषीव त्वद्रियस्त्वद्वाजा उदीरते। अग्ने त्वं पारया नव्यों अस्मान्थ्स्वस्तिभिरितं दुर्गाणि विश्वा। पूश्चं पृथ्वी बंहुला नं उवीं भवां तोकाय तनयाय शं योः। त्वमंग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः। यद्वों वयं प्रमिनामं व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः। अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाः ऋतुभिः कल्पयाति॥ (२८)

जुषेथामा स नों यजादा त्रयोवि २ शतिश्च॥————[१४]

[इषे त्वां यज्ञस्य शुन्धंध्वं कर्मणे देवोऽवंधूत्न्धृष्टिः सं वंपाम्या दंदे प्रत्युष्टं कृष्णोंऽसि भुवंनमसि वाजंस्योभा वां चतुंर्दश॥14॥ इषे दर्ह भुवंनम्ष्टाविर्श्शतिः॥28॥ इषे त्वां कुल्पयांति॥]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

आपं उन्दन्तु जीवसं दीर्घायुत्वाय् वर्चस् ओषंधे त्रायंस्वैन्ड् स्वधिते मैन रेहिरसीर्देवश्रूरेतानि प्र वंपे स्वस्त्युत्तराण्यशीयाऽऽपां अस्मान्मातरः शुन्धन्तु घृतेनं नो घृतपुर्वः पुनन्तु विश्वंमस्मत्प्र वहन्तु रिप्रमुदांभ्यः शुचिरा पूत एमि सोमंस्य तुनूरेसि तुनुवं मे पाहि महीनां पयोऽसि वर्चोधा असि वर्चो (१)

मियं धेहि वृत्रस्यं क्नीनिकाऽसि चक्षुष्पा असि चक्षुंर्मे पाहि चित्पतिंस्त्वा पुनातु वाक्पतिंस्त्वा पुनातु देवस्त्वां सिवता पुनात्विच्छंद्रेण प्वित्रंण वसोः सूर्यंस्य रिश्मिभिस्तस्यं ते पवित्रपते प्वित्रंण यस्मै कं पुने तच्छंकेयमा वो देवास ईमहे सत्यंधर्माणो अध्वरे यहों देवास आगुरे यिज्ञंयासो हवांमह इन्द्रांग्री द्यावांपृथिवी आपं ओषधीस्त्वं दीक्षाणामधिपतिरसीह मा सन्तं पाहि॥ (२)

वर्च ओषधीर्ष्टौ चं॥_____[१]

आकूँत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहां मेधायै मनंसेऽग्नये स्वाहां दीक्षायै तपंसेऽग्नये स्वाहा सरंस्वत्ये पूष्णेंऽग्नये स्वाहाऽऽपों देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भवो द्यावांपृथिवी उर्वन्तिरक्षं बृह्स्पतिंनीं ह्विषां वृधातु स्वाहा विश्वे देवस्यं नेतुर्मर्तोऽवृणीत सुख्यं विश्वे राय इषुध्यसि द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहंख्सामयोः शिल्पें स्थस्ते वामा रंभे ते मां (३)

पात्माऽस्य यज्ञस्योद्दचं इमां धिय् शिक्षंमाणस्य देव ऋतुं दक्षं वरुण सश्शिशाधि ययाऽति विश्वां दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नाव रे रुहेमोर्गस्याङ्गिर्स्यूर्णम्रदा ऊर्जं मे यच्छ पाहि मा मा मां हिश्सीर्विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्य शर्म मे यच्छ नक्षंत्राणां माऽतीकाशात् पाहीन्द्रंस्य योनिरसि (४)

मा मां हि॰सीः कृष्ये त्वां सुसुस्यायें सुपिप्पुलाभ्यस्त्वौषं-धीभ्यः सूपस्था देवो वनस्पतिंरूर्ध्वो मां पाह्योद्दचः स्वाहां युज्ञं मनसा स्वाहा द्यावांपृथिवीभ्याङ् स्वाहोरोर्न्तरिक्षाथ्स्वाहां यज्ञं वातादा रंभे॥ (५)

मा योनिरसि त्रिष्शर्च॥____[२]

देवीं धियंं मनामहे सुमृडीकाम्भिष्टंये वर्चीधां युज्ञवांहस स् सुपारा नो असृद्वशें। ये देवा मनोजाता मनोयुजंः सुदक्षा दक्षंपितार्स्ते नंः पान्तु ते नोंऽवन्तु तेभ्यो नम्स्तेभ्यः स्वाहा-ऽग्रे त्व स् सु जांगृहि वय सु मंन्दिषीमहि गोपाय नंः स्वस्तयें प्रबुधे नः पुनर्ददः। त्वमंग्रे व्रत्पा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं (६)

यज्ञेष्वीड्यः॥ विश्वं देवा अभि मा माऽवंवृत्रन् पूषा सुन्या सोमो राधंसा देवः संविता वसौंवंसुदावा रास्वयंथ्सोमाऽ-ऽभूयो भर मा पृणन्पूर्त्या वि रांधि माऽहमायुंषा चन्द्रमंसि मम भोगाय भव वस्त्रमसि मम भोगाय भवोस्राऽसि मम् भोगाय भव हयोऽसि मम् भोगाय भव (७)

छागोंऽसि मम् भोगांय भव मेषोंऽसि मम् भोगांय भव वायवें त्वा वरुणाय त्वा निर्ऋत्यै त्वा रुद्रायं त्वा देवींरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हंविष्यं इन्द्रियावांन्मदिन्तंमस्तं वो मा-ऽवंक्रमिष्मिच्छेन्नं तन्तुं पृथिव्या अनुं गेषं भुद्राद्भि श्रेयः प्रेहि बृह्स्पतिः पुरप्ता ते अस्त्वथेमवं स्य वर् आ पृथिव्या आरे शत्रूंन कृणुहि सर्ववीर एदमंगन्म देवयजंनं पृथिव्या विश्वे देवा यदज्ञंषन्त पूर्व ऋख्सामाभ्यां यज्ञंषा सन्तरंन्तो रायस्पोषेण समिषा मंदेम॥ (८)

आ त्वर हयोंऽसि मम् भोगांय भव स्य पश्चंविरशतिश्च॥———[३]

इयं ते शुक्र त्नूरिदं वर्चस्तया सं भेव आर्जं गच्छ जूरेसि धृता मनसा जुष्टा विष्णंवे तस्यांस्ते स्त्यसंवसः प्रस्वे वाचो यन्नमंशीय स्वाहां शुक्रमंस्यमृतंमिस वैश्वदेव हिवः सूर्यस्य चक्षुराऽरुंहम्ग्नेरक्षणः क्नीनिकां यदेतंशेभिरीयंसे आर्जमानो विपश्चिता चिदंसि मनाऽसि धीरंसि दक्षिणा- (९)

ऽसि यज्ञियांऽसि क्षित्रियाऽस्यदितिरस्युभ्यतंःशीर्ष्णी सा नः सुप्रांची सुप्रंतीची सं भंव मित्रस्त्वां पदि बंधातु पूषा-ऽध्वंनः पात्विन्द्रायाध्यंक्षायानुं त्वा माता मंन्यतामनुं पिताऽनु भ्राता सग्भ्योऽनु सखा सयूंथ्यः सा देवि देवमच्छेहीन्द्रांय सोम रे रुद्रस्त्वाऽऽवंतियतु मित्रस्यं पृथा स्वस्ति सोमंसखा पुन्रेहिं सह र्य्या॥ (१०)

दक्षिणा सोमंसखा पश्चं च॥_____[४]

वस्त्र्यंसि रुद्राऽस्यिदंतिरस्यादित्याऽसिं शुक्राऽसिं चन्द्राऽसि बृह्स्पितंस्त्वा सुम्ने रंण्वतु रुद्रो वसुंभिरा चिंकेतु पृथिव्यास्त्वां मूर्धन्ना जिंधिम देवयर्जन् इडांयाः पदे घृतवंति स्वाहा परिलिखित्र रक्षः परिलिखिता अरांतय इदम्हर रक्षंसो ग्रीवा अपि कृन्तामि यौंऽस्मान् द्वेष्टि यं चे व्यं द्विष्म इदमंस्य ग्रीवा (११)

अपिं कृन्ताम्यस्मे रायस्त्वे रायस्तोते रायः सं देवि देव्योर्वश्यां पश्यस्व त्वष्टीमती ते सपेय सुरेता रेतो दर्धाना वीरं विदेय तर्व सुन्दिश माऽह रायस्पोर्षण वि योषम्॥ (१२)

अस्य ग्रीवा एकान्नत्रिष्शर्च॥————[५]

अर्शुनां ते अर्शुः पृंच्यतां पर्नषा पर्नग्न्थस्ते कामंमवतु मदाय रसो अच्युंतोऽमात्योऽिस शुक्रस्ते ग्रहोऽिभ त्यं देव स् संवितारंमूण्योः क्विकंतुमर्चामि सत्यसंवस स् रत्यामि प्रियं मितमूर्ध्वा यस्यामित्भा अदिद्युत्थसवीमिन् हिरंण्यपाणिरिममीत सुक्रतुः कृपा सुवंः। प्रजाभ्यंस्त्वा प्राणायं त्वा व्यानायं त्वा प्रजास्त्वमन् प्राणिहि प्रजास्त्वामन्

ऊरुं द्वावि १ शतिश्व॥

प्राणंन्तु॥ (१३)

अनुं सुप्त चं॥———[६]

सोमं ते क्रीणाम्यूर्जंस्वन्तं पर्यस्वन्तं वीर्यावन्तमभिमाति-षाह १ शुक्रं ते शुक्रेणं क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतंममृतंन सम्यत्ते गोर्स्मे चन्द्राणि तपंसस्तनूरंसि प्रजापंतेर्वर्णस्तस्यास्ते सहस्रपोषं पुष्यंन्त्याश्चर्मणं पृशुनां क्रीणाम्यस्मे ते बन्धुर्मियं ते रायः श्रयन्तामस्मे ज्योतिः सोमविक्वियणि तमो मित्रो न एहि सुमित्रधा इन्द्रंस्योरु मा विश् दक्षिणमुशत्रुशन्त १ स्योनः स्योन इस्वान् भ्राजाङ्कारे बम्भारे हस्त सुहंस्त कृशांनवेते वेः सोमक्रयंणास्तान्नंक्षध्वं मा वो दभन्न॥ (१४)

उदायंषा स्वायुषोदोषंधीना रसेनोत्पर्जन्यंस्य शुष्मेणोदंस्थाममृता अनं। उर्वन्तिरंक्षमिन्वह्यदिंत्याः सदो-ऽस्यदिंत्याः सद् आसीदास्तंभ्राद्यामृष्भो अन्तिरंक्षमिमीत विरमाणं पृथिव्या आसीदिद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि

वर्रणस्य व्रतानि वनेषु व्यन्तिरक्षं ततान् वाज्ञमर्वथ्यु पयो अघ्रियासुं हथ्सु (१५)

ऋतुं वर्रुणो विक्ष्वंग्निं दिवि सूर्यमदधाथसोम्मद्रावुदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवंः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ उस्रावतं धूर्षाहावन्श्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदंनौ वर्रुणस्य स्कम्भेनमसि वर्रुणस्य स्कम्भेनमसि प्रत्यंस्तो वर्रुणस्य पाशः॥ (१६)

प्रच्यंवस्व भुवस्पते विश्वांन्यभि धामांनि मा त्वां परिप्री विंद्नमा त्वां परिपन्थिनों विद्नमा त्वा वृकां अघायवो मा गंन्ध्वों विश्वावंसुरा दंघच्छोनो भूत्वा परां पत् यजंमानस्य नो गृहे देवैः सङ्स्कृतं यजंमानस्य स्वस्त्ययंन्यस्यपि

नो गृहे देवैः सईस्कृतं यजमानस्य स्वस्त्ययंन्यस्यिष् पन्थांमगस्मिह स्वस्तिगामनेहसं येन विश्वाः पिरे द्विषो वृणिते विन्दते वसु नमो मित्रस्य वर्रुणस्य चक्षंसे महो देवाय तद्दतः संपर्यत दूरेदशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शःसत् वर्रुणस्य स्कम्भनमिस् वर्रुणस्य स्कम्भसर्जनम्स्युन्मुंक्तो वर्रुणस्य पाशंः॥ (१७)

भ्रत्रस्य त्रयोविश्वातिश्वा—[१] अग्नेरांतिथ्यमंसि विष्णंवे त्वा सोमंस्याऽऽतिथ्यमंसि

विष्णवे त्वाऽतिंथेरातिथ्यमंसि विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा

आ मैकं च॥

रायस्पोषदान्त्रे विष्णंवे त्वा श्येनायं त्वा सोम्भृते विष्णंवे त्वा या ते धामांनि ह्विषा यर्जन्ति ता ते विश्वां परिभूरंस्तु यज्ञं गंयस्फानंः प्रतरंणः सुवीरोऽवीरहा प्र चंरा सोम् दुर्यानदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद आ (१८)

सींद् वर्रुणोऽसि धृतव्रंतो वारुणमंसि श्ंयोर्देवानार् सख्यान्मा देवानांम्पसंश्किथ्स्मृह्यापंतये त्वा गृह्णाम् परिपतये त्वा गृह्णाम् तनूनभ्रं त्वा गृह्णामि शाक्र्रायं त्वा गृह्णामि शक्नुन्नोजिष्ठाय त्वा गृह्णाम्यनांधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोंऽभिशस्तिपा अनिभशस्तेऽन्यमन् मे दीक्षां दीक्षापंतिर्मन्यतामन् तप्स्तपंस्पतिरश्रंसा सत्यमुपं गेषर् सुविते मां धाः॥ (१९)

अर्शुर रेशुस्ते देव सोमाऽऽप्यायतामिन्द्रांयैकधन्विद् आ तुभ्यमिन्द्रंः प्यायतामा त्वमिन्द्रांय प्यायस्वाऽऽ प्यायय सर्खीन्थ्सन्या मेधयां स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामंशीयेष्टा रायः प्रेषे भगायर्तमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमंः पृथिव्या

अग्नै व्रतपते त्वं व्रतानां व्रतपंतिरसि या मर्म तुनूरेषा सा त्विय (२०)

या तर्व तुनूरिय सा मियं सह नौ व्रतपते ब्रितिनौर्ब्रतानि या तें अग्ने रुद्रिया तुनूस्तयां नः पाहि तस्यौस्ते स्वाहा या तें अग्नेऽयाश्या रंजाश्या हंराश्या तुनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचो अपांवधीं त्वेषं वचो अपांवधी स्वाहा॥ (२१)

वित्तार्यनी मेऽसि तिक्तार्यनी मेऽस्यवंतान्मा

वित्तायनी मेडीसे तिक्तायनी मेडस्यवतान्मा नाथितमवंतान्मा व्यथितं विदेरिग्नर्नभो नामाग्ने अङ्गिरो यौंऽस्यां पृथिव्यामस्यायुषा नाम्नेहि यत्तेऽनांधृष्टं नामं यज्ञियं तेन त्वाऽऽद्धेऽग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयंस्यां तृतीयंस्यां पृथिव्यामस्यायुषा नाम्नेहि यत्तेऽनांधृष्टं नामं (२२)

यज्ञियं तेन त्वाऽऽदंधे सि॰्हीरंसि महिषीरंस्युरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपंतिः प्रथतां ध्रुवाऽसिं देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्वेन्द्रघोषस्त्वा वसुंभिः पुरस्तांत्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिद्धिणतः पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्यैरुत्तरतः पातु सि॰्हीरंसि सपत्नसाही स्वाहां सि॰्हीरंसि सप्रजाविनः स्वाहां सि॰्ही- (२३)

-रंसि रायस्पोष्विनः स्वाहां सि॰्हीरंस्यादित्यविनः स्वाहां सि॰्हीर्स्या वंह देवान्देवयते यजंमानाय स्वाहां भूतेभ्यंस्त्वा विश्वायुरिस पृथिवीं द्देह ध्रुविक्षिदंस्यन्तिरक्षं द॰हाच्युतिक्षदंसि दिवं द॰हाग्नेर्भस्मांस्यग्नेः पुरीषमिस॥ (२४)

युअते मनं उत युंअते धियो विप्रा विप्रंस्य बृह्तो विप्रिश्चतः। वि होत्रां दधे वयुनाविदेक इन्मृही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥ सुवाग्देव दुर्या आवेद देवश्रुतौ देवेष्वा घोषेथामा नो वीरो जांयतां कर्मण्यो य सर्वेऽनुजीवांम

यो बंहूनामसंद्वशी। इदं विष्णुर्वि चंक्रमे त्रेधा नि दंधे पदम्। समूंढमस्य (२५) पारसुर इरांवती धेनुमती हि भूतर सूंयवसिनी मनंव

यश्स्ये। व्यंस्कभ्राद्रोदंसी विष्णुंरेते दाधारं पृथिवीम्भितीं म्यूखैंः॥ प्राची प्रेतंमध्वरं कृत्पयंन्ती ऊर्धं यज्ञं नंयतं मा जीह्वरत्मत्रं रमेथां वर्ष्मंन्पृथिव्या दिवो वां विष्णवुत वां पृथिव्या महो वां विष्णवुत वाऽन्तरिक्षाद्धस्तौं पृणस्व बहुभिवंस्व्यैरा प्र यंच्छ् (२६)

अस्य युच्छैकान्नचंत्वारिष्शर्च॥=

दक्षिणादोत स्व्यात्। विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वीचं यः पार्थिवानि विममे रजार्स्स यो अस्केभायदुत्तर स्प्रस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुंगायो विष्णो र्राटंमसि विष्णोः पृष्ठमंसि विष्णोः श्विष्रे स्थो विष्णोः स्यूरंसि विष्णोर्धुवमंसि वैष्णवमंसि विष्णेव त्वा॥ (२७)

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामेवा इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रणानोऽस्तांसि विध्यं रक्षसस्तपिष्ठैः॥ तवं

भ्रमासं आशुया पंतन्त्यनुं स्पृश धृषता शोशुंचानः। तपू ईष्यग्ने जुह्वां पत्ङ्गानसंन्दितो वि सृंज् विष्वंगुल्काः॥ प्रति स्पशो वि सृंज् तूर्णितमो भवां पायुर्विशो अस्या अदंब्यः। यो नों दूरे अघशईसो (२८)

यो अन्त्यग्ने मार्किष्टे व्यथिरा देधर्षीत्। उदंग्ने तिष्ठ प्रत्या-ऽऽतंनुष्व न्यंमित्रा अषतात्तिग्महेते। यो नो अरांति स् समिधान चक्रे नीचा तं धंक्ष्यत्सं न शुष्कम्॥ ऊर्ध्वो भंव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अवं स्थिरा तंनुहि यातुजूनां जामिमजांमिं प्र मृंणीहि शत्रून्॥ स ते (२९) जानाति सुमतिं यंविष्ठ् य ईवंते ब्रह्मंणे गातुमैरंत्। विश्वान्यस्मै सुदिनांनि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरों अभि द्यौत्॥ सेदंग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्यंन ह्विषा य उक्थेः। पिप्रींषति स्व आयुंषि दुरोणे विश्वेदंस्मै सुदिना साऽसंदिष्टिः॥ अर्चामि ते सुमतिं घोष्युर्वाख्सं तें वावातां जरता- (३०)

मियङ्गीः। स्वश्वांस्त्वा सुरथां मर्जयमास्मे क्षुत्राणिं धारयेरन् द्यून्॥ इह त्वा भूयां चरेदुप् त्मन्दोषांवस्तर्दीदिवा १-समनु द्यून्। कीडंन्तस्त्वा सुमनंसः सपेमाभि द्युमा तिस्थिवा १ सो जनांनाम्॥ यस्त्वा स्वश्वंः सुहिर्ण्यो अंग्र उपयाति वसुंमता रथेन। तस्यं त्राता भवसि तस्य सखा यस्तं आतिथ्यमांनुषग्जुजोषत्॥ महो रुजामि (३१)

बन्धुता वचोंभिस्तन्मां पितुर्गोतंमादिन्वयाय॥ त्वं नो अस्य वचंसिश्चिकिद्धि होत्यंविष्ठ सुऋतो दमूंनाः॥ अस्वंप्रजस्तरणंयः सुशेवा अतंन्द्रासोऽवृका अश्रंमिष्ठाः। ते पायवंः सिध्रयंश्चो निषद्याऽग्ने तवं नः पान्त्वमूर॥ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरंक्षन्। रुरक्ष तान्थ्सुकृतों विश्ववेदा दिफ्संन्त इद्रिपवो ना हं (३२) देभुः॥ त्वयां वय संधन्यंस्त्वोतास्तव प्रणींत्यश्याम् वाजान्। उभा शर्मां सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृंणुह्यह्रयाण॥ अया ते अग्ने समिधां विधेम् प्रति स्तोम श्रिस्यमांनं गृभाय। दहाशसों रक्षसंः पाह्यंस्मान्द्रुहो निदोऽमित्रमहो अवद्यात्॥ रक्षोहणं वाजिनमाऽऽजिंघिम मित्रं प्रथिष्ठमुपं यामि शर्म। शिशांनो अग्निः ऋतुंभिः समिद्धः स नो दिवा (३३)

स रिषः पांतु नक्तम्॥ वि ज्योतिषा बृह्ता भांत्यग्निराविविश्वांनि कृण्ते महित्वा। प्रादेवीर्मायाः संहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षंसे विनिक्षे॥ उत स्वानासो दिविषंन्त्वग्नेस्तिग्मायुंधा रक्षंसे हन्तवा उं। मदे चिदस्य प्ररुजन्ति भामा न वंरन्ते परिबाधो अदेवीः॥ (३४)

अघशर्थमः स ते जरतार रुजामि ह् दिवैकंचत्वारिर्शच॥————[१४]

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रसवैंऽिश्वनौंर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यामाद्देऽिभ्रंरिस् नारिंरिस् परिंलिखित् रक्षः परिंलिखिता अरातय इदमहर रक्षंसो ग्रीवा अपिं कृन्तािम् यौंऽस्मान् द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इदमंस्य ग्रीवा अपिं कृन्तािम दिवे त्वाऽन्तिरिक्षाय त्वा पृथिव्ये त्वा शुन्धंतां लोकः पितृषदंनो यवोऽिस यवयास्मद्वेषों (१)

यवयारांतीः पितृणाः सदंनम्स्युद्दिवः स्तभाना-ऽन्तिरक्षं पृण पृथिवीं दःह द्युतानस्त्वां मारुतो मिनोतु मित्रावरुणयोध्रुंवेण धर्मणा ब्रह्मविनं त्वा क्षत्रविनः स्प्रजाविनः रायस्पोषविनं पर्यूहामि ब्रह्मं दःह क्षत्रं दःह प्रजां दःह रायस्पोषं दःह घृतेनं द्यावापृथिवी आ पृणेथामिन्द्रंस्य सदोऽसि विश्वजनस्यं छाया परि त्वा गिर्वणो गिरं इमा भवन्तु विश्वतों वृद्धायुमनु वृद्धंयो जुष्टां भवन्तु जुष्टंय इन्द्रंस्य स्यूरसीन्द्रंस्य ध्रुवमंस्यैन्द्रम्सीन्द्रांय त्वा॥ (२)

हेषं इमा अष्टादंश च॥———[१] रुश्चोहणों वलगृहनों वैष्णुवान्खंनामीदमृहं तं वलगमदंणामि यं नेः समानो यमसंमानो निचखानेदमेनमधंरं

वंलगमुद्धंपामि यं नंः समानो यमसंमानो निच्खानेदमेनमधंरं करोमि यो नंः समानो योऽसंमानोऽरातीयति गायत्रेण छन्दसाऽवंबाढो वलगः किमत्रं भुद्रं तन्नौ सह विराडंसि सपत्रहा सम्राडंसि भ्रातृव्यहा स्वराडंस्यभिमातिहा विश्वाराडंसि विश्वांसां नाष्ट्राणा है हन्ता (३)

रंक्षोहणां वलगृहनः प्रोक्षांमि वैष्णवान् रंक्षोहणां वलगृहनोऽवं नयामि वैष्णवान् यवांऽसि यवयास्मद्वेषां यवयारांती रक्षोहणां वलगृहनोऽवं स्तृणामि वैष्णवान् रंक्षोहणां वलगृहनोऽभि जुंहोमि वैष्णवान् रंक्षोहणां वलगृहनोऽभि जुंहोमि वैष्णवान् रंक्षोहणां वलगृहनौ पर्यूहामि वैष्णवी रंक्षोहणां वलगृहनौ पर्यूहामि वैष्णवी रंक्षोहणां वलगृहनौ परि स्तृणामि वैष्णवी रंक्षोहणां वलगृहनौ विष्णवी बृहन्नंसि बृहद्भांवा बृहतीमिन्द्रांय वाचं वद॥ (४)

ह्न्तेन्द्रांय द्वे चं॥____[२]

विभूरंसि प्रवाहंणो वहिरसि हव्यवाहंनः श्वात्रों-ऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदा उशिगंसि कविरङ्घांरिरसि बम्भांरिरवस्युरसि दुवंस्वाञ्छुन्थ्यूरंसि मार्जालीयः सम्राडंसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवंमानः प्रतक्कांऽसि नभंस्वानसंम्मृष्टो-ऽसि हव्यसूदं ऋतधांमाऽसि सुवंज्योतिर्ब्रह्मंज्योतिरसि सुवंधामाऽजौंऽस्येकपादहिरसि बुधियो रौद्रेणानींकेन पाहि माँऽग्ने पिपृहि मा मा मां हि॰सीः॥ (५)

अनींकेनाष्टौ चं॥———[३]

त्वर सोम तनूकृद्धो द्वेषौँभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु युन्तासि वरूथ्य स्वाहां जुषाणो अप्तराज्यंस्य वेतु स्वाहाऽयं नो अग्निवीरेवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्न। अयर शत्रूं अयतु जर्हंषाणोऽयं वाजं जयतु वाजंसातौ॥ उरु विष्णो वि कंमस्वोरु क्षयांय नः कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्रं युज्ञपंतिं तिर॥ सोमो जिगाति गातुविद् (६)

देवानांमेति निष्कृतमृतस्य योनिमासदमिदित्याः सदो-ऽस्यदित्याः सद आ सींदैष वो देव सवितः सोमस्तः रक्षध्वं मा वो दभदेतत् त्वः सोम देवो देवानुपांगा इदमृहं मंनुष्यों मनुष्यांन्थ्सह प्रजयां सह रायस्पोषंण नमों देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यं इदमहं निर्वरुणस्य पाशाथ्सुवर्भ (७)

वि ख्येषं वैश्वान्रं ज्योतिरग्ने व्रतपते त्वं व्रतानों व्रतपतिरिस् या ममं तुन्स्त्वय्यभूदिय सा मिय या तवं तुन्र्मय्यभूदेषा सा त्वियं यथाय्थं नौ व्रतपते व्रतिनौर्वतानि॥ (८)

गातुविद्भ्येकंत्रि ५शच॥———[४]

अत्यन्यानगां नान्यानुपांगामुर्वाक्ता परैरविदं प्रोऽवंरैस्तं त्वां जुषे वैष्णुवं देवयुज्याये देवस्त्वां सिवृता मध्यां-ऽनुक्कोषंधे त्रायस्वैन् स्वधिते मैन रे हिश्सीर्दिवमग्रेण मा लेखीरन्तरिक्षं मध्येन मा हिर्रसीः पृथिव्या सं भेव वनस्पते शतवंलशो वि रोह सहस्रंवलशा वि वयश् रुहेम् यं त्वाऽयः स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनायं महते सौभगायाऽच्छिन्नो रायः सुवीरः॥ (९)

यं दर्श च॥————[५]

पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा शुन्धंतां लोकः पितृषदेनो यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारांतीः पितृणाः सदंनमिस स्वावेशों ऽस्यग्रेगा नेतृणां वन्स्पतिरिधं त्वा स्थास्यति तस्यं वित्ताद्देवस्त्वां सिवृता मध्वां ऽनक्तु सुपिप्पृलाभ्यस्त्वौषंधीभ्य उद्दिव हं स्तभानान्तिरक्षं पृण पृथिवीमुपंरेण दृश्ह् ते ते धामां न्युश्मसी (१०)

ग्मध्ये गावो यत्र भूरिशङ्गा अयासंः। अत्राह् तदुंरुगायस्य विष्णौः पर्मं पदमवं भाति भूरैः॥ विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतौ व्रतानि पस्पशे। इन्द्रंस्य युज्यः सखाँ॥ तद्विष्णौः पर्मं पद सदो पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव चक्षुरातंतम्॥ ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनि सप्रजावनि र रायस्पोषविनं पर्यूहामि ब्रह्मं ह सह क्षत्रं ह ह प्रजां ह ह रायस्पोषं ह ह परिवीरिस् परि त्वा दैवीर्विशौ व्ययन्तां परीम र रायस्पोषो यजमानं मनुष्यां अन्तरिक्षस्य त्वा सानाववं गूहामि॥ (११)

उश्म्सी पोष्मेकात्रविरेशितश्चे॥———[६] इषे त्वोपवीरस्युपों देवान्दैवीर्विशः प्रागुर्वहीरुशिजो बृहंस्पते धारया वसूंनि ह्व्या ते स्वदन्तां देवं त्वष्ट्वंसुं रण्व रेवंती रमध्वमुग्नेर्जनित्रमिस् वृषंणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरंसि पुरूरवां घृतेनाक्ते वृषंणं दधाथां गायत्रं छन्दोऽनु प्र जांयस्व त्रैष्टुंभं जागंतं छन्दोऽनु प्रजायस्व भवंतं (१२)

नः समंनसौ समोकसावरेपसौं। मा यज्ञ हि सिष्टं मा यज्ञ ति ति सिष्टं मा यज्ञ पितं जातवेदसौ शिवौ भंवतम् च नः॥ अग्नावृग्निश्चरित् प्रविष्टं ऋषींणां पुत्रो अधिराज एषः। स्वाहाकृत्य ब्रह्मणा ते जुहोमि मा देवानां मिथुयाकंभीग्धेयम्॥ (१३)

आ दंद ऋतस्यं त्वा देवहिवः पाशेनाऽऽरंभे धर्षा मानुषानुद्धस्त्वौषंधीभ्यः प्रोक्षांम्यपां पेरुरंसि स्वात्तं चिथ्मदेव १ ह्व्यमापो देवीः स्वदंतेन १ सं ते प्राणो वायुनां गच्छता १ सं यजंत्रेरङ्गांनि सं यज्ञपंतिराशिषां घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथा १ रेवंतीर्य्ज्ञपंतिं प्रियुधाऽऽविंश्तोरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन (१४)

वार्तनाऽस्य ह्विष्टस्त्मनां यज् समंस्य तनुवां भव वर्षीयो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपंतिं धाः पृथिव्याः सम्पृचंः पाहि नमंस्त आतानाऽनुवां प्रेहिं घृतस्यं कुल्यामनुं सह प्रजयां सह रायस्पोषेणाऽऽपों देवीः शुद्धायुवः शुद्धा यूयं देवा र ऊड्ढर शुद्धा वयं परिविष्टाः परिवेष्टारों वो भूयास्म॥ (१५)

देवेन् चतुंश्चत्वारिरशच॥______

वाक्त आ प्यांयतां प्राणस्त आ प्यांयतां चक्षुंस्त आ प्यांयता ॥ श्रोत्रं त आ प्यांयतां या ते प्राणाञ्छुग्जगाम या चक्षुर्या श्रोत्रं यत् ते कूरं यदास्थितं तत् त आ प्यांयतां तत् तं एतेनं शुन्धतां नाभिस्त आ प्यांयतां पायुस्त आ प्यांयता ॥ शुद्धाश्चरित्राः शमुद्धाः (१६)

शमोषंधीभ्यः शं पृंथिव्यै शमहों भ्यामोषंधे त्रायंस्वैन्ड् स्विधिते मैन र् हिर्मी रक्षंसां भागों उसीदमहर रक्षों ऽधमं तमों नयामि यों उस्मान् द्वेष्टि यं च व्यं द्विष्म इदमें नमध्मं तमों नयामीषे त्वां घृतेनं द्यावापृथिवी प्रोण्वीथामिष्ठिं त्रो रायः सुवीरं उर्वन्तिरिक्षमिन्विंहि वायो वीहिं स्तोकानाड्ड स्वाहोर्ध्वनंभसं मारुतं गेच्छतम्॥ (१७)

अ्द्यो वीह् पर्श्वं च॥_____[९]

सं ते मनसा मनः सं प्राणेनं प्राणो जुष्टं देवेभ्यों ह्व्यं घृतवृथ्स्वाहैन्द्रः प्राणो अङ्गंअङ्गे नि देध्यदैन्द्रोऽपानो अङ्गेअङ्गे वि बोभुवद्देवं त्वष्टुर्भूरिं ते स॰संमेतु विषुरूपा यथ्सलंक्ष्माणो भवंथ देवत्रा यन्तमवंसे सखायोऽनुं त्वा माता पितरों मदन्तु श्रीरंस्यग्निस्त्वौ श्रीणात्वापः समंरिणन्वातंस्य (१८)

त्वा ध्रज्यै पूष्णो रङ्ह्यां अपामोषंधीना् रोहिष्यै घृतं घृंतपावानः पिबत् वसां वसापावानः पिबतान्तिरेक्षस्य ह्विरेसि स्वाहां त्वाऽन्तिरेक्षाय दिशः प्रदिशं आदिशों विदिशं उद्दिशः स्वाहां दिग्भ्यो नमों दिग्भ्यः॥ (१९)

वार्तस्याष्टावि ५ शतिश्च॥_____[१०]

समुद्रं गंच्छु स्वाहाऽन्तिरक्षं गच्छु स्वाहां देव संवितारं गच्छु स्वाहांऽहोरात्रे गंच्छु स्वाहां मित्रावरुंणौ गच्छु स्वाहां सोमं गच्छु स्वाहां युज्ञं गंच्छु स्वाहा छन्दा सि गच्छु स्वाहा द्यावांपृथिवी गंच्छु स्वाहा नभो दिव्यं गंच्छु स्वाहाः ऽग्निं वैश्वान् गंच्छु स्वाहाऽज्ञ्यस्त्वौषंधीभ्यो मनो मे हार्दि यच्छ तुनूं त्वचं पुत्रं नप्तारमशीय शुगंसि तम्भि शोंच यौं-ऽस्मान् द्वेष्टि यं चं व्यं द्विष्मो धाम्नोधाम्नो राजित्रतो वंरुण नो मुश्च यदापो अग्निया वरुणिति शपांमहे ततो वरुण नो मुश्च॥ (२०)

असि षड्वि ५ शतिश्व॥ 🗕 🗕

-[88]

हविष्मंतीश्चतुंस्रि १शत्॥-

ह्विष्मंतीरिमा आपों ह्विष्मांन् देवो अध्वरो ह्विष्मा्रं आ विवासति ह्विष्मार्ं अस्तु सूर्यः॥ अग्नेर्वो-ऽपंत्रगृहस्य सदंसि सादयामि सुम्नायं सुम्निनीः सुम्ने मां धत्तेन्द्राग्नियोर्गांग्धेयीः स्थ मित्रावरुंणयोर्भाग्धेयीः स्थ विश्वेषां देवानां भाग्धेयीः स्थ युज्ञे जांगृत॥ (२१)

हुदे त्वा मनंसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वोर्ध्वमिममंध्वरं धि दिवि देवेष होत्रां यच्छा सोमं राजन्नेहावं रोह मा भेमी सं

कृषि दिवि देवेषु होत्रां यच्छ सोमं राज् नेह्यवं रोह् मा भेमां सं विक्था मा त्वां हि॰ सिषं प्रजास्त्वमुपावंरोह प्रजास्त्वामुपावं रोहन्तु शृणोत्वग्निः समिधा हवंं मे शृण्वन्त्वापों धिषणांश्च देवीः। शृणोतं ग्रावाणो विदुषो नु (२२)

युज्ञ १ शृणोतुं देवः संविता हवंं मे। देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हंविष्यं इन्द्रियावांन्मदिन्तंमस्तं देवेभ्यों देवत्रा धंत्त शुक्र श्रुंक्रपेभ्यो येषां भागः स्थ स्वाहा कार्षिर्स्यपापां मृध्र संमुद्रस्य वोक्षित्या उन्नये। यमंग्ने पृथ्सु मर्त्यमावो वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वंतीरिषः॥ (२३)

नु स्प्तचंत्वारि १ शच॥-----[१३]

त्वमंग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्व शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे। त्वं वातैररुणैर्यास शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मनां॥ आ वो राजानमध्वरस्यं रुद्र होतार सत्ययज्ञ र रोदंस्योः। अग्निं पुरा तनिय्लोर्चित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥ अग्निरहोता निषंसादा यजीयानुपस्थे मातुः सुरुभावं लोके। युवां कृविः पुरुनिष्ठ - (२४)

ऋतावां धर्ता कृष्टीनामुत मध्यं इद्धः॥ साध्वीमंकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्यं जिह्वामंविदाम् गृह्यांम्। स आयुरागांध्सुर-भिवसांनो भूद्रामंकर्देवहूंतिं नो अद्य॥ अऋंन्दद्गिः स्तनयंत्रिव द्योः क्षामा रेरिंहद्वीरुधंः समुञ्जन्र। सुद्यो जंज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुनां भात्यन्तः॥ त्वे वसूंनि पुर्वणीक (२५)

होतर्दोषा वस्तोरेरिरे युज्ञियांसः। क्षामेव विश्वा भुवंनानि यस्मिन्थ्स ए सौभंगानि दिधरे पांवके॥ तुभ्यं ता अंङ्गिरस्तम् विश्वाः सुक्षितयः पृथंक्। अग्रे कामाय येमिरे॥ अश्याम् तं काममग्रे तवोत्यंश्यामं र्यि रंयिवः सुवीरम्। अश्याम् वाजंमिभ वाजयंन्तोऽश्यामं द्युम्नमंजराजरं ते॥ श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्रे द्युमन्तमाभंर। (२६)

वसो पुरुस्पृह र रियम्॥ स श्वितानस्तेन्यत रोचनस्था अजरेभिर्नानंदद्भिर्यविष्ठः। यः पांवकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरेन्याति भवन्नं॥ आयुष्टे विश्वतो दधद्यम्ग्निवरेण्यः। पुनस्ते प्राण आयंति परा यक्ष्मरं सुवामि ते॥ आयुर्दा अंग्ने ह्विषो जुषाणो घृतप्रंतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गर्व्यं पितेवं पुत्रम्भि (२७)

रंक्षतादिमम्॥ तस्मै ते प्रतिहर्यते जातंवदो विचंर्षणे। अग्ने जनांमि सुष्टुतिम्॥ दिवस्परि प्रथमं जंज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः। तृतीयंमप्स नृमणा अजंस्रमिन्धांन एनं जरते स्वाधीः॥ शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे। त्वं घृतेभिराहुंतः॥ दृशानो रुका उर्व्या व्यंद्यौद् दुर्मर्षमायुंः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतों अभवद्वयोंभिर्- (२८)

यदेनं द्यौरजनयथ्सुरेताः॥ आ यदिषे नृपितं तेज् आन्द्भुचि रेतो निषिक्तं द्यौर्भीकें। अग्निः शर्धमनवद्यं युवानः स्वाधियं जनयथ्सूदयंच॥ स तेजीयसा मनसा त्वोतं उत शिक्ष स्वपत्यस्यं शिक्षोः। अग्ने रायो नृतंमस्य प्रभूतौ भूयामं ते सुष्टुतयंश्च वस्वः॥ अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्यं प्रासहां र्यिम्। विश्वा यश्- (२९)

चंर्षणीर्भ्यांसा वाजेषु सासहंत्॥ तमंग्ने पृतनासहर् रियर संहस्व आ भंर। त्वर हि सत्यो अद्भुंतो दाता वाजंस्य गोमंतः॥ उक्षान्नांय वृशान्नांय सोमंपृष्ठाय वृधसें। स्तोमैंविधेमाग्नयें॥ वृद्या हि सूनो अस्यंद्मसद्वां चृक्ते अग्निर्जनुषाज्मान्नम्ं। स त्वं नं ऊर्जसन् ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेंष्यन्तः॥ अग्न आयूर्षि (३०)

पवस् आ सुवोर्जिमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनाँम्॥ अग्ने पर्वस्व स्वपां अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधत्पोष रे रियं मियं॥ अग्ने पावक रोचिषां मृन्द्रयां देव जिह्नयाँ। आ देवान् विक्षे यिक्षं च॥ स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवा इहा वह। उपं यज्ञ हिवश्चं नः॥ अग्निः शुचित्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः। शुचीं रोचत् आहुंतः॥ उदंग्ने शुचंयस्तवं शुक्रा भ्राजंन्त ईरते। तव ज्योती इंष्युर्चयंः॥ (३१)

पुरुनिष्ठः पुर्वणीक भराऽभि वयोंभिर्य आयूर्षेषि विप्रः शुचिश्चतुंर्दश च॥——[१४]

[देवस्यं रक्षोहणों विभूस्त्व॰ सोमात्युन्यानगां पृथिव्या इषे त्वाऽऽदंदे वाक्ते सं तें समुद्र॰ ह्विष्मंतीर्हृदे त्वमंग्ने रुद्रश्चतुंर्दश॥ देवस्यं गुमध्यें ह्विष्मंतीः पवस् एकंत्रि॰शत्॥ देवस्यार्चयं:॥]

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

आ दंदे ग्रावांस्यध्वर्कृद् देवेभ्यों गम्भीरिम्मिममध्वरं कृष्युत्तमेनं प्विनेन्द्रांय सोम् सुषुतं मधुमन्तं पर्यस्वन्तं वृष्टिविन्मिन्द्रांय त्वा वृत्रुघ्न इन्द्रांय त्वा वृत्रुत् इन्द्रांय त्वाऽभिमातिष्व इन्द्रांय त्वाऽऽदित्यवंत इन्द्रांय त्वा विश्वदेंष्यावते श्वात्राः स्थं वृत्रुतुरो राधोंगूर्ता अमृतंस्य प्रवीस्ता देवीर्देवत्रेमं यृज्ञं धृत्तोपहूताः सोमंस्य पिबृतोपहूतो युष्माकु १(१)

सोमः पिबतु यत्तं सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृंथिव्यां यदुरावन्तिरिक्षे तेनास्मै यजंमानायोरु राया कृध्यिधं दात्रे वोचो धिषंणे वीडू सती वीडयेथामूर्जं दधाथामूर्जं मे धत्तं मा वार् हिर्सिष् मा मां हिर्सिष्टं प्रागपागुदंगधराक्तास्त्वा दिश आ धांवन्त्वम्ब नि ष्वंर। यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृंवि तस्मै ते सोम सोमांय स्वाहां॥ (२)

युष्माक ई स्वर् यत्ते नवं च॥———[१]

वाचः सप्तचंत्वारि १शत्॥

वाचस्पतंथे पवस्व वाजिन् वृषा वृष्णों अ॰ श्रभ्यां गर्भस्तिपूतो देवो देवानां पवित्रंमिस येषां भागो- ऽिस् तेभ्यंस्त्वा स्वां कृतोऽिस् मधुंमतीर्न इषंस्कृिध् विश्वंभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यां दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनंस्त्वाष्टूर्वन्ति रिक्षमन्विह् स्वाहां त्वा सुभवः सूर्याय देवेभ्यंस्त्वा मरीचिपेभ्यं एष ते योनिः प्राणायं त्वा॥ (३)

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमंमुरुष्य रायः समिषों यजस्वान्तस्ते दधामि द्यावापृथिवी अन्तरुर्वन्तरिक्षः सजोषां देवैरवंरैः परैश्चान्तर्यामे

मंघवन् मादयस्व स्वां कृंतोऽसि मधुंमतीर्न इषंस्कृधि विश्वेंभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यों दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनंस्त्वाष्टूर्वन्त-रिंक्ष्मन्विंहि स्वाहाँ त्वा सुभवः सूर्याय देवेभ्यंस्त्वा मरीचिपेभ्यं एष ते योनिरपानायं त्वा॥ (४)

देवेभ्यः सप्त चं॥——[३]

आ वांयो भूष शुचिपा उपं नः सहस्रं ते नियुतों

विश्ववार। उपों ते अन्धो मद्यंमयामि यस्यं देव दिधषे पूँर्वपेयम्॥ उपयामगृंहीतोऽसि वायवे त्वेन्द्रंवायू इमे सुताः। उप प्रयोभिरा गंतुमिन्दंवो वामुशन्ति हि॥ उपयामगृंहीतोऽसीन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषांभ्यां त्वा॥ (५)

आ वांयो त्रिचंत्वारि श्शत्॥ अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा। ममेदिह श्रुंत ५ हवम्। उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुंणाभ्यां त्वैष ते योनिर्

ऋतायुभ्यां त्वा॥ (६)

अयं वां विश्शृतिः॥— या वां कशा मधुंमत्यिश्वेना सूनृतांवती। तयां

युज्ञं मिंमिक्षतम्। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा॥ (७)

या वामुष्टादेश॥

प्रातर्युजौ वि मुंच्येथामिश्वंनावेह गंच्छतम्। अस्य सोमंस्य

पीतयें॥ उपयामगृंहीतोऽस्यिश्यां त्वैष ते योनिंरिश्वभ्यां

प्रातुर्युजावेकान्नवि 🕹 शतिः॥•

त्वा॥ (८)

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निंगर्भा ज्योतिर्जरायू रजंसो विमानै। इमम्पा॰ संङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रां मृतिभी रिहन्ति॥ उपयामगृहीतोऽसि शण्डांय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाहि॥ (९)

अयं वेनः पर्श्विरशितः॥———[८] तं प्रत्नथां पूर्वथां विश्वथेमथां ज्येष्ठतांतिं बर्हिषदर्ं सुवर्विदं प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराऽऽशुं जयंन्तमनु यासु वर्धसे। उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वैष ते योनिः प्रजाः पाहि॥ (१०)

ये देवा दिव्येकांदश् स्थ पृंथिव्यामध्येकांदश् स्थाऽपसुषदों महिनैकांदश् स्थ ते देवा यज्ञमिमं जुषध्वमुपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वांग्रयणो जिन्वं यज्ञं जिन्वं यज्ञपंतिम्भि सर्वना पाहि विष्णुस्त्वां पांतु विश् त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वें भ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ (११)

ये देवास्त्रिचंत्वारिश्शत्॥_____

त्रिश्शत्रयंश्च गणिनों रुजन्तो दिवर रुद्राः पृंथिवीं चं सचन्ते। एकादशासों अफ्सुषदंः सुतः सोमं जुषन्ताः सर्वनाय विश्वे॥ उपयामगृंहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वांग्रयणो जिन्वं यज्ञं जिन्वं यज्ञपंतिमभि सर्वना पाहि विष्णुस्त्वां पांतु विशं त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वें भ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ (१२)

त्रि १ शद् द्विचंत्वारि १ शत्॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा बृहद्वंते वयंस्वत उक्थायुवे

यत् तं इन्द्र बृहद्वयुस्तस्मैं त्वा विष्णंवे त्वैष ते योनिरिन्द्रांय त्वोक्थायुवें॥ (१३)

उपयामगृहीतो द्वावि १ शतिः॥

मूर्धानं दिवो अर्ति पृथिव्या वैश्वान्रमृतायं जातम्ग्निम्। कवि॰ सम्राजमितिथिं जनानामासन्ना पार्न जनयन्त देवाः॥ उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वैश्वान्रायं ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युंतानामच्युतक्षित्तंम एष ते

——[१६]

योनिंरग्नयें त्वा वैश्वानरायं॥ (१४)

मूर्धानुं पश्चेत्रि श्वत्॥____ मध्रंश्च माधंवश्च शुक्रश्च शुचिंश्च नभंश्च नभुस्यंश्चेषश्चोर्जश्च

सहंश्च सहस्यंश्च तपंश्च तप्स्यंश्चोपयामगृंहीतोऽसि सुर्सर्पो-ऽस्य १ हस्पत्यार्य त्वा॥ (१५)

मधुंस्त्रि १शत्॥_____ इन्द्रौग्नी आ गंत र सुतं गीर्भिर्नभो वरैण्यम्। अस्य पातं धियेषिता॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते

योनिंरिन्द्राग्निभ्यां त्वा॥ (१६)

इन्द्रौग्नी विश्शतिः॥

ओमांसश्चर्षणीधृतो विश्वं देवास आ गंत। दाश्वा सो दाशुषंः सुतम्॥ उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यं एष ते योनिर्विश्वैभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ (१७)

इन्द्रौग्री ओमांसो विश्शतिर्विश्रातिः॥॥

मरुत्वन्तं वृषभं वांवृधानमकेवारिं दिव्य शासिमन्द्रम्। विश्वासाहमवंसे नूतंनायोग्र संहोदामिह त हुंवेम॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा मुरुत्वंत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा मरुत्वंते॥ (१८)

म्रुत्वंन्तुर् षड्विरंशतिः॥——[१७]

इन्द्रं मरुत्व इह पांहि सोमं यथां शार्याते अपिंबः सुतस्यं। तव प्रणीती तवं शूर शर्मन्ना विवासन्ति क्वयंः सुयज्ञाः॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा म्रुत्वंत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा मरुत्वंते॥ (१९)

इन्द्रैकाृत्रत्रि र्शत्॥———[१८]

मुरुत्वारं इन्द्र वृष्भो रणांय पिबा सोमंमनुष्वधं मदांय। आ सिश्चस्व जठरे मध्वं ऊर्मिं त्वर राजांसि प्रदिवंः सुतानांम्॥ उपयामगृंहीतोऽसीन्द्रांय त्वा मुरुत्वंत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा मरुत्वंते॥ (२०)

इन्द्रं मरुत्वो मुरुत्वानेकान्न त्रिष्शदेकान्न त्रिष्शत्॥-----[१९]

महा इन्द्रो य ओर्जसा पूर्जन्यों वृष्टिमा इंव। स्तोमैंर्वथ्सस्यं वावृधे॥ उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्रायं त्वैष ते योनिर्महेन्द्रायं त्वा॥ (२१)

महानेकाुत्रवि १ शतिः॥———[२०]

वः सप्तिवि ५ शतिश्च

महा । इन्द्रों नृवदा चंर्षणिप्रा उत द्विबर्हां अमिनः सहोभिः। अस्मद्रियंग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥ उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्रायं त्वैष योनिर्महेन्द्रायं त्वा॥ (२२)

महान्नृवत्षिङ्ग ५ शतिः।

कदा चन स्तरीरंसि नेन्द्रं सश्चसि दाशुषें। उपोपेनु मंघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्यं पृच्यते॥ उपयामगृंहीतो-ऽस्यादित्येभ्यंस्त्वा॥ कदा चन प्र युंच्छस्युभे नि पांसि जन्मंनी। तुरीयादित्य सर्वनं त इन्द्रियमा तंस्थावमृतंं दिवि॥ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृड्यन्तः। आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद १ होश्चिद्या वंरिवोवित्तरासंत्॥ विवंस्व आदित्यैष तें सोमपीथस्तेनं मन्दस्व तेनं तृप्य तृप्यासमं ते वयं तंपीयतारो या दिव्या वृष्टिस्तयां त्वा श्रीणामि॥ (२३)

-[२२] वाममुद्य संवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममुस्मभ्य र सावीः।

वामस्य हि क्षयंस्य देव भूरेरया धिया वांमभाजः स्याम॥

----[२६]

उपयामगृहीतोऽसि देवायं त्वा सवित्रे॥ (२४)

वामं चर्तिश्विशितः॥————[२३] अदंब्येभिः सवितः पायुभिष्ट्वः शिवेभिर्द्य परिं पाहि नो गयम्। हिरंण्यजिह्वः सुविताय नव्यंसे रक्षा मार्किर्नो अघशर्रस ईशत॥ उपयामगृहीतोऽसि देवायं त्वा सवित्रे॥ (२५)

अदंब्धेभिम्नयौविर्शतिः॥——[२४]
हिरंण्यपाणिमूतये सवितार्मुपं ह्वये। स चेत्तां देवतां

पदम्॥ उपयामगृहीतोऽसि देवायं त्वा सिवते॥ (२६)

सुशर्मांऽसि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षे नमं एष ते

योनिर्विश्वैभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ (२७)

हिरंण्यपाणिं चतुर्दश॥----

सुशर्मा द्वादंश॥=

बृह्स्पतिंसुतस्य त इन्दो इन्द्रियावंतः पत्नीवन्तं ग्रहं गृह्णाम्यग्ना(३)इ पत्नीवा(३)ः सुजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहाँ॥ (२८)

बृह्स्पतिंसुतस्य पश्चंदश॥———[२७]

हरिरसि हारियोजनो हर्योः स्थाता वर्ज्रस्य भूती पृश्ञैः प्रेता तस्यं ते देव सोमेष्टयंजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थंस्य हरिवन्तं ग्रहं गृह्णामि हरीः स्थ हर्योधानाः सहसोमा इन्द्रांय स्वाहां॥ (२९)

हिर्ः षड्विर्श्यातिः॥——[२८]

अग्न आयू १षि पवस् आ सुवोर्ज्ञिमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनाम्॥ उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा तेर्जस्वत एष ते योनिरग्नये त्वा तेर्जस्वते॥ (३०)

अग्रु आयूर्रेषि त्रयोवि रशतिः॥———[२९]

उत्तिष्ठन्नोजंसा सह पीत्वा शिप्रं अवेपयः। सोमंमिन्द्र चमू सुतम्॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वौजंस्वत एष ते योनिरिन्द्रांय त्वौजंस्वते॥ (३१)

उत्तिष्ठक्रेकंवि श्वातिः॥——[३०] त्रणिर्विश्वदंर्शतो ज्योतिष्कृदंसि सूर्य। विश्वमा भांसि रोचनम्॥ उपयामगृंहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजंस्वत एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजंस्वते॥ (३२)

त्रणिंविं १ श्रातिः॥ [३१]

आ प्यांयस्व मदिन्तम् सोम् विश्वांभिरूतिभिः। भवां नः सुप्रथंस्तमः॥ (३३)

आ प्यांयस्व नवं॥——[३२] ईयुष्टे ये पूर्वतरामपंश्यन् व्युच्छन्तीमुषस्ं मर्त्यासः।

अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्यां ऽभूदो ते यंन्ति ये अंपरीषु पश्यान्॥ (३४)

र्ड्युरेकान्नवि रेशतिः॥----[३३]

ज्योतिष्मतीं त्वा सादयामि ज्योतिष्कृतं त्वा सादयामि ज्योतिर्विदं त्वा सादयामि भास्वंतीं त्वा सादयामि ज्वलंन्तीं त्वा सादयामि मल्मलाभवंन्तीं त्वा सादयामि दीप्यंमानां त्वा सादयामि रोचंमानां त्वा सादयाम्यजंस्रां त्वा सादयामि बृहज्योतिषं त्वा सादयामि बोधयंन्तीं त्वा सादयामि जाग्रंतीं त्वा सादयामि॥ (३५)

चित्तमृष्टादंश॥.

ज्योतिष्मतीर् पद्मिरंशत॥———[३४]
प्रयासाय स्वाहांऽऽयासाय स्वाहां वियासाय स्वाहां
संयासाय स्वाहांद्यासाय स्वाहांऽवयासाय स्वाहां शुचे
स्वाहा शोकांय स्वाहां तप्यत्वे स्वाहा तपंते स्वाहां
ब्रह्महत्यायै स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (३६)

प्रयासाय चतुर्वि शतिः॥———[३५] चित्त १ सन्तानेन भवं युक्रा रुद्रं तिनम्ना पशुपति १

स्थूलहृद्येनाग्नि १ हृदंयेन रुद्रं लोहितेन शुर्वं मर्तस्नाभ्यां महादेवमुन्तः पार्श्वेनौषिष्ठहन १ शिङ्गीनिको्श्याभ्याम्॥ (३७)

आ तिष्ठ वृत्रहुन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरीं। अर्वाचीन् र सु ते मनो ग्रावां कृणोतु वृग्नुनां॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय

त्वा षोडुशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडुशिनं॥ (३८)

आ तिष्ठ पिंड्विर्रशितः॥———————————————[३७]

इन्द्रमिद्धरी वहुतोऽप्रंतिधृष्टशवस्मृषीणां च स्तुतीरुपं युज्ञं च मानुषाणाम्॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा षोडुशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडशिनें॥ (३९)

इन्द्रमित्रयोंवि श्यतिः॥——[३८]

असांवि सोमं इन्द्र ते शविष्ठ धृष्ण्वा गंहि। आ त्वां पृणक्तिन्द्रिय रजः सूर्यं न रिश्मिभेः॥ उपयामगृंहीतो-ऽसीन्द्रांय त्वा षोड्शिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडिशिने॥ (४०)

असांवि सप्तविर्श्यतिः॥——[३९]

सर्वस्य प्रतिशीवंरी भूमिंस्त्वोपस्थ आऽधित। स्योनास्मैं सुषदां भव यच्छाँस्मै शर्म सप्रथाः॥ उपयामगृंहीतोऽसीन्द्रांय त्वा षोडशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडशिनें॥ (४१)

सर्वस्य षड्वि र्शितः॥————[४०]

महा इन्द्रो वर्ज्रबाहुः षोड्शी शर्म यच्छतु। स्वस्ति नो मुघवां करोतु हन्तुं पाप्मानं यौऽस्मान् द्वेष्टिं॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा षोड्शिन एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोड्शिने॥ (४२)

सर्वस्य महान्थ्यिङ्वर्रशतिः षड्विर्रशतिः॥_____[४१]

स्जोषां इन्द्र सर्गणो मुरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहञ्छूर विद्वान्। जिहि शत्रू रप मधो नुदस्वाऽथाभयं कृणुहि विश्वतो नः॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रांय त्वा षोडिशिनं एष ते योनिरिन्द्रांय त्वा षोडिशिने॥ (४३)

उदु त्यं जातवेदसं देवं वंहन्ति केतवंः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुंर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षः सूर्यं आत्मा

जगंतस्त्स्थुषंश्च॥ अग्ने नयं सुपथां राये अस्मान् विश्वांनि देव वयुनांनि विद्वान्। युयोध्यंस्मज्जंहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमंउक्तिं विधेम॥ दिवंं गच्छ् सुवंः पत रूपेणं (४४)

वो रूपम्भ्यैमि वयंसा वयंः। तुथो वो विश्ववेदा वि भंजतु वर्षिष्ठे अधि नाकैं॥ एतत् ते अग्ने राध् ऐति सोमंच्युतं तन्मित्रस्यं पृथा नंयत्तस्यं पृथा प्रेतं चन्द्रदंक्षिणा यज्ञस्यं पृथा सुविता नयंन्तीर्ब्राह्मणम् राध्यासमृषिमार्ष्यं पितृमन्तं पेतृमृत्य सुधातुंदक्षिणं वि सुवः पश्य व्यंन्तरिक्षं यत्तंस्व सदस्यैर्स्मद्दांत्रा देवत्रा गंच्छत् मधुंमतीः प्रदातार्मा विंशतानंवहायास्मान् देवयानेन पृथेतं सुकृतां लोके सींदत् तन्नः सङ्स्कृतम्॥ (४५)

रूपेणं सद्स्थैंर्ष्टादेश च॥------[४३]

धाता रातिः संवितेदं जुंषन्तां प्रजापंतिर्निधिपतिंनीं अग्निः। त्वष्टा विष्णुः प्रजयां सर्राणो यजमानाय द्रविणं दधातु॥ समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सर सूरिभिर्मधवन्थ्सर् स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानार्रं सुमृत्या यज्ञियांनाम्॥ सं वर्चसा पर्यसा सं तनूभिरगंन्मिह् मनसा सर् शिवेन। त्वष्टां नो अत्र वरिवः कृणो- (४६)

त्वनुं मार्षु तनुवो यद्विलिष्टम्॥ यद्य त्वाँ प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतांर्मवृंणीमहीह। ऋधंगयाङ्घंगुताशंमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपंयाहि विद्वान्॥ स्वगा वो देवाः सदंनमकर्म् य आंजग्म सवंनेदं जुंषाणाः। जक्षिवारसंः पिपवारसंश्च विश्वेऽस्मे धंत्त वसवो वसूंनि॥ यानाऽवंह उश्तो देव देवान्तान् (४७)

प्रेरंय स्वे अंग्ने स्थस्थैं। वहंमाना भरंमाणा ह्वी १ षे वसुं घुमं दिवुमा तिष्ठतानुं॥ यज्ञं युज्ञं गच्छ युज्ञपंतिं गच्छु स्वां योनिं गच्छु स्वाहैष तें युज्ञो यंज्ञपते सहसूँक्तवाकः सुवीरः स्वाहा देवां गातुविदो गातुं वित्वा गातुर्मित मनसस्पत इमं नों देव देवेषुं युज्ञ इस्वाहां वाचि स्वाहा वातें धाः॥ (४८)

कृणोतु तान्धचंत्वारिश्यम्॥——[४४]
उरुश् हि राजा वर्रणश्चकार् सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधिश्चित्॥ शृतं

ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गम्भीरा सुमृतिष्टे अस्तु। बाधंस्व द्वेषो निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुंमुग्ध्यस्मत्॥ अभिष्ठितो वर्रणस्य पाशोऽग्नेरनीकम्प आ विवेश। अपौं नपात् प्रतिरक्षंत्रसुर्यं दमेदमे (४९)

स्मिधं यक्ष्यग्ने॥ प्रतिं ते जिह्ना घृतम्चंरण्येथ्सम्द्रे ते हृदंयम्पस्वंन्तः। सं त्वां विश्वन्त्वोषंधीरुताऽऽपों यज्ञस्यं त्वा यज्ञपते हृविर्मिः॥ सूक्त्वाके नंमोवाके विधेमावंभृथ निचङ्कुण निचेरुरंसि निचङ्कुणावं देवैर्देवकृतमेनोऽयाडव मर्त्यमर्त्यंकृतम्पुरोरा नो देव रिषस्पांहि सुमित्रा न आप ओषंधयः (५०)

सन्तु दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्यों ऽस्मान् द्वेष्ट्रि यं चं व्यं द्विष्मो देवीराप एष वो गर्भस्तं वः सुप्रीत् स् सुर्भृतमकर्म देवेषुं नः सुकृतौं ब्रूतात् प्रतियुतो वर्रुणस्य पाशः प्रत्यंस्तो वर्रुणस्य पाश एधौं ऽस्येधिषीमिहिं समिदंसि तेजोऽसि तेजो मिये धेह्यपो अन्वंचारिष् रसेन् समंसृक्ष्मिह। पर्यस्वा अग्र आऽगंमं तं मा स स्रुज वर्चसा॥ (५१)

दमेंदम् ओषंधय् आ षट् चं॥———[४५]

यस्त्वां हृदा कीरिणा मन्यंमानोऽमंत्यं मर्त्यो जोहंवीमि। जातंवदो यशो अस्मासुं धेहि प्रजाभिरग्ने अमृत्त्वमंश्याम्॥ यस्मै त्व॰ सुकृतें जातवेद उ लोकमंग्ने कृणवंः स्योनम्। अश्विन्॰ स पुत्रिणं वीरवंन्तं गोमंन्त॰ र्यिं नंशते स्वस्ति॥ त्वे सु पुत्र शवसोऽवृंत्रन् कामंकातयः। न त्वामिन्द्रातिं रिच्यते॥ उक्थउंक्थे सोम् इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मुघवांन॰ (५२)

सुतासंः। यदी र स्बार्धः पितरं न पुत्राः संमानदेक्षा अवसे हर्वन्ते॥ अग्ने रसेन् तेजसा जातंवेदो वि रोचसे। रक्षोहाऽमीवचातंनः॥ अपो अन्वंचारिष्ट् रसेन् समंसृक्ष्मिहि। पर्यस्वा अग्र आऽगंमं तं मा स स्रंज् वर्चसा॥ वसुर्वस्रंपित्रिहिक्मस्यंग्ने विभावंसः। स्यामं ते सुमृताविषे॥ त्वामंग्ने वस्रंपितं वस्नाम्भि प्र मन्दे (५३)

अध्वरेषुं राजन्न्। त्वया वार्जं वाज्यन्तों जयेमाभि ष्यांम पृथ्मुतीर्मर्त्यांनाम्। त्वामंग्ने वाज्यसातंम् विप्नां वर्धन्ति सृष्टुंतम्। स नो रास्व सुवीर्यम्॥ अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधंः पुर एंतु प्रभिन्दन्न्। अय शत्रृं अयतु जर्ह्षंषाणोऽयं वार्जं जयतु वार्जसातौ॥ अग्निनाऽग्निः सिम्ध्यते कविर्गृहपंतिर्य्वां। हृव्यवाइ जुह्वांस्यः॥ त्व इह्यंग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्थ्मता। सखा सख्यां सिम्ध्यसे॥ उदंग्ने शुचंयस्तव वि ज्योतिषा॥ (५४)

मुघवानं मन्दे ह्यंग्रे चतुर्दश च॥————[४६]

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

देवासुराः संयंत्ता आस्न ते देवा विंज्यमुंप्यन्तो-ऽग्नौ वामं वसु सं न्यंदधतेदमुं नो भविष्यति यदिं नो जेष्यन्तीति तद्गिर्न्यंकामयत् तेनापाँकामृत् तद्देवा विजित्यांवरुरुंथ्समाना अन्वांयन् तदंस्य सहसाऽदिंथ्सन्त सोऽरोदीद्यदरोदीत् तद्रुद्रस्यं रुद्रुत्वं यदश्वशीयत् तद् (१)

रंज्तर हिरंण्यमभवत् तस्माँद्रज्तर हिरंण्यमदक्षिण्य-मंश्रुजर हि यो ब्र्हिष् ददांति पुराऽस्यं संवथ्सराद्गृहे रुंदिन्त् तस्माँद्धर्हिष् न देय्र साँऽग्निरंब्रवीद्धाग्यंसान्यथं व इदिमतिं पुनराधेयं ते केवंलिमत्यंब्रवत्रृध्नवत् खलु स इत्यंब्रवीद्यो मंद्देवत्यंम्ग्निमादधांता इति तं पूषाऽऽधंत्त तेनं (२)

पूषाऽऽभ्रीत् तस्मौत् पौष्णाः पृशवं उच्यन्ते तं त्वष्टाऽऽधंत्त् तेन त्वष्टाँऽऽभ्रीत् तस्मौत् त्वाष्ट्राः पृशवं उच्यन्ते तं मनुरा-ऽधंत्त तेन मनुराभ्रीत् तस्मौन्मान्व्यः प्रजा उच्यन्ते तं धाता-ऽऽधंत्त तेनं धाताऽऽभ्रींथ्संवथ्सरो वे धाता तस्मौथ्संवथ्सरं प्रजाः पृशवोऽनु प्र जांयन्ते य एवं पुनराधेयस्यर्ष्टिं वे- (३)

दुर्भोत्येव यों ऽस्यैवं बन्धुतां वेद बन्धुंमान् भवति भाग्धेयं वा अग्निराहित इच्छमानः प्रजां पृशून् यर्जमान्स्योपं दोद्रावोद्वास्य पुन्रा दंधीत भाग्धेयेनैवेन् समंध्यत्यथो शान्तिरेवास्येषा पुनर्वस्वोरा दंधीतेतद्वै पुनराधेयंस्य नक्षंत्रं यत्पुनर्वसू स्वायांमेवेनं देवतांयामाधायं ब्रह्मवर्चसी भंवति दर्भरा दंधात्ययातयामत्वाय दर्भरा दंधात्यद्ध पृवैन्मोषंधीभ्योऽवरुध्याऽऽधंत्ते पञ्चंकपालः पुरोडाशों भवति पञ्च वा ऋतवं ऋतुभ्यं पृवैनंमवरुध्याऽऽधंत्ते॥ (४)

अशीयत् तत् तेन् वेदं दुर्भैः पश्चविश्यतिश्च॥————[१]
परा वा एष यज्ञं पृशून् वंपति यौऽग्निमुद्वासयंते
पश्चकपालः पुरोडाशो भवति पाङ्को युज्ञः पाङ्काः पृशवो

यज्ञमेव प्रशूनवं रुन्धे वीर्हा वा एष देवानां योंऽग्निमुंह्यासयंते न वा एतस्यं ब्राह्मणा ऋतायवंः पुराऽन्नमक्षन् पृङ्ग्यो याज्यानुवाक्यां भवन्ति पाङ्गो यज्ञः पाङ्कः पुरुषो देवानेव वीरं निरवदायाग्निं पुन्रा (५)

धंत्ते श्ताक्षंरा भवन्ति श्तायुः पुरुषः श्तेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठति यद्वा अग्निराहितो नर्ध्यते ज्यायो भाग्धेयं निकामयंमानो यदाँग्नेय सर्वं भवंति सैवास्यर्धिः सं वा पुतस्यं गृहे वाक् सृंज्यते यौंऽग्निमुंद्वासयंते स वाच् स स सृष्टां यजंमान ईश्वरोऽनु परांभवितोर्विभंक्तयो भवन्ति वाचो विधृत्यै यजंमानस्यापंराभावाय (६) विभिक्तिं करोति ब्रह्मैव तदंकरुपा श्रु यंजिति यथां वामं वसुं विविदानो गूहंति ताहगेव तदिग्नें प्रति स्विष्टकृतं निराह यथां वामं वसुं विविदानः प्रकाशं जिगेमिषति ताहगेव तिह्मिक्तिमुक्ता प्रयाजेन वर्षद्वरोत्यायतंनादेव नैति यजमानो व पुरोडाशंः पृशवं एते आहुंती यदिभितंः पुरोडाशंमेते आहुंती (७)

जुहोति यर्जमानमेवोभ्यतः पृश्वभिः परि गृह्णाति कृतयेजुः सम्भृतसम्भार् इत्यांहुर्न सम्भृत्याः सम्भारा न यर्जुः कर्त्व्यंमित्यथो खलुं सम्भृत्यां एव संम्भाराः केर्त्व्यं यर्जुर्यज्ञस्य समृद्धौ पुनर्निष्कृतो रथो दक्षिणा पुनरुथ्स्यूतं वासः पुनरुथ्मृष्टोऽनुङ्वान् पुनर्पियंस्य समृद्धौ सप्त ते अग्ने स्मिधः सप्त जिह्ला इत्यंग्निहोत्रं जुंहोति यत्रंयत्रैवास्य न्यंक्तं ततं (८)

एवैन्मवं रुन्धे वीर्हा वा एष देवानां योंऽग्निमुंद्वासयंते तस्य वर्रण एवर्णयादांग्निवारुणमेकांदशकपालमनु निर्वपेदां चैव हन्ति यश्चांस्यर्णयात्तौ भागधेयेन प्रीणाति नाऽ-

ऽर्तिमार्च्छति यजंमानः॥ (९)

आऽपराभावाय पुरोडाशंमेते आहुंती ततः षद्गिरंशच॥——[२]

भूमिंर्भूमा द्यौवंरिणाऽन्तिरक्षं महित्वा। उपस्थं ते देव्यदितेऽग्निमंत्रादमृत्राद्यायाऽऽदंधे॥ आऽयं गौः पृश्चिंरक्रमीदसंनन्मातरं पुनंः। पितरं च प्रयन्थ्सवंः॥ त्रिष्शद्धाम् वि राजिति वाक्यंतुङ्गायं शिश्रिये। प्रत्यंस्य वह् द्युभिंः॥ अस्य प्राणादंपानृत्यंन्तश्चंरित रोचना। व्यंख्यन्महिषः स्वंः॥ यत् त्वां (१०)

कुद्धः पंरोवपं मृन्युना यदवंत्या। सुकल्पंमग्ने तत् तव् पुन्स्त्वोद्दीपयामसि॥ यत् ते मृन्युपंरोप्तस्य पृथिवीमन् दध्वसे। आदित्या विश्वे तद्देवा वसंबश्च स्माभंरत्र॥ मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छित्तं यज्ञ समिमं दंधातु। बृह्स्पतिंस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम्॥ सप्त ते अग्ने स्मिधंः सप्त जिह्वाः सप्त (११)

ऋषंयः सप्त धामं प्रियाणिं। सप्त होत्राः सप्तधा त्वां यजन्ति सप्त योनीरा पृंणस्वा घृतेनं॥ पुनंरूर्जा नि वंर्तस्व पुनंरग्न इषाऽऽयुंषा। पुनंर्नः पाहि विश्वतः॥ सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वंस्व धारंया। विश्विपिस्नंया विश्वतस्परिं॥ लेकः सलेंकः सुलेकस्ते नं आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु केतः सकेंतः सुकेत्स्ते नं आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु विवंस्वा अदितिर्देवंजूतिस्ते नं आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु विवंस्वा अदितिर्देवंजूतिस्ते नं आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु॥ (१२)

ला जिह्नाः सप्त सुकेत्स्ते नुस्रयोदश च॥———[३]
भूमिर्भूमा द्यौर्वरिणेत्यांहाऽऽशिषैवैनुमा धंत्ते सूर्पा वै

जीर्यन्तोऽमन्यन्त स पृतं कंस्णीरं काद्रवेयो मन्नंमपश्यत् ततो वै ते जीर्णास्तनूरपाँघ्रत सर्पराज्ञियां ऋग्भिर्गार्हंपत्यमा दंधाति पुनर्न्वमेवनंम्जरं कृत्वाऽऽधत्तेऽथों पूतमेव पृथिवीमन्नाद्यं नोपानम्थ्सैतं (१३)

मन्नमपश्यत् ततो वै तामन्नाद्यमुपानम्द्यथ्संपराज्ञियां ऋग्भिर्गार्हंपत्यमाद्यांत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो अस्यामेवेनं प्रतिष्ठितमा धंत्ते यत्त्वां कुद्धः परोवपत्याहापंहुत एवास्मे तत् पुन्स्त्वोद्दीपयाम्सीत्यांह् सिमंन्ध एवेनं यत्ते मन्युपरोष्ट्रस्येत्यांह देवतांभिरे- (१४)

वैन् सं भंरति वि वा एतस्यं युज्ञश्छिं द्यते यौं-

ऽग्निमुंद्वासयंते बृह्स्पतिंवत्यचींपं तिष्ठते ब्रह्म वै देवानां बृह्स्पतिंब्रह्मंणैव यज्ञ सं दंधाति विच्छिंन्नं यज्ञ समिमं दंधात्वित्यांह् सन्तंत्यै विश्वे देवा इह मांदयन्तामित्यांह सन्तत्यैव यज्ञं देवेभ्योऽनुं दिशति सप्त ते अग्ने समिधं सप्त जिह्ना - (१५)

इत्यांह सप्तसंप्त वै संप्तधाऽग्नेः प्रियास्तनुवस्ता एवावं रुन्थे पुनंरूर्जा सह रय्येत्यभितः पुरोडाशमाहृती जुहोति यर्जमानमेवोर्जा च रय्या चोभ्यतः परि गृह्णात्यादित्या वा अस्माल्लोकादम् लोकमायन्तेऽमुष्मिल्लाँक व्यंतृष्यन्त इमं लोकं पुनंरभ्यवेत्याग्निमाधायैतान् होमानजुहवुस्त आधृवन् ते सुंवगँल्लोकमायन् यः पंराचीनं पुनराधेयांदग्निमादधींत स एतान् होमांञ्जहयाद्यामेवाऽऽदित्या ऋद्धिमाधृवन् तामेवर्प्नीत॥ (१६)

उपप्रयन्तों अध्वरं मन्नं वोचेमाग्नयें। आरे अस्मे चं शृण्वते॥ अस्य प्रत्नामनु द्युतर्ं शुक्तं दुंदुह्वे अह्नयः। पर्यः सहस्रसामृषिम्॥ अग्निर्मूर्धा दिवः कुकुत् पर्तिः पृथिव्या अयम्। अपार रेतारेसि जिन्वति॥ अयमिह प्रंथमो धांयि धातृभिरहोता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्रंवानो भृगंवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभुवं विशेविंशे॥ उभा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्यां (१७)

उभा राधंसः सह मांद्यध्यैं। उभा दातारांविषाः रंयीणामुभा वार्जस्य सातये हुवे वाम्॥ अयं ते योनिंर्ऋत्वियो यतों जातो अरोंचथाः। तं जानन्नंग्र आ रोहाथां नो वर्धया र्यिम्॥ अग्र आयूर्षि पवस आ सुवोर्ज्मिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनांम्॥ अग्रे पवंस्व स्वपां अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥ दध्त्पोष रृपिं (१८)

मियं॥ अग्नें पावक रोचिषां मृन्द्रयां देव जिह्नयां। आ देवान् वंक्षि यिक्षं च॥ स नंः पावक दीदिवोऽग्नें देवाश् इहाऽऽवंह। उपं यज्ञश् हिविश्चं नः॥ अग्निः शुचिंव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिंः कविः। शुचीं रोचत् आहुंतः॥ उदंग्ने शुचेयस्तवं शुक्रा भ्राजंन्त ईरते। तव् ज्योतीश्रंष्य्चर्चयंः॥ आयुर्दा अंग्नेऽस्यायुंमें (१९)

देहि वर्चोदा अंग्नेऽसि वर्चों मे देहि तनूपा अंग्नेऽसि

त्नुवं मे पाह्यग्ने यन्में त्नुवां ऊनं तन्म आ पृंण चित्रांवसो स्वस्ति ते पारमंशीयन्थांनास्त्वा श्रतः हिमां द्युमन्तः सिमंधीमिह् वयंस्वन्तो वयस्कृतं यशंस्वन्तो यश्स्कृतः सुवीरांसो अदाँभ्यम्। अग्ने सपब्रदम्भंनं वर्षिष्ठे अधि नाके॥ सं त्वमंग्ने सूर्यस्य वर्चसाऽगथाः समृषीणाः स्तुतेन सं प्रियेण धाम्ना। त्वमंग्ने सूर्यवर्चा असि सं मामायुषा वर्चसा प्रजयां सृज॥ (२०)

आहुवध्यै र्यि मे वर्चसा सप्तदंश च॥————[५]

सं पंश्यामि प्रजा अहमिर्डप्रजसो मान्वीः। सर्वा भवन्तु नो गृहे॥ अम्भः स्थाम्भो वो भक्षीय महंः स्थ महो वो भक्षीय सहंः स्थ सहो वो भक्षीयोर्जः स्थोर्जं वो भक्षीय रेवंती रमध्वमस्मिल्लौंकैऽस्मिन् गोष्ठैऽस्मिन् क्षयेऽस्मिन् योनांविहैव स्तेतो माऽपं गात बह्वीर्मे भूयास्त (२१)

स॰िह्तासिं विश्वरूपीरा मोर्जा विशाऽऽगौंपृत्येना-ऽऽरायस्पोषेण सहस्रपोषं वेः पुष्यासं मियं वो रायेः श्रयन्ताम्॥ उपं त्वाऽग्ने दिवेदिंवे दोषांवस्तर्धिया वयम्। नमो भरंन्त एमंसि। राजंन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिंविम्। वर्धमान् इस्वे दमें॥ स नः पितेवं सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सर्चस्वा नः स्वस्तये॥ अग्ने (२२)

त्वं नो अन्तमः। उत त्राता शिवो भेव वरूथ्यः॥ तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः। सुम्नायं नूनमीमहे सर्खिभ्यः॥ वसुरिग्नर्वसृश्रवाः। अच्छां निक्ष द्युमत्तमो रियं दाः॥ ऊर्जा वेः पश्याम्यूर्जा मां पश्यत रायस्पोषेण वः पश्यामि रायस्पोषेण मा पश्यतेडाः स्थ मधुकृतः स्योना माऽऽविंश्तेरा मदः। सहस्रपोषं वेः पुष्यासं (२३)

मियं वो रायंः श्रयन्ताम्॥ तथ्संवितुर्वरैण्यं भर्गो देवस्यं धीमितः। धियो यो नंः प्रचोदयाँत्॥ सोमान् स्वरंणं कृणुित ब्रह्मणस्पते। कक्षीवंन्तं य औशिजम्॥ कदा चन स्तरीरंसि नेन्द्रं सश्चिस दाशुषें। उपोपेन्नु मंघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्यं पृच्यते॥ पिरं त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमितः। धृषद्वंणं दिवेदिवे भेतारं भङ्गरावंतः॥ अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वयां गृहपतिना भूयास सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः श्तर हिमास्तामाशिषमा शांसे तन्तंवे

ज्योतिष्मतीं तामाशिषमा शांसेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीम्॥ (२४)

भूयास्त स्वस्तयेऽग्ने पुष्यासं धृषद्वेर्णमेकान्नत्रिष्ट्शर्च॥————[६]

अयंज्ञो वा एष योऽसामोपंप्रयन्तों अध्वरिमत्यांह् स्तोमंमेवास्मै युन्त्त्युपेत्यांह प्रजा वै पृशव उपेमं लोकं प्रजामेव पृश्निमं लोकमुपैत्यस्य प्रवामनुद्युत्मित्यांह सुवर्गो वै लोकः प्रवः सुवर्गमेव लोक॰ समारोहत्यग्निर्मूर्धा दिवः कुकुदित्यांह मूर्धानं- (२५)

मेवैन र समानानां करोत्यथां देवलोकादेव मंनुष्यलोके प्रतितिष्ठत्ययमिह प्रंथमो धांयि धातृभिरित्यांह मुख्यंमेवैनं करोत्युभा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्या इत्याहौजो बलंमेवावं रुन्धेऽयं ते योनिंर्ऋत्विय इत्यांह पृशवो वै र्यिः पृश्नेवावं रुन्धे षङ्गिरुपं तिष्ठते षङ्गा- (२६)

ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति षङ्किरुत्तराभिरुपं तिष्ठते द्वादेश सं पंद्यन्ते द्वादेश मासाः संवथ्सरः संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठति यथा वै पुरुषोऽश्वो गौर्जीर्यत्येवमृग्निराहिंतो जीर्यति संवथ्सरस्यं पुरस्तांदाग्निपावमानीभिरुपं तिष्ठते पुनर्नवमेवेनंमृजरं करोत्यथां पुनात्येवोपं तिष्ठते योगं

एवास्यैष उपं तिष्ठते (२७)

दमं प्वास्यैष उपं तिष्ठते याञ्जैवास्यैषोपं तिष्ठते यथा पापीयाञ्छ्रेयंस आहृत्यं नमस्यतिं ताहगेव तदायुर्दा अंग्रेऽस्यायुंमें देहीत्यांहाऽऽयुर्दा ह्यंष वर्चोदा अंग्रेऽसि वर्चो मे देहीत्यांह वर्चोदा ह्यंष तंनूपा अंग्रेऽसि तनुवंं मे पाहीत्यांह (२८)

तनूपा ह्यंषोऽग्रे यन्मं तनुवां ऊनं तन्म आ पृणेत्यांह यन्में प्रजाये पशूनामूनं तन्म आ पूर्यति वावेतदांह चित्रांवसो स्वस्ति ते पारमंशीयत्यांह रात्रिवे चित्रावंसुरव्यंष्ट्री वा एतस्यै पुरा ब्रांह्मणा अंभेषुर्व्यंष्टिमेवावं रुन्य इन्यांनास्त्वा श्तर (२९)

हिमा इत्यांह शतायुः पुरुषः श्तेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रितं तिष्ठत्येषा वै सूर्मी कर्णकावत्येतयां ह स्मृ वै देवा असुराणाः शतत्र्हाः स्तृ हिन्ते यदेतयां समिधंमादधांति वर्ज्ञमेवैतच्छंत्ध्रीं यज्ञमानो भ्रातृंच्याय प्रहंरित स्तृत्या अछंम्बद्धार् सं त्वमंग्ने सूर्यस्य वर्चसा गथा इत्यांहैतत्त्वमसीदमहं भूयास्मिति वावैतदांह त्वमंग्ने

सूर्यंवर्चा असीत्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शांस्ते॥ (३०)

मूर्धानुं वै तिष्ठंत आह शृतमृह १ षोडंश च॥_____[७]

सं पंश्यामि प्रजा अहमित्यांह् यावंन्त एव ग्राम्याः प्शवस्तानेवावं रुन्धेऽम्भः स्थाम्भों वो भक्षीयेत्याहाम्भो ह्यंता महंः स्थ महों वो भक्षीयेत्यांह् महो ह्यंताः सहंः स्थ सहों वो भक्षीयेत्यांह् सहो ह्यंता ऊर्ज्स्थोर्जं वो भक्षीये- (३१)

त्याहोर्जो ह्यंता रेवंती रमंध्वमित्यांह पृशवो वै रेवर्तीः पृश्नेवात्मन् रंमयत इहैव स्तेतो माऽपं गातेत्यांह ध्रुवा पृवेना अनंपगाः कुरुत इष्टक्चिद्वा अन्यौऽग्निः पंशुचिद्न्यः स्रंहितासिं विश्वरूपीरितिं वथ्सम्भि मृंशृत्युपैवेनं धत्ते पशुचितंमेनं कुरुते प्र (३२)

वा पृषों उस्माल्लोकाच्यंवते य आंहवनीयंमुप्तिष्ठंते गार्हंपत्यमुपं तिष्ठते ऽस्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठत्यथो गार्हंपत्यायैव नि ह्रुंते गायत्रीभिरुपं तिष्ठते तेजो वै गायत्री तेजं पुवात्मन् धत्ते ऽथो यदेतं तृचम्नवाह् सन्तंत्यै गार्हंपत्यं वा अनुं द्विपादों वीराः प्रजांयन्ते य पृवं विद्वान् द्विपदांभिगार्हंपत्यमुपतिष्ठंत - (३३)

आऽस्यं वीरो जांयत ऊर्जा वंः पश्याम्यूर्जा मां पश्यतत्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शांस्ते तथ्संवितुर्वरेंण्यमित्यांह् प्रसूत्ये सोमान्ड् स्वरंणमित्यांह सोमपीथमेवावं रुन्धे कृणुहि ब्रंह्मणस्पत् इत्यांह ब्रह्मवर्च्समेवावं रुन्धे कदा चन स्त्रीरसीत्यांह् न स्त्री॰ रात्रिं वसति (३४)

य एवं विद्वानिश्नम्ंपृतिष्ठंते परि त्वाऽश्ने पुरं व्यिमत्यांह परिधिमेवेतं परि दधात्यस्केन्दायाग्ने गृहपत् इत्यांह यथायजुरेवेतच्छुतः हिमा इत्यांह श्वतं त्वां हेम्न्तानिन्धिषीयेति वावेतदांह पुत्रस्य नामं गृह्णात्यत्रादमेवेनं करोति तामाशिषमा शांसे तन्तंवे ज्योतिष्मतीमितिं ब्रूयाद्यस्यं पुत्रोऽजांतः स्यात्तंजस्व्यंवास्यं ब्रह्मवर्च्सी पुत्रो जांयते तामाशिषमा शांसेऽमुष्मे ज्योतिष्मतीमितिं ब्रूयाद्यस्यं पुत्रो जातः स्यात् तेजं एवास्मिन् ब्रह्मवर्च्सं दंधाति॥ (३५)

ऊर्जं वो भक्षीयेति प्र गार्हंपत्यमुप्तिष्ठंते वसित ज्योतिष्मतीमेकान्नित्र्रश्चं॥—[८] अग्निहोत्रं जुंहोति यदेव किं च यजमानस्य स्वं

तस्यैव तद्रेतः सिश्चिति प्रजनंने प्रजनंन् हि वा अग्निरथौषंधीरन्तंगता दहित् तास्ततो भूयंसीः प्रजांयन्ते यथ्सायं जुहोति रेतं एव तिथ्संश्चिति प्रैव प्रांतस्तनंन जनयित् तद्रेतः सिक्तं न त्वष्ट्राऽविंकृतं प्रजांयते याव्च्छो व रेतंसः सिक्तस्य (३६)

त्वष्टां रूपाणि विक्रोति तावच्छो वै तत्प्रजांयत एष वै दैव्यस्त्वष्टा यो यजंते बह्वीभिरुपं तिष्ठते रेतंस एव सिक्तस्यं बहुशो रूपाणि वि करोति स प्रैव जांयते श्वःश्वो भूयांन् भवति य एवं विद्वानग्निम्पतिष्ठतेऽहंर्देवानामासीद्रात्रिरस्रंगणां ते-ऽस्रंग यद्देवानां वित्तं वेद्यमासीत्तेनं सह (३७)

रात्रिं प्राविंश्नन् ते देवा हीना अंमन्यन्त तेंऽपश्यन्नाभ्रेयी रात्रिंराभ्रेयाः पृशवं इममेवाभ्निः स्तंवाम् स नंः स्तुतः पृश्नन् पुनंदिंस्यतीति तेंऽभ्रिमंस्तुवन्थ्स एँभ्यः स्तुतो रात्रिया अध्यहंरिभ पृश्निरांर्जुत् ते देवाः पृश्नन् वित्वा कामाः अकुर्वत् य पृवं विद्वानुभ्रिमंपतिष्ठंते पशुमान् भवत्या- (३८)

दित्यो वा अस्माल्लोकादमुं लोकमैथ्सोऽमुं लोकं गुत्वा पुनेरिमं लोकमभ्यध्यायथ्स इमं लोकमागत्यं मृत्योरंबिभेन्मृत्युसंयुत इव ह्यंयं लोकः सोंऽमन्यतेममेवाग्नि स्तंवानि स माँ स्तुतः सुंवर्गं लोकं गंमयिष्यतीति सों-ऽग्निमंस्तौथ्स एन इस्तुतः सुंवर्गं लोकमंगमयद्य - (३९)

पुवं विद्वानिश्चर्मप्तिष्ठंते सुवर्गमेव लोकमेति सर्वमायुरित्यभि वा पृषौंऽग्नी आ रोहिति य एनावपितिष्ठंते यथा खलु वै श्रेयांनभ्यारूढः कामयंते तथां करोति नक्तमुपं तिष्ठते न प्रातः स॰ हि नक्तं ब्रतानि सृज्यन्तं सह श्रेया श्र्य पापीया श्रासाते ज्योतिर्वा अग्निस्तमो रात्रिर्यन्- (४०)

नक्तंमुपतिष्ठंते ज्योतिषेव तमंस्तरत्युपस्थेयोऽग्नी(३)र्नीप-स्थेया(३) इत्यांहुर्मनुष्यांयेन्ने योऽहंरहराहृत्याथेनं याचंति स इन्ने तमुपाँच्छ्त्त्यथ् को देवानहंरहर्याचिष्यतीति तस्मान्नोपस्थेयोऽथो खल्वांहुराशिषे वे कं यर्जमानो यजत इत्येषा खलु वा - (४१)

आहिंताग्नेराशीर्यद्गिम्ंपृतिष्ठंते तस्मांदुपृस्थेयः प्रजापंतिः पृश्नंसृजत् ते सृष्टा अंहोरात्रे प्राविश्नन् ताञ्छन्दों-भिरन्वंविन्दुद्यच्छन्दोंभिरुपृतिष्ठंते स्वमेव तदन्विंच्छति न तत्रं जाम्यंस्तीत्यांहुर्योऽहंरहरुपृतिष्ठंत इति यो वा अग्निं प्रत्यङ्कंपतिष्ठंते प्रत्यंनमोषति यः पराङ् विष्वंङ् प्रजयां पशुभिरेति कवांतिर्यङ्किःवोपं तिष्ठेत नैनं प्रत्योषंति न विष्वंङ् प्रजयां पशुभिरेति॥ (४२)

सिक्तस्यं सह भंवित यो यत्खलु वै पृशुभिस्त्रयोदश च॥----[९]

मम् नामं प्रथमं जांतवेदः पिता माता चं दधतुर्यदग्रैं। तत्त्वं विभृिह पुन्रा मदैतोस्तवाहं नामं विभराण्यग्ने॥ मम् नाम् तवं च जातवेदो वासंसी इव विवसानौ ये चरावः। आयुंषे त्वं जीवसे वयं यंथाय्थं वि परि दधावहै पुन्स्ते॥ नमोऽग्नये-ऽप्रतिविद्धाय नमोऽनांधृष्टाय नमः सम्राजैं। अषांढो (४३)

अग्निर्बृहद्वंया विश्वजिथ्सहंन्त्यः श्रेष्ठां गन्ध्वंः॥ त्वित्पंतारो अग्ने देवास्त्वामांहृतयस्त्विद्वंवाचनाः। सं मामायुंषा सं गौंपत्येन सुहिते मा धाः॥ अयमृग्निः श्रेष्ठंतमोऽयं भगंवत्तमोऽयः संहस्रुसातंमः। अस्मा अस्तु सुवीर्यम्॥ मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञः सिम्मं दंधातु। या इष्टा उषसो निम्नुचंश्च ताः सं दंधामि ह्विषां घृतेनं॥ पर्यस्वतीरोषंधयः (४४)

पर्यस्वद्वीरुधां पर्यः। अपां पर्यसो यत्पय्स्तेन मामिन्द्र

स॰ सृंज॥ अग्नैं व्रतपते व्रतं चेरिष्यामि तच्छंकेयं तन्में राध्यताम्॥ अग्नि॰ होतांरिमह त॰ हुंवे देवान् यज्ञियांनिह यान् हवांमहे॥ आ यन्तु देवाः सुंमन्स्यमांना वियन्तुं देवा ह्विषों मे अस्य॥ कस्त्वां युनिक्त स त्वां युनक्तु यानिं घुर्मे कृपालांन्युपचिन्वन्तिं (४५)

वेधसंः। पूष्णस्तान्यपि व्रत इंन्द्रवायू विमुश्चताम्॥ अभिन्नो घुर्मो जीरदांनुर्यत् आत्तस्तदंग्न् पुनः। इध्मो वेदिः परि्धयंश्च सर्वे यज्ञस्याऽऽयुरनु सं चंरन्ति॥ त्रयंस्त्रि॰शृत्तन्तंवो ये वितित्विरे य इमं यज्ञ स्वधया ददंन्ते तेषां छिन्नं प्रत्येतद्दंधामि स्वाहां घर्मो देवा॰ अप्येतु॥ (४६)

अर्षांढ् ओषंधय उपचिन्वन्ति पश्चंचत्वारि श्शिच॥———[१०]

वैश्वान्तरो नं ऊत्याऽऽप्र यांतु परावतः। अग्निरुक्थेन् वाहंसा॥ ऋतावांनं वैश्वान्तरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजंस्रं घर्ममीमहे॥ वैश्वान्तरस्य दश्सनांभ्यो बृहदरिणादेकेः स्वप्स्यया कविः। उभा पितरां महयंत्रजायताग्निर्धावांपृथिवी भूरिरेतसा॥ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृंथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषंधीरा विवेश। वैश्वान्तरः सहंसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स (४७)

रिषः पांतु नक्तम्॥ जातो यदंग्रे भुवंना व्यख्यः पृशुं न गोपा इर्यः परिजमा। वैश्वांनर् ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः॥ त्वमंग्रे शोचिषा शोश्चान् आ रोदंसी अपृणा जायंमानः। त्वं देवार अभिशंस्तेरमुश्रो वैश्वांनर जातवेदो महित्वा॥ अस्माकंमग्रे मुघवंथ्सु धार्यानांमि क्षत्रम्जरर् सुवीर्यम्॥ व्यं जंयेम श्तिनर् सहस्रिणं वैश्वांनर (४८)

वार्जमग्ने तवोतिभिः॥ वैश्वान्रस्यं सुमृतौ स्यांम् राजा हिकं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वंमिदं वि चष्टे वैश्वान्रो यंतते सूर्येण॥ अवं ते हेडों वरुण् नमोभिरवं यज्ञेभिरीमहे ह्विभिः। क्षयंत्रस्मभ्यंमसुर प्रचेतो राज्ञत्रेना स्सि शिश्रथः कृतानि॥ उदुंत्तमं वंरुण् पाशंम्स्मद-वांधमं वि मध्यम श्रंथाय। अथां व्यमांदित्य (४९)

व्रते तवानांगसो अदिंतये स्याम॥ दृधिकाव्णों अकारिषं जिष्णोरश्वंस्य वाजिनंः॥ सुर्भि नो मुखां कर्त् प्र ण् आयूर्षेष तारिषत्॥ आ दंधिकाः शवंसा पश्चं कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्तंतान। सहस्रसाः शंतुसा वाज्यवां पृणक्तु मध्वा सिम्मा वचा रेसि॥ अग्निर्मूर्धा भुवंः। मरुतो यद्धं वो दिवः सुम्नायन्तो हवांमहे। आ तू न (५०)

उपं गन्तन॥ या वः शर्मं शशमानाय सन्तिं त्रिधातूंनि दाशुषे यच्छताधि। अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त र्यिं नों धत्त वृषणः सुवीरम्॥ अदितिनं उरुष्युत्वदितिः शर्म यच्छतु। अदितिः पात्व १ हंसः॥ मुहीमू षु मातर ५ सुव्रतानांमृतस्य पत्नीमवंसे हुवेम। तुविक्षुत्राम् जरंन्ती-मुरूची र सुशर्माण्मिदिति र सुप्रणीतिम्॥ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामंनेहस र सुशर्माणमदिति र सुप्रणीतिम्। दैवीं नाव ई स्वरित्रामनांगसमस्रंवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ इमा ५ सु नावमाऽरुंहर शतारित्रार शतस्फांम्। अच्छिंद्रां पारियष्णुम्॥ (५१)

दिवा स संहुस्निणं वैश्वांनराऽऽदित्य तू नोंऽनेहसर सुशर्माणमेकान्नविरशातिश्चं॥ 🗕 [११]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

सं त्वां सिश्चाम् यजुंषा प्रजामायुर्धनं च। बृह्स्पतिंप्रसूतो यजमान इह मा रिषत्॥ आज्यंमसि सृत्यमंसि सृत्यस्याध्यंक्षमसि ह्विरंसि वैश्वान्रं वैश्वदेवमृत्यूंतशुष्म स्त्यौजाः सहोऽसि सहंमानमसि सहस्वारांतीः सहंस्वारातीयतः सहंस्व पृतंनाः सहंस्व पृतन्यतः। सहस्रंवीर्यमसि तन्मां जिन्वाऽऽज्यस्याऽऽज्यंमसि सृत्यस्यं सृत्यमंसि सृत्यायुं- (१)

रसि स्त्यश्रंष्मिस स्त्येनं त्वाऽभि घांरयाम् तस्यं ते भक्षीय
पश्चानां त्वा वातांनां युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि
पश्चानां त्वंर्तूनां युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि
पश्चानां त्वां दिशां युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि
पश्चानां त्वां पश्चजनानां युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि
चरोस्त्वा पश्चंबिलस्य युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि
ब्रह्मणस्त्वा तेजंसे युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि
क्षत्रस्य त्वोजंसे युत्रायं धूर्त्रायं गृह्णामि

धूर्त्रायं गृह्णामि विशे त्वां यन्त्रायं धर्त्रायं गृह्णामि

सुवीर्याय त्वा गृह्णामि सुप्रजास्त्वायं त्वा गृह्णामि रायस्पोषाय त्वा गृह्णामि ब्रह्मवर्चसायं त्वा गृह्णामि भूरस्माक र ह्विर्देवानां माशिषो यर्जमानस्य देवानां त्वा देवतां भयो गृह्णामि कामांय त्वा गृह्णामि॥ (३)

स्त्यायुरोर्जसे युत्राय त्रयंस्त्रिश्शच॥_____[१

ध्रुवोंऽसि ध्रुवोंऽहर संजातेषुं भूयासं धीर्श्वेत्तां वसुविदुग्रोंऽस्युग्रोंऽहर संजातेषुं भूयास-मुग्रश्चेत्तां वसुविदिभिभूरंस्यभिभूरहर संजातेषुं भूयास-मिभ्श्वेत्तां वसुविद्युनिज्मं त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ह्व्यायास्मे वोढ्वे जातवेदः। इन्धांनास्त्वा सुप्रजसंः सुवीरा ज्योग्जीवेम बिल्हितों व्यं ते॥ यन्मं अग्ने अस्य यज्ञस्य रिष्या- (४)

द्यद्वा स्कन्दादाज्यंस्योत विष्णो। तेनं हन्मि स्पत्नं दुर्मरायुमैनं दधामि निर्ऋत्या उपस्थै। भूर्भुवः सुव्रुच्छुंष्मो अग्ने यजंमानायैधि निश्ंष्मो अभिदासंते। अग्ने देवेंद्ध मन्विद्ध मन्द्रंजिह्वामंत्यंस्य ते होतर्मूर्धन्ना जिंधिम रायस्पोषांय सुप्रजास्त्वायं सुवीर्याय मनोऽसि प्राजापृत्यं मनसा मा भूतेनाऽऽविंश् वागस्यैन्द्री संपत्नक्षयंणी (५)

वाचा मैन्द्रियेणाऽऽविंश वस्नतमृत्नां प्रीणामि स माँ प्रीतः प्रीणातु ग्रीष्ममृत्नां प्रीणामि स माँ प्रीतः प्रीणातु वर्षा ऋत्नां प्रीणामि ता माँ प्रीताः प्रीणन्तु श्रदंमृत्नां प्रीणामि सा माँ प्रीता प्रीणातु हेमन्तिशिश्रिरावृत्नां प्रीणामि तौ माँ प्रीतौ प्रीणीता-म्ग्रीषोमयोरहं देवयुज्यया चक्षुंष्मान् भूयासम्-ग्रेरहं देवयुज्ययांन्नादो भूयास्ं (६)

दब्धिंरस्यदंब्धो भूयास-

ममुं दंभयमुग्नीषोमयोर्हं देवयुज्ययां वृत्रहा भूयास-मिन्द्राग्नियोर्हं देवयुज्ययेन्द्रियाव्यन्नादो भूयास-मिन्द्रंस्याहं देवयुज्ययेन्द्रियावी भूयासं महेन्द्रस्याहं देवयुज्ययां जेमानं महिमानं गमेयमुग्नेः स्विष्टुकृतोऽहं देवयुज्ययाऽऽयुष्मान् युज्ञेनं प्रतिष्ठां गंमेयम्॥ (७)

रिष्याँथ्सपतृक्षयंण्यत्रादो भूंयास् पद्गिरंशच॥_____[२]

अग्निर्मा दुरिष्टात् पातु सिवताऽघशर्साद्यो मेऽन्तिं दूरे-ऽरातीयति तमेतेनं जेष्र सुरूपवर्षवर्ण एहीमान् भद्रान् दुर्यारं अभ्येहि मामनुंव्रता न्युं शीर्षाणि मृद्वमिड एह्यदित् एहि सरंस्वत्येहि रन्तिरसि रमंतिरसि सूनर्यसि जुष्टे जुष्टिं तेऽशीयोपंहत उपहवं (८)

तेंऽशीय सा में स्त्याशीर्स्य युज्ञस्यं भूयादरेंडता मनसा तच्छंकेयं युज्ञो दिवर्ं रोहतु युज्ञो दिवं गच्छतु यो देवयानः पन्थास्तेनं युज्ञो देवार अप्येत्वस्मास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्वस्मान्नायं उत युज्ञाः संचन्तामस्मासुं सन्त्वाशिषः सा नः प्रिया सुप्रतूर्तिर्म्घोनी जुष्टिरिस जुषस्वं नो जुष्टां नो- (९)

ऽसि जुष्टिं ते गमेयं मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञ समिमं देधातु। बृह्स्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वं देवा इह मादयन्ताम्॥ ब्रध्न पिन्वंस्व ददंतो मे मा क्षांयि कुर्वतो मे मोपंदसत् प्रजापंतेर्भागौंऽस्यूर्जस्वान् पर्यस्वान् प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ में पाह्यदानव्यानौ में पाह्यक्षिंतोऽस्यक्षिंत्यै त्वा मा में क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिन् लोके॥ (१०)

उपहुवं जुष्टां नस्त्वा पद चं॥———[३] बरहिषोऽहं देवयन्ययां प्रजावान भयासं नराश्व स्मस्याहं

ब्र्हिषोऽहं देवयुज्ययां प्रजावांन भूयासं नराश श्संस्याहं देवयुज्ययां पशुमान भूयासम्ग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयुज्यया-ऽऽयुष्मान् युज्ञेनं प्रतिष्ठां गंमेयम्ग्नेरहम् जितिमन् जेष्श् सोमंस्याहम् जितिमन् जेषम् ग्नेरहम् जितिमन् जेषम् ग्नीषोमंयो-रहम् जितिमन् जेषिमन्द्राग्नियोरहम् जितिमन् जेषिमन्द्रं स्याहम्-(११)

जितिमन् जेषं महेन्द्रस्याहम् जितिमन् जेषम् ग्रेः स्विष्टकृतो-ऽहम् जितिमन् जेषं वार्जस्य मा प्रस्वेनो द्वाभेणो दंग्रभीत्। अथां सपला इन्द्रों मे निग्राभेणा धरा अकः॥ उद्घाभं चं निग्राभं च ब्रह्मं देवा अवीवृधन्न। अथां सपत्नां निन्द्राग्री में विषूचीनान्व्यंस्यताम्॥ एमा अंग्मन्नाशिषो दोहं कामा इन्द्रंवन्तो (१२)

वनामहे धुक्षीमिह प्रजामिषम्॥ रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु हरिभ्यां त्वेन्द्रों देवतां गमयत्वेतंशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयत् वि तं मुश्चामि रश्ना वि रश्मीन् वि योक्रा यानिं परिचर्तनानि धृत्ताद्स्मासु द्रविंणं यचं भृद्रं प्र णौ ब्रूताद्भाग्धान् देवतांसु॥ विष्णोः श्ंयोर्हं देवयुज्ययां युज्ञेनं प्रतिष्ठां गंमेयु सोमंस्याहं देवयुज्ययां (१३)

सुरेता रेतों धिषीय त्वष्टुं देवयुज्ययां पशूना रूपं पुंषेयं देवानां पत्नीर्ग्निर्गृहपंतिर्यज्ञस्यं मिथुनं तयोर्हं देवयुज्ययां मिथुनेन प्र भूयासं वेदोऽसि वित्तिरिस विदेय कर्मासि करुणंमिस क्रियास सिन्तिरिस सिन्तासिं सुनेयं घृतवंन्तं कुलायिन र रायस्पोष सहिस्रणं वेदो देदातु वाजिनम्॥ (१४)

इन्द्रंस्याहिमन्द्रवन्तः सोमंस्याहं देवयुज्यया चतुंश्वत्वारिश्यचा प्रितं देवयुज्ययां चतुंश्वत्वारिश्यचा प्रितं देवयुज्याः। सूर्याया ऊधोऽदित्या उपस्थं उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन्॥ प्रजापंतिर्विभान्नामं लोकस्तस्मि इस्त्वा दधामि सह यजमानेन सदिस् सन्मे भूयाः सर्वमिस् सर्वं मे भूयाः पूर्णमंसि पूर्णं में भूया अक्षितमिस् मा में क्षेष्ठाः प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्तां दिशेणायां (१५)

दिशि मासाः पितरों मार्जयन्तां प्रतीच्यां दिशि गृहाः पशवों मार्जयन्तामुदींच्यां दिश्याप ओषंधयो वनस्पतंयो मार्जयन्तामूर्ध्वायां दिशि युज्ञः संवथ्सरो युज्ञपंतिर्मार्जयन्तां विष्णोः क्रमों ऽस्यभिमातिहा गांयत्रेण छन्दंसा पृथिवीमनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमों ऽस्यभिशस्तिहा त्रैष्टुंभेन छन्दंसाऽन्तरिक्षमनु वि ऋंमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः ऋमौंऽस्यरातीयतो हन्ता जागंतेन् छन्दंसा दिव्मनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुंष्टुभेन छन्दंसा दिशोऽनु वि क्रंमे निर्भंक्तः स यं द्विष्मः॥ (१६)

विश्वायां द्विष्यो विष्णोरेकात्रित्र्यश्चा ————[५] अर्गन्म सुवः सुवंरगन्म सुन्दशंस्ते मा छिंथ्सि यत्ते तपस्तस्मे ते माऽऽवृक्षि सुभूरंसि श्रेष्ठां रश्मीनामायुधां अस्यायुंमें धेहि वर्चोधा असि वर्चो मियं धेहीदमहम्मुं भ्रातृंव्यमाभ्यो दिग्भ्यौऽस्यै दिवौऽस्मादन्तिरंक्षादस्यै पृथिव्या अस्मादन्नाद्यान्तिर्भजामि निर्भक्तः स यं द्विष्मः। (१७) सं ज्योतिषाऽभूवमैन्द्रीमावृतंमन्वावंतें समहं प्रजया सं

-[६]

मयाँ प्रजा सम्हर रायस्पोषंण सं मयां रायस्पोषः सिमंद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासं वस्मान् यूज्ञो वसीयान् भूयासमग्न आयूर्षि पवस् आ सुवोर्ज्ञिमिषं च नः। आरे बांधस्व दुच्छुनाँम्॥ अग्ने पर्वस्व स्वपां अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥ (१८)

दध्त् पोष र्रं र्यिं मियं। अग्नं गृहपते सुगृहपतिर्हं त्वयां गृहपंतिना भूयास र सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपंतिना भूयाः श्रात हिमास्तामाशिषमा शांसे तन्तं वे ज्योतिष्मतीं तामाशिषमाशांसेऽमुष्मे ज्योतिष्मतीं कस्त्वां युनिक्त स त्वा विम्ंश्चत्वग्ने व्रतपते व्रतमंचारिषं तदंशकं तन्मेंऽराधि यज्ञो बंभूव स आ (१९)

बंभूव स प्र जंज्ञे स वांवृधे। स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मार अधिपतीन् करोतु वय स्यांम् पतंयो रयीणाम्॥ गोमार्थ अग्नेऽविंमार अश्वी यज्ञो नृवथ्संखा सदमिदंप्रमृष्यः। इडांवार एषो अंसुर प्रजावांन् दीर्घो र्यिः पृथुबुध्नः सुभावान्॥ (२०)

द्विष्मः सुवीर्युर् स आ पश्चंत्रिरशच॥

यथा वै संमृतसोमा एवं वा एते संमृतयुज्ञा यद्दंरशपूर्णमासो कस्य वाहं देवा यज्ञमा गच्छंन्ति कस्यं वा न बंहूनां यजंमानानां यो वै देवताः पूर्वः परिगृह्णाति स एनाः श्वो भूते यंजत एतद्वे देवानांमायतंनं यदांहवनीयों उन्तराग्नी पंशूनां गार्हंपत्यो मनुष्यांणामन्वाहार्यपचंनः पितृणामृग्निं गृह्णाति स्व एवायतंने देवताः परिं (२१)

गृह्णाति ताः श्वो भूते यंजते व्रतेन वै मेध्यो-ऽग्निर्व्रतपंतिर्ब्राह्मणो व्रंतभृद् व्रतमुंपैष्यन् ब्रूयादग्ने व्रतपते व्रतं चेरिष्यामीत्यग्निर्वे देवानां व्रतपंतिस्तस्मां एव प्रंतिप्रोच्यं व्रतमालंभते ब्रहिषां पूर्णमांसे व्रतमुपैति वथ्सैरमावास्यायामेतस्येतयोरायतंनमुप्स्तीर्यः पूर्वश्चाग्निरपंर-श्चेत्यांहुर्मनुष्यां (२२)

इन्ना उपंस्तीर्णमिच्छन्ति किम् देवा येषां नवांवसान्-मुपाँस्मिञ्छो यक्ष्यमाणे देवतां वसन्ति य एवं विद्वानिग्नम्पस्तृणाति यजंमानेन ग्राम्याश्चं पृशवीं-ऽव्रुध्यां आर्ण्याश्चेत्यांहुर्यद्वाम्यानुप्वसंति तेनं ग्राम्यानवं रुन्धे यदांर्ण्यस्याश्चाति तेनांर्ण्यान् यदनांश्वानुप्वसेंत् पितृदेवत्यंः स्यादार्ण्यस्यांश्ञातीन्द्रियं (२३)

वा आंर्ण्यमिन्द्रियमेवाऽऽत्मन् धंत्ते यदनाश्वानुप्वसेत् क्षोधंकः स्याद्यदंश्जीयाद्रुद्रौऽस्य पृशून्भिमंन्येतापौऽश्जाति तन्नेवांशितं नेवानंशितं न क्षोधंको भवंति नास्यं रुद्रः पृशून्भि मंन्यते वज्रो वै यज्ञः क्षुत्खलु वै मंनुष्यंस्य भ्रातृंव्यो यदनाश्वानुप्वसंति वज्रेणैव साक्षात्क्षुधं भ्रातृंव्यः हन्ति॥ (२४)

परिं मनुष्यां इन्द्रिय॰ साक्षात् त्रीणिं च॥-----[७]

यो वै श्रद्धामनारभ्य युज्ञेन यजिते नास्येष्टाय श्रद्धंधतेऽपः प्र णंयित श्रद्धा वा आपंः श्रद्धामेवाऽऽरभ्यं युज्ञेनं यजत उभयेंऽस्य देवमनुष्या इष्टाय श्रद्धंधते तदांहुरित वा एता वर्त्रत्नेदन्त्यित वाचं मनो वावैता नातिं नेदन्तीति मनसा प्र णंयतीयं वै मनो- (२५)

ऽनयैवैनाः प्र णंयत्यस्कंन्नहिवभविति य एवं वेदं यज्ञायुधानि सम्भंरित यज्ञो वै यंज्ञायुधानि यज्ञमेव तथ्सम्भंरित यदेकंमेक सम्भरेत पितृदेवत्यांनि स्युर्यथ्सह सर्वाणि मानुषाणि द्वेद्वे सम्भंरित याज्यानुवाक्यंयोरेव रूपं करोत्यथीं मिथुनमेव यो वै दर्श यज्ञायुधानि वेदं मुखतौंऽस्य यज्ञः केल्पते स्फा- (२६)

श्चं क्पालांनि चाग्निहोत्रहवंणी च शूपं च कृष्णाजिनं च शम्यां चोलूखंलं च मुसंलं च दृषचोपंला चैतानि वै दशं यज्ञायुधानि य एवं वेदं मुखतौंऽस्य युज्ञः कंल्पते यो वै देवेभ्यः प्रतिप्रोच्यं युज्ञेन यजंते जुषन्तेंऽस्य देवा ह्व्य १ ह्विर्निकृप्यमाणम्भि मंत्रयेताग्नि १ होतांरिम्ह त १ हुव इति (२७)

देवेभ्यं एव प्रंतिप्रोच्यं यज्ञेनं यजते जुषन्तेंऽस्य देवा ह्व्यमेष वै यज्ञस्य ग्रहों गृहीत्वैव यज्ञेनं यजते तदुंदित्वा वाचं यच्छिति यज्ञस्य धृत्या अथो मनसा वै प्रजापंतिर्यज्ञमंतनुत् मनसीव तद्यज्ञं तंनुते रक्षंसामनंन्ववचाराय यो वै यज्ञं योग् आगंते युनिक्तं युङ्के युंञ्जानेषु कस्त्वां युनिक्तं स त्वां युनिक्तित्यांह प्रजापंतिवैवें कः प्रजापंतिनैवैनं युनिक्तं युङ्के युंञ्जानेषुं॥ (२८)

वै मनः स्प्य इति युन्केकांदश च॥——[८] प्रजापंतिर्युज्ञानंसृजताग्निहोत्रं चाँग्निष्टोमं चं पौर्णमासीं चोक्थ्यं चामावास्यां चातिरात्रं च तानुदंिममीत् यावंदिग्निहोत्रमासीत् तावांनिग्निष्टोमो यावंती पौर्णमासी तावांनुक्थ्यां यावंत्यमावास्यां तावांनितरात्रो य एवं विद्वानंग्निहोत्रं जुहोति यावंदिग्निष्टोमेनोपाप्नोति तावदुपांऽऽप्नोति य एवं विद्वान् पौर्णमासीं यजंते यावंदुक्थ्यंनोपाप्नोति (२९)

तावदुपाँ ऽऽप्रोति य एवं विद्वानंमावास्यां यजेते यावंदितरात्रेणोंपाप्नोति तावदुपाँऽऽप्नोति परमेष्ठिनो वा एष यज्ञोऽग्रं आसीत् तेन स परमां काष्ठांमगच्छत् तेनं प्रजापंतिं निरवांसाययत् तेनं प्रजापंतिः परमां काष्ठांमगच्छत् तेनेन्द्रं निरवांसाययत् तेनेन्द्रंः पर्मां काष्ठांमगच्छत् तेनाुग्नीषोमौं निरवांसाययत् तेनाग्नीषोमौ परमां काष्ठांमगच्छतां य (३०) एवं विद्वान् दंर्शपूर्णमासौ यजंते परमामेव कार्षां गच्छति यो वै प्रजातेन युज्ञेन यजते प्र प्रजयां पशुभिंमिंथुनैर्जायते द्वादंश मासाः संवथ्सरो द्वादंश द्वन्द्वानिं दर्शपूर्णमासयोस्तानिं सम्पाद्यानीत्यां हुर्वथ्सं चोपावसृजत्युखां चाधि श्रयत्यवं च हन्तिं दषदौं च

समाह्न्त्यिधं च वपंते कृपालांनि चोपं दधाति पुरोडाशं चा- (३१)

धिश्रयत्याज्यं च स्तम्बयज्ञश्च हरंत्यभि चं गृह्णाति वेदिं च परिगृह्णाति पत्नीं च सं नह्यति प्रोक्षंणिश्चाऽऽसादयत्याज्यं चैतानि वे द्वादंश द्वन्द्वानिं दर्शपूर्णमासयोस्तानि य एव॰ सम्पाद्य यजंते प्रजांतेनैव यज्ञेनं यजते प्र प्रजयां पृश्मिर्मिथुनैर्जायते॥ (३२)

ध्रुवोंऽसि ध्रुवोंऽह र संजातेषुं भूयास्मित्यांह ध्रुवानेवैनांन् कुरुत उग्रोंऽस्युग्रोंऽह र संजातेषुं भूयास्मित्याहाप्रंतिवादिन

पुवैनांन्कुरुतेऽभिमूरंस्यभिभूरहर संजातेषु भूयासमित्यांह य पुवैनं प्रत्युत्पिपींते तमुपांस्यते युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येनेत्यांहैष वा अुग्नेर्योगुस्तेनै- (३३)

वैनं युनिक्त युज्ञस्य वै समृद्धेन देवाः सुंवृगं लोकमायन् युज्ञस्य व्यृद्धेनासुरान् पराभावयन् यन्में अग्ने अस्य युज्ञस्य रिष्यादित्याह युज्ञस्यैव तथ्समृद्धेन् यजमानः सुवृगं लोकमेति युज्ञस्य व्यृद्धेन् भ्रातृंव्यान् परा भावयत्यग्निहोत्रमेताभिर्व्याहंतीभिरुपं सादयेद्यज्ञमुखं वा अंग्निहोत्रं ब्रह्मैता व्याहंतयो यज्ञमुख एव ब्रह्मं (३४)

कुरुते संवथ्मरे पूर्यागंत एताभिरेवोपंसादयेद् ब्रह्मणैवोभ्यतः संवथ्मरं परिगृह्णाति दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यान्यालभंमान एताभिर्व्याह्रंतीभिर् ह्वी इष्यासाद-येद्यज्ञमुखं वै दंर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि ब्रह्मता व्याह्रंतयो यज्ञमुख एव ब्रह्मं कुरुते संवथ्मरे पूर्यागंत एताभिरेवासांद-येद् ब्रह्मणैवोभ्यतः संवथ्मरे परिगृह्णाति यद्वै यज्ञस्य साम्नां क्रियते राष्ट्रं (३५)

यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छिति यद्दचा विशे यज्ञस्याऽ-ऽशीर्गच्छुत्यर्थ ब्राह्मणोऽनाशीर्केण यज्ञेनं यजते सामिधेनीरंनुवृक्ष्यन्नेता व्याहृतीः पुरस्ताइध्याद् ब्रह्मैव प्रतिपदं कुरुते तथा ब्राह्मणः साशीर्केण यज्ञेनं यजते यं कामयेत यज्ञेमानं भ्रातृंव्यमस्य यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदिति तस्यैता व्याहृंतीः पुरोऽनुवाक्यांयां दध्याद् भ्रातृव्यदेवृत्यां वै पुरोऽनुवाक्यां भ्रातृंव्यमेवास्यं यज्ञस्या- (३६)

ऽऽशीर्गच्छिति यान् कामयेत् यजंमानान्थ्समावंत्येनान्

यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदिति तेषांमेता व्याहंतीः पुरोऽनुवाक्यांया अर्ध्च एकां दध्याद्याज्यांये पुरस्तादेकां याज्यांया अर्धच एकां तथैनान्थ्समावंती यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छिति यथा वे पर्जन्यः सुवृष्टं वर्षंत्येवं यज्ञो यजंमानाय वर्षिति स्थलंयोदकं परिगृह्णन्त्याशिषां यज्ञं यजंमानः परिगृह्णाति मनोंऽसि प्राजापत्यं (३७)

मनंसा मा भूतेनाऽऽविशेत्यांहु मनो वै प्रांजापृत्यं प्रांजापृत्यो यज्ञो मनं एव यज्ञमात्मन् धंत्ते वागंस्यैन्द्री संपत्नक्षयंणी वाचा मेंन्द्रियेणाऽऽविशेत्यांहैन्द्री वै वाग्वाचंमेवैन्द्रीमात्मन् धंत्ते॥ (३८)

तेनैव ब्रह्मं राष्ट्रमेवास्यं यज्ञस्यं प्राजापृत्यः षद्गिरंशच॥————[१०]

यो वै संप्तद्शं प्रजापंतिं युज्ञम्नवायंत् वेद प्रतिं युज्ञनं तिष्ठति न युज्ञाद् अर्श्यत् आ श्रांवयेति चतुरक्षर्मस्तु श्रौष्डिति चतुरक्षरं यजेति द्यंक्षरं ये यजांमह् इति पश्चांक्षरं द्यक्षरो वेषद्वार एष वै संप्तद्शः प्रजापंतिर्यज्ञम्नवायंत्तो य एवं वेद प्रति युज्ञेनं तिष्ठति न युज्ञाद् अर्श्यते यो वै युज्ञस्य प्रायंणं प्रतिष्ठा- (३९) मुदयंनं वेद प्रतिष्ठितेनारिष्टेन युज्ञेनं स्ड्स्थां गेच्छुत्या श्रांवयास्तु श्रोषड्यज् ये यजांमहे वषद्कार एतद्वे युज्ञस्य प्रायंणमेषा प्रतिष्ठेतदुदयंनं य एवं वेद प्रतिष्ठितेनारिष्टेन युज्ञेनं स्ड्स्थां गंच्छिति यो वे सूनृतांयै दोहं वेदं दुह एवेनां युज्ञो वे सूनृताऽऽश्रांवयेत्यैवेनांमह्वदस्तु (४०)

श्रौष्डित्युपावाँस्राग्यजेत्युदंनैषी्द्ये यजांमह् इत्युपांस-दद्वषद्वारेणं दोग्ध्येष वै सूनृतांये दोहो य एवं वेदं दुह एवैनां देवा वै स्त्रमांसत् तेषां दिशोऽदस्यन्त एतामार्द्रां पङ्किमंपश्यन्ना श्रांवयेतिं पुरोवातमंजनयन्नस्तु श्रौष्डित्यब्भ्रः समंप्रावयन् यजेतिं विद्युतं- (४१)

मजनयन् ये यजांमह् इति प्रावंर्षयन्नभ्यंस्तनयन् वषद्वारेण ततो वै तेभ्यो दिशः प्राप्यांयन्त य एवं वेद् प्रास्मे दिशः प्यायन्ते प्रजापंतिं त्वोवेदं प्रजापंतिस्त्वं वेद् यं प्रजापंतिर्वेद स पुण्यो भवत्येष वै छंन्दस्यः प्रजापंतिरा श्रांवयास्तु श्रोषड्यज् ये यजांमहे वषद्वारो य एवं वेद पुण्यो भवति वसन्त- (४२)

मृंतूनां प्रीणामीत्यांहुर्तवो वै प्रयाजा ऋतूनेव प्रीणाति

तेंंऽस्मै प्रीता यंथापूर्वं कंल्पन्ते कल्पंन्तेऽस्मा ऋतवो य एवं वेदाग्नीषोमंयोर्हं देवयुज्यया चक्षुंष्मान् भूयासमित्यांहाग्नीषोमांभ्यां वे युज्ञश्चक्षुंष्मान् ताभ्यांमेव चक्षुंरात्मन् धंत्तेऽग्नेर्हं देवयुज्ययांन्नादो भूयासमित्यांहाग्निर्वे देवानांमन्नादस्तेनैवा- (४३)

ऽन्नाद्यंमात्मन् धंत्ते दिब्धंरस्यदंब्धो भूयासम्मुं दंभेयमित्याहैतया वै दब्ध्यां देवा असुरानदभुवन् तयैव भ्रातृंव्यं दभ्नोत्यग्नीषोमयोर्हं देवयुज्ययां वृत्रहा भूयासमित्यांहाग्नीषोमांभ्यां वा इन्द्रों वृत्रमहुन् ताभ्यांमेव भ्रातृंव्यः स्तृणुत इन्द्राग्नियोर्हं देवयुज्ययेन्द्रियाव्यंन्नादो भूयासमित्यांहेन्द्रियाव्यंवान्नादो भंवतीन्द्रंस्या- (४४)

ऽहं देवयुज्ययैन्द्रियावी भूयास्मित्याहेन्द्रियाव्येव भवति महेन्द्रस्याहं देवयुज्ययां जेमानं महिमानं गमेयमित्याह जेमानंमेव महिमानं गच्छत्यग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयुज्यया-ऽऽयुष्मान् यज्ञेनं प्रतिष्ठां गमेयमित्याहायुरेवात्मन् धत्ते प्रतिं यज्ञेनं तिष्ठति॥ (४५)

प्रतिष्ठामंह्रुदस्तुं विद्युतंं वस्नतम्वेन्द्रंस्याऽष्टात्रि रंशच॥——

[88]

इन्ह्रं वो विश्वतस्पिर् हवांमहे जनेंभ्यः। अस्माकंमस्तु केवंलः॥ इन्द्रं नरों नेमिधिता हवन्ते यत्पार्या युनजंते धियस्ताः। शूरो नृषांता शवंसश्चकान आ गोमंति व्रजे भंजा त्वं नः॥ इन्द्रियाणि शतऋतो या ते जनेषु पश्चस्रं। इन्द्र् तानि त आ वृंणे॥ अनुं ते दािय मह इन्द्रियायं स्त्रा ते विश्वमनुं वृत्रहत्यें। अनुं (४६)

क्षुत्रमनु सहीं यज्ञत्रेन्द्रं देवेभिरनुं ते नृषह्यें॥ आ यस्मिन्थ्सप्त वांस्वास्तिष्ठंन्ति स्वारुहों यथा। ऋषिंर्ह दीर्घृश्रुत्तंम् इन्द्रंस्य घुमीं अतिंथिः॥ आमासुं पृक्कमैरंय आ सूर्यर् रोहयो दिवि। घुम न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे गिरंः॥ इन्द्रमिद्गाथिनों बृहदिन्द्रंमुर्केभिर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ गायंन्ति त्वा गायत्रिणो- (४७)

र्चन्त्यर्कमिकिणः। ब्रह्माणंस्त्वा शतऋत्वुह्यःशिव येमिरे॥ अः होमुचे प्र भेरेमा मनीषामीषिष्ठदाव्ने सुमृतिं गृंणानाः। इदिमेन्द्र प्रतिं हृव्यं गृंभाय सृत्याः सन्तु यर्जमानस्य कामाः॥ विवेष यन्मां धिषणां ज्जान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नंः। अः हंसो यत्रं पीपर्द्यथां नो नावेव यान्तंमुभये हवन्ते॥ प्र

सम्राजं प्रथममध्वराणां- (४८)

मश्होमुर्चं वृष्भं यज्ञियांनाम्। अपां नपांतमिश्वना हयंन्तमस्मिन्नर इन्द्रियं धंत्तमोजः॥ वि नं इन्द्र मृधों जिहि नीचा यंच्छ पृतन्यतः। अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माश् अभिदासंति॥ इन्द्रं क्षत्रम्भि वाममोजोऽजांयथा वृषभ चर्षणीनाम्। अपांनुदो जनमित्रयन्तंमुरुं देवेभ्यों अकृणोरु लोकम्॥ मृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः परावत - (४९)

आ जंगामा परंस्याः। सृक स् स्शायं प्विमिन्द्र तिग्मं वि शत्रूँन् तािढ वि मृधो नुदस्व॥ वि शत्रून् वि मृधो नुद वि वृत्रस्य हनूं रुज। वि मृन्युमिन्द्र भािम्तोऽमित्रंस्याभिदासंतः॥ त्रातार्मिन्द्रंमवितार्मिन्द्र हवेहवे सुहव शूर्मिन्द्रम्। हुवे नु श्त्रं पुरुह्तिमिन्द्र स्वस्ति नो मृघवां धात्विन्द्रंः॥ मा ते अस्या (५०)

संहसावन् परिष्टाव्घायं भूम हरिवः परादै। त्रायंस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तवं प्रियासंः सूरिषुं स्याम॥ अनंवस्ते रथमश्वाय तक्ष्मन् त्वष्टा वर्ज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्। ब्रह्माण् इन्द्रं महयंन्तो अर्केरवर्धयन्नहंये हन्तवा उं॥ वृष्णे यत् ते वृषंणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावांणो अदितिः स्जोषाः। अनुश्वासो ये प्वयोऽर्था इन्द्रेषिता अभ्यवंर्तन्त दस्यून्॥ (५१)

वृत्रहत्येऽन् गायत्रिणोंऽध्वराणां परावतोऽस्यामृष्टाचंत्वारि १शच॥———[१२]

॥सप्तमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे सप्तमः प्रश्नः॥

पाक्यज्ञं वा अन्वाहिताग्नेः पृशव उपं तिष्ठन्त इडा खलु वै पांकयज्ञः सैषाऽन्त्रा प्रयाजान्याजान् यजंमानस्य लोके-ऽविहिता तामाँ हियमाणाम् भि मंत्रयेत सुरूपवर्षवर्ण एहीतिं पृशवो वा इडां पृशूनेवोपं ह्वयते यज्ञं वै देवा अदुंहन् यज्ञो-ऽसुंरा अदुहृत् तेऽसुंरा यज्ञदुंग्धाः परांऽभवन् यो वै यज्ञस्य दोहं विद्वान् (१)

यज्तेऽप्यन्यं यजंमानं दुहे सा में स्त्याऽऽशीर्स्य यज्ञस्यं भूयादित्यांहैष वे यज्ञस्य दोह्स्तेनैवेनं दुहे प्रता वे गौर्दुहे प्रत्तेडा यजंमानाय दुह एते वा इडांये स्तना इडोपंहूतेतिं वायुर्वथ्सो यर्रिह होतेडांमुपृह्वयंत तर्रिह यजंमानो होतांर्मीक्षंमाणो वायुं मनंसा ध्यायेन् (२) मात्रे वृथ्समुपावंसृजित् सर्वेण वै यज्ञेनं देवाः सुंवृगं लोकमायन् पाकयज्ञेन मनुरश्राम्यथ्सेडा मनुमुपावंतित् तान्देवासुरा व्यंह्वयन्त प्रतीचीं देवाः परांचीमसुंराः सा देवानुपावर्तत पृशवो वै तद्देवानंवृणत पृशवोऽसुंरानजहुर्यं कामयेतापृशुः स्यादिति परांचीं तस्येडामुपंह्वयेतापृशुरेव भंवति यं (३)

कामयेत पशुमान्थस्यादिति प्रतीचीं तस्येडामुपंह्रयेत पशुमानेव भंवति ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वा इडामुपंह्रयेत् य इडामुपहूयाऽऽत्मानमिडांयामुपह्रयेतेति सा नेः प्रिया सुप्रतूंर्तिर्म्घोनीत्याहेडांमेवोपहूयाऽऽत्मानमिडांयामुपं ह्रयते व्यस्तमिव वा एतद्यज्ञस्य यदिडां सामि प्राश्वनितं (४)

सामि मौर्जयन्त एतत् प्रति वा असुराणां यज्ञो व्यक्छिद्यत् ब्रह्मणा देवाः समेदधुर्बृहुस्पतिंस्तनुतामिमं न् इत्यांह् ब्रह्म वे देवानां बृहुस्पतिर्ब्रह्मणेव यज्ञश् सन्देधाति विच्छिन्नं यज्ञश् सिममं देधात्वित्यांह् सन्तंत्यै विश्वे देवा इह मादयन्तामित्यांह सन्तत्यैव यज्ञं देवेभ्योऽन् दिशति यां वै (५) यज्ञे दक्षिणां ददांति तामंस्य प्रावोऽनु सङ्कांमन्ति स एष ईंजानोऽप्राभावंको यजंमानेन खलु वै तत्कार्यमित्यांहुर्यथां देवत्रा दत्तं कुंर्वीताऽऽत्मन् प्रान् रमयेतेति ब्रध्न पिन्वस्वेत्यांह यज्ञो वै ब्रध्नो यज्ञमेव तन्मंहयत्यथों देवत्रेव दत्तं कुंरुत आत्मन् प्रान् रमयते ददंतो मे मा क्षायीत्याहाक्षितिमेवोपैति कुर्वतो मे मोपं दस्दित्यांह भूमानंमेवोपैति॥ (६)

विद्वान्थ्यांये द्यं प्राश्ञन्ति यां वै म् एकान्नवि शितिश्चं॥———[१]

सङ्श्रंवा ह सौवर्चन्सस्तुमिंञ्जमौपोंदितिमुवाच् यथ्मत्रिणा् होताऽभूः कामिडामुपाँह्वथा इति तामुपाँह्व इति होवाच् या प्राणेनं देवान् दाधारं व्यानेनं मनुष्यांनपानेनं पितृनितिं छिनत्ति सा न छिनत्ती (३) इतिं छिनत्तीतिं होवाच् शरींरं वा अंस्यै तदुपाँह्वथा इतिं होवाच् गौर्वा - (७)

अंस्यै शरीरं गां वाव तौ तत्पर्यवदतां या यज्ञे दीयते सा प्राणेनं देवान् दांधार् ययां मनुष्यां जीवंन्ति सा व्यानेनं मनुष्यान् यां पितृभ्यो घ्रन्ति साऽपानेनं पितृन् य एवं वेदं पशुमान् भंवत्यथ् वै तामुपाँह्व इति होवाच् या प्रजाः प्रभवंन्तीः प्रत्याभवतीत्यन्नं वा अंस्यै त- (८) दुपाँह्वथा इति होवाचौषंधयो वा अस्या अन्नमोषंधयो वे प्रजाः प्रभवन्तीः प्रत्या भवन्ति य एवं वेदाँन्नादो भवत्यथ् वे तामुपाँह्व इति होवाच् या प्रजाः पर्मिवन्तीरन्गृह्णाति प्रत्याभवन्तीर्गृह्णातीति प्रतिष्ठां वा अस्यै तदुपाँह्वथा इति होवाचेयं वा अस्यै प्रतिष्ठे- (९)

-यं वै प्रजाः पंराभवंन्तीरनंगृह्णाति प्रत्याभवंन्तीर्गृह्णाति य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठत्यथ् वै तामुपाँह् इति होवाच् यस्यै निक्रमणे घृतं प्रजाः स्ञीवंन्तीः पिबन्तीति छिनति सा न छिन्ती (३) इति न छिन्तीति होवाच् प्र तु जनयतीत्येष वा इडामुपाँह्थया इति होवाच् वृष्टिर्वा इडा वृष्ट्ये वै निक्रमणे घृतं प्रजाः स्ञीवंन्तीः पिबन्ति य एवं वेद प्रैव जांयतेऽन्नादो भवति॥ (१०)

गौर्वा अंस्यै तत् प्रंतिष्ठाऽह्वंथा इतिं वि॰श्तिश्चं॥-----[२]

प्रोक्षं वा अन्ये देवा इज्यन्तें प्रत्यक्षंमन्ये यद्यजंते य एव देवाः प्रोक्षंमिज्यन्ते तानेव तद्यंजित यदंन्वाहार्यमाहरंत्येते वै देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणास्तानेव तेनं प्रीणात्यथो दक्षिणैवास्यैषाऽथों यज्ञस्यैव छिद्रमिं दधाति यद्वै यज्ञस्यं कूरं यद्विलिष्टं तदंन्वाहार्येणा- (११)

न्वाहंरित तदंन्वाहार्यस्यान्वाहार्यत्वं देवदूता वा एते यद्दिनो यदंन्वाहार्यमाहरित देवदूतानेव प्रीणाति प्रजापंतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिश्रथ्स रिरिचानोऽमन्यत् स एतमंन्वाहार्यमभंक्तमपश्यत् तमात्मन्नंधत्त स वा एष प्रांजापत्यो यदंन्वाहार्यो यस्यैवं विदुषौऽन्वाहार्यं आह्रियते साक्षादेव प्रजापंतिमृभ्रोत्यपंरिमितो निरुप्योऽपंरिमितः प्रजापंतिः प्रजापंते- (१२)

राह्ये देवा वै यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा एतं प्रांजापत्यमंन्वाहार्यमपश्यन् तम्नवाहंरन्त् ततो देवा अभवन् परासुंरा यस्यैवं विदुषोंऽन्वाहार्य आह्रियते भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंव्यो भवति यज्ञेन वा इष्टी पक्केनं पूर्ती यस्यैवं विदुषोंऽन्वाहार्य आह्रियते स त्वेवष्टांपूर्ती प्रजापंतेर्भागों-ऽसी- (३)

त्यांह प्रजापंतिमेव भांगुधेयेंन समंध्यत्यूर्जस्वान् पर्यस्वानित्याहोर्जमेवास्मिन् पर्यो दधाति प्राणापानौ में पाहि समानव्यानौ में पाहीत्यांहाऽऽशिषंमेवेतामा शास्ते-ऽक्षिंतोऽस्यक्षिंत्यै त्वा मा में क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिं ह्याँक इत्यांह क्षीयंते वा अमुष्मि ह्याँकेऽन्नं मितः प्रदान् इ ह्यं मुष्मिं ह्याँके प्रजा उपजीवंन्ति यदेवमं भिमृशत्यिक्षं तिमेवेनं द्रमयित नास्यामुष्मिं ह्याँकेऽन्नं क्षीयते॥ (१४)

अन्बाहार्येण प्रजापंतरिस् हांमुष्मिल्लांके पश्चंदश च॥———[३]
बुर्हिषोऽहं देवयुज्ययाँ प्रजावाँन् भूयास्मित्यांह
बुर्हिषा वै प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् तेनैव प्रजाः सृंजते
नराश १ संस्याहं देवयुज्ययां पशुमान् भूयास्मित्यांह

नराशश्सस्याह दवयज्यया पशुमान् भूयासामत्याह् नराशश्सेन वै प्रजापितः पशूनंसृजत् तेनैव पशून्थ्सृंजते-ऽग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेनं प्रतिष्ठां गमेयमित्याहाऽऽयुरेवात्मन् धंत्ते प्रतिं यज्ञेनं तिष्ठति दर्शपूर्णमासयोर्- (१५)

र्वे देवा उज्जितिमनूर्यंजयन् दर्शपूर्णमासाभ्यामसुंरानपां-नुदन्ताग्नेर्हमुज्जितिमनूज्जेषिमित्यांह दर्शपूर्णमासयोरेव देवतानां यज्जमान् उज्जितिमनूज्जयित दर्शपूर्णमासाभ्यां भ्रातृंव्यानपं नुदते वाज्ञंवतीभ्यां व्यूहृत्यन्नं वै वाजोऽन्नमेवावं- रुन्थे द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै यो वै यज्ञस्य द्वौ दोहौं विद्वान् यर्जत उभयतं - (१६)

पुव यृज्ञं दुंहे पुरस्तौचोपिरेष्टाचैष वा अन्यो यृज्ञस्य दोह् इडायामन्यो यर्हि होता यर्जमानस्य नामं गृह्णीयात् तर्हि ब्रूयादेमा अंग्मन्नाशिषो दोहंकामा इति सङ्स्तुंता पुव देवतां दुहेऽथो उभ्यतं पुव यृज्ञं दुंहे पुरस्तौचोपिरेष्टाच् रोहिंतेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयत्वित्यांहैते वै देवाश्वा - (१७)

यजंमानः प्रस्तरो यदेतेः प्रंस्तरं प्रहरंति देवाश्वेरेव यजंमानः सुवर्गं लोकं गमयित वि ते मुश्रामि रशना वि रश्मीनित्यांहैष वा अग्नेर्विमोकस्तेनैवेनं वि मुश्रिति विष्णोः शंयोरहं देवयुज्ययां यज्ञेनं प्रतिष्ठां गमेयमित्यांह यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञ एवान्ततः प्रतिं तिष्ठति सोमंस्याहं देवयुज्ययां सुरेता - (१८)

रेतों धिषीयत्यांह् सोमो वै रेतोधास्तेनैव रेतं आत्मन् धंत्ते त्वष्टुंरहं देवयुज्ययां पशूनाः रूपं पुंषेयमित्यांह् त्वष्टा वै पंशूनां मिथुनानाः रूपकृत्तेनैव पंशूनाः रूपमात्मन् धंत्ते देवानां पत्नीर्ग्निर्गृहपंतिर्यज्ञस्यं मिथुनं तयोर्हं देवयुज्ययां मिथुनेन् प्र भूयास्मित्यांहैतस्माद्वे मिथुनात्प्रजापंतिर्मिथुनेन् (१९)

प्राजायत् तस्मादेव यजमानो मिथुनेन प्र जायते वेदो-ऽसि वित्तिरसि विदेयत्यांह वेदेन वै देवा असुंराणां वित्तं वेद्यमिवन्दन्त तद्वेदस्यं वेदत्वं यद्यद् भ्रातृंव्यस्याभिध्यायेत् तस्य नामं गृह्णीयात् तदेवास्य सर्वं वृङ्के घृतवंन्तं कुलायिन र रायस्पोष सहस्रिणं वेदो दंदातु वाजिन्मित्यांह प्र सहस्रं पश्नांप्रोत्यास्यं प्रजायां वाजी जांयते य एवं वेदं॥ (२०)

दुर्शपूर्णमासयोरुभ्यतो देवाश्वाः सुरेताः प्रजापंतिर्मिथुनेनांऽऽप्रोत्यष्टो चं॥——[४] ध्रुवां वै रिच्यंमानां यज्ञोऽनुं रिच्यते यज्ञं यजमानो यज्ञोमानं प्रजा ध्रुवामाप्यायमानां यज्ञोऽन्वा प्यायते यज्ञं

यर्जमानो यर्जमानं प्रजा आ प्यायतां ध्रुवा घृतेनेत्याह ध्रुवामेवाऽऽप्याययित तामाप्यायमानां यज्ञोऽन्वा प्यायते यज्ञं यर्जमानो यर्जमानं प्रजाः प्रजापंतिर्विभान्नामं लोकस्तस्मिई स्त्वा दधामि सह यर्जमानेने- (२१)

त्यांहायं वै प्रजापंतेर्विभान्नामं लोकस्तस्मिन्नेवैनं दधाति सह यजमानेन रिच्यंत इव वा एतद्यद्यजंते यद्यंजमानभागं प्राश्ञात्यात्मानंमेव प्रीणात्येतावान् वै यज्ञो यावान् यजमानभागो यज्ञो यजमानो यद्यंजमानभागं प्राश्ञातिं यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयत्येतद्वे सूयवंस् सोदंकं यद्वर्हिश्चाऽऽपंश्चेतद् (२२)

यजंमानस्याऽऽयतंनं यद्वेदिर्यत् पूँर्णपात्रमंन्तर्वेदि निनयंति स्व एवाऽऽयतंने सूयवंस् सोदंकं कुरुते सदंसि सन्में भूया इत्याहाऽऽपो वै यज्ञ आपोऽमृतं यज्ञमेवामृतंमात्मन्थंत्ते सर्वाणि वै भूतानि व्रतमुंपयन्तमनूपं यन्ति प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्तामित्यांहैष वै दंर्शपूर्णमासयोरवभृथो (२३)

यान्येवेनं भूतानि व्रतमुंप्यन्तंमनूप्यन्ति तैरेव सहावंभृथमवैति विष्णुंमुखा वे देवाश्छन्दोंभिरिमाल्लोंकानंनप-जय्यम्भ्यंजयन् यिद्वंष्णुक्रमान् क्रमंते विष्णुरेव भूत्वा यजमान्श्छन्दोभिरिमाल्लोंकानंनपज्य्यम्भि जंयित विष्णोः क्रमोंऽस्यभिमातिहेत्यांह गायत्री वे पृथिवी त्रैष्टुंभम्नत्तिरेक्षं जागंती द्यौरानुंष्टुभीर्दिश्श्छन्दोभिरेवेमाल्लोंकान् यंथापूर्वम्भि जंयति॥ (२४)

इत्येतदंवभृथो दिशंः सप्त चं॥------[५]

अर्गन्म सुवः सुवंरग्नमेत्यांह सुवर्गमेव लोकमेति सन्दर्शस्ते मा छिथ्सि यत्ते तपस्तस्मै ते मा वृक्षीत्यांह यथायजुरेवैतथ्सुभूरसि श्रेष्ठों रश्मीनामायुर्धा अस्यायुंमें धेहीत्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शांसते प्र वा एषोंऽस्माल्लोकाच्यंवते यो (२५)

विष्णुक्रमान् क्रमंते सुवर्गाय हि लोकायं विष्णुक्रमाः क्रम्यन्ते ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै विष्णुक्रमान् क्रमेत् य इमाल्लाँकान् भ्रातृंव्यस्य संविद्य पुनिर्मि लोकं प्रत्यवरोहेदित्येष वा अस्य लोकस्यं प्रत्यवरोहो यदाहेदमहमम् भ्रातृंव्यमाभ्यो दिग्भ्यौंऽस्यै दिव इतीमानेव लोकान्भ्रातृंव्यस्य संविद्य पुनिर्मे लोकं प्रत्यवरोहित सं (२६)

ज्योतिषाऽभूवमित्यांहास्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठत्यैन्द्रीमा-वृतंमन्वावंर्त इत्यांहासौ वा आंदित्य इन्द्रस्तस्यैवाऽऽ-वृत्मनुं पूर्यावंर्तते दक्षिणा पूर्यावंर्तते स्वमेव वीर्यमनुं पूर्यावंतिते तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनों वीर्यावत्तरोऽथों आदित्यस्यैवाऽऽवृत्मन् पूर्यावंतिते समृहं प्रजया सं मया प्रजेत्याहाऽऽशिषं- (२७)

मेवैतामा शाँस्ते समिद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासमित्यांह यथायजुरेवैतद्वसुंमान् यज्ञो वसीयान् भूयासमित्यांहाऽऽशिषंमेवैतामा शाँस्ते बहु वै गार्हंपत्यस्यान्ते मिश्रमिव चर्यत आग्निपावमानीभ्यां गार्हंपत्यमुपं तिष्ठते पुनात्येवाग्निं पुनीत आत्मानं द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या अग्ने गृहपत इत्यांह (२८)

यथायजुरेवैतच्छ्त १ हिमा इत्यांह शृतं त्वां हेम्न्तानिन्धिषीयेति वावैतदांह पुत्रस्य नामं गृह्णात्यन्नादमेवैनं करोति तामाशिषमा शांसे तन्तंवे ज्योतिष्मतीमितिं ब्रूयाद्यस्यं पुत्रोऽजांतः स्यात् तेज्रस्येवास्यं ब्रह्मवर्चसी पुत्रो जांयते तामाशिषमा शांसेऽमुष्मे ज्योतिष्मतीमितिं ब्रूयाद्यस्यं पुत्रो (२९)

जातः स्यात् तेजं एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं देधाति यो वै युज्ञं प्रयुज्य न विमुश्चत्यंप्रतिष्ठानो वै स भवति कस्त्वां युनक्ति स त्वा वि मुंश्चित्यांह प्रजापंतिर्वे कः प्रजापंतिरैवेनं युनिक्तं प्रजापंतिना वि मुंश्चित् प्रतिष्ठित्या ईश्वरं वै व्रतमविंसृष्टं प्रदहोऽग्ने व्रतपते व्रतमंचारिषमित्यांह व्रतमेव (३०)

वि सृंजते शान्त्या अप्रदाहाय पराङ् वाव यज्ञ एंति न नि वंतिते पुनर्यो वै यज्ञस्यं पुनरालम्भं विद्वान् यजेते तम्भि नि वंतिते यज्ञो बंभूव स आ बंभूवेत्यांहैष वै यज्ञस्यं पुनरालम्भस्तेनैवेनं पुनरालंभतेऽनंवरुद्धा वा एतस्यं विराड्य आहिंताग्निः सन्नंस्भः पृशवः खलु वै ब्राँह्मणस्यं स्भेष्ट्वा प्राङ्क्त्रम्यं ब्रूयाद्गोमार्थं अग्नेऽविंमार्थं अश्वी यज्ञ इत्यवं स्भार रुन्धे प्र सहस्रं पृशूनांप्रोत्यास्यं प्रजायां वाजी जांयते॥ (३१)

यः स माशिषं गृहपत् इत्यांह् यस्यं पुत्रो वृतमेव खतु वे चतुर्विश्वातिश्वा—[६] देवं सिवतः प्रसुंव युज्ञं प्रसुंव युज्ञंपितं भगांय दिव्यो गंन्ध्र्वः। केत्पूः केतं नः पुनातु वाचस्पित्वाचंम् स्वंदाित नः॥ इन्द्रंस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वंध्यात्॥ वार्जस्य नु प्रंस्वे मातरं महीमिदितिं नाम वर्चसा करामहे। यस्यांमिदं विश्वं भुवंनमाविवेश तस्यां नो देवः संविता धर्म

साविषत्॥ अ- (३२)

अफ्सु न्यङ्को पश्चंदश च॥

पस्वंन्तर्मृतंम्पस् भेषुजम्पामुत प्रशंस्तिष्वश्वां भवथ वाजिनः॥ वायुर्वां त्वा मनुंर्वा त्वा गन्धर्वाः सप्तवि ५ शतिः। ते अग्रे अर्श्वमायुञ्जन्ते अस्मिञ्जवमाद्धः॥ अपां नपादाशुहेमन् य ऊर्मिः ककुद्मान् प्रतूर्तिर्वाजसातंमस्तेनायं वाजर् सेत्॥ विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमंसि विष्णोर्विक्रान्तमस्यङ्कौ न्युङ्काव्भितो रथं यौ ध्वान्तं वाताग्रमन् सञ्चरन्तौ दूरेहेंतिरिन्द्रियावांन्पतत्री ते नोऽग्नयः पप्रंयः पारयन्तु॥ (३३)

देवस्याह संवितुः प्रंसवे बृहस्पतिना वाजजिता वाजं जेषं देवस्याहर संवितुः प्रंसवे बृहस्पतिना वाज्जिता

वर्षिष्ठं नाक ५ रुहेयमिन्द्रांय वार्चं वदतेन्द्रं वार्जं जापयतेन्द्रो वार्जमजयित्। अश्वांजिन वार्जिन वार्जेष् वाजिनीवत्यश्वांन्थ्समथ्स्ं वाजय॥ अर्वाऽसि सप्तिंरसि वाज्यंसि वाजिंनो वाजं धावत मरुतां प्रसवे जंयत वि योजंना मिमीध्वमध्वंनः स्कभ्रीत (३४)

काष्ठां गच्छत वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा

अमृता ऋतज्ञाः॥ अस्य मध्यः पिबत मादयंध्वं तृप्ता यांत पृथिभिर्देवयानैः॥ ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वं शृण्वन्तु वाजिनः॥ मितद्रंवः सहस्रसा मेधसांता सिन्ध्यवंः। महो ये रत्नः सिम्थेषुं जिभिरे शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु॥ देवतांता मितद्रंवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽहिं वृक्ः रक्षाः सि सनैम्यस्मद्यंयवन्न- (३५)

मीवाः॥ एष स्य वाजी क्षिपणिं तुंरण्यति ग्रीवायां व्द्वो अपिकक्ष आसिनं। ऋतुं दिधिका अनुं सन्तवीत्वत् प्थामङ्काङ्स्यन्वापनीफणत्॥ उत स्मास्य द्रवंतस्तुरण्यतः पूर्णं न वेरनुं वाति प्रगर्धिनः। श्येनस्येव प्रजंतो अङ्कसं परिं दिधिकाळणेः सहोर्जा तरित्रतः॥ आ मा वार्जस्य प्रस्वो जंगम्यादा द्यावांपृथिवी विश्वशंम्भू। आ मां गन्तां पितरां (३६)

मातरा चाऽऽमा सोमों अमृतत्वायं गम्यात्॥ वार्जिनो वाजजितो वाजर्र सिर्ष्यन्तो वाजं जेष्यन्तो बृह्स्पतैर्भागमवं जिघ्रत वार्जिनो वाजजितो वाजर्र ससृवारसो वाजं जिगिवारसो बृह्स्पतैर्भागे नि मृंद्विमियं वः सा सत्या सन्धाऽभूद्यामिन्द्रेण समधेष्वमजीजिपत वनस्पतय इन्द्रं वाजुं विमुच्यध्वम्॥ (३७)

स्कभीत युयवन्पितरा द्विचंत्वारि श्रम् ॥————[८]

क्षत्रस्योल्बंमिस क्षत्रस्य योनिंरिस् जाय एिं सुवो रोहांव रोहांव हि सुवंरहं नांवुभयोः सुवो रोक्ष्यामि वाजंश्च प्रस्वश्चांपिजश्च क्रतुंश्च सुवंश्च मूर्धा च व्यश्चिंयश्चाऽ-ऽन्त्यायनश्चान्त्यंश्च भौवनश्च भुवंनुश्चाधिपतिश्च। आयुंर्यज्ञेनं कल्पतां प्राणो यज्ञेनं कल्पतामपानो - (३८)

युज्ञेनं कल्पतां व्याना युज्ञेनं कल्पतां चक्षुंर्यज्ञेनं कल्पतां श्रोत्रं युज्ञेनं कल्पतां मनो युज्ञेनं कल्पतां वाग्यज्ञेनं कल्पतामात्मा युज्ञेनं कल्पतां युज्ञा युज्ञेनं कल्पतां युज्ञा युज्ञेनं कल्पतां सुर्वर्देवाः अंगन्मामृतां अभूम प्रजापतेः प्रजा अंभूम समहं प्रजया सं मयां प्रजा समहः रायस्पोषंण सं मयां रायस्पोषोऽन्नांय त्वाऽन्नाद्यांय त्वा वाजांय त्वा वाजजित्यायैं त्वाऽमृतंमसि पृष्टिंरसि प्रजनंनमसि॥ (३९)

अपानो वाजांय नवं च॥———[९]

वार्जस्येमं प्रस्वः सुषुवे अग्रे सोम् र राजान्मोषंधीष्वपसु।

ता अस्मभ्यं मधुंमतीर्भवन्तु वय र राष्ट्रे जांग्रियाम पुरोहिंताः॥ वार्जस्येदं प्रस्व आ बंभूवेमा च विश्वा भुवंनानि सर्वतः। स विराजं पर्येति प्रजानन् प्रजां पुष्टिं वर्धयंमानो अस्मे॥ वार्जस्येमां प्रसुवः शिश्रिये दिवंमिमा च विश्वा भुवंनानि सम्राट्। अदिथ्सन्तं दापयतु प्रजानन् रियं (४०)

चं नः सर्ववीरां नि यंच्छतु॥ अग्ने अच्छां वदेह नः प्रतिं नः सुमनां भव। प्र णों यच्छ भुवस्पते धनदा असि नस्त्वम्॥ प्र णों यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः। प्र देवाः प्रोत सूनृता प्र वाग्देवी दंदातु नः॥ अर्युमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानांय चोदय। वाचं विष्णु ५ सरम्वती ५ सवितारं (४१)

च वाजिनम्॥ सोम राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे। आदित्यान् विष्णु ५ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥ देवस्यं त्वा सवितुः प्रस्वें ऽश्विनों ब्र्हिभ्यां पूष्णो हस्ताभ्या । सर्स्वत्ये वाचो यन्तुर्यन्नेणाग्नेस्त्वा साम्राज्येनाभिषिश्चामीन्द्रंस्य बृहस्पतें स्त्वा साम्रां ज्येनाभिषिश्चामि॥ (४२)

र्यि संवितार् षद्गि र्शच॥

अग्निरेकां क्षरेण वाचमुदंजयद्श्विनौ द्यंक्षरेण प्राणापाना-

अज्युत् षद्गंत्वारि १शच

वृदंजयतां विष्णुस्र्यंक्षरेण त्रील्लाँकानुदंजयथ्सोम्श्चतुंरक्षरेण् चतुंष्पदः पृश्चनुदंजयत् पूषा पश्चौक्षरेण पृङ्किमुदंजयद्धाता षडंक्षरेण षडृतूनुदंजयन्म्रुतः सप्ताक्षरेण सप्तपंदा श् शक्वरीमुदंजयन् बृह्स्पतिर्ष्टाक्षरेण गायत्रीमुदंजयन्मित्रो नवाँक्षरेण त्रिवृत् स्तोममुदंजय- (४३)

द्वर्रणो दशाँक्षरेण विराज्ञमुदंजयदिन्द्र एकांदशाक्षरेण त्रिष्टुभृमुदंजयद् विश्वं देवा द्वादंशाक्षरेण जगंतीमुदंजयन् वसंवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशङ्स्तोम्मुदंजयन् रुद्राश्चतुंर्दशा-क्षरेण चतुर्दशङ् स्तोम्मुदंजयन्नादित्याः पश्चंदशाक्षरेण पश्चदशङ् स्तोम्मुदंजयन्नदितिः षोडंशाक्षरेण षोड्शङ् स्तोम्मुदंजयत् प्रजापंतिः सप्तदंशाक्षरेण सप्तदशङ् स्तोम्मुदंजयत्॥ (४४)

उपयामगृंहीतोऽसि नृषदंं त्वा द्रुषदंं भुवन्सद्मिन्द्रांय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनि्रिन्द्रांय त्वोपयामगृंहीतो-

ऽस्यप्सुषदं त्वा घृत्सदं व्योम्सद्मिन्द्रांय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्रांय त्वोपयामगृहीतोऽसि पृथिविषदं त्वा- ऽन्तिरिक्ष्मसदं नाक्सद्मिन्द्रांय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्रांय त्वा॥ ये ग्रहाः पश्चज्नीना येषां तिस्रः पंरम्जाः। दैव्यः कोशः - (४५)

समृंजितः। तेषां विशिंप्रियाणामिष्मूर्ज्र समंग्रभीमेष ते योनिरिन्द्रांय त्वा॥ अपार रस्मुद्वंयस्र सूर्यरिश्मर समार्भृतम्। अपार रसंस्य यो रस्स्तं वो गृह्णाम्युत्तममेष ते योनिरिन्द्रांय त्वा॥ अया विष्ठा जनयन्कर्वराणि स हि घृणिरुरुवरांय गातुः। स प्रत्युदैंद्धरुणो मध्वो अग्र्ड् स्वायां यत्त्नुवां त्नूमैरंयत। उपयामगृंहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः प्रजापंतये त्वा॥ (४६)

अन्वह् मासा अन्विद्वनान्यन्वोषंधीरनु पर्वतासः। अन्विन्द्रभ् रोदंसी वावशाने अन्वापो अजिहत् जायंमानम्॥ अनुं ते दायि मह इंन्द्रियायं सूत्रा ते विश्वमनुं वृत्रहत्ये। अनुं क्षृत्रमनु सहो यज्त्रेन्द्रं देवेभि्रनुं ते नृषह्ये॥ इन्द्राणीमासु नारिषु सुपत्नीमहमंश्रवम्। न ह्यंस्या अप्रंचन जरसा (४७)

मरंते पतिः॥ नाहिमेन्द्राणि रारण् सख्युंर्वृषाकंपेर् ऋते। यस्येदमप्य हिवः प्रियं देवेषु गच्छंति॥ यो जात एव प्रथमो मनंस्वान् देवो देवान् ऋतुंना पर्यभूषत्। यस्य शुष्माद्रोदंसी अभ्यंसेतां नृम्णस्यं मृहा स जनास् इन्द्रः॥ आ ते मृह इंन्द्रोत्युंग्र समन्यवो यथ्समरंन्त सेनाः। पतांति दिद्यन्नर्यंस्य बाहुवोर्मा ते (४८)

मनों विष्वद्रियग्विचांरीत्॥ मा नों मधींरा भंरा दृद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातंवे भूरि यत् तें। नव्ये देष्णे शुस्ते अस्मिन् तं उक्थे प्र ब्रंवाम व्यमिन्द्र स्तुवन्तः॥ आ तू भंर माकिरेतत् परिष्ठाद्विद्या हि त्वा वस्पितिं वसूनाम्। इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धंर्यश्व (४९)

प्र यंन्धि॥ प्रदातार हिवामह् इन्द्रमा ह्विषां वयम्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाऽऽप्र यंच्छ् दक्षिणादोत स्व्यात्॥ प्रदाता वज्री वृष्भस्तुंराषाद्भुष्मी राजां वृत्रहा सोम्पावां। अस्मिन् यज्ञे ब्रहिष्या निषद्यार्था भव यज्ञंमानाय शं योः॥ इन्द्रंः सुत्रामा स्ववा अवोभिः सुमृडीको भंवतु विश्ववंदाः। बाधंतां द्वेषो अभंयं कृणोतु सुवीर्यस्य (५०) पतंयः स्याम॥ तस्यं वय र सुंमतौ यज्ञियस्यापिं भुद्रे सौंमन्से स्यांम। स सुत्रामा स्ववा र इन्द्रों अस्मे आराचिह्नेषंः सनुतर्युयोतु॥ रेवतींर्नः सधमाद इन्द्रें सन्तु तुविवांजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥ प्रो ष्वंस्मे पुरोर्थमिन्द्रांय शूषमंर्चत। अभीके चिद्र लोककृथ्सङ्गे स्मथ्सुं वृत्रहा। अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषांम्। ज्याका अधि धन्वंसु॥ (५१)

ज्रसा मा ते हर्यश्व सुवीर्यस्याध्येकं च॥———[१३]

॥ अष्टमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां प्रथमकाण्डे अष्टमः प्रश्नः॥

अनुंमत्यै पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपति धेनुर्दक्षिणा ये प्रत्यश्चः शम्यांया अवृशीयंन्ते तन्नैरंऋतमेकंकपालं कृष्णं वासंः कृष्णतूषं दक्षिणा वीह् स्वाहाऽऽहुंतिं जुषाण एष ते निर्ऋते भागो भूते ह्विष्मत्यिस मुश्चेमम॰हंसः स्वाहा नमो य इदं चुकारांऽऽदित्यं चुरुं निर्वपति वरो दक्षिणाऽ-ऽग्नावैष्णवमेकांदशकपालं वामनो वही दक्षिणाऽग्नीषोमीय-(१)

मेकांदशकपाल् हर्रण्यं दक्षिणेन्द्रमेकांदशकपालमृष्मो वही दक्षिणाऽऽग्नेयमृष्टाकपालमैन्द्रं दध्यृष्मो वही दक्षिणेन्द्राग्नं द्वादंशकपालं वैश्वदेवं च्रुं प्रथम्जो वृथ्सो दक्षिणा सौम्य इयांमाकं च्रुं वासो दक्षिणा सरंस्वत्यै च्रुं सरंस्वते च्रुं मिथुनौ गावौ दक्षिणा॥ (२)

अग्रोषोमीयं चर्तिस्शच॥——[१]
आग्नेयम्षाकपालं निर्वपति सौम्यं चुरु सावित्रं द्वादेश-

कपाल सारस्वतं चुरुं पौष्णं चुरुं मारुत सप्तर्कपालं वैश्वदेवीमामिक्षां द्यावापृथिव्यंमेकंकपालम्॥ (३)

आग्नेयम्ष्टादंश॥————[२]

ऐन्द्राग्नमेकांदशकपालं मारुतीमामिक्षां वारुणीमामिक्षां कायमेकंकपालं प्रघास्यान् हवामहे मुरुतां यज्ञवांहसः करम्भेणं स्जोषंसः॥ मो षू णं इन्द्र पृथ्सु देवास्तुं स्म ते शुष्मिन्नवया। मही ह्यंस्य मीदुषों यव्या। ह्विष्मंतो मुरुतो वन्दंते गीः॥ यद् ग्रामे यदर्गण्ये यथ्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यद्र्यं एनंश्चकुमा वयम्। यदेकस्याधि धर्मणि तस्यांवयजंनमिस स्वाहां॥ अऋन् कर्मं कर्म्कृतंः सह वाचा

मंयोभुवा॥ देवेभ्यः कर्म कृत्वाऽस्तं प्रेतं सुदानवः॥ (४)

वयं यद् वि^५शतिश्चं॥______[3

अग्नयेऽनींकवते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपति साकश् सूर्येणोद्यता मुरुद्धाः सान्तपनेभ्यों मुध्यन्दिने चुरुं मुरुद्धों गृहमेधिभ्यः सर्वांसां दुग्धे सायं चुरुं पूर्णा देविं परां पत् सुपूर्णा पुनरापंत। वुस्नेव वि कींणावहा इष्मूर्जर्श शतकतो॥ देहि मे दर्दांमि ते नि में धेहि नि ते दधे। निहार्मिन्नि में हरा निहारं (५)

नि हंरामि ते॥ मुरुद्धाः ऋीडिभ्यः पुरोडाशः स्प्रकंपालं निर्वपति साकः सूर्येणोद्यताग्नेयमृष्टा-कंपालं निर्वपति सौम्यं चुरुः सांवित्रं द्वादंशकपालः सारस्वतं चुरुं पौष्णं चुरुमैन्द्राग्नमेकांदशकपालमैन्द्रं चुरुं वैश्वकर्मणमेकंकपालम्॥ (६)

हुरा निहारं त्रिष्ट्शर्च॥———[४]

सोमांय पितृमते पुरोडाशृ षद्धपालं निर्वपति पितृभ्यों बर्हिषद्यों धानाः पितृभ्यों ऽग्निष्वात्तेभ्यों ऽभिवान्यांयै दुग्धे म्नथमेतत् तें तत् ये च त्वामन्वेतत् तें पितामह प्रपितामह् ये च त्वामन्वत्रं पितरो यथाभागं मेन्दध्व सस्मन्दशं त्वा व्यं मधंवन् मन्दिषीमहिं॥ प्र नूनं पूर्णवंन्धुरः स्तुतो यांसि वशा अनुं॥ योजा न्विन्द्र ते हरीं॥ (७)

अक्षन्नमीमदन्त ह्यवं प्रिया अंधूषत॥ अस्तोषत् स्वभानवो विष्रा नविष्ठया मृती॥ योजा न्विन्द्र ते हरी॥ अक्षेन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरोऽमीमृजन्त पितरंः॥ परेत पितरः सोम्या गम्भीरेः पृथिभिः पूर्वेः॥ अथां पितृन्थ्सुंविदत्रा अपीत यमेन् ये संधमादं मदन्ति॥ मनो न्वा हुंवामहे नाराश्र्सेन् स्तोमेन पितृणां च मन्मंभिः॥ आ (८)

नं एतु मनः पुनः ऋत्वे दक्षांय जीवसें॥ ज्योक् च सूर्यं हशे॥ पुनर्नः पितरो मनो ददांतु दैव्यो जनः॥ जीवं व्रातर्रं सचेमहि॥ यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिश्सिम॥ अग्निर्मा तस्मादेनंसो गार्हंपत्यः प्र मुंश्रतु दुरिता यानिं चकुम करोतु मामनेनसम्॥ (९)

हरी मन्मंभिरा चतुंश्चत्वारि शच। [५]

सुभेषजमिहि त्रीणिं च॥

प्रतिपूरुषमेकंकपालान्निवंपत्येक्मितिरक्तं यावंन्तो गृह्याः स्मस्तेभ्यः कर्मकरं पशूना । शर्मासि शर्म यजमानस्य शर्म मे यच्छैकं एव रुद्रो न द्वितीयांय तस्थ आखुस्ते रुद्र पशुस्तं र्जुषस्वैष ते रुद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया तं जुंषस्व भेषजं गवेऽश्वांय पुरुषाय भेषजमथों अस्मभ्यं भेषज ॰ स्भेषजं (१०)

यथाऽसंति॥ सुगं मेषायं मेष्यां अवाम्ब रुद्रमंदिमह्यवं देवं त्र्यम्बकम्॥ यथां नः श्रेयंसः कर्चथां नो वस्यंसः कर्चथां नः पशुमतः कर्द्यथां नो व्यवसाययात्॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगुन्धिं पृष्टिवर्धनम्॥ उर्वारुकिमेव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा-ऽमृतांत्॥ एष ते रुद्र भागस्तं जुंषस्व तेनांवसेनं परो मूर्जवतोऽतीह्यवंततधन्वा पिनांकहस्तः कृत्तिंवासाः॥ (११)

ऐन्द्राग्नं द्वादेशकपालं वैश्वदेवं चुरुमिन्द्रांय शुनासीराय

पुरोडाशुं द्वादेशकपालं वायुव्यं पर्यः सौर्यमेकंकपालं द्वादशगुव सीरं दक्षिणाऽऽभ्रेयमृष्टाकंपालं निर्वपति रौद्रं गांवीधुकं चुरुमैन्द्रं दिधं वारुणं यवमयं चुरुं वहिनीं धेनुर्दक्षिणा ये देवाः पुरःसदोऽग्निनैत्रा दक्षिण्सदो यमनैत्राः पश्चाथ्सदेः सवितृनैत्रा उत्तर्सदो वरुणनेत्रा उपरिषदो बृहस्पतिनेत्रा रक्षोहण्स्ते नेः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो (१२)

नमस्तेभ्यः स्वाहा समूंढ्र रक्षः सन्दंग्ध्र रक्षं इदम्हर रक्षोऽभि सं दंहाम्यग्नयं रक्षोघ्ने स्वाहां यमायं सिवत्रे वरुणाय बृह्स्पतंये दुवंस्वते रक्षोघ्ने स्वाहां प्रष्टिवाही रथो दक्षिणा देवस्यं त्वा सिवतुः प्रसवेंऽश्विनोंर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तांभ्यार रक्षंसो वधं जुहोमि हृतर रक्षोऽवंधिष्म रक्षो यद्वस्ते तद्दक्षिणा॥ (१३)

तेभ्यः पश्चंचत्वारि १शच॥———[9]

धात्रे पुरोडाशं द्वादेशकपालं निर्वपत्यनुमत्ये च्रु राकाये च्रु सिनीवाल्ये च्रुं कुहैं च्रुं मिंथुनो गावौ दक्षिणाऽ-ऽग्नावैष्णवमेकांदशकपालं निर्वपत्येन्द्रावैष्णवमेकांदशकपालं वैष्णवं त्रिकपालं वामनो वही दक्षिणाऽग्नीषोमीयमेकांदश-कपालं निर्वपतीन्द्रासोमीयमेकांदशकपाल सौम्यं च्रुं ब्रुदक्षिणा सोमापौष्णं च्रुं निर्वपत्येन्द्रापौष्णं च्रुं पौष्णं च्रुं श्यामो दक्षिणा वैश्वान्रं द्वादेशकपालं निर्वपति हिरंण्यं दक्षिणा वारुणं यंवमयं चुरुमश्वो दक्षिणा॥ (१४)

बार्हस्पत्यं च्रं निर्वपित ब्रह्मणों गृहे शितिपृष्ठो दक्षिणैन्द्रमेकांदशकपाल र राज्न्यंस्य गृह ऋष्मो दक्षिणा- ऽऽिदत्यं च्रं मिहेष्ये गृहे धेनुर्दक्षिणा नैर्ऋतं च्रं पिरवृत्त्ये गृहे कृष्णानां ब्रीहीणां न्खिनिर्मित्रं कृष्णा कूटा दक्षिणाऽऽग्रेयमृष्टाकपाल र सेनान्यों गृहे हिरंण्यं दक्षिणा वारुणं दश्किपाल स्तूतस्यं गृहे महानिरष्टो दक्षिणा मारुत र स्प्तकपाल ग्रामण्यों गृहे पृश्चिद्धिणा सावित्रं द्वादंशकपाल (१५)

क्षुत्तर्गृह उपध्वस्तो दक्षिणाऽऽश्विनं द्विकपाल संङ्ग्रहीतुर्गृहे संवात्यौ दक्षिणा पौष्णं चरुं भागदुघस्यं गृहे श्यामो दक्षिणा रौद्रं गांवीधुकं चरुमंक्षावापस्यं गृहे श्वल उद्वारो दक्षिणेन्द्रांय सुत्राम्णे पुरोडाशमेकांदशकपालं प्रति निर्वपतीन्द्रांया होमुचेऽयं नो राजां वृत्रहा राजां भूत्वा वृत्रं वंध्यान्मैत्राबार्हस्पत्यं भंवति श्वेतायै श्वेतवंथ्साय दुग्धे स्वयम्मूर्ते स्वयम्मिथत आज्य आश्वंत्थे (१६)

पात्रे चतुंःस्रक्तौ स्वयमवप्त्राये शाखांये कृणीं श्रा-कंणीं श्र्य तण्डुलान् वि चिनुयाद्ये कृणीः स पर्यसि बार्हस्पत्यो येऽकंणीः स आज्ये मैत्रः स्वंयं कृता वेदिर्भवति स्वयन्दिनं ब्रहिः स्वंयं कृत इध्मः सैव श्वेता श्वेतवंध्सा दक्षिणा॥ (१७)

सावित्रं द्वादंशकपालमाश्वंत्थे त्रयंस्रि १ शच॥————[९]

अग्नयें गृहपंतये पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपति कृष्णानां व्रीहीणाः सोमाय वनस्पतंये श्यामाकं च्रुः संवित्रे सत्यप्रंसवाय पुरोडाशं द्वादंशकपालमाशूनां व्रीहीणाः रुद्रायं पशुपतंये गावीधुकं च्रुं बृहस्पतंये वाचस्पतंये नैवारं च्रुमिन्द्रांय ज्येष्ठायं पुरोडाश्मेकांदशकपालं महाव्रीहीणां मित्रायं सत्यायाऽम्बानां च्रुं वर्रुणाय धर्मपतये यवमयं च्रुः संविता त्वां प्रस्वानाः स्वताम्ग्निर्गृहपंतीनाः सोमो वनस्पतीनाः रुद्रः पंशूनां (१८)

बृह्स्पतिंर्वाचामिन्द्रौं ज्येष्ठानौं मित्रः सत्यानां वर्रणो धर्मपतीनां ये देवा देवसुवः स्थ त इममांमुष्यायणमंनिम्त्रायं सुवध्वं मह्ते क्षुत्रायं मह्त आधिपत्याय मह्ते जानेराज्यायैष वो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना राजा प्रति त्यन्नामं राज्यमंधायि स्वां तनुवं वर्रुणो अशिश्रेच्छुचैर्मित्रस्य व्रत्यां अभूमामंन्मिह महुत ऋतस्य नाम सर्वे व्राता वर्रुणस्याभूवन्वि मित्र एवर्रातिमतारीदसूषुदन्त यज्ञियां ऋतेन व्यं त्रितो जरिमाणं न आनुइ विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमंसि विष्णोर्विकांन्तमसि॥ (१९)

पुशूनां ब्राताः पर्श्वविर्शतिश्च॥————[१०]

अर्थेतः स्थाऽपां पितरिस् वृषांस्यूर्मिर्वृषस्नोऽसि वृज्ञक्षितः स्थ मुरुतामोजः स्थ सूर्यवर्चसः स्थ सूर्यत्वचसः स्थ मान्दाः स्थ वाशाः स्थ शक्वरिः स्थ विश्वभृतः स्थ जन्भृतः स्थाऽप्रोस्तेज्ञस्याः स्थाऽपामोषधीनाः रसः स्थाऽपो देवीर्मधुंमतीरगृह्वन्नूर्जस्वती राज्ञसूर्याय चितानाः। याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिश्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातिः॥ राष्ट्रदाः स्थं राष्ट्रं देत्त स्वाहां राष्ट्रदाः स्थं राष्ट्रममुष्मे दत्त॥ (२०)

अत्येकांदश च॥———[११]

देवीरापः सं मधुंमतीर्मधुंमतीभिः सृज्यध्वं महि वर्चः

क्षृत्रियांय वन्वाना अनांधृष्टाः सीद्रतोर्जस्वतीमिह् वर्चः क्षृत्रियांय दर्धतीरिनंभृष्टमिस वाचो बन्धंस्तपोजाः सोमंस्य दात्रमंसि शुक्रा वंः शुक्रेणोत्पंनािम चन्द्राश्चन्द्रेणामृतां अमृतेन् स्वाहां राजसूयांय चितांनाः॥ सुधमादौ द्युम्निनीरूर्ज एता अनिंभृष्टा अपस्युवो वसांनः। पुस्त्यांसु चक्रे वर्रुणः सधस्थंमपा शिशुंर्- (२१)

मातृतंमास्वन्तः॥ क्षत्रस्योल्बंमिस क्षत्रस्य योनिर्स्यावित्रो अग्निर्गृहपंतिरावित्र इन्द्रो वृद्धश्रंवा आवित्रः पूषा विश्ववेदा आवित्रौ मित्रावरुणावृतावृधावावित्रे द्यावापृथिवी धृतव्रंते आवित्रा देव्यदितिर्विश्वरूप्यावित्रोऽयम्सावामुष्यायणौऽस्यां विश्यंस्मिन् राष्ट्रे मंहते क्षत्रायं महत आधिपत्याय महते जानंराज्यायैष वो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना र राजेन्द्रंस्य (२२)

वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वेध्याच्छत्रुबाधेनाः स्थ पात माँ प्रत्यश्चं पात मां तिर्यश्चंमन्वश्चं मा पात दिग्भ्यो मां पात विश्वाभयो मा नाष्ट्राभ्यः पात हिरंण्यवर्णावुषसाँ विरोकेऽयः स्थूणावुदितौ सूर्यस्याऽऽरोहतं वरुण मित्र गर्तं

ततंश्वक्षाथामदितिं दितिं च॥ (२३)

शिशुरिन्द्रस्यैकंचत्वारि १ शच॥ [१२]

स्मिध्मा तिष्ठ गायत्री त्वा छन्दंसामवतु त्रिवृथ्स्तोमो रथन्तर सामाग्निर्देवता ब्रह्म द्रविंणमुग्रामा तिष्ठ त्रिष्ठुप त्वा छन्दंसामवतु पश्चद्शः स्तोमो बृहथ्सामेन्द्रो देवता क्षत्रं द्रविंणं विराजमा तिष्ठ जगंती त्वा छन्दंसामवतु सप्तद्शः स्तोमो वैरूप साम मुरुतो देवता विङ्कृविंणमुदींचीमा तिष्ठानुष्ठुप् त्वा (२४)

छन्दंसामवत्वेकविष्शः स्तोमों वैराज सामं मित्रावर्रणो देवता बलं द्रविणमूर्ध्वामा तिष्ठ पङ्किस्त्वा छन्दंसामवतु त्रिणवत्रयस्त्रिष्शो स्तोमो शाक्तररेवते सामंनी बृह्स्पतिर्देवता वर्चो द्रविणमीदङ् चान्यादङ् चैतादङ् चं प्रतिदङ् चं मितश्च सम्मितश्च सभराः। शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मा इश्च सत्यश्चर्त्तपाश्चा- (२५)

त्य रहाः। अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहां सिवित्रे स्वाहा सर्रस्वत्ये स्वाहां पूष्णे स्वाहा बृह्स्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाऽ श्लोय स्वाहा भगाय स्वाहा क्षेत्रंस्य पतंये स्वाहां पृथिव्ये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहां दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहां चन्द्रमंसे स्वाहा नक्षंत्रेभ्यः स्वाहाऽद्धः स्वाहोषंधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहां चराचरेभ्यः स्वाहां परिप्रवेभ्यः स्वाहां सरीसृपेभ्यः स्वाहां॥ (२६)

अनुष्टुष्वंर्त्पाश्चं सरीसृपेभ्यः स्वाहाँ॥———[१३] सोमंस्य त्विषिरस्मि तवेव मे त्विषिर्भूयाद्मृतंमसि मृत्योर्मा पाहि दिद्योन्मां पाह्यवेष्टा दन्दशूका निरस्तं नमुंचेः शिरंः॥

पाहि दिद्योन्मां पाह्यवेष्टा दन्द्रशूका निरंस्तं नमुंचेः शिरंः॥ सोमो राजा वर्रुणो देवा धर्मसुवश्च ये। ते ते वाचर् सुवन्तां ते ते प्राणर स्वन्तां ते ते चक्षुः सुवन्तां ते ते श्रोत्रर्र सुवन्तार् सोमंस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिश्चाम्यग्ने- (२७)

स्तेजंसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रंस्येन्द्रियेणं मित्रावरुंणयोर्वीर्येण मुरुतामोर्जसा क्षुत्राणां क्षुत्रपंतिरस्यतिं दिवस्पांहि समावंवृत्रन्नधरागुदीचीरहिं बुध्रियमन् सुश्चरंन्तीस्ताः पर्वतस्य वृष्भस्यं पृष्ठे नावंश्चरन्ति स्वसिचं इयानाः॥ रुद्र यत्ते ऋयी परं नाम तस्में हुतमंसि यमेष्टंमसि। प्रजांपते न त्वदेतान्यन्यो विश्वां जातानि परि ता बंभूव। यत्कांमास्ते जुहुमस्तन्नों अस्तु वय स्यांम् पतंयो रयीणाम्॥ (२८)

अ्ग्रेस्तैकांदश च॥-----[१४]

इन्द्रंस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वंध्यान्मित्रावरुण-योस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषां युनज्मि यज्ञस्य योगेन विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमंसि विष्णोविक्रान्तमसि मुरुतां प्रस्वे जेषमाप्तं मनः सम्हमिन्द्रियेणं वीर्येण पश्नां मन्युरंसि तवेव मे मन्युर्भूयान्नमों मात्रे पृथिव्ये माऽहं मातरं पृथिवीश हिर्श्सिषं मा (२९)

मां माता पृथिवी हि सीदियंदस्यायुंरस्यायुंर्मे धेह्यर्गस्यूर्जं मे धेहि युड्डंसि वर्चोऽसि वर्चो मिये धेह्यग्नये गृहपंतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहेन्द्रंस्य बलाय स्वाहां मुरुतामोजंसे स्वाहां हु सः श्रुंचिषद्वसुंरन्तिरक्षसद्धोतां वेदिषदितिथिदुरोणसत्। नृषद्वंरसद्दंतसद्धोमसद्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (३०)

हि्रसिष् मर्त्जास्त्रीणि च॥————[१५]

मित्रों ऽसि वर्रणो ऽसि समहं विश्वेंद्वैः क्षत्रस्य नाभिरसि

क्षत्रस्य योनिरिस स्योनामा सींद सुषदामा सींद मा त्वां हिश्सीन्मा मां हिश्सीन्निषंसाद धृतव्रतो वरुंणः पुस्त्यांस्वा साम्रांज्याय सुऋतुर्ब्रह्मा(३)न् त्वश्रांजन् ब्रह्माऽसि सिवृता-ऽसि स्त्यसंवो ब्रह्मा(३)न् त्वश्रांजन् ब्रह्माऽसीन्द्रोंऽसि सत्यौजा (३१)

ब्रह्मा(३)न् त्व॰ रांजन् ब्रह्माऽसिं मित्रोंऽसि सुशेवो ब्रह्मा(३)न् त्व॰ रांजन् ब्रह्माऽसि वरुंणोऽसि सृत्यधर्मेन्द्रंस्य वज्रोंऽसि वार्त्रघृस्तेनं मे रध्य दिशोऽभ्यंय॰ राजां-ऽभूथ्सुश्लोकाँ(४) सुमंङ्गलाँ(४) सत्यंराजा(३)न्। अपां नन्ने स्वाहोर्जो नन्ने स्वाहाऽग्रयें गृहपंतये स्वाहाँ॥ (३२)

स्त्योजांश्चत्वारिर्श्यचं॥——[१६]

आग्नेयम्ष्टाकंपालं निर्वपित हिरंण्यं दक्षिणा सारस्वतं च्रं वंथ्मत्री दक्षिणा सावित्रं द्वादंशकपालम्पध्वस्तो दक्षिणा पौष्णं च्रु श्यामो दक्षिणा बार्हस्पत्यं च्रु शितिपृष्ठो दक्षिणेन्द्रमेकांदशकपालमृष्भो दक्षिणा वारुणं दशंकपालं महानिरष्टो दक्षिणा सौम्यं च्रुं बुभुदक्षिणा त्वाष्ट्रमृष्टाकंपाल श आुग्नेयं द्विचंत्वारि १ शत्॥

सारस्वतीरपो गृह्णाति॥ (३४)

शुण्ठो दक्षिणा वैष्णवं त्रिकपालं वामनो दक्षिणा॥ (३३)

सद्यो दींक्षयन्ति सद्यः सोमं क्रीणन्ति पुण्डिरस्रजां प्र यंच्छिति द्रशभिविथ्सत्रेः सोमं क्रीणाति दश्पेयो भवति श्वतं ब्राह्मणाः पिबन्ति सप्तद्शः स्तोत्रं भविति प्राकाशाविध्वर्यवे ददाति स्रजमुद्गात्रे रुकार होत्रे- ऽश्वं प्रस्तोतृप्रतिहृतृभ्यां द्वादंश पष्ठौहीर्ब्रह्मणे वृशां मैंत्रावरुणायंर्षमं ब्राह्मणाच्छुः सिने वासंसी नेष्टापोतृभ्याः स्थूरि यवाचितमंच्छावाकायानङ्वाहंमग्रीधे भार्गवो होतां

वार्वन्तीर्यं चत्वारिं च॥——[१८]

भवति श्रायन्तीयं ब्रह्मसामं भवति वारवन्तीयंमग्निष्टोमसाम ५

आश्चेयम्ष्टाकंपालं निर्वपित् हिरंण्यं दक्षिणेन्द्रमेकां-दशकपालमृष्भो दक्षिणा वैश्वदेवं चुरुं पिशङ्गी पष्टौही दक्षिणा मैत्रावरुणीमामिक्षां वृशा दक्षिणा बार्हस्पत्यं चुरु १ शितिपृष्ठो दक्षिणाऽऽदित्यां मुलुहां गुर्भिणीमा लेभते मारुतीं पृश्चिं पष्टौहीमृश्विभ्यां पूष्णे पुरोडाश्ं द्वादेशकपालं निर्वपित् सरंस्वते सत्यवाचे चुरु संवित्रे सत्यप्रंसवाय पुरोडाशं द्वादंशकपालं तिसृधन्व शृष्कदृतिर्दक्षिणा॥ (३५)

आुभ्रेय स्प्तर्चत्वारि श्रात्॥ [१९]

आग्नेयमृष्टाकंपालं निर्वपित सौम्यं चुरु सांवित्रं द्वादंशकपालं बार्हस्पृत्यं चुरुं त्वाष्ट्रमृष्टाकंपालं वैश्वान्रं द्वादंशकपालं दक्षिणो रथवाहनवाहो दक्षिणा सारस्वतं चुरुं निर्वपित पौष्णं चुरुं मैत्रं चुरुं वारुणं चुरुं क्षैत्रपृत्यं चुरुमांदित्यं चुरुमुत्तरां रथवाहनवाहो दक्षिणा॥ (३६)

आम्रेयं चर्त्वि १ शत्॥———[२०]

स्वाद्वीं त्वौ स्वादुनां ती्व्रां ती्व्रणामृतांममृतेन सृजामि सश्सोमेन सोमोंऽस्यश्विभ्यौ पच्यस्व सरंस्वत्यै पच्यस्वन्द्रांय सुत्राम्णे पच्यस्व पुनातुं ते परिस्रुत् सोम् १ सूर्यंस्य दुहिता। वारेण शर्श्वता तनौ॥ वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्ख्सोमो अतिंद्रुतः। इन्द्रंस्य युज्यः सखाँ॥ कुविदुङ्ग यवंमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यंनुपूर्वं वियूयं। इहेहैंषां कृणुत् भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न ज्ग्मः॥ आश्विनं धूम्रमा भोजंनानि षड्विर्शतिश्व॥

लंभते सारस्वतं मेषमैन्द्रमृष्भमैन्द्रमेकांदशकपालं निर्वपति सावित्रं द्वादेशकपालं वारुणं दर्शकपालु सोमप्रतीकाः पितरस्तृण्णुत वर्डबा दक्षिणा॥ (३७)

अग्नांविष्णू मिह तह्यां मिहत्वं वीतं घृतस्य गृह्यांनि नामं। दमेदमे सप्त रत्ना दधांना प्रति वां जिह्वा घृतमा चंरण्येत्॥ अग्नांविष्णू मिह धामं प्रियं वां वीथो घृतस्य गृह्यां जुषाणा। दमेदमे सुष्ठतीर्वावृधाना प्रति वां जिह्वा घृतमुचंरण्येत्॥ प्र

णों देवी सरस्वती वाजेंभिर्वाजिनींवती। धीनामंवित्र्यंवतु।

आ नों दिवो बृंह्तः (३८)
पर्वतादा सरंस्वती यज्ञता गंन्तु यज्ञम्। हवंं देवी जुंजुषाणा घृताचीं शृग्मां नो वाचंमुश्ती शृंणोतु॥ बृहंस्पते जुषस्वं नो ह्व्यानिं विश्वदेव्य। रास्व रत्नांनि दाशुषे॥

जुषस्व नो ह्व्यानि विश्वदेव्य। रास्व रत्नांनि दाशुषे॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे युज्ञैर्विधेम् नमंसा ह्विर्भिः।
बृहंस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वय स्यांम् पतंयो रयीणाम्॥
बृहंस्पते अति यद्यों अर्हांद्युमद्विभाति ऋतुंमुज्जनेषु।
यद्दीदयुच्छवंस- (३९)

-र्तप्रजात् तद्स्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजार्रस सुऋतू॥ प्र बाहवां सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन। आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं में मित्रावरुणा हवेमा॥ अग्निं वंः पूर्व्यं गिरा देवमींडे वसूनाम्। सुप्यन्तंः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधंसम्॥ मुक्षू देववंतो रथः (४०)

शूरों वा पृथ्सु कासुं चित्। देवानां य इन्मनो यर्जमान् इयंक्षत्यभीदयंज्वनो भुवत्॥ न यंजमान रिष्यसि न सुन्वान् न देवयो॥ अस्दत्रं सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्वियम्॥ निकृष्टं कर्मणा नशृत्र प्र योषृत्र योषित॥ उपं क्षरन्ति सिन्धंवो मयोभुवं ईजानं चं युक्ष्यमाणं च धेनवंः। पृणन्तं च पपुरिं च (४१)

श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपं यन्ति विश्वतः॥ सोमांरुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयंमाविवेशं। आरे बांधेथां निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुंमुक्तम्स्मत्॥ सोमांरुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वां तुनूषुं भेषजानिं धत्तम्। अवं स्यतं मुश्रतं यन्नो अस्तिं तुनूषुं बुद्धं कृतमेनों अस्मत्॥ सोमांपूषणा जनंना रयीणां जनंना दिवो जनंना पृथिव्याः। जातौ विश्वंस्य भुवंनस्य गोपौ देवा अंकृण्वन्नमृतंस्य नाभिम्॥ इमौ देवौ जायंमानौ जुषन्तेमौ तमा रेसि गृहतामजुंष्टा। आभ्यामिन्द्रः पुक्रमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियांसु॥ (४२)

बृह्तः शवंसा रथः पपुंरिं च दिवो जनना पश्चंवि शितश्च॥———[२२]

॥काण्डम् २॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

वायव्य है श्वेतमालंभेत भूतिंकामो वायुर्वे क्षेपिष्ठा देवतां वायुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेनं भूतिं गमयति भवंत्येवातिंक्षिप्रा देवतेत्यांहुः सैनंमीश्वरा प्रदह् इत्येतमेव सन्तं वायवं नियुत्वंत आलंभेत नियुद्धा अंस्य धृतिंधृंत एव भूतिमुपैत्यप्रंदाहाय भवंत्येव (१)

वायवें नियुत्वंत आलंभेत ग्रामंकामो वायुर्वा इमाः प्रजा नंस्योता नेनीयते वायुमेव नियुत्वंन्त् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं प्रजा नंस्योता नियंच्छति ग्राम्येंव भंवति नियुत्वंते भवति ध्रुवा एवास्मा अनंपगाः करोति वायवें नियुत्वंत आलंभेत प्रजाकांमः प्राणो वै वायुरंपानो नियुत्प्राणापानौ खलु वा एतस्यं प्रजाया (२)

अपंत्रामतो योऽलं प्रजायै सन्प्रजां न विन्दते वायुमेव नियुत्वन्तु स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति स एवास्मैं प्राणापाना-भ्यां प्रजां प्रजनयति विन्दतें प्रजां वायवे नियुत्वंत आलंभेत् ज्योगांमयावी प्राणो वै वायुरंपानो नियुत् प्राणापानौ खलु वा एतस्मादपंत्रामतो यस्य ज्योगामयंति वायुमेव नियुत्वंन्त्र् स्वेनं भागधेयेनोपं (३)

धावति स एवास्मिन्प्राणापानौ दंधात्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव प्रजापंतिर्वा इदमेकं आसीथ्सोंऽकामयत प्रजाः प्रशून्थ्सृंजेयेति स आत्मनों वपामुदंक्खिद्तामुग्नौ प्रागृंह्णात्ततोऽजस्तूंपरः समंभवत्त स्वायं देवतांया आ-ऽलंभत ततो व स प्रजाः प्रशूनंसृजत् यः प्रजाकांमः (४) प्रशुकांमः स्याथ्स एतं प्रांजापत्यम्जं तूंप्रमालंभेत प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं प्रजां प्रशून्प्रजनयति यद्धंश्रुणस्तत्पुरुंषाणाः रूपं यत्तूंप्रस्तदश्वांनां यदन्यतोदन्तद्गवां यदव्यां इव

प्शवस्तान् (५)
 रूपेणैवावंरुन्धे सोमापौष्णं त्रैतमालंभेत पृशुकांमो द्वौ
वा अजायै स्तनौ नानैव द्वावभिजायेते ऊर्जं पृष्टिं तृतीयः
सोमापूषणांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति तावेवास्मै
पृश्न्य्रजनयतः सोमो वै रेतोधाः पूषा पंशूनां प्रजनियता

शुफास्तदवीनां यद्जस्तद्जानांमेतावन्तो वै ग्राम्याः

सोमं एवास्मै रेतो दर्धाति पूषा पृश्न्यजनयत्यौदुंम्बरो यूपों भवृत्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्क्पृशवं ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पश्नवंरुन्थे॥ (६)

भवंत्येव प्रजायां आमयंति वायुमेव नियुत्वंन्त्र स्वेनं भागधेयेनोपं प्रजाकांम्स्तान्

प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ता अंस्माथ्सृष्टाः परांचीरायन्ता वरुणमगच्छुन्ता अन्वैत्ताः पुनंरयाचत् ता अंस्मै न पुनंरददाथ्सौंऽब्रवीद्वरं वृणीष्वार्थं मे पुनंदेंहीति तासां वर्माऽलंभत् स कृष्ण एकंशितिपादभवद्यो वरुणगृहीतः स्याथ्स एतं वांरुणं कृष्णमेकंशितिपादमालंभेत् वरुण- (७)

मेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवेनं वरुणपाशान्मं श्विति कृष्ण एकंशितिपाद्भवित वारुणो ह्यंष देवतंया समृद्धे सुवंभीनुरासुरः सूर्यं तमंसाऽविद्धात्तस्मे देवाः प्रायंश्वित्तिमैच्छुन्तस्य यत्प्रंथमं तमोऽपाघ्नन्थ्सा कृष्णा-ऽविरभवद्यद्वितीय् सा फल्गुंनी यत्तृतीय् सा बलुक्षी यदंद्धस्थाद्पाकृंन्तन्थ्साऽविंऽर्व्शा (८)

समंभव्ते देवा अंब्रुवन्देवपृशुर्वा अयर समंभूत्कस्मां

इममालंपस्यामह इत्यथ् वै तर्ह्यल्पां पृथिव्यासीदजांता ओषंधयस्तामविं वशामांदित्येभ्यः कामायाऽलंभन्त ततो वा अप्रंथत पृथिव्यजांयन्तौषंधयो यः कामयेत् प्रथेय पृशुभिः प्र प्रजयां जायेयेति स एतामविं वृशामांदित्येभ्यः कामा- (९) यऽऽ लंभेतादित्यानेव काम इस्वेनं भागधेयेनोपं धावति त एवैनं प्रथयंन्ति पशुभिः प्र प्रजयां जनयन्त्यसावांदित्यो न व्यंरोचत तस्मैं देवाः प्रायंश्चित्तिमैच्छन्तस्मां एता मल्हा आलंऽभन्ताभ्रेयीं कृष्णग्रीवी संशिहतामैन्द्री इ श्वेतां बार्हस्पत्यां ताभिरेवास्मिन्नुचमदधुर्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मां पुता मुल्हा आलंभे (१०)

ताऽऽग्नेयीं कृष्णग्रीवीर सर्हितामैन्द्री श्वेतां बांर्हस्पत्यामेता एव देवताः स्वेनं भागधेयेनोपं धावित ता एवास्मिन्ब्रह्मवर्च्सं दंधित ब्रह्मवर्चस्येव भेवित वसन्ता प्रातरांग्नेयीं कृष्णग्रीवीमालंभेत ग्रीष्मे मध्यन्दिने सरहितामैन्द्रीर श्रारद्यंपराह्ने श्वेतां बांर्हस्पत्यां त्रीणि वा आंदित्यस्य तेजारंसि वसन्ता प्रातर्ग्रीष्मे मध्यन्दिने श्रारद्यंपराह्ने वसन्ता प्रातर्ग्रीष्मे मध्यन्दिने श्रारद्यंपराह्ने वा आंदित्यस्य तेजारंसि वसन्ता प्रातर्ग्रीष्मे मध्यन्दिने श्रारद्यंपराह्ने यावंन्त्येव तेजारंसि वान्ये- (११)

वार्व रुन्धे संवथ्सरं पूर्यालेभ्यन्ते संवथ्सरो वै ब्रह्मवर्च्सस्यं प्रदाता संवथ्सर एवास्मैं ब्रह्मवर्च्सं प्रयंच्छिति ब्रह्मवर्चस्येव भंवित गूर्भिणयो भवन्तीन्द्रियं वै गर्भ इन्द्रियमेवास्मिन्दधित सारस्वतीं मेषीमालंभेत य ईश्वरो वाचो विदेतोः सन्वाचं न वदेद्वाग्वे सरस्वती सरस्वतीमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित सैवास्मिन् (१२)

वार्चं दधाति प्रविद्ता वाचो भंवत्यपंत्रदती भवति तस्मान्मनुष्याः सर्वां वार्चं वदन्त्याग्रेयं कृष्णग्रीवमा लंभेत सौम्यं बुभ्रं ज्योगांमयाव्यग्निं वा एतस्य शरींरं गच्छिति सोम् रसो यस्य ज्योगामयंत्यग्नेरेवास्य शरींरं निष्क्रीणाति सोमाद्रसंमुत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव सौम्यं बुभ्रमालंभेताग्नेयं कृष्णग्रींवं प्रजाकामः सोमो (१३)

वै रेतोधा अग्निः प्रजानां प्रजनियता सोमं एवास्मै रेतो दधाँत्यग्निः प्रजां प्रजनियति विन्दतें प्रजामांग्नेयं कृष्णग्नीवमालंभेत सौम्यं बुभ्रं यो ब्राह्मणो विद्यामनूच्य न विरोचेत यदांग्नेयो भवति तेजं एवास्मिन्तेनं दधाति यथ्सौम्यो ब्रह्मवर्च्सं तेनं कृष्णग्नीव आग्नेयो भवति तमं एवास्मादपंहन्ति श्वेतो भंवति (१४)

रुचंमेवास्मिन्दधाति बुभुः सौम्यो भेवति ब्रह्मवर्चस-मेवास्मिन्त्विषं दधात्याग्नेयं कृष्णग्रीवमालंभेत सौम्यं बुभुमाँग्नेयं कृष्णग्रीवं पुरोधाया इस्पर्धमान आग्नेयो वै ब्राह्मणः सौम्यो राजन्योऽभितः सौम्यमाँग्नेयौ भेवतस्ते जस्तेव ब्रह्मणोभ्यतो राष्ट्रं परिगृह्णात्येक्धा समावृक्के पुर एनं दधते॥ (१५)

लुभेतु वर्रुणं वृशैतामिवं वृशामादित्येभ्यः कामाय मुल्हा आलंभेतु तान्येव सैवास्मिन्थ्सोर्मः

श्वेतो भंवति त्रिचंत्वारिश्शच। (२)।॥

देवासुरा एषु लोकेष्वंस्पर्धन्त स एतं विष्णुंर्वामनमं-पश्यत्त स्वाये देवताया आऽलंभत् ततो वै स

इमाल्लाँकान्भ्यंजयद्वैष्ण्वं वांमनमालंभेत् स्पर्धमानो विष्णुरेव भूत्वेमाल्लाँकान्भिजंयति विषंम् आलंभेत् विषंमा इव् हीमे लोकाः समृद्धा इन्द्रांय मन्युमते मनस्वते लुलामं प्राशृङ्गमालंभेत सङ्गामे (१६)

सं यंत्त इन्द्रियेण वै मृन्युना मर्नसा सङ्गामं जयतीन्द्रेमेव मन्युमन्तं मर्नस्वन्तु स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मृन्युं मनों दधाति जयंति तर संङ्गामिन्द्रांय म्रुत्वंते पृश्ञिस्क्थमालंभेत ग्रामंकाम् इन्द्रमेव म्रुत्वंन्तु स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मै सजातान्प्रयंच्छति ग्राम्येव भवति यदंष्भस्ते- (१७)

नैन्द्रो यत्पृश्चिस्तेनं मारुतः समृद्धौ पृश्चात्पृश्चिस्यथो भंवति पश्चादन्ववसायिनीमेवास्मै विशं करोति सौम्यं बुभुमालंभेतान्नंकामः सौम्यं वा अन्नू सोमंमेव स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति स एवास्मा अन्नं प्रयंच्छत्यन्नाद एव भंवति बुभुर्भवत्येतद्वा अन्नंस्य रूप समृद्धौ सौम्यं बुभुमालंभेत् यमल १ (१८)

राज्याय सन्तर्भ राज्यं नोपनमेंथ्सौम्यं वै राज्यश् सोममेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवास्मैं राज्यं प्रयंच्छुत्युपैनश्र राज्यं नमिति बुभुर्भवत्येतद्वे सोमस्य रूपश्र समृद्धा इन्द्रांय वृत्रतुरे लुलामं प्राशृङ्गमालंभेत गृतश्रीः प्रतिष्ठाकांमः पाप्मानमेव वृत्रं तीत्वा प्रतिष्ठां गंच्छुतीन्द्रांयाभिमातिष्ठे लुलामं प्राशृङ्गमा- (१९)

लंभेत यः पाप्मनां गृहीतः स्यात्पाप्मा वा

अभिमांतिरिन्द्रंमेवाभिमातिहन् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स पुवास्मांत्पाप्मानंमभिमांतिं प्रणुंदत इन्द्रांय विज्ञिणं लुलामं प्राशृङ्गमालंभेत यमलर् राज्याय सन्तर्र राज्यं नोपनमेदिन्द्रंमेव विज्ञिण् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स पुवास्मे वज्रं प्रयंच्छिति स एनं वज्रो भूत्यां इन्ध् उपैनर राज्यं नमिति लुलामः प्राशृङ्गो भंवत्येतद्वै वज्रंस्य रूपर समंद्धौ॥ (२०)

असावांदित्यो न व्यंरोचत् तस्मै देवाः प्रायंश्चित्ति-मैच्छुन्तस्मां एतान्दशंर्षभामाऽलभन्त तयैवास्मिन्नचंमदधुर्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मां एतान्दशंर्षभामाऽलभेतामुमेवा-

सङ्ग्रामे तेनालंमभिमातिष्रे लुलामं प्राशृङ्गमैनं पश्चंदश च।3।॥———[३]

दित्य इस्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं देधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति वसन्तौ प्रातस्त्रीहुँलामानालभेत ग्रीष्मे मध्यन्दिने (२१)

त्रीञ्छितिपृष्ठाञ्छरद्येपराह्ने त्रीञ्छितिवारात्रीणि वा आंदित्यस्य तेजार्श्स वसन्तौ प्रातर्ग्रीष्मे मध्यन्दिने शरद्येपराह्ने यावेन्त्येव तेजार्श्स तान्येवावंरुन्थे त्रयंस्रय आर्लभ्यन्तेऽभिपूर्वमेवास्मिन्तेजों दधाति संवथ्सरं पूर्यालंभ्यन्ते संवथ्सरो वै ब्रंह्मवर्च्सस्यं प्रदाता संवथ्सर एवास्मैं ब्रह्मवर्च्सं प्रयंच्छति ब्रह्मवर्चस्येव भवति संवथ्सरस्यं प्रस्तांत्प्राजापृत्यं कद्रु- (२२)

मालंभेत प्रजापंतिः सर्वा देवतां देवतांस्वेव प्रतितिष्ठति यदि बिभीयाद्दुश्चर्मा भविष्यामीति सोमापौष्ण इ श्याममालंभेत सौम्यो वै देवत्या पुरुषः पौष्णाः पृशवः स्वयैवास्में देवत्या पृश्विस्त्वचं करोति न दुश्चर्मा भवित देवाश्च वै यमश्चास्मिल्रौंकैंऽस्पर्धन्त स यमो देवानांमिन्द्रियं वीर्यमयुवत तद्यमस्यं (२३)

यमृत्वं ते देवा अमन्यन्त यमो वा इदमंभूद्यद्वयः सम इति ते प्रजापंतिमुपांधावन्थ्य एतौ प्रजापंतिरात्मनं उक्षवृशौ निरंमिमीत् ते देवा वैष्णावरुणीं वृशामा-ऽलंभन्तैन्द्रमुक्षाण्नतं वर्रुणेनैव ग्रांहियत्वा विष्णुंना यज्ञेन प्राणुंदन्तैन्द्रणेवास्यैन्द्रियमंवृञ्जत् यो भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्य स्पर्धमानो वैष्णावरुणीं (२४)

वृशामालंभेतैन्द्रमुक्षाणं वर्रुणेनैव भ्रातृंव्यं ग्राहयित्वा विष्णुंना युज्ञेन प्रणुंदत ऐन्द्रेणैवास्यैन्द्रियं वृंङ्के भवंत्यात्मना पराँस्य भ्रातृंच्यो भवतीन्द्रों वृत्रमंहन्तं वृत्रो हतः षोंड्शभिंभींगैरंसिनात्तस्यं वृत्रस्यं शीर्षतो गाव उदांयन्ता वैदेह्योऽभवन्तासांमृष्भो ज्ञघनेऽन्दैत्तमिन्द्रों- (२५)

चायथ्सोऽमन्यत् यो वा इममालभेत् मुच्येतास्मात्पाप्मन् इति स आंग्नेयं कृष्णग्रीवमालंभतैन्द्रमृष्भं तस्याग्निरेव स्वेनं भाग्धेयेनोपंसृतः षोडश्रधा वृत्रस्यं भोगानप्यंदह-दैन्द्रेणेन्द्रियमात्मन्नंधत्त यः पाप्मनां गृहीतः स्याथ्स आंग्नेयं कृष्णग्रीवमालंभेतैन्द्रमृष्भमृग्निरेवास्य स्वेनं भागधेयेनोपंसृतः (२६)

पाप्मानमपि दहत्यैन्द्रेणैन्द्रियमात्मन्धंते मुच्यंते पाप्मनो भवंत्येव द्यांवापृथिव्यां धेनुमालंभेत ज्योगंपरुद्धोऽनयोर्हि वा एषोऽप्रंतिष्ठितोऽथैष ज्योगपंरुद्धो द्यावांपृथिवी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति ते एवैनं प्रतिष्ठां गंमयतः प्रत्येव तिष्ठति पर्यारिणी भवति पर्यारीव ह्यंतस्यं राष्ट्रं यो ज्योगंपरुद्धः समृद्धौ वाय्व्यं (२७)

वृथ्समा लेभेत वायुर्वा अनयौर्वथ्स इमे वा एतस्मैं लोका अपेशुष्का विडपंशुष्काऽथैष ज्योगपंरुद्धो वायुमेव स्वेनं भागुधेयेनोपं धावित स एवास्मां इमाल्लाँकान् विश्ं प्रदापयित प्रास्मां इमे लोकाः स्रुवन्ति भुञ्जत्येनं विडुपंतिष्ठते॥ (२८)

मुध्यन्दिने कर्द्रं युमस्य स्पर्धमानो वैष्णावरुणीन्तमिन्द्रौंऽस्य स्वेनं भागुधेयेनोपंसृतो वायव्यं

इन्द्रों वलस्य बिलमपौंणींथ्स य उत्तमः पृशुरासीतं पृष्ठं प्रतिं सङ्गृह्योदंक्खिदत्त स् सहस्रं पृशवोऽनूदांयन्थ्स उन्नतीं-ऽभवद्यः पृशुकांमः स्याथ्स एतमैन्द्रम्नन्नतमालंभेतेन्द्रंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मे पृशून्प्रयंच्छति पशुमानेव भंवत्युन्नतो (२९)

भंवति साह्स्री वा एषा लुक्ष्मी यद्त्रुतो लुक्ष्मियैव प्रान्वंरुन्थे यदा सहस्रं प्रान्प्राप्तुयादथं वैष्ण्वं वामनमा लंभेतृतस्मिन्वे तथ्सहस्रमद्धातिष्ठत्तस्मादेष वामनः समीषितः प्राभ्यं एव प्रजांतेभ्यः प्रतिष्ठां दंधाति कोऽर्हति सहस्रं प्रान्प्राप्तुमित्यांहुरहोरात्राण्येव सहस्रं सम्पाद्यालंभेत प्रावो (३०)

वा अंहोरात्राणि पृशूनेव प्रजातान्प्रतिष्ठां गंमयत्योषंधीभ्यो वेहत्मालंभेत प्रजाकाम् ओषंधयो वा एतं प्रजायै परिबाधन्ते योऽलं प्रजायै सन्प्रजां न विन्दत् ओषंधयः खलु वा एतस्यै सूतुमपि घ्रन्ति या वेहद्भवत्योषंधीरेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति ता एवास्मै स्वाद्योनेंः प्रजां प्रजनयन्ति विन्दतें (३१)

प्रजामापो वा ओषंध्योऽस्त्पुरुष् आपं एवास्मा असंतः सद्दंति तस्मांदाहुर्यश्चैवं वेद यश्च नाप्स्त्वावासंतः सद्दंतीत्यैन्द्री स्मृतवंशामालंभेत भूतिंकामोऽजांतो वा एष योऽलं भूत्यै सन्भूतिं न प्राप्नोतीन्द्रं खलु वा एषा सूत्वा वशाऽभंव-(३२)

दिन्द्रमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैनं भूतिं गमयति भवंत्येव य स्त्वा वृशा स्यात्तमैन्द्रमेवालंभेतैतद्वाव तदिन्द्रिय साक्षादेवेन्द्रियमवं रुन्ध ऐन्द्राग्नं पुनरुष्मुष्टमा-लंभेत् य आ तृतीयात्पुरुषाथ्सोमं न पिबेद्विच्छिंन्रो वा एतस्यं सोमपीथो यो ब्रांह्मणः सन्ना (३३)

तृतीयात्पुरुषाथ्सोमं न पिबंतीन्द्राग्नी एव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति तावेवास्में सोमपीथं प्रयंच्छत् उपैन श् सोमपीथो नमिति यदैन्द्रो भवंतीन्द्रियं वै सोमपीथ इन्द्रियमेव सोमपीथमवंरुन्धे यदाँग्नेयो भवंत्याग्नेयो वै ब्राह्मणः स्वामेव देवतामनु सन्तंनोति पुनरुथमृष्टो भंवति पुनरुथमृष्ट इंव् ह्यंतस्यं (३४)

सोमपीथः समृद्धौ ब्राह्मणस्पृत्यं तूप्रमालंभेताभि-चर्न्ब्रह्मणस्पतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति तस्मां एवनमा वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छति तूप्रो भवति क्षुरपंविवां एषा लक्ष्मी यत्तूप्रः समृद्धौ स्प्यो यूपो भवति वज्रो वै स्प्यो वज्रमेवास्मै प्रहंरति शर्मयं ब्रहः शृणात्येवनं वैभीदक इ्थ्मो भिनत्त्येवैनम्॥ (३५)

भ्वत्युत्रृतः पृशवों जनयन्ति विन्दतेंऽभव्थ्सन्नैतस्येष्द्रास्त्रीणि च॥————[५]

बार्ह्स्पृत्य शितिपृष्ठमालंभेत ग्रामंकामो यः कामयेत पृष्ठ संमानाना स्यामिति बृह्स्पतिमेव स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेनं पृष्ठ संमानाना द्वारेत ग्राम्येव भवति शितिपृष्ठो भवति बार्हस्पृत्यो ह्येष देवतंया समृं छै पौष्ण इयाममालंभेता त्रं कामोऽत्रं व पूषा पूषणं मेव स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मा (३६)

अत्रं प्रयंच्छत्यन्नाद एव भंवति श्यामो भंवत्येतद्वा अन्नंस्य रूप॰ समृद्धौ मारुतं पृश्ञिमार्लभेतान्नंकामोऽत्रं वै मुरुतों मुरुतं एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवास्मा अत्रं प्रयंच्छन्त्यन्नाद एव भविति पृश्चिर्भवत्येतद्वा अन्नंस्य रूपः समृद्धा ऐन्द्रमंरुणमालंभेतेन्द्रियकांम इन्द्रंमेव (३७)

स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्निन्द्रयं दंधातीन्द्रियाव्येव भेवत्यरुणो भ्रूमांन्भवत्येतद्वा इन्द्रंस्य रूप॰ समृद्धौ सावित्रम्ंपद्धस्तमालंभेत स्निकांमः सविता व प्रंस्वानांमीशे सवितारंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं स्निं प्रसुंवित दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्त्युपद्धस्तो भंवित सावित्रो ह्यंष (३८)

देवतया समृद्धौ वैश्वदेवं बंहुरूपमालंभेतान्नंकामो वैश्वदेवं वा अन्नं विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भागधेयेनोपं धावति त एवास्मा अन्नं प्रयंच्छन्त्यन्नाद एव भंवति बहुरूपो भंवति बहुरूपः ह्यन्नः समृद्धौ वैश्वदेवं बंहुरूपमालंभेत् ग्रामंकामो वैश्वदेवा वै संजाता विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भागधेयेनोपं धावति त एवास्मैं (३९)

सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्यंव भंवति बहुरूपो भंवति बहुदेवृत्यों(१) ह्यंष समृद्धौ प्राजापृत्यं तूप्रमालंभेत् यस्यानांज्ञातमिव ज्योगामयेंत्प्राजापृत्यो वै पुरुषः प्रजापंतिः खलु वै तस्यं वेद यस्यानां ज्ञातिमव ज्योगामयंति प्रजापंतिमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवैनं तस्माथ्स्रामां न्मुश्चित तूप्रो भंवति प्राजापत्यो ह्यंष देवतंया समृद्धे॥ (४०)

अस्मा इन्द्रंमेवैष संजाता विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भागुधेयेनोपं धावित त एवास्मैं प्राजापुत्यो

2 20 ____

वृषद्भारो वै गांयत्रियै शिरोंऽच्छिन्तस्यै रसः परां-ऽपत्तं बृह्स्पतिरुपांगृह्णाथ्सा शिंतिपृष्ठा वृशाऽभंवद्यो द्वितीयः प्रापंतृत्तं मित्रावरुणावुपांगृह्णीताः सा द्विंरूपा वृशाऽभंवद्यस्तृतीयः प्रापंतृत्तं विश्वे देवा उपांगृह्ण-थ्सा बहुरूपा वृशाऽभंवद्यश्चंतुर्थः प्रापंतृथ्स पृथिवीं प्राविंशृत्तं बृहस्पतिंरभ्यं- (४१)

गृह्णादस्त्वेवायं भोगायिति स उक्षवशः समंभवद्यक्षोहितं प्रापंतृत्तद्रुद्र उपांगृह्णाथ्मा रौद्री रोहिणी वृशाऽभेव-द्वार्हस्पत्याः शितिपृष्ठामालंभेत ब्रह्मवर्चसकांमो बृह्स्पतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवास्मिन्ब्रह्म-वर्चसं दंधाित ब्रह्मवर्चस्थेव भंवित छन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु (४२)

वै ब्रंह्मवर्च्सं छन्दंसामेव रसेन रसें ब्रह्मवर्च्समवंरुन्धे मैत्रावरुणीं द्विरूपामालंभेत वृष्टिंकामो मैत्रं वा अहंविरुणी रात्रिंरहोरात्राभ्यां खलु वै पुर्जन्यों वर्षित मित्रावरुंणावेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मां अहोरात्राभ्यां पुर्जन्यं वर्षयतुश्छन्दंसां वा एष रसो यहुशा रसं इव खलु वै वृष्टिश्छन्दंसामेव रसेन (४३)

रसं वृष्टिमवंरुन्थे मैत्रावरुणीं द्विंरूपामालंभेत प्रजाकांमो मैत्रं वा अहंविंरुणी रात्रिरहोरात्राभ्यां खलु वै प्रजाः प्रजायन्ते मित्रावरुणावेव स्वेन भाग्धेयेनोपं धावित् तावेवास्मां अहोरात्राभ्यां प्रजां प्रजांनयतुश्छन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु वै प्रजा छन्दंसामेव रसेन रसं प्रजामवं (४४)

रुन्धे वैश्वदेवीं बंहुरूपामालंभेतान्नंकामो वैश्वदेवं वा अन्नं विश्वानेव देवान्थ्स्वेनं भागधेयेनोपं धावति त एवास्मा अन्नं प्रयंच्छन्त्यन्नाद एव भंवति छन्दंसां वा एष रसो यद्वशा रसं इव खलु वा अन्नं छन्दंसामेव रसेन रसमन्नमवंरुन्धे वैश्वदेवीं बंहुरूपामालंभेत ग्रामंकामो वैश्वदेवा वै (४५) संजाता विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवास्मै सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्येव भंवति छन्दंसां वा एष रसो यद्धशा रसं इव खलु वै संजाताश्छन्दंसामेव रसेन रसं सजातानवंरुन्धे बार्हस्पृत्यमुंक्षवृशमालंभेत ब्रह्मवर्च्सकांमो बृह्स्पतिंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं (४६)

दंधाति ब्रह्मवर्चस्यंव भंवति वशं वा एष चंरति यदुक्षा वशं इव खलु वै ब्रह्मवर्चसं वशेनैव वशं ब्रह्मवर्चसमवं-रुन्धे रौद्री र रोहिणीमालंभेताभिचरंत्रुद्रमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति तस्मां एवैन्मावृंश्चति ताजगार्तिमार्च्छंति रोहिणी भवति रौद्री ह्यंषा देवतंया समृंद्धौ स्फ्यो यूपों भवति वज्रो वै स्फ्यो वज्रंमेवास्मै प्रहंरति शर्मयं ब्रहः शृणात्येवैनं वैभीदक इध्मो भिनत्त्येवैनम्॥ (४७)

अभि खलु वृष्टिश्छन्दंसामेव रसेन प्रजामवं वैश्वदेवा वै ब्रह्मवर्च्सं यूप्

एकान्नविर्श्यातिश्चं। (७)।॥———[७]

असार्वादित्यो न व्यंरोचत् तस्मै देवाः प्रायंश्चित्ति-मैच्छुन्तस्मां एता॰ सौरी॰ श्वेतां वृशामाऽलंभन्त् तयैवास्मिन्नुचंमदधुर्यो ब्रंह्मवर्च्सकांमः स्यात्तस्मां एता श् सौरी ॥ श्वेतां वृशामालंभेतामुमेवाऽऽदित्य ॥ स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवास्मिन्ब्रह्मवर्च्सं दंधाित ब्रह्मवर्च्स्येव भविति बैल्वो यूपो भवत्यसौ (४८)

वा आंदित्यो यतोऽजांयत् ततो बिल्वं उदंतिष्ठथ्सयौन्येव ब्रंह्मवर्चसमवंरुन्थे ब्राह्मणस्पृत्यां बंभुकुणीमा लंभेताभि-चरंन्वारुणं दर्शकपालं पुरस्तान्निवंपेद्वरुंणेनैव भ्रातृंव्यं ग्राहियत्वा ब्रह्मणा स्तृणुते बभुकुणी भंवत्येतद्वे ब्रह्मणो रूप समृद्धौ स्प्यो यूपो भवति वज्रो वै स्प्यो वर्ज्रमेवास्मै प्रहंरित शरमयं बर्हिः शृणा- (४९)

त्येवैनं वैभीदक इध्मो भिनत्त्येवैनं वैष्ण्वं वांमनमालंभेत् यं यज्ञो नोपनमेद्विष्णुर्वे यज्ञो विष्णुंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्में यज्ञं प्रयंच्छुत्युपैनं यज्ञो नंमित वामनो भंवति वैष्ण्वो ह्यंष देवतंया समृद्धौ त्वाष्ट्रं वंडुबमालंभेत पशुकांमस्त्वष्टा वै पंशूनां मिथुनानां (५०)

प्रजनयिता त्वष्टांरमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मै पुश्नियुनान्प्रजनयित प्रजा हि वा एतस्मिन्पुशवः प्रविष्टा अथैष पुमान्थ्सन्बंडबः साक्षादेव प्रजां प्शूनवंरुन्थे मैत्र श्वेतमालंभेत सङ्गामे सं यत्ते समयकामो मित्रमेव स्वेन भाग्धेयेनोपं धावति स एवैन मित्रेण सन्नयति (५१)

विशालो भंवति व्यवंसाययत्येवैनं प्राजापत्यं कृष्णमा-लंभेत वृष्टिंकामः प्रजापंतिवै वृष्ट्यां ईशे प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं पर्जन्यं वर्षयति कृष्णो भंवत्येतद्वै वृष्ट्यें रूप र रूपेणेव वृष्टिमवंरुन्थे श्वलों भवति विद्युतंमेवास्मैं जनियत्वा वर्षयत्यवाशृङ्गो भंवति वृष्टिंमेवास्मै नियंच्छिति॥ (५२)

वर्रण १ सृषुवाणम्त्राद्यत्रोपानम्थ्य एतां वार्रणीं कृष्णां वशामंपश्यत्ता १ स्वाये देवतांया आऽलंभत् ततो वै तम्त्राद्यमुपानम्द्यमलंम्त्राद्यांय सन्तम्त्राद्यत्रोपनम्थ्य एतां वार्रणीं कृष्णां वशामालंभेत् वर्रणमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मा अत्रं प्रयंच्छत्यत्रादः (५३)

पुव भंवति कृष्णा भंवति वारुणी ह्येषा देवतंया समृद्धौ मैत्र श्वेतमालंभेत वारुणं कृष्णम्पां चौषंधीनां च सन्धावन्नंकामो मैत्रीर्वा ओषंधयो वारुणीरापोऽपां च् खलु वा ओषंधीनां च रसमुपंजीवामो मित्रावरुणावेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति तावेवास्मा अन्नं प्रयंच्छतोऽन्नाद एव भंव- (५४)

त्युपां चौषंधीनां च सन्धावालंभत उभयस्यावंरुद्धे विशांखो यूपों भवित द्वे ह्यंते देवते समृद्धे मैत्र श्वेतमा लंभेत वारुणं कृष्णं ज्योगांमयावी यन्मैत्रो भवंति मित्रेणैवास्मै वर्रण शमयित यद्वांरुणः साक्षादेवैनं वरुणपाशान्मुं अत्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव देवा वै पृष्टिन्नाविंन्द- (५५)

न्तां मिंथुनेंऽपश्यन्तस्यां न समेराधयन्तावृश्विनां-वब्रूतामावयोवां एषा मैतस्यां वदद्धमिति सा-ऽश्विनोरेवाभवद्यः पृष्टिंकामः स्याथ्स एतामांश्विनीं यमीं वृशामालंभेताश्विनांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मिन्पुष्टिं धत्तः पृष्यंति प्रजयां पृशुभिः॥ (५६)

अन्नादौँऽन्नाद एव भंवत्यविन्द्न्पश्चंचत्वारि श्रच॥———[९]

आश्विनं धूम्रलंलाम्मालंभेत् यो दुर्बाह्मणः सोमं

पिपांसेदिश्वनौ वै देवानामसोमपावास्तां तौ पृश्चा सोमपीथं प्राप्नुंतामश्विनांवेतस्यं देवता यो दुर्ब्राह्मणः सोम्ं पिपांसत्यश्विनांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्में सोमपीथं प्रयंच्छत उपैन सोमपीथो नमिति यद्भूमो भवंति धूम्रिमाणंमेवास्मादपंहन्ति ललामों (५७)

भवति मुख्त एवास्मिन्तेजों दधाति वायव्यं गोमृगमा-लंभेत् यमजंघ्रिवाश्समिभ्शश्सेयुरपूंता वा एतं वागृच्छिति यमजंघ्रिवाश्समिभ्शश्संन्ति नैष ग्राम्यः पृशुर्नाऽर्ण्यो यद्गोमृगो नेवैष ग्रामे नारंण्ये यमजंघ्रिवाश्समिभशश्संन्ति वायुर्वे देवानां प्वित्रं वायुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवै- (५८)

नं पवयित परांची वा एतस्मैं व्युच्छन्ती व्युच्छिति तमंः पाप्मानं प्रविशति यस्यांश्विने शस्यमांने सूर्यो नाविर्भवंति सौर्यं बंहरूपमालंभेतामुमेवाऽऽदित्य स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवास्मात्तमः पाप्मान्मपंहन्ति प्रतीच्यंस्मै व्युच्छन्ती व्युंच्छत्यप् तमः पाप्मान हे हते॥ (५९)

लुलामुः स एव षद्गेत्वारिश्शच॥

-[१०]

इन्ह्रं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरो मर्रुतो यद्धं वो दिवो या वः शर्म। भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽश्होमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वर्रुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मुरुतः स्वस्तये। ममत्तुं नः परिजमा वस्रहा ममत्तु वातो अपां वृषंण्वान्। शिशीतिमिन्द्रापर्वता युवन्नस्तन्नो विश्वं विरवस्यन्तु देवाः। प्रिया वो नामं (६०)

हुवे तुराणांम्। आयत्तृपन्मंरुतो वावशानाः। श्रियसे कं भानुभिः सम्मिमिक्षिरे ते रिष्टमिभिस्त ऋकंभिः सुखादयः। ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः। अग्निः प्रथमो वसुंभिनों अव्याथ्सोमो रुद्रेभिर्भिरक्षितु त्मनां। इन्द्रो मुरुद्धिर्ऋतुधा कृणोत्वादित्यैनों वरुणः सर्शिशातु। सन्नो देवो वसुंभिरग्निः सर (६१)

सोमंस्त्नूभी रुद्रियांभिः। समिन्द्रों म्रुद्धिर्युज्ञियैः समादित्यैर्नो वरुणो अजिज्ञिपत्। यथांऽऽदित्या वसुंभिः सम्बभूवुर्म्रुद्धी रुद्राः समजानताभि। एवा त्रिणाम्त्रह्णीयमाना विश्वे देवाः समनसो भवन्तु। कुत्रांचिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदंने। अर्हन्तश्चिद्यमिन्ध्ते संञ्जनयंन्ति जन्तवंः। सं यदिषो वनामहे स॰ ह्व्या मानुषाणाम्। उत द्युम्नस्य शर्वस (६२)

ऋतस्यं रिश्ममादंदे। यज्ञो देवानां प्रत्यंति सुम्नमादित्यासो भवंता मृड्यन्तंः। आवोऽर्वाची सुमृतिर्ववृत्याद् १ होश्चिद्या वंरिवोवित्तराऽसंत्। शुचिर्पः सूयवंसा अदंब्य उपंक्षेति वृद्धवंयाः सुवीरंः। निकृष्टं घ्रन्त्यन्तितो न दूराद्य आंदित्यानां भवंति प्रणींतौ। धारयंन्त आदित्यासो जग्थस्था देवा विश्वंस्य भुवंनस्य गोपाः। दीर्घाधियो रक्षमाणा (६३)

असुर्यमृतावां नृश्चयं माना ऋणानि। तिस्रो भूमीं धारयन्त्री १ रुत द्यूत्रीणि वृता विदर्थे अन्तरेषाम्। ऋतेनां ऽऽदित्या मिहं वो मिह्तवं तदंर्यमन्वरुण मित्र चारुं। त्यां नु क्षृत्रिया १ अवं आदित्यान् यांचिषामहे। सुमृडीका १ अभिष्टंये। न देक्षिणा विचिकिते न स्व्या न प्राचीनं मादित्या नोत पृश्चा। पाक्यांचिद्दसवो धीर्यांचि- (६४)

द्युष्मानीतो अभेयं ज्योतिरश्याम्। आदित्यानामवेसा नूतंनेन सक्षीमिह् शर्मणा शन्तंमेन। अनागास्त्वे अदितित्वे तुरासं इमं यज्ञं देधतु श्रोषंमाणाः। इमं में वरुण श्रुधी हवंम्द्या चं मृडय। त्वामंवस्युराचंके। तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दंमान्स्तदाऽऽशांस्ते यजंमानो ह्विर्मिः। अहेंडमानो वरुणेह बोद्ध्युरुंशश्स् मा न आयुः प्रमोषीः॥ (६५)

नामाृग्निः सर शर्वसो रक्षंमाणा धीर्याचिदेकान्नपंश्चाशचं॥———[११]

[वायुव्यं प्रजापंतिस्ता वर्षणं देवासुरा पृष्वंसावांदित्यो दर्शर्षभामिन्द्रां व्रलस्यं बार्हस्पत्यं वंषद्वारोंऽसौ सौरीं वर्षणमाश्विनमिन्द्रं वो नर् एकांदश॥११॥ वायव्यंमाग्नेयीं कृष्णग्रीवीम्सावांदित्यो वा अंहोरात्राणिं वषद्वारः प्रजनियता हुवे तुराणां पश्चंषष्टिः॥६५॥ वायव्यं प्रमोपीः॥]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ताः सृष्टा इंन्द्राग्नी अपांगूहताः सोंऽचायत्प्रजापंतिरिन्द्राग्नी वै में प्रजा अपांघुक्षतामिति स एतमैंन्द्राग्नमेकांदशकपालमपश्यत्तन्निरंवप्तावंस्मे प्रजाः प्रासांधयतामिन्द्राग्नी वा एतस्यं प्रजामपंगूहतो योऽलं प्रजाये सन्प्रजां न विन्दतं ऐन्द्राग्नमेकांदशकपालं निर्वपेत्प्रजाकांम इन्द्राग्नी (१)

विन्दतें प्रजामैंन्द्राग्नमेकांदशकपालं निर्वपृथ्स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषुं वेन्द्राग्नी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति ताभ्यांमेवेन्द्रियं वीर्यं भ्रातृं व्यस्य वृङ्के वि पाप्मना भ्रातृं व्येण जयतेऽप वा पृतस्मांदिन्द्रियं वीर्यं कामित यः संङ्गाममुपप्रयात्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालं निर्-(२) वंपथ्सङ्गाममुपप्रयास्यिन्द्राग्नी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं धत्तः सहेन्द्रियेणं वीर्येणोपप्रयांति जयति त॰ सङ्गामं वि वा एष इन्द्रियेणं वीर्येणोपप्रयांति जयति त॰ सङ्गामं वि वा एष इन्द्रियेणं

एव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति तावेवास्मैं प्रजां प्रसाधयतो

निर्वपेथ्सङ्ग्रामं जित्वेन्द्राग्नी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित् तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं (३) धत्तो नेन्द्रियेणं वीर्येण व्यृद्धतेऽप् वा एतस्मिदिन्द्रियं वीर्यं कामित् य एतिं जनतांमैन्द्राग्नमेकांदशकपालं निर्वपेज्ञनतांमेष्यन्निन्द्राग्नी एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित् तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं धत्तः सहेन्द्रियेणं वीर्येण जनतांमेति

वीर्येणर्द्धते यः संङ्गामं जयंत्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालं

पौष्णं चरुमनुनिर्वपेतपूषा वा इंन्द्रियस्यं वीर्यस्यानुप्रदाता पूषणंमेव (४)

स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मां इन्द्रियं वीर्यमनु प्रयच्छिति क्षेत्रपृत्यं चुरुं निर्वपेञ्चनतांमागत्येयं वै क्षेत्रंस्य पतिंर्स्यामेव प्रतितिष्ठत्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालमुपिरेष्टा-त्रिर्वपेदस्यामेव प्रतिष्ठायैन्द्रियं वीर्यमुपिरेष्टादात्मन्धंत्ते॥ (५)

प्रजाकांम इन्द्राग्नी उंपप्रयात्यैन्द्राग्नमेकांदशकपालुं निर्वीर्यं पूषणंमेवैकान्नचंत्वारि्श्शचं॥[१]

अग्नयं पथिकृतं पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेद्यो दंर्शपूर्णमासयाजी सन्नंमावास्यां वा पौर्णमासीं वां-ऽतिपादयेंत्पथो वा पृषोऽद्धपंथेनैति यो दंर्शपूर्णमासयाजी सन्नंमावास्यां वा पौर्णमासीं वांऽतिपादयंत्यग्निमेव पंथिकृत्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स पृवेन्मपंथात्पन्थामपि नयत्यनुङ्वान्दक्षिणा वृही ह्येष समृद्धा अग्नयें वृतपंतये (६)

पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेद्य आहिंताग्निः सन्नेब्रत्यमिव् चरेदग्निमेव व्रतपंति स्वेनं भागधेयेनोपं धावित स एवैनं व्रतमालम्भयित व्रत्यो भवत्यग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेद्य रक्षा रेसि सर्चे रत्नुग्निमेव रेक्षोहण्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्माद्रक्षा ड्स्यपंहन्ति निर्शितायां निर्वपे- (७)

त्रिशिताया हि रक्षा श्री प्रेरते सम्प्रेणीं न्येवैनांनि हिन्ति परिश्रिते याजयेद्रक्षंसामनं न्ववचाराय रक्षोघ्री याँज्यानुवाक्यं भवतो रक्षंसा हु स्तृत्यां अग्नये रुद्रवंते पुरोडाशं मुष्टाकं पालुं निर्वपेदिम्चरं त्रेषा वा अस्य घोरा तुन्यद्रुद्रस्तस्मां एवैन् मावृंश्चति ताजगार्ति मार्च्छं त्युग्नये सुरिम्मते पुरोडाशं मुष्टाकं पालुं निर्वपेद्यस्य गावों वा पुरुषा - (८)

वा प्रमीयेर्न् यो वां बिभीयादेषा वा अस्य भेष्ज्यां त्नूर्यथ्स्रिमती तयैवास्में भेषजं करोति स्रिभ्मते भवति पूतीग्न्थस्यापंहत्या अग्नये क्षामंवते पुरोडाशम्ष्टाकंपालं निर्वपेथ्सङ्गामे सं यंत्ते भाग्धेयेनैवैन शमियत्वा परांनिभि निर्दिशित यमवंरेषां विद्यंन्ति जीवंति स यं परेषां प्र समीयते जयंति तर संङ्गाम- (९)

म्भि वा एष एतानुंच्यति येषां पूर्वाप्रा अन्वश्चः प्रमीयंन्ते पुरुषाहुतिर्द्यस्य प्रियतंमाऽग्नये क्षामंवते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपद्भाग्धेयेंनैवैन र् शमयति नैषां पुराऽऽयुषोऽपंरः प्रमीयतेऽभि वा एष एतस्यं गृहानुंच्यति यस्यं गृहान्दहंत्यग्नये क्षामंवते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपद्भाग्धेयेंनैवैन शमयति नास्यापंरं गृहान्दहित॥ (१०)

ब्रतपंतये निर्शितायान्निर्वपृत्पुरुंषाः सङ्गामन्न चृत्वारिं च॥————[२]

अग्नये कामांय पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेंदग्निमेव काम् स्वनं भाग्धेयेनोपं धावित स एवेनं कामेन समर्द्धयत्युपैनं कामो नमत्यग्नये यविष्ठाय पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेथ्स्पर्धमानः क्षेत्रं वा सजातेषुं वाऽग्निमेव यविष्ठ्रं स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तेनैवेन्द्रियं वीर्यं भ्रातृंव्यस्य (११)

युवते वि पाप्मना भ्रातृंव्येण जयतेऽग्नये यविष्ठाय पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेदभिचर्यमाणोऽग्निमेव यविष्ठ्र् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स पुवास्माद्रक्षारंसि यवयति नैनंमिन्चरंन्थ्स्तृणुतेऽग्नय आयंष्मते पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं निर्वपेद्यः कामयेत् सर्वमायंरियामित्यग्निमेवाऽऽयंष्मन्त्ड् स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवास्मि- (१२)

न्नायुंदिधाति सर्वमायुंरेत्यग्रये जातवेदसे पुरोडार्श-मृष्टाकंपालं निर्वपेद्भूतिकामोऽग्निमेव जातवेदस्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैनं भूतिं गमयति भवत्येवाग्नये रुकाते पुरोडार्शमृष्टाकंपालं निर्वपेद्गुक्कांमोऽग्निमेव रुकांन्त्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्नुचं दधाति रोचंत एवाग्नये तेजंस्वते पुरोडार्श- (१३)

मृष्टाकंपालं निर्वपेत्तेर्जस्कामोऽग्निमेव तेर्जस्वन्त्र्ष्ट् स्वेन भागधेयेनोपं धावित स एवास्मिन्तेर्जो दधाित तेज्यस्व्येव भवत्यग्नयें साह्नत्यायं पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेथ्सीक्षंमाणोऽग्निमेव साह्न्त्यः स्वेनं भागधेयेनोपं धावित तेनैव सहते यः सीक्षंते॥ (१४)

भ्रातृंव्यस्यास्मिन्तेजंस्वते पुरोडाशंम्ष्टात्रिरंशच॥———[3]

अग्नयेऽन्नंवते पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नं-वान्थस्यामित्यग्निमेवान्नंवन्तु स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स मृष्टार्कपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नादः स्यामित्यग्निमेवान्नादः स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स पृवैनमन्नादं करोत्यन्नाद - (१५) पृव भवत्यग्नयेऽन्नंपतये पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नंपतिः स्यामित्यग्निमेवान्नंपतिः स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स पृवैनमन्नंपतिं करोत्यन्नंपतिरेव भवत्यग्नये

पर्वमानाय पुरोडाशंमष्टाकंपालं निर्वपेदग्नये पावकायाग्नये

शुचंये ज्योगांमयावी यद्ग्रये पवंमानाय निर्वपंति

प्राणमेवास्मिन्तेनं दधाति यदग्नयें (१६)

एवैनमन्नवन्तं करोत्यन्नवानेव भवत्यग्रयैंऽन्नादायं पुरोडाशं-

पावकाय वाचंमेवास्मिन्तेनं दधाति यद्ग्रये शुचंय आयुरेवास्मिन्तेनं दधात्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येवैतामेव निर्वपेचक्षुष्कामो यदग्रये पवंमानाय निर्वपंति प्राणमेवा-

स्मिन्तेनं दधाति यदग्रये पावकाय वाचंमेवास्मिन्तेनं दधाति

यद्ग्रये शुचंये चक्षुंरेवास्मिन्तेनं दधा- (१७)
त्युत यद्यन्थो भवंति प्रैव पंश्यत्यग्रयं पुत्रवंते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपेदिन्द्रांय पुत्रिणं पुरोडाश्मेकांदशकपालं
प्रजाकांमोऽग्निरेवास्मैं प्रजां प्रजनयंति वृद्धामिन्द्रः

प्रयंच्छत्युग्नये रसंवतेऽजक्षीरे चुरुं निर्वपेद्यः कामयेत् रसंवान्थस्यामित्युग्निमेव रसंवन्तु स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैन रसंवन्तं करोति (१८)

रसंवानेव भंवत्यजिक्षीरे भंवत्याग्नेयी वा एषा यद्जा साक्षादेव रसमवंरुन्धेऽग्नये वसुंमते पुरोडाशम्ष्टाकंपालं निर्विपद्यः कामयेत् वसुंमान्थ्स्यामित्यग्निमेव वसुंमन्त् इ स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेनं वसुंमन्तं करोति वसुंमानेव भंवत्यग्नये वाज्मते पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं निर्विपेथ्सङ्गामे सं यत्ते वाजं (१९)

वा एष सिंसीर्षित यः संङ्ग्रामं जिगीषत्यग्निः खलु वै देवानां वाज्रसृद्ग्निमेव वाज्रसृत्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित धावित वाज्र् हिन्तं वृत्रं जयिति तर संङ्ग्राममथीं अग्निरिव न प्रतिधृषे भवत्यग्नयेऽग्निवतं पुरोडाशंम्ष्टाकंपालं निर्वेपेद्यस्याग्नावृग्निमंभ्युद्धरेयुर्निर्दिष्टभागो वा एतयोर्न्यो-ऽनिर्दिष्टभागोऽन्यस्तौ सम्भवन्तौ यर्जमान- (२०)

म्भिसम्भंवतः स ईंश्वर आर्तिमार्तोर्यद्ग्रयेंऽग्निवतें निर्वपंति भाग्धेयेंनैवैनौं शमयति नार्तिमार्छति यर्जमानो-

ऽग्रये ज्योतिष्मते पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेद्यस्याग्निरुद्धतो-ऽहुंतेऽग्निहोत्र उद्वायेदपंर आदीप्यांनूद्धृत्य इत्यांहुस्तत्तथां न कार्यं यद्भागधेयंमभि पूर्वं उद्भियते किमपंरोऽभ्यु- (२१)

द्धियेतेति तान्येवावक्षाणांनि सन्निधायं मन्थेदितः प्रथमं जंज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरिधं जातवेदाः। स गांयत्रिया त्रिष्टुभा जगत्या देवेभ्यों हव्यं वहतु प्रजानन्निति छन्दोंभिरेवैन् इ स्वाद्योनुः प्रजनयत्येष वाव सौंऽग्निरित्यांहुर्ज्योतिस्त्वा अस्य परांपतितमिति यदग्रये ज्योतिंष्मते निर्वपंति यदेवास्य ज्योतिः परापतितं तदेवावंरुन्धे॥ (२२)

क्रोत्यन्नादो देधाति यद्ग्रये शुचेये चक्षेरेवास्मिन्तेन दधाति करोति वाजं यर्जमानुमुदेवास्य

वैश्वानरं द्वादंशकपालं निर्वपेद्वारुणं चरुं दंधिकावणे चरुमंभिशस्यमानो यद्वैश्वानुरो द्वादंशकपालो भवंति संवथ्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवथ्सरेणैवैन ई स्वदयत्यपं पापं वर्ण १ हते वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्म्ं श्चिति दधिकाळणां पुनाति हिरंण्यं दक्षिणा पवित्रं वै हिरंण्यं पुनात्येवैनमार्द्यमस्यान्नं भवत्येतामेव निर्वपेत्प्रजाकामः

संवथ्सरो (२३)

वा एतस्याशाँनतो योनिं प्रजाये पशूनां निर्देहित योऽलं प्रजाये सन्प्रजां न विन्दते यहैं श्वानरो द्वादेशकपालो भवंति संवथ्सरो वा अग्निर्वेश्वानरः संवथ्सरमेव भाग्धेयेन शमयित् सौंऽस्मे शान्तः स्वाद्योनैंः प्रजां प्रजनयित वारुणेनैवेनं वरुणपाशान्मुंश्वित दिधेकाव्णां पुनाति हिरंण्यं दिक्षणा पवित्रं वै हिरंण्यं पुनात्येवैनं (२४)

विन्दतें प्रजां वैश्वान् द्वादंशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते यद्ष्टाकंपालो भवंति गायित्रयेवैनं ब्रह्मवर्चसेनं पुनाति यन्नवंकपालिख्निवृत्वास्मिन्तेजो दधाति यद्दशंकपालो विराज्वास्मिन्नन्नाद्यं दधाति यदेकांदशकपालिख्निष्टुभैवा-स्मिन्निन्द्रयं दधाति यद्वादंशकपालो जगंत्यैवास्मिन्पशून्दं-धाति यस्मिंआत एतामिष्टिं निर्वपंति पूत - (२५) एव तेजस्व्यंन्नाद इंन्द्रियावी पंश्मान्भंवत्यव वा

एव तेज्स्व्यंत्राद इंन्द्रियावी पंशुमान्भंवत्यव वा एष सुंवर्गाल्लोकाच्छिंद्यते यो देर्शपूर्णमासयाजी सन्नंमावास्यां वा पौर्णमासीं वांऽतिपादयंति सुवर्गाय हि लोकायं दर्शपूर्णमासाविज्येते वैश्वान्रं द्वादंशकपालं निर्वपेदमावास्यां वा पौर्णमासीं वांऽतिपाद्यं संवथ्सरो वा अग्निवैश्वानरः संवथ्सरमेव प्रीणात्यथो संवथ्सरमेवास्मा उपंदधाति सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्या (२६)

अथों देवतां एवान्वारभ्यं सुवृगं लोकमेति वीर्हा वा एष देवानां योऽग्निमुंद्वासयंते न वा एतस्यं ब्राह्मणा ऋंतायवंः पुराऽन्नंमक्षन्नाग्नेयमृष्टाकंपालं निर्वपेद्वैश्वान्रं द्वादंशकपालमृग्निमुंद्वासियृष्यन् यदृष्टाकंपालो भवंत्यृष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रौंऽग्निर्यावांनेवाग्निस्तस्मां आतिथ्यं कंरोत्यथो यथा जनं यतेऽवसं करोतिं ताद्द- (२७)

गेव तद्वादंशकपालो वैश्वान्रो भंवति द्वादंश मासाः संवथ्यरः संवथ्यरः खलु वा अग्नेर्योनिः स्वामेवैनं योनिं गमयत्याद्यंमस्यान्नं भवति वैश्वान्रं द्वादंश-कपालं निर्वपन्मारुत स्पप्तकंपालं ग्रामंकाम आहवनीयं वैश्वान्रमधिश्रयति गार्हंपत्ये मारुतं पापवस्यसस्य विधृत्ये द्वादंशकपालो वैश्वान्रो भंवति द्वादंश मासाः संवथ्यरः संवथ्यरेणेवासमें सजाता इश्च्यांवयित मारुतो भंवति (२८) मरुतो वै देवानां विशो देवविशेनैवासमें मनुष्यविशमवं-

रुन्थे सप्तर्कपालो भवति सप्तर्गणा वै मुरुतो गणश एवास्मैं सजातानवंरुन्थेऽनूच्यमान् आसादयति विशंमेवास्मा अनुवर्त्मानं करोति॥ (२९)

प्रजाकांमः संवथ्सरः पुनात्येवैनं पूतः समेष्ठ्ये तादङ्कांरुतो भवत्येकान्नत्रिष्टशर्च॥——[५]

आदित्यं चरुं निर्वपेथ्सङ्ग्राममुपप्रयास्यन्नियं वा अदितिर्स्यामेव पूर्वे प्रतितिष्ठन्ति वैश्वान्रं द्वादंश-कपालं निर्वपेदायतनं गृत्वा संवथ्सरो वा अग्निर्वेश्वान्रः संवथ्सरः खलु वे देवानांमायतंनमेतस्माद्वा आयतंनाद्देवा असुरानजयन् यद्वैश्वान्रं द्वादंशकपालं निर्वपंति देवानां-मेवाऽऽयतंने यतते जयंति त॰ संङ्ग्राममेतस्मिन्वा एतौ मृजाते (३०)

यो विद्विषाणयोरन्नमित्तं वैश्वान्रं द्वादंशकपालं निर्वपिद्विद्विषाणयोरन्नं जुग्ध्वा संवथ्सरो वा अग्निर्वेश्वान्रः संवथ्सरस्वंदितमेवात्ति नास्मिन्मृजाते संवथ्सराय वा एतौ सममाते यौ संममाते तयोर्यः पूर्वोऽभिद्रह्यंति तं वर्रुणो गृह्णाति वैश्वान्रं द्वादंशकपालं निर्वपेथ्सममानयोः पूर्वोऽभिद्रह्यं संवथ्सरो वा अग्निर्वेश्वान्रः संवथ्सरमेवाऽऽस्वा निर्वरुणम् (३१)

प्रस्तांद्भिद्रंह्यति नैनं वर्रुणो गृह्णात्याव्यं वा एष प्रतिगृह्णाति योऽविं प्रतिगृह्णातिं वैश्वान्रं द्वादंश-कपालं निर्वपेदविं प्रतिगृह्यं संवथ्सरो वा अग्निर्वेश्वान्रः संवथ्सरस्वंदितामेव प्रतिगृह्णाति नाव्यं प्रतिगृह्णात्यात्मनो वा एष मात्रांमाप्नोति य उभ्यादंत्प्रतिगृह्णात्यश्वं वा पुरुषं वा वैश्वानरं द्वादंशकपालं निर्वपेदुभ्यादंत् (३२)

प्रतिगृह्यं संवथ्सरो वा अग्निवैश्वानरः संवथ्सरस्वंदितमेव प्रतिगृह्णाति नाऽऽत्मनो मात्रांमाप्नोति वैश्वानरं द्वादंशकपालं निवंपेथ्सनिमेष्यन्थ्संवथ्सरो वा अग्निवैश्वानरो यदा खलु वै संवथ्सरं जनतांयां चर्त्यथ् स धंनार्घो भंवति यद्वैश्वानरं द्वादंशकपालं निवंपंति संवथ्सरसातामेव सनिम्भि प्रच्यंवते दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्ति यो वै संवथ्सरं (३३)

प्रयुज्य न विंमुअत्यंप्रतिष्ठानो वै स भंवत्येतमेव वैंश्वान्रं पुनंरागत्य निर्वपेद्यमेव प्रयुङ्के तं भांगुधेयेन विम्ंअति प्रतिष्ठित्यै यया रज्ञोंत्तमां गामाजेत्तां भ्रातृंव्याय प्रहिंणुयान्निर्ऋतिमेवास्मै प्रहिंणोति॥ (३४)

निर्व्रुणं वंपेदुभ्याद्द्यो व संवथ्सर षद्गिरश्चा॥——[६]

ऐन्द्रं चुरुं निर्विपेत्पशुकाम ऐन्द्रा वै पृशव इन्द्रमेव
स्वेन भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मै पृश्नुन्प्रयच्छति

पशुमानेव भेवति चुरुर्भविति स्वादेवास्मै योनैंः पशून्प्रजंनयतीन्द्रांयेन्द्रियावते पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्विपत्पशुकांम इन्द्रियं वै पृशव इन्द्रंमेवेन्द्रियावंन्त् स्वेनं भागधेयेनोपं धावित स - (३५)

प्वास्मां इन्द्रियं प्रशून्प्रयंच्छति पशुमानेव भंवतीन्द्रांय घर्मवंते पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपद्वह्मवर्च्सकांमो ब्रह्मवर्च्सं वै घर्म इन्द्रंमेव घर्मवन्त्र स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स प्वास्मिन्ब्रह्मवर्च्सं दंधाति ब्रह्मवर्च्स्यंव भंवतीन्द्रांयार्कवंते पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेदन्नंकामो-ऽर्को वै देवानामन्नुमिन्द्रंमेवार्कवंन्त् स्वेनं भाग्धेये- (३६) नोपंधावति स एवास्मा अन्नं प्रयंच्छत्यन्नाद

नोपंधावित स एवास्मा अन्नं प्रयंच्छत्यन्नाद एव भंवतीन्द्रांय घुर्मवंते पुरोडाशुमेकांदशकपालं निर्वपेदिन्द्रांयेन्द्रियावंत इन्द्रांयार्कवंते भूतिंकामो यदिन्द्रांय घर्मवंते निर्वपंति शिरं एवास्य तेनं करोति यदिन्द्रांयेन्द्रियावंत आत्मानंमेवास्य तेनं करोति यदिन्द्रांयार्कवंते भूत एवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति भवत्येवेन्द्रांया- (३७)

रहोमुचे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेद्यः पाप्मनां गृहीतः स्यात्पाप्मा वा अरुह् इन्द्रमेवारहोमुच्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स पृवैनं पाप्मनोऽरुहंसो मुश्रुतीन्द्रांय वैमुधायं पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेद्यं मृधोऽभि प्रवेपेरन्नाष्ट्राणि वाऽभिसंमियुरिन्द्रमेव वैमृधइ स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवास्मान्मृधो (३८)

ऽपंहुन्तीन्द्रांय त्रात्रे पुंरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेद्वद्धो वा परियत्तो वेन्द्रंमेव त्रातार्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेनं त्रायत् इन्द्रांयाकिश्वमेधवंते पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेद्यं महायज्ञो नोपूनमेदेते वे महायज्ञस्यान्त्ये तन् यदंकिश्वमेधाविन्द्रंमेवाकिश्वमेधवंन्त्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मां अन्ततो महायज्ञं च्यांवयत्युपैनं महायज्ञो नंमित॥ (३९)

इन्द्रियावंन्तु स्वेनं भागुधेयेनोपं धावित सौंऽर्कवंन्तु स्वेनं भागुधेयेंनैवेन्द्रांयास्मान्मृधौंऽस्मै

इन्द्रायान्वृंजवे पुरोडाशमेकांदशकपालं निर्वपेद्ग्रामंकाम

इन्द्रमेवान्वृंजु इस्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवासमैं सजाताननुंकान्करोति ग्राम्येव भवतीन्द्राण्ये चरुं निर्वपेद्यस्य सेनाऽस रशितेव स्यादिन्द्राणी वै सेनांयै देवतेंन्द्राणीमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति सैवास्य सेना स स इयंति बल्बंजानपी- (४०)

द्धो सन्नह्येद्गौर्यत्राधिष्कन्ना न्यमेंहत्ततो बल्बंजा उदंतिष्ठन्गवांमेवैनं न्यायमंपिनीय गा वेदयतीन्द्रांय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकांदशकपालं निर्वपेथ्सङ्ग्रामे सं यंत्त इन्द्रियेण वै मन्युना मनसा सङ्ग्रामं जयतीन्द्रमेव मन्युमन्तं मनंस्वन्तु इ स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मृन्युं मनों दधाति जयंति तम् (४१)

सङ्ग्राममेतामेव निर्वपेद्यो हतमेनाः स्वयं पाप इव स्यादेतानि हि वा एतस्मादपंत्रान्तान्यथैष हतमनाः स्वयं पाप इन्द्रमेव मन्युमन्तं मनस्वन्त्र स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स पुवास्मिन्निन्द्रियं मृन्युं मनों दधाति न हतमनाः

स्वयं पापो भवतीन्द्रांय दात्रे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत दानंकामा मे प्रजाः स्यु (४२)

रितीन्द्रंमेव दातार्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मै दानंकामाः प्रजाः कंरोति दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्तीन्द्रांय प्रदात्रे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेद्यस्मै प्रत्तंमिव सन्न प्रंदीयेतेन्द्रंमेव प्रंदातार्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मै प्रदापयतीन्द्रांय सुत्राम्णे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेदपंरुद्धो वा (४३)

ऽपरुद्धमानो वेन्द्रमेव सुत्रामाण्ड् स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैनं त्रायतेऽनपरुद्धो भंवतीन्द्रो वै सदङ् देवतांभिरासीथ्स न व्यावृतंमगच्छ्थ्स प्रजापंतिमुपां-धावत्तस्मां एतमैन्द्रमेकांदशकपालं निरंवपत्तेनैवास्मिंन्निन्द्रिय-मंदधाच्छकंरी याज्यानुवाक्ये अकरोद्वज्रो वै शकंरी स एनं वज्रो भूत्यां ऐन्ध (४४)

सोऽभव्थ्सोऽबिभेद्भूतः प्र मां धक्ष्यतीति स प्रजापंतिं पुन्रुपांधाव्थ्स प्रजापंतिः शक्कंर्या अधि रेवतीं निरंमिमीत् शान्त्या अप्रंदाहाय योऽलई श्रियै सन्थ्सदङ्ख्संमानैः स्यात्तस्मां पृतमैन्द्रमेकांदशकपालुं निर्वपेदिन्द्रंमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं दंधाति रेवतीं पुरोनुवाक्यां भवति शान्त्या अप्रदाहाय शक्वंरी याज्यां वज्रो वै शक्वंरी स एनं वज्रो भूत्यां इन्धे भवत्येव॥ (४५)

अपि तः स्युर्वेन्य भवति चतुर्दश च॥———[८] आग्नावैष्णवमेकादकपालं निर्वपेदभिचर्न्थ्सरंस्वत्याज्यं-

आश्रावण्यवमकादकपाल निवपदामुचर्न्थ्सरस्वत्याज्य-भागा स्याद्वांर्हस्पत्यश्चरुर्यदांग्नावेष्ण्व एकांदशकपालो भवंत्यग्निः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञो देवतांभिश्चैवेनं यज्ञेनं चाभिचंरित सरंस्वत्याज्यंभागा भवित वाग्वै सरंस्वती वाचैवेनंमभिचंरित बार्हस्पत्यश्चरुर्भवित ब्रह्म वै देवानां बृहस्पितुर्ब्बह्मंणैवेनंमभिचंरित (४६)

प्रति वे प्रस्तांदिभ्चरंन्तम्भिचंरिन्त द्वेद्वे पुरोनुवाक्यें कुर्यादितिप्रयंक्त्या एतयैव यंजेताभिचर्यमांणो देवतांभिरेव देवतांः प्रतिचरंति यज्ञेनं यज्ञं वाचा वाचं ब्रह्मणा ब्रह्म स देवतांश्चेव यज्ञं चं मद्ध्यतो व्यवंसपिति तस्य न कुतंश्चनोपांच्याधो भंवति नैनंमिभ्चरंन्थ्स्तृणुत आग्नावैष्ण्वमेकांदशकपालं निर्वपेद्यं यज्ञो न (४७)

उपनमंदिशिः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञौऽशिं चैव विष्णुं च् स्वेन भाग्धेयेनोपं धावति तावेवास्मै यज्ञं प्रयंच्छत् उपैनं यज्ञो नेमत्याग्नावैष्ण्वं घृते चुरुं निर्विप्चक्षुंष्कामोऽग्नेर्वे चक्षुंषा मनुष्यां वि पंश्यन्ति यज्ञस्यं देवा अग्निं चैव विष्णुं च स्वेनं भागधेयेनोपं धावति तावेवा- (४८)

स्मिश्रक्षंधित्तश्रक्षंष्मानेव भंवति धेन्वे वा एतद्रेतो यदाज्यंमन्डुहंस्तण्डुला मिथुनादेवास्मै चक्षुः प्रजनयति घृते भंवति तेजो वे घृतं तेज्ञश्रक्षुस्तेजंसैवास्मै तेज्ञश्रक्षुरवंरुन्थ इन्द्रियं वे वीर्यं वृङ्के भ्रातृंव्यो यजंमानो-ऽयंजमानस्याद्धरकंल्पां प्रति निर्वेपेद्भातृंव्ये यजंमाने नास्यैन्द्रियं (४९)

वीर्यं वृङ्के पुरा वाचः प्रवंदितोर्निवंपेद्यावंत्येव वाक्तामप्रोदितां भ्रातृंव्यस्य वृङ्के तामंस्य वाचं प्रवदंन्तीम्न्या वाचोऽनु प्रवंदन्ति ता इंन्द्रियं वीर्यं यजंमाने दधत्याग्नावैष्ण्व-मृष्टाकंपालं निवंपेत्प्रातः सवनस्यांकाले सरंस्वत्याज्यंभागा स्याद्वांर्हस्पत्यश्चरुर्यदृष्टाकंपालो भवंत्यृष्टाक्षंरा गायुत्री गायत्रं प्रांतः सव्नं प्रांतः सव्नमेव तेनां ऽऽप्रो- (५०)

त्याग्नावैष्ण्वमेकांदशकपालं निर्वपेन्माद्धंन्दिनस्य सर्वनस्याकाले सरंस्वत्याज्यंभागा स्याद्वांर्हस्पत्यश्चरुर्यदेकां-दशकपालो भवत्येकांदशाक्षरा त्रिष्ठुत्रेष्टुंभूं माद्धंन्दिन् संवनं माद्धंन्दिनमेव सर्वनं तेनांऽऽप्नोत्याग्नावैष्ण्वं द्वादंशकपालं निर्वपेत्तृतीयसवनस्यांकाले सरंस्वत्याज्यंभागा स्याद्वांर्ह-स्पत्यश्चरुर्यद्वादंशकपालो भवंति द्वादंशाक्षरा जगंती जागंतं तृतीयसवनं तृतीयसवनमेव तेनांऽऽप्नोति देवतांभिरेव देवतांः (५१)

प्रतिचरित युज्ञेनं युज्ञं वाचा वाचं ब्रह्मंणा ब्रह्मं कृपालेरेव छन्दाईस्याप्नोति पुरोडाशैः सर्वनानि मैत्रावरुणमेकंकपालं निर्वपद्वशाये काले येवासो भ्रातृंव्यस्य वृशाऽनूंबन्थ्यां सो पृवैषेतस्यैकंकपालो भवति निह कृपालैः पृशुमर्हृत्यासुम्॥ (५२)

ब्रह्मंणैवैनंम्भिचंरित युज्ञो न तावेवास्यैन्द्रियमाँप्रोति देवताः सप्तित्रि १ शच। १। ॥——[९]

असार्वादित्यो न व्यंरोचत् तस्मै देवाः प्रायंश्चित्ति-मैच्छुन्तस्मां पुतः सोमारौद्रं चुरुं निरंवपुन्तेनैवास्मिन्नुचंमद- धुर्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तस्मां एतः सोमारौद्रं चरुं निर्वपृथ्सोमं चैव रुद्रं च स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मिन्ब्रह्मवर्चसन्धंत्तो ब्रह्मवर्चस्थेव भविति तिष्यापूर्णमासे निर्वपेद्रुद्रः (५३)

वै तिष्यः सोमः पूर्णमांसः साक्षादेव ब्रह्मवर्च्समवंरुन्धे परिश्रिते याजयित ब्रह्मवर्च्सस्य परिगृहीत्यै श्वेतायै श्वेतवंथ्साये दुग्धं मंथितमाज्यं भवत्याज्यं प्रोक्षंणमाज्यंन मार्जयन्ते यावंदेव ब्रह्मवर्च्सं तथ्सर्वं करोत्यितं ब्रह्मवर्च्सं क्रियत् इत्यांहरीश्वरो दुश्चर्मा भवितोरिति मान्वी ऋचौं धाय्ये कुर्याद्यद्वै किं च मनुरवंदत्तद्वेषजम् (५४)

भेषजमेवास्मैं करोति यदिं बिभीयाद्दुश्चर्मां भविष्यामीतिं सोमापौष्णं चुरुं निर्वपेथ्सौम्यो वै देवत्या पुरुषः पौष्णाः पृशवः स्वयैवास्मैं देवत्या पृशुभिस्त्वचं करोति न दुश्चर्मां भवति सोमारौद्रं चुरुं निर्वपेत्प्रजाकांमः सोमो वै रेतोधा अग्निः प्रजानां प्रजनयिता सोमं एवास्मै रेतो दधांत्यग्निः प्रजां प्रजनयति विन्दते (५५) प्रजार सोमारौद्रं चुरुं निर्वपेदिभिचरंन्थ्सौम्यो वै देवतंया पुरुष एष रुद्रो यद्ग्निः स्वायां पृवैनं देवतांयै निष्क्रीयं रुद्रायापि दधाति ताजगार्तिमार्च्छति सोमारौद्रं चुरुं निर्वपेद्योगांमयावी सोमं वा पृतस्य रसो गच्छत्यग्निर शरीरं यस्य ज्योगामयंति सोमादेवास्य रसंनिष्क्रीणात्यग्नेः शरीरमृत यदि (५६)

इतासुर्भवंति जीवंत्येव सोमारुद्रयोवां एतङ्ग्रंसित होता निष्यिंदित स ईंश्वर आर्तिमार्तोरनुङ्गान् होत्रा देयो वहिवां अनुङ्गान् वहिर्होता वहिनेव वहिमात्मान एएणोति सोमारौद्रं च्रुं निर्वपेद्यः कामयेत् स्वेंऽस्मा आयतेने भ्रातृंव्यं जनयेयमिति वेदिं परिगृह्यार्द्धमुद्धन्याद्र्द्धन्नार्द्धं बर्हिषंः स्तृणीयाद्र्द्धं नार्द्धमिद्धास्याभ्याद्द्धाद्र्द्धं न स्व एवास्मां आयतेने भ्रातृंव्यं जनयति॥ (५७)

रुद्रो भेषुजं विन्दते यदिं स्तृणीयादुर्द्धं द्वादंश च॥————[१०]

ऐन्द्रमेकांदशकपालं निर्विपेन्मारुत सप्तकंपालं ग्रामंकाम् इन्द्रश्चैव मुरुतंश्च स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति त एवास्मै सजातान्प्रयेच्छन्ति ग्राम्येव भवत्याहवनीयं ऐन्द्रमधिश्रयति गार्हंपत्ये मारुतं पांपवस्यसस्य विधृत्ये सप्तकंपालो मारुतो भंवति सप्तगंणा वै मुरुतो गणुश एवास्मै सजातानवंरुन्थे-ऽनूच्यमान आसांदयति विशंमेव (५८)

अस्मा अनुंवर्त्मानं करोत्येतामेव निर्वपेद्यः कामयेत क्षत्रायं च विशे चं समदंन्दद्धामित्यैन्द्रस्यांवद्यन्त्रूंयादिन्द्रायानुं ब्रूहीत्याश्राव्यं ब्रूयान्म्रुतां यजेतिं मारुतस्यांवद्यन्त्रूंयान्म्रुद्धो-ऽनुंब्रूहीत्याश्राव्यं ब्रूयादिन्द्रं यजेति स्व एवैभ्यां भाग्धेयं समदन्दधाति वितृ इं।णास्तिष्ठन्त्येतामेव (५९)

निर्वपेद्यः कामयेत् कल्पेर्निति यथादेवतमंवदायं यथादेवतं यंजेद्धाग्धेयेनैवैनान् यथायथं कंल्पयित् कल्पंन्त एवैन्द्रमेकांदशकपालं निर्वपेद्धैश्वदेवं द्वादंशकपालं ग्रामंकाम् इन्द्रंश्चैव विश्वारंश्च देवान्थ्स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित् त एवास्मे सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्येव भंवत्यैन्द्रस्यांवदायं वैश्वदेवस्यावंद्येदथैन्द्रस्यं (६०)

उपरिष्टादिन्द्रियेणैवास्मां उभ्यतः सजातान्परि-गृह्णात्युपाधाय्यंपूर्वयं वासो दक्षिणा सजातानामुपिहित्यै पृश्जिये दुग्धे प्रैयंङ्गवं चुरुं निर्वपेन्मुरुद्धो ग्रामंकामः पृश्जियै वै पयंसो मुरुतों जाताः पृश्चिये प्रियङ्गंवो मारुताः खलु वै देवतंया सजाता मुरुतं एव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति त एवास्में सजातान्प्रयंच्छन्ति ग्राम्यंव भंवति प्रियवंती याज्यानुवाक्यें (६१)

भ्वतः प्रियमेवेन र समानानां करोति द्विपदां पुरोनुवाक्यां भवति द्विपदं पुवावंरुन्धे चतुंष्पदा याज्यां चतुंष्पद एव प्रान्वंरुन्धे देवासुराः सं यंत्ता आस्नते देवा मिथो विप्रिया आस्नते ईऽन्योंन्यस्मै ज्यैष्ठग्रायातिष्ठमानाश्चतुर्धा व्यंक्रामन्नुग्निर्वसुंभिः सोमों रुद्रैरिन्द्रों मुरुद्धिर्वरुंण आदित्यैः स इन्द्रः प्रजापंतिमुपांधावत्तम् (६२)

पुत्रयां स्ज्ञान्यांऽयाजयद्ग्रये वसुंमते पुरोडाशंमृष्टा-कंपालं निरंवपृथ्सोमांय रुद्रवंते च्रुमिन्द्रांय मुरुत्वंते पुरोडाश्मेकांदशकपालं वरुणायाऽऽदित्यवंते च्रुन्ततो वा इन्द्रं देवा ज्येष्ठ्यांयाभि समंजानत् यः संमानैर्मिथो विप्रियः स्यात्तमेतयां स्ज्ञान्यां याजयेद्ग्रये वसुंमते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपृथ्सोमांय रुद्रवंते च्रुमिन्द्रांय मुरुत्वंते पुरोडाश्मेकांदशकपालं वरुणायाऽऽदित्यवंते च्रुमिन्द्रंमेवेनं भूतअयैष्ठाय समाना अभिसञ्जानते वसिष्ठः समानानां भवति॥ (६३)

विशंमेव तिष्ठन्त्येतामेवाथैन्द्रस्यं याज्यानुवाक्यं तं वर्रुणाय चतुर्दश च॥———[११]

हिर्ण्यगर्भ आपों ह् यत्प्रजांपते। स वेंद पुत्रः पितर् समातर् स सूनुर्भुव्थ्स भुंवत्पुनंभिषः। स द्यामौर्णोद्न्तिरिक्ष् स सुवः स विश्वा भुवो अभव्थ्स आऽभंवत्। उदुत्यश्चित्रम्। सप्रंत्ववन्नवीयसाऽग्नै द्युम्नेनं सं यतां। बृहत्तंतन्थ भानुनां। निकाव्यां वेधसः शश्वंतस्कर्हस्ते दर्धानः (६४)

नर्या पुरूणि। अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणा स्त्रा चंक्राणो अमृतांनि विश्वां। हिरंण्यपाणिमूतये सिवतार्मुपं ह्वये। स् चेत्तां देवतां पदम्। वामम्द्य संवितर्वामम् श्वो दिवेदिवे वामम्स्मभ्य सावीः। वामस्य हि क्षयंस्य देव भूरेंर्या धिया वाम्माजंः स्याम। बिहत्था पर्वतानाङ्क्षिद्धं बिभर्षि पृथिवि। प्र या भूमि प्रवत्वति मृहा जिनोषि (६५)

मृहिनि। स्तोमांसस्त्वा विचारिणि प्रतिष्टोभन्त्युक्तुभिः। प्र या वाजुन्न हेर्षन्तं पे्रमस्यंस्यर्जुनि। ऋदूदरेण सख्यां सचेय यो मा न रिष्येंद्धर्यश्व पीतः। अयं यः सोमो न्यधांय्यसमे तस्मा इन्द्रं प्रतिरंमेम्यच्छं। आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमा ऋजीषी। सोमो विश्वान्यत्सा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः। प्र (६६)

सुवानः सोमं ऋत्युश्चिकेतेन्द्रांय ब्रह्मं ज्ञमदेग्निरर्चन्नं। वृषां यन्तासि शवंसस्तुरस्यान्तर्यंच्छ गृण्ते धृत्रं दृ है। स्बाधंस्ते मदेश्च शुष्म्यं च ब्रह्म नरों ब्रह्मकृतः सपर्यन्न्। अर्को वा यत्तुरते सोमंचक्षास्तत्रेदिन्द्रों दधते पृथ्सु तुर्याम्। वषंद्रे विष्णवास आ कृणोमि तन्में जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्। (६७)

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरों मे यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः। प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शर्सामि वयुनांनि विद्वान्। तं त्वां गृणामि त्वस्मतंवीयान्क्षयंन्तम्स्य रजंसः पराके। किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्रयद्वंवक्षे शिपिविष्टो अस्मि। मा वर्षो अस्मदपंगूह एतद्यदन्यरूपः सिम्थे बभूथं। (६८)

अग्ने दा दाशुषे र्यिं वीरवंन्तं परीणसम्। शिशीहि नंः

सूनुमतंः। दा नों अग्ने शृतिनो दाः संहुस्निणों दुरो न वाज् क्ष्रुत्या अपांवृधि। प्राची द्यावांपृथिवी ब्रह्मणा कृधि सुवर्ण शुक्रमुषसो विदिद्युतुः। अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रां सनोतिं। अग्निर्दिवि ह्व्यमातंतानाग्नेर्धामांनि विभृता पुरुत्रा। मा (६९)

नो मर्द्धीरा तू भेर। घृतं न पूतं तुनूरेरेपाः शुचि हिरंण्यम्। तत्ते रुक्भो न रोचत स्वधावः। उभे सुश्चन्द्र सूर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसिनं। उतो न उत्पूर्पूर्या उक्थेषुं शवसस्पत इष स्तोतृभ्य आ भेर। वायो शृत हरीणां युवस्व पोष्यांणाम्। उत वां ते सहस्रिणो रथ आ यांतु पार्जसा। प्र याभिः (७०)

यासिं दाश्वाश्समच्छां नियुद्धिर्वायिष्टिये दुरोणे। नि नो रियश् सुभोजंसं युवेह नि वीरवृद्धव्यमिश्वयं च राधः। रेवर्तीनः सधमाद इन्द्रें सन्तु तुविवांजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम। रेवाश् इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावंतो मुघोनः। प्रेद्रं हरिवः श्रुतस्यं॥ (७१)

जिनोषिं देभुः प्र हुव्यं बुभूथ् मा याभिंश्चत्वारि्र्शचं॥॥———[१२]

प्रजापित्स्ताः सृष्टा अन्नये पिथुकृतेऽन्नये कामायान्नयेऽन्नवते वैश्वान्रमादित्यं चरुमैन्द्रं चरुमिन्द्रायान्वृजव आन्नावैष्णवमुसौ

सोमारोड्रमेन्द्रमेकांदशकपाल॰ हिरण्यगुर्भो द्वादंश॥ (१२) प्रजापंतिरुग्नये कामांयाभि सम्भंवतो यो विद्विषाणयोरिब्हो सन्नेहोदाग्नावैष्ण्वमुपरिष्टाद्यासिं दाश्वा॰स्मेकंसप्ततिः॥ (७१) प्रजापंतिः प्रेदुं हरिवः श्रुतस्यं॥

आदित्येभ्यां देवा वे मृत्योर्देवा वे सुत्रमंर्युम्णे प्रजापंतुश्चयंश्चिश्शात्प्रजापंतिर्देवभ्योऽत्राद्यंन्देवासुगस्तात्रजंनो द्भृवांऽस् यत्रवंमुप्तिं वे प्रजापंतिर्वरुंणाय् या वांमिन्द्रावरुणा् सप्त्रंबवचतुंदंश॥14॥ आदित्येभ्युस्त्वष्टुंग्रस्मे दानंकामा एवावंरुन्येऽप्तिं वे सप्तंबवय्यदंश्चाशत्॥56॥ आदित्येभ्युः सुवंगुपो जिंगाय॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

आदित्येभ्यो भुवंद्वज्रश्चरं निवंपेद्भूतिकाम आदित्या वा एतम्भूत्ये प्रति नुदन्ते योऽलम्भूत्ये सन्भूतिं न प्राप्नोत्यांदित्यानेव भुवंद्वतः स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवेनम्भूतिं गमयन्ति भवंत्येवाऽऽदित्येभ्यो धारयंद्वज्ञश्चरं निवंपेदपंरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वाऽऽदित्या वा अंपरोद्धारं आदित्या अंवगमयितारं आदित्यानेव धारयंद्वतः (१)

स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति त एवैनं विशि दाँध्रत्यनपरुध्यो भंवत्यदितेऽनुं मन्यस्वेत्यंपरुध्यमानोऽस्य पदमा दंदीतेयं वा अदितिरियमेवास्में राज्यमनुं मन्यते सत्याशीरित्यांह सत्यामेवाशिषं कुरुत इह मन् इत्यांह प्रजा एवास्मै समनसः करोत्युप प्रेतं मरुतः (२)

सुदान्व एना विश्पतिनाभ्यंमु राजानिमत्यांह मारुती वै विद्धोष्ठो विश्पतिर्विशैवन रे राष्ट्रेण समर्धयित यः प्रस्तांद्वाम्यवादी स्यात्तस्यं गृहाद्वीहीना हंरेच्छुक्का इश्चं कृष्णा इश्च वि चिनुयाद्ये शुक्काः स्युस्तमांदित्यं च्रं निर्विपदादित्या वै देवतंया विड्विशंमेवावं गच्छति (३)

अवंगतास्य विडनंवगतः राष्ट्रमित्यांहुर्ये कृष्णाः स्युस्तं वारुणं चुरुं निर्वपद्वारुणं वै राष्ट्रमुभे एव विशं च राष्ट्रं चावं गच्छति यदि नावगच्छेदिममहमादित्येभ्यों भागं निर्वपाम्यामुष्मांदमुष्यै विशोऽवंगन्तोरिति निर्वपदादित्या एवैनंम्भाग्धेयंम्य्रेफ्सन्तो विश्वमवं (३)

ग्म्यन्ति यदि नाव्गच्छेदाश्वंत्थान्म्यूखांन्थ्स्प्त मध्यमेषायामुपं हन्यादिदम्हमांदित्यान्बंध्राम्यामुष्मांदमुष्यें विशोऽवंगन्तोरित्यांदित्या एवेनंम्बद्धवीरा विश्वमवं गमयन्ति यदि नाव्गच्छेदेतमेवाऽऽदित्यं चुरुं निर्वपेदिध्मेऽपिं मयूखान्थ्सं नंहोदनपरुध्यमेवावं गच्छत्याश्वंत्था भवन्ति मुरुतां वा एतदोजो यदंश्वत्थ ओजंसैव विश्वमवं गच्छिति सप्त भंवन्ति सप्तर्गणा वै मुरुतों गण्श एव विश्वमवं गच्छति॥ (५)

च्छिति॥ (५) धारयंद्वतो मरुतो गच्छत्वि विश्वमवैतदृष्टादंश च॥————[१]

देवा वै मृत्योरंबिभयुस्ते प्रजापंतिमुपांधावन्तेभ्यं पृताम्प्रांजापृत्याः शृतकृष्णलां निरंवपृत्तयैवेष्वमृतंमदधाद्यो मृत्योर्बिभीयात्तस्मां पृताम्प्रांजापृत्याः शृतकृष्णलां निर्वपेत्प्रजापंतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स पृवास्मिन्नायुंर्दधाति सर्वमायुंरेति शृतकृष्णला भवति शृतायुः पुरुषः शृतेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये (६)

प्रति तिष्ठति घृते भंवत्यायुर्वे घृतम्मृत् हिरंण्यमायुंश्चेवा-स्मां अमृतं च समीचीं दधाति चत्वारिचत्वारि कृष्णलान्यवं द्यति चतुरवृत्तस्यास्यां एकधा ब्रह्मण् उपं हरत्येक्षेव यजंमान् आयुंर्दधात्यसावांदित्यो न व्यंरोचत् तस्मै देवाः प्रायंश्चित्तिमेच्छन्तस्मां एत सोर्यं च्रं निरंवपन्तेनेवास्मि (७)

त्रुचंमदधुर्यो ब्रंह्मवर्च्सकांमः स्यात्तस्मां एतः सौर्यं चरुं निर्वपेदमुमेवाऽऽदित्यः स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित् स एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं दंधाति ब्रह्मवर्चस्येव भंवत्युभ्यतो

रुक्गौ भंवत उभयतं एवास्मिन्नुचं दधाति प्रयाजेप्रयाजे

कृष्णलं जुहोति दिग्भ्य पुवास्मैं ब्रह्मवर्च्समवं रुन्द्ध

आग्नेयमष्टाकंपालं निर्वपेथ्सावित्रं द्वादंशकपालम्भूम्यैं (८)

चुरुं यः कामयेत् हिरंण्यं विन्देय हिरंण्यम्मोपं नमेदिति यदाँग्नेयो भवत्याग्नेयं वै हिर्णयं यस्यैव हिर्णयं तेनैवैनंद्विन्दते सावित्रो भंवति सवितृप्रंसूत एवैनंद्विन्दते भूम्यै चुरुर्भवत्यस्यामेवैनिद्विन्दत् उपैनु हरेण्यं नमति वि वा एष इंन्द्रियेणं वीर्येणर्ध्यते यो हिरंण्यं विन्दतं एताम् (९) पुव निर्वपेद्धिरंण्यं वित्त्वा नेन्द्रियेणं वीर्येण व्यृध्यत पुतामेव निर्वपेद्यस्य हिरंण्यं नश्येद्यदाँग्नेयो भवंत्याग्नेयं वै हिरंण्यं यस्यैव हिरंण्यं तेनैवैनंद्विन्दति सावित्रो भंवति सवितृप्रंसूत एवेनंद्विन्दति भूम्ये चरुर्भवत्यस्यां वा एतन्नंश्यति यन्नश्यंत्यस्यामेवैनंद्विन्दतीन्द्रंः (१०)

त्वष्टुः सोमंमभीषहांपिब्थ्स विष्वङ्यांच्छ्यं इंन्द्रियेणं

सोमपीथेन व्यर्ध्यत् स यदूर्वमुदवंमीत्ते श्यामाकां अभवन्थ्स

प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एतः सोमेन्द्रः श्यामाकं चुरुं

इंन्द्रियेणं सोमपीथेनंध्यंते यः सोमं विमंति यः सोमवामी स्यात्तस्मैं (११)

एत सोमेन्द्र इयामाकं चरुं निर्वपेथ्सोमं चैवेन्द्रं च स्वेन भागधेयेनोपं धावति तावेवास्मिन्निन्द्रिय सोमपीथं धंत्तो नेन्द्रियेणं सोमपीथेन व्यृध्यते यथ्सौम्यो भवंति सोमपीथमेवावं रुन्धे यदैन्द्रो भवंतीन्द्रियं वै सोमपीथ इंन्द्रियमेव सोमपीथमवं रुन्द्धे श्यामाको भंवत्येष वाव स सोर्मः (१२)

साक्षादेव सोमपीथमवं रुन्द्धेऽग्नये दात्रे पुरोडाशम्षा-कंपालं निर्वपेदिन्द्रांय प्रदात्रे पुरोडाशमेकांदशकपालम् पशुकांमोऽग्निरेवास्में पशून्प्रंजनयंति वृद्धानिन्द्रः प्र यंच्छति दिध मधुं घृतमापों धाना भंवन्त्येतद्वै पंशूना रूप र रूपेणैव पशूनवं रुन्द्धे पश्चगृहीतम्भंवति पाङ्का हि पुशवों बहरूपम्भवति बहरूपा हि पशवंः (१३)

समृद्धौ प्राजापत्यम्भंवति प्राजापत्या वै पुशवंः प्रजापंतिरेवास्में पश्न्प्र जंनयत्यात्मा वै पुरुषस्य मधु यन्मध्वग्नौ जुहोत्यात्मानंमेव तद्यजंमानोऽग्नौ प्र दंधाति पङ्गौ याज्यानुवाको भवतः पाङ्कः पुरुषः पाङ्काः प्रशवं आत्मानमेव मृत्योर्निष्क्रीयं पुशूनवं रुन्द्धे॥ (१४)

ड्डन्द्रियेँऽस्मिन्भूम्यां एतामिन्द्रः स्यात्तस्मै सोमों बहुरूपा हि पृशव् एकंचत्वारिstश \equiv ॥ $\left[oldsymbol{2}
ight]$

देवा वे स्त्रमांस्तर्छिपिरिमितं यशंस्कामास्तेषा समेम् राजांनं यशं आर्च्छ्थ्स गिरिमुदैत्तम्ग्निरनूदैत्तावृग्नीषोमो समंभवतान्ताविन्द्रों यज्ञविंभृष्टोऽनु परैत्तावंब्रवीद्याजयंतम्मेति तस्मां एतामिष्टिं निरंवपतामाग्नेयम्ष्टाकंपालमैन्द्रमेकांदश-कपाल सौम्यं चरुन्तयैवास्मिन्तेर्जः (१५)

इन्द्रियम्ब्रंह्मवर्च्समंधत्तां यो यज्ञविभ्रष्टः स्यात्तस्मां पृतामिष्टिं निर्वपदाग्नेयमृष्टाकंपालमैन्द्रमेकांदशकपाल स्माम्यं च्रुं यदाँग्नेयो भवंति तेजं एवास्मिन्तेनं दधाति यदैन्द्रो भवंतीन्द्रियमेवास्मिन्तेनं दधाति यथ्मौम्यो ब्रह्मवर्चसं तेनाँग्नेयस्यं च सौम्यस्यं चैन्द्रे समाश्लेषयेत्तेजंश्लेवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं चं समीचीं (१६)

द्धात्यग्रीषोमीयमेकांदशकपालं निर्वेपेद्यं कामो नोपनमेंदाग्रेयो वै ब्राँह्मणः स सोमंम्पिबति स्वामेव देवता इ स्वेनं भागधेयेनोपं धावति सैवैनं कामेन समर्धयत्युपैनं कामों नमत्यग्नीषोमीयंमुष्टाकंपालं निर्वपद्गह्मवर्च्सकांमो-ऽग्नीषोमांवेव स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति तावेवास्मिन्ब्रह्मवर्च्सं धंत्तो ब्रह्मवर्चस्येव (१७)

भ्वति यद्ष्टाकंपालस्तेनांग्नेयो यच्छ्यांमाकस्तेनं सौम्यः समृंख्ये सोमांय वाजिनें श्यामाकं च्रुं निर्वपृद्धः क्रैव्यांद्विभीयाद्रेतो हि वा एतस्माद्वाजिनमपुक्रामृत्यथेष क्रैब्यांद्विभाय सोमंमेव वाजिन् स्वनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मिन्नेतो वाजिनं दधाति न क्रीबो भवति ब्राह्मणस्पत्यमेकांदशकपालं निर्वपद्वामंकामः (१८)

ब्रह्मण्स्पतिमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं सजातान्त्र येच्छति ग्राम्थेव भेवति गणवंती याज्यानुवाक्यें भवतः सजातैरेवैनं गणवंन्तं करोत्येतामेव निर्वपेद्यः कामयेत् ब्रह्मन्विशं वि नांशयेयमितिं मारुती याँज्यानुवाक्यें कुर्याद्वह्मन्नेव विशं वि नांशयति॥ (१९)

तेर्जः सुमीची ब्रह्मवर्चस्येव ग्रामंकामुस्त्रिचंत्वारि १शच॥_____[3]

अर्यमणे चरुं निर्वपेथ्सुवर्गकांमोऽसौ वा आंदित्यौंऽर्यमा-ऽर्यमणमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैनर् सुवर्गं लोकं गंमयत्यर्यम्णे चुरुं निवंपेद्यः कामयेत् दानंकामा मे प्रजाः स्युरित्यसौ वा आंदित्यौऽर्यमा यः खलु वे ददांति सौऽर्यमाऽर्यमणमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एव (२०)

अस्मै दानंकामाः प्रजाः कंरोति दानंकामा अस्मै प्रजा भंवन्त्यर्थम्णे चुरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वस्ति जनतांमियामित्यसौ वा आंदित्यौऽर्यमाऽर्यमणंमेव स्वेनं भागधेयेनोपं धावति स एवैनं तद्गंमयति यत्र जिगंमिषतीन्द्रो वै देवानांमानुजावर आंसीथ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां पृतमैन्द्रमांनुषूकमेकांदशकपालं निः (२१)

अवपत्तेनैवेनमग्रं देवतांनां पर्यणयह्नुभ्रवंती अग्रंवती याज्यानुवाक्ये अकरोह्नुभादेवेनमग्रं पर्यणयद्यो राजन्यं आनुजावरः स्यात्तस्मां एतमैन्द्रमांनुषूकमेकांदशकपालं निर्वपेदिन्द्रंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेन्मग्रं समानानां परि णयति बुभ्रवंती अग्रंवती याज्यानुवाक्यं भवतो बुभ्रादेवेन्मग्रम् (२२)

परि णयत्यानुषूको भंवत्येषा ह्येतस्यं देवता य आंनुजावुरः समृद्धै यो ब्राह्मण आंनुजावुरः स्यात्तस्मां पृतम्बांर्हस्पत्यमांनुषूकं चुरुं निर्वपेद्वहृस्पतिंमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवेन्मग्रं समानानां पिरं णयति बुध्रवंती अग्रंवती याज्यानुवाको भवतो बुध्रादेवेन्मग्रं पिरं णयत्यानुषूको भंवत्येषा होतस्यं देवता य आनुजावरः समृद्धे॥ (२३)

पृजापंतेस्त्रयं च्लारं चा-[४]
प्रजापंतेस्त्रयंस्त्रि शहुहितरं आस्नाः सोमाय राज्ञेऽददात्तासा र रोहिणीमुपैत्ता ईर्ष्यन्तीः पुनरगच्छन्ता अन्वैत्ताः

पुनंरयाचत् ता अंस्मै न पुनंरददाथ्सौंऽब्रवीदृतमंमीष्व यथां समावच्छ उंपैष्याम्यथं ते पुनंदीस्यामीति स ऋतमामीता अंस्मै पुनंरददात्तासार्ं रोहिणीमेवोपं (२४)

पुत्तं यक्ष्मं आर्च्छ्रद्राजांनं यक्ष्मं आर्दिति तद्रांजयक्ष्मस्य जन्म यत्पापीयानभंवत्तत्पांपयक्ष्मस्य यञ्जायाभ्यो-ऽविन्दत्तज्ञायेन्यंस्य य एवमेतेषां यक्ष्मांणां जन्म वेद् नैनंमेते यक्ष्मां विन्दन्ति स एता एव नंमस्यन्नुपांधावत्ता अंब्रुवन्वरं वृणामहे समाव्च्छ एव न उपांय इति तस्मां एतम् (२५) आदित्यं चरुं निरंवपन्तेनैवैनंम्पापाथ्स्रामांदम् अन्

यः पांपयक्ष्मगृंहीतः स्यात्तस्मां पृतमांदित्यं चुरुं निर्वपदादित्यानेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त पृवैनं पापाथ्स्नामान्मश्चन्त्यमावास्यांयां निर्वपदमुमेवैनंमाप्यायंमानमन् प्यांययति नवोनवो भवति जायंमान् इति पुरोनुवाक्यां भवत्यायुरेवास्मिन्तयां दधाति यमांदित्या अश्शुमांप्याययन्तीति याज्यैवैनंमेतयां प्याययति॥ (२६)

प्रजापंतिर्देवेभ्योऽन्नाद्यं व्यादिंश्थ्सौंऽब्रवीद्यदिमाल्लौंकान्भ्यंति तन्ममांसुदिति तदिमाल्लौंकान्भ्यत्यंरिच्यृतेन्द्र राजान्मिन्द्रंमि

एवोपैतमंस्मित्रयोदश च॥

स्वराजांन्नततो वै स इमाल्लाँका इस्रोधादुंह्त्तित्रिधातौँस्रिधातुत्वय कामयेतान्नादः स्यादिति तस्मां एतं त्रिधातुं निर्विपेदिन्द्रांय राज्ञें पुरोडाशम्ँ (२७)

एकांदशकपालमिन्द्रांयाधिराजायेन्द्रांय स्वराज्ञेऽयं वा इन्द्रो राजायमिन्द्रोंऽधिराजोंऽसाविन्द्रंः स्वराडिमानेव लोकान्थ्स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त एवास्मा अन्नम्प्र यंच्छन्त्यन्नाद एव भंवति यथां वृथ्सेन प्रत्तां गां दुह पुवमेवेमाश्रौंकान्प्रतान्कामंमन्नाद्यं दुह उत्तानेषुं कपालेष्विधं श्रयत्ययातयामत्वाय त्रयः पुरोडाशां भवन्ति त्रयं इमे लोका एषां लोकानामास्या उत्तरउत्तरो ज्यायान्भवत्येविमेव हीमे लोकाः समृद्धौ सर्वेषामभिगमयन्नवं द्यत्यछंम्बद्धारळ्यात्यासमन्वाहानिदाहाय॥ (२८)

नाशंक्रोत्तदंस्मादभ्यधोंऽचर्थ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तमेतया सर्वपृष्ठयाऽयाजयृत्तयैवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यमदधाद्य इंन्द्रियकांमः (२९)

वीर्यकामः स्यात्तमेतया सर्वपृष्ठया याजयेदेता एव देवताः स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति ता एवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं दधित यदिन्द्रांय राथंतराय निर्वपिति यदेवाग्नेस्तेज्स्तदेवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय बार्ह्ताय यदेवेन्द्रस्य तेज्स्तदेवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय वैरूपाय यदेव संवितुस्तेज्ञस्तत् (३०) एवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय वैराजाय यदेव धातुस्तेजस्तदेवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय शाक्कराय यदेव मुरुतां तेजस्तदेवावं रुन्द्धे यदिन्द्रांय रैवताय यदेव बृहुस्पतेस्तेजस्तदेवावं रुन्द्ध एतावंन्ति वै तेजा रसि तान्येवावं रुन्द्ध उत्तानेषुं कृपालेष्वधि

श्रयत्ययातयामत्वाय द्वादंशकपालः पुरोडाशंः (३१)

इन्द्रियकांमः सवितुस्तेज्स्तत्पुंरोडाशोऽष्टात्रि ५शच॥

भ्वति वैश्वदेवत्वायं सम्नतम्पर्यवंद्यति सम्नतमेविन्द्रियं वीर्यं यजमाने दधाति व्यत्यासमन्वाहानिर्दाहायाश्वं ऋष्भो वृष्णिर्वस्तः सा दक्षिणा वृष्ववायैतयैव यंजेताभिश्स्यमान पृताश्चेद्वा अस्य देवता अन्नमदन्त्यदन्त्युंवेवास्यं मनुष्याः॥ (३२)

रजनो वै कौणेयः ऋंतुजितं जानंकिं चक्षुर्वन्यंमयात्तस्मां एतामिष्टिं निरंवपद्ग्रये भ्राजस्वते पुरोडाशंमुष्टाकंपालः सौर्यं चरुमुग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशंमुष्टाकंपालुन्तयैवास्मिश्चक्षुंर

यानाट् निरंपपप्तप् भ्राजस्वत पुराडासम्हाकपालर सौर्यं चरुम्यये भ्राजस्वते पुरोडाशंम्ष्टाकंपालन्तयेवास्मिश्चक्षंरत् स्यात्तस्मां एतामिष्टिं निर्वपेद्यये भ्राजस्वते पुरोडाशं-म्ष्टाकंपालर सौर्यं चरुम्यये भ्राजस्वते पुरोडाशं-म्ष्टाकंपालम्य्रोवे चक्षंषा मनुष्यां वि (३३) पृश्यन्ति सूर्यस्य देवा अग्निं चैव सूर्यं च स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मिश्चक्षुंधत्तश्चक्षुंष्मानेव भंवित् यदांग्नेयो भवंतश्चक्षुंषी एवास्मिन्तत्प्रति दधाित यथ्मौर्यो नासिकां तेनाभितः सौर्यमांग्नेयौ भंवतस्तस्मांदभितो नासिकां चक्षुंषी तस्मान्नासिकया चक्षुंषी विधृंते समानी यांज्यानुवाक्ये भवतः समान हि चक्षुः समृद्धा उद् त्यं जातवेदस स्पप्त त्वां हिरतो रथे चित्रं देवानामुदंगादनींकिमिति पिण्डान्प्र यंच्छित चक्षुंरेवास्मै प्र यंच्छित यदेव तस्य तत्॥ (३४)

वि ह्यंष्टाविर्रशतिश्च॥_____[८]

ध्रुवोंऽसि ध्रुवोंऽह संजातेषुं भूयासं धीर्श्वेत्तां वसुविद्धुवोंऽसि ध्रुवोंऽह संजातेषुं भूयासमुग्रश्वेत्तां वसुविद्धुवोंऽसि ध्रुवोंऽह संजातेषुं भूयासमभिभूश्वेत्तां वसुविदामंनम्स्यामंनस्य देवा ये संजाताः कुंमाराः समनस्स्तान्हं कांमये हृदा ते मां कांमयन्ता हृदा तान्म आमंनसः कृषि स्वाहामंनमसि (३५)

आर्मनस्य देवा याः स्त्रियः सर्मनस्स्ता अहं कामये हृदा ता मां कामयन्ता हृदा ता म् आर्मनसः कृधि स्वाहां वैश्वदेवी साङ्गहणीं निर्वपद्भामंकामो वैश्वदेवा वे संजाता विश्वांनेव देवान्थ्स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति त प्वास्में सजातान्त्र यंच्छन्ति ग्राम्येव भंवति साङ्गहणी भंवति मनोग्रहणं वै संग्रहणम्मनं एव संजातानांम् (३६)

गृह्णाति ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽह संजातेषुं भ्यास्मितिं परिधीन्परिं दधात्याशिषंमेवेतामा शास्तेऽथो पृतदेव सर्व संजातेष्वधिं भवति यस्यैवं विदुषं पृते परिधयः परिधीयन्त आमनमस्यामनस्य देवा इति तिस्र आहुंतीर्जुहोत्येतावंन्तो व संजाता ये महान्तो ये क्षुं हुका याः स्त्रियस्तानेवावं रुन्छे त एन्मवं रुद्धा उपं तिष्ठन्ते॥ (३७)

यन्नव्मैत्तन्नवंनीतमभव्द्यदसंप्त्तथ्सपिरंभव्द्यदिश्चंयत् तद्धृतमंभवदिश्वनौः प्राणोऽस् तस्यं ते दत्तां ययौः प्राणोऽस् स्वाहेन्द्रंस्य प्राणोऽसि तस्यं ते ददात यस्यं प्राणोऽसि

स्वाहामनमसि सजातानार् रुन्द्धे पश्च च॥_____

स्वाहेन्द्रंस्य प्राणोंऽसि तस्यं ते ददातु यस्यं प्राणोऽसि स्वाहां मित्रावरुंणयोः प्राणोंऽसि तस्यं ते दत्तां ययोः प्राणोऽसि स्वाहा विश्वंषां देवानां प्राणोंऽसि (३८)

तस्यं ते ददतु येषां प्राणोऽसि स्वाहां घृतस्य

धारांम्मृतंस्य पन्थामिन्द्रंण द्त्ताम्प्रयंताम्म्रुद्धिः। तत्त्वा विष्णुः पर्यपश्यत्तत्त्वेडा गव्यैरंयत्। पावमानेनं त्वा स्तोमेन गायत्रस्यं वर्तन्योपा शोर्वीर्येण देवस्त्वां सिवतो थ्यंजतु जीवातंवे जीवनस्याये बृहद्रथन्त्रयो स्तवा स्तोमेन त्रिष्टुभो वर्तन्या शुक्रस्यं वीर्येण देवस्त्वां सिवतोत् (३९)

सृज्तु जीवातंवे जीवनस्यायां अग्नेस्त्वा मात्रया जगंत्यै वर्तन्याग्रंयणस्यं वीर्येण देवस्त्वां सवितोथसृंजतु जीवातंवे जीवनस्यायां इममंग्न आयुंषे वर्चसे कृधि प्रियः रेतों वरुण सोम राजन्न्। मातेवाँस्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरंदष्टिर्यथासंत्। अग्निरायुंष्मान्थ्स वनस्पतिंभिरायुंष्मान्तेन त्वायुषायुंष्मन्तं करोमि सोम आयुंष्मान्थ्स ओषंधीभिर्यज्ञ आयुंष्मान्थ्स दक्षिणाभिर्ब्रह्मायुंष्मत्तद्वाँह्मणैरायुंष्मद्देवा आयुंष्मन्तुस्तेंऽमृतेंन पितर आयुंष्मन्तस्ते स्वधयायुंष्मन्तस्तेन त्वायुषायुंष्मन्तं करोमि॥ (४०)

विश्वेषां देवानां प्राणोऽसि त्रिष्टभों वर्तन्या शुक्रस्यं वीर्येण देवस्त्वां सिवतोथ्सोम्

आर्युष्मा-पश्चेवि १ शतिश्च॥------[१०]

अग्निं वा एतस्य शरीरं गच्छति सोम् रसो वर्रुण एनं वरुणपाशेनं गृह्णाति सरस्वतीं वागुग्नाविष्णू आत्मा यस्य ज्योगामयंति यो ज्योगांमयावी स्याद्यो वा कामयंत सर्वमायुरियामिति तस्मां एतामिष्टिं निर्वपेदाग्नेयमृष्टाकंपाल सौम्यं च्रुं वांरुणं दशंकपाल स् सारस्वतं च्रुमांग्नावेष्ण्वमेकांदशकपालम्ग्नेरेवास्य शरीरं निष्क्रीणाति सोमाद्रसम् (४१)

वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मुंश्चिति सारस्वतेन वाचं द्वात्यग्निः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञो देवतांभिश्चैवैनं यज्ञेनं च भिषज्यत्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव यज्ञवमैत्तन्नवंनीतमभवदित्याज्यमवेंक्षते रूपमेवास्यैतन्मंहिमानं व्याचंष्टेऽश्विनोः प्राणोऽसीत्यांहाश्विनौ वै देवानांम् (४२)

भिषजौ ताभ्यांमेवास्में भेषजं केरोतीन्द्रंस्य प्राणी-ऽसीत्यांहेन्द्रियमेवास्मिन्नेतेनं दधाति मित्रावरुणयोः प्राणोऽसीत्यांह प्राणापानावेवास्मिन्नेतेनं दधाति विश्वेषां देवानां प्राणोऽसीत्यांह वीर्यमेवास्मिन्नेतेनं दधाति घृतस्य धारांममृतंस्य पन्थामित्यांह यथायुजुरेवेतत्यांवमानेनं त्वा आह प्राणमेवास्मिन्नेतेनं दधाति बृहद्रथन्त्रयौस्त्वा

स्तोमेनेत्याहौजं पुवास्मिन्नेतेनं दधात्यग्नेस्त्वा मात्रयेत्यांहात्मानं

स्तोमेनेति (४३)

दधात्यृत्विजः पर्याहुर्यावंन्त एवर्त्विज्ञस्त एंनम्भिषज्यन्ति ब्रह्मणो हस्तंमन्वारभ्य पर्याहुरेक्धेव यजंमान् आयुर्दधित् यदेव तस्य तिद्धरंण्यात् (४४) चृतं निष्पिंबत्यायुर्वे घृतम्मृत् हिरंण्यम्मृतांदेवायुर्निष्पिंबत् श्तमांनम्भवित श्तायुः पुरुषः श्तेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्यथो खलु यावंतीः समां एष्यन्मन्येत् तावंन्मानः स्याथ्समृद्धा इममंग्न आयुंषे वर्चसे

कृधीत्याहायुंरेवास्मिन्वर्चो दधाति विश्वे देवा जरंदष्टिर्यथासदित

जरंदष्टिमेवैनं करोत्यग्निरायुंष्मानिति हस्तं गृह्णात्येते वै देवा

आयुंष्मन्तस्त एवास्मिन्नायुंर्दधति सर्वमायुंरेति॥ (४५)

प्रजापंतिर्वर्रणायाश्वमनयथ्स स्वां देवतामार्च्छ्थ्स पर्यदीर्यत् स एतं वारुणं चतुष्कपालमपश्यत्तं निर्वप्ततो

रसं देवाना इ स्तोमेनेति हिरंण्यादस्दिति द्वावि श्रातिश्च॥———[११]

वै स वंरुणपाशादंमुच्यत् वरुणो वा एतं गृह्णाति योऽश्वं प्रतिगृह्णाति यावतोऽश्वांन्प्रतिगृह्णीयात्तावंतो वारुणाञ्चतुंष्कपालान्निवंपेद्वरुणमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवैनं वरुणपाशान्मुंञ्चति (४६) चतुंष्कपाला भवन्ति चतुंष्पाद्धश्वः समृद्धा एकमितिरिक्तं निवंपेद्यमेव प्रतिग्राही भवंति यं वा नाध्येति तस्मादेव

विश्वमुव प्रातिश्राहा मवात य वा नाव्यात तस्माद्व विरुणपाशान्मुंच्यते यद्यपंरं प्रतिग्राही स्याथ्सौर्यमेकंकपालमनु निर्विपेद्मुमेवाऽऽदित्यमुंचारं कुंरुतेऽपोऽवभृथमवैत्यपस् वै वरुंणः साक्षादेव वरुंणमवं यजतेऽपोन्त्रीयं च्रुम्पुन्रेत्य निर्विपेद्पसुयोनिर्वा अश्वः स्वामेवेनं योनिं गमयति स एन्श् शान्त उपं तिष्ठते॥ (४७)

मुश्रुति चुरुर सप्तदंश च॥______

या वांमिन्द्रावरुणा यत्व्यां तुनूस्तयेममश्हंसो मुश्चतं या वांमिन्द्रावरुणा सहस्यां रक्षस्यां तेज्स्यां तुनूस्तयेममश्हंसो मुश्चतं यो वांमिन्द्रावरुणावृग्नौ स्नाम्स्तं वांमेतेनावं यजे यो वांमिन्द्रावरुणा द्विपाथ्सं पृशुषु चतुंष्पाथ्सु गो्षे गृहेष्वपस्वोषंधीषु वनस्पतिषु स्नाम्स्तं वांमेतेनावं यज् इन्द्रो वा एतस्यं (४८)

इन्द्रियेणापं क्रामित वर्रण एनं वरुणपाशेनं गृह्णाति यः पाप्मनां गृहीतो भवंति यः पाप्मनां गृहीतः स्यात्तरमां एतामैंन्द्रावरुणीम्पंयस्यां निर्वपेदिन्द्रं एवास्मिन्निन्द्र्यं दंधाति वर्रण एनं वरुणपाशान्म् श्वित पयस्यां भवति पयो हि वा पुतस्मादपुकामृत्यथैष पाप्मनां गृहीतो यत्पंयस्यां भवंति पर्य पुवास्मिन्तयां दधाति पयस्यायाम् (४९)

पुरोडाशमवं दधात्यात्मन्वन्तंमेवैनं करोत्यथो आयतंनवन्तमेव चंतुर्धा व्यूहति दिक्ष्वेव प्रतिं तिष्ठति पुनः समूहित दिग्भ्य एवास्मै भेषजं करोति समूह्यावं द्यति यथाविद्धं निष्कृन्ततिं तादगेव तद्यो वांमिन्द्रावरुणावग्नौ स्रामुस्तं वामेतेनावं यज् इत्यांह दुरिष्ट्या एवैनंम्पाति यो वांमिन्द्रावरुणा द्विपाथ्सुं पशुषु स्नामस्तं वांमेतेनावं यज इत्यांहैतावंतीवां आप ओषंधयो वनस्पतंयः प्रजाः प्शवं उपजीवनीयास्ता एवास्मैं वरुणपाशान्म्ंश्चिति॥ (५०)

स प्रत्नवित्र काव्येन्द्रं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरः। त्वं नः

पुतस्यं पयुस्यांयाम्पाति षड्वि १ शतिश्च॥

सोम विश्वतो रक्षां राजन्नघायतः। न रिष्येत्त्वावंतः सर्खां। या ते धामांनि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषंधीष्वपस्। तेभिर्नो विश्वः सुमना अहेड्न्राजंन्थ्सोम् प्रति ह्व्या गृंभाय। अग्नीषोमा सर्वेदसा सहूती वनतं गिरेः। सं देव्ना बंभूवथुः। युवम् (५१)

पुतानि दिवि रोंचनान्यग्निश्चं सोम् सक्रंतू अधत्तम्। युव १ सिन्धू १ रिमशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुंश्चतं गृभीतान्। अग्नीषोमाविम १ सृ में ११णुतं वृषणा हवम्। प्रति सूक्तानि हर्यतम्भवंतं दाशुषे मयः। आन्यं दिवो मांतिरश्चां जभारामंश्नादन्यं परि श्येनो अद्रैः। अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञायं चक्रथुरु लोकम्। अग्नीषोमा ह्विषः प्रस्थितस्य वीतम् (५२)

हर्यतं वृषणा जुषेथांम्। सुशर्माणा स्ववंसा हि भूतमथां धत्तं यजंमानाय शं योः। आ प्यायस्व सं तें। गुणानां त्वा गुणपंति र हवामहे कृविं केवीनामुंपुमश्रंवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत् आ नंः शृण्वन्नूतिभिः सीद् सादेनम्। स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजंम्भरते धना नृभिः। देवानां यः पितरमाविवासति (५३)

श्रुद्धामंना ह्विषा ब्रह्मणस्पतिम्। स सुष्टुभा स ऋकंता गणेनं वल १ रुरोज फल्रिग १ रवेण। बृह्स्पतिरुस्रियां हव्यसूदः किनं ऋदृद्धावंशती रुदां जत्। मरुतो यद्धं वो दिवो या वः शर्म। अर्यमा यांति वृष्भस्तु विष्मान्दाता वसूनां पुरुहूतो अर्ह्म्नं। सहस्राक्षो गौत्रभिद्धर्ज्ञंबाहुर्स्मासुं देवो द्रविणं दधातु। ये तैंऽर्यमन्बह्वों देव्यानाः पन्थांनः (५४)

राजन्दिव आचरंन्ति। तेभिंनी देव मिह शर्म यच्छ शं नं एिध द्विपदे शं चतुंष्पदे। बुध्नादग्रमिक्निरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृश्हितान्यैरत्। रुजद्रोधाश्रीस कृत्रिमांण्येषाश् सोमंस्य ता मद इन्द्रंश्चकार। बुध्नादग्रेण वि मिंमाय मानैवंश्रेण खान्यंतृणन्नदीनांम्। वृथांसृजत्प्थिभिंदींर्घयाथैः सोमंस्य ता मद इन्द्रंश्चकार (५५)

प्र यो ज्ज्ञे विद्वाः अस्य बन्धुं विश्वांनि देवो जिनेमा विवक्ति। ब्रह्म ब्रह्मण उज्जेभार मध्यांन्नीचादुचा स्वधयाभि प्र तंस्थो। महान्मही अस्तभायद्वि जातो द्याः सद्म पार्थिवं च रजः। स बुधादाष्ट जनुषाभ्यग्रम्बृह्स्पतिदेवता यस्यं सम्राट्। बुध्नाद्यो अग्रंम्भ्यर्त्योजंसा बृह्स्पतिमा विवासन्ति देवाः। भिनद्वलं वि पुरों दर्दरीति कनिंऋदथ्सुवंरुपो जिंगाय॥ (५६)

युवं वीतमा विवासिति पन्थानी दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रंश्वकार देवा नर्व

и **д**дага пота и

॥ चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

देवा मंनुष्याः पितर्स्तें उन्यतं आसूत्रसुरा रक्षा रेसि

पिशाचास्तैंऽन्यत्स्तेषां देवानांमुत यदल्पं लोहिंत्मकुंर्वन्तद्रक्षा रात्रींभिरसुभ्रन्तान्थ्सुब्धान्मृतान्भि व्यौच्छ्ते देवा अविदुर्यो वे नोऽयिम्प्रयते रक्षार्स्से वा इमं घ्रन्तीति ते रक्षा्र्स्स्युपांमन्त्रयन्त तान्यंब्रुवन्वरं वृणामहे यत् (१) असुराञ्जयाम् तन्नः सहासदिति ततो वे देवा असुराज्ञयाम् तन्नः सहासदिति ततो वे देवा असुराज्ञयन्तेऽसुराञ्जित्वा रक्षा्र्स्स्यपांनुदन्त तानि रक्षा्र्स्यनृतमकर्तेति समन्तं देवान्पर्यविश्वन्ते देवा अग्नावनाथन्त तेंऽग्रये प्रवंते पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निरंवपन्नग्नये विवाधवंतेऽग्नये प्रतीकवते यद्ग्रये प्रवंते

निरवंपन् यान्येव पुरस्ताद्रक्षा १सि (२)

आस्नतानि तेन प्राण्दन्त यद्ग्रये विबाधवंते यान्येवाभितो रक्षाङ्स्यास्नतानि तेन व्यंबाधन्त यद्ग्रये प्रतींकवते यान्येव पृश्चाद्रक्षाङ्स्यास्नतानि तेनापानुदन्त ततो देवा अभवन्परासुरा यो भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्स स्पर्धमान पृतयेष्ट्यां यजेताग्रये प्रवंते पुरोडाशंमृष्टाकंपालुं निर्वपेद्ग्रये विबाधवंते (३)

अग्नये प्रतींकवते यद्ग्रये प्रवंते निर्वपंति य एवास्माच्छ्रेयान्त्रातृंव्यस्तं तेन प्र णुंदते यद्ग्रये विबाधवंते य एवैनेन सदङ्गं तेन वि बांधते यद्ग्रये प्रतींकवते य एवास्मात्पापीयान्तं तेनापं नुदते प्र श्रेया स्मम्भ्रातृंव्यं नुदतेऽति सद्दशं क्रामित नैन्म्पापीयानाप्रोति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यज्तते॥ (४)

वृणामहै यत्पुरस्ताद्रक्षारंसि वपेद्यये विवाधवंत एवं चत्वारि च॥———[१]
देवासुराः संयंत्ता आसन्ते देवा अंब्रुवन् यो नो

वीर्यावत्तम्स्तमनुं सुमारंभामहा इति त इन्द्रंमब्रुवन्त्वं वै नों वीर्यावत्तमोऽसि त्वामनुं सुमारंभामहा इति सौंऽब्रवीत्तिस्रो मं

इमास्तनुवों वीर्यावतीस्ताः प्रीणीताथासुरान्भि भविष्यथेति ता वै ब्रूहीत्यंब्रवित्र्यमर्होमुगियं विमृधेयमिन्द्रियावंती (५)

इत्यंब्रवीत इन्द्रांया हो मुचे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निरंवपन्निन्द्रांय वैमुधायेन्द्रांयेन्द्रियावंते यदिन्द्रांया हो मुचे निरवंपन्न हे स एव तेनां मुच्यन्त यदिन्द्रांय वैमुधाय मुधे एव तेनापां प्रत यदिन्द्रांयेन्द्रियावंत इन्द्रियमेव तेनात्मन्नंदधत त्रयंस्त्रि शतकपालं पुरोडाशं निरंवपन्न यंस्त्रि श्वादे देवतास्ता इन्द्रं आत्मन्न स्मारंम्भयत भूत्यैं (६)

तां वाव देवा विजितिमृत्तमामस्रैर्ट्यंजयन्त यो भ्रातृंव्यवान्थस्याथ्स स्पर्धमान एतयेष्ट्यां यज्ञेतेन्द्रांया होमुचे पुरोडाश्मेकांदशकपालं निर्वपेदिन्द्रांय वैमृधायेन्द्रांयन्द्रियावते- ऽ इत्तेमा वा एष गृहीतो यस्माच्छ्रेयान्भ्रातृंव्यो यदिन्द्रांया इहोमुचे निर्वपृत्य इत्तेस एव तेनं मुच्यते मृधा वा एषोऽभिषंण्णो यस्मांथ्समानेष्वन्यः श्रेयांनुत (७) अभ्रांतृव्यो यदिन्द्रांय वैमृधाय मृधं एव तेनापं

हते यदिन्द्रांयेन्द्रियावंत इन्द्रियमेव तेनात्मन्धंते त्रयंस्त्रिश्शत्कपालं पुरोडाशुं निर्वपिति त्रयंस्त्रिश्शहै देवतास्ता एव यजंमान आत्मन्ननुं समारंम्भयते भूत्यै सा वा एषा विजितिनिमिष्टिर्य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजंत उत्तमामेव विजितिम्भातृंव्येण वि जंयते॥ (८)

उत्तमामेव विजितिम्म्रातृं व्येण वि जयते॥ (८) इन्द्रियावंती भूत्यां उतैकान्नपंश्राशचं॥————[२]

देवासुराः संयंत्ता आस्नन्तेषां गायुत्र्योजो बलंमिन्द्रियं

वीर्यं प्रजां पुशून्थ्संगृह्यादायांपऋम्यांतिष्ठत्तेंऽमन्यन्त यतरान्

वा इयमुंपाव्थ्स्यिति त इदम्भेविष्युन्तीति तां व्यंह्वयन्त् विश्वंकर्मित्रिति देवा दाभीत्यसुंगः सा नान्यंत्राङ्श्च नोपावंतित ते देवा एतद्यजुंरपश्यन्नोजोऽसि सहोऽसि बलंमिस (९) भ्राजोऽसि देवानां धाम नामांसि विश्वंमिस विश्वायुः सर्वमिस सूर्वायुंरिभ्भिरिति वाव देवा असुंराणामोजो बलंमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पृशूनंवृञ्जत् यद्गायत्र्यंपत्रम्यातिष्ठत्तस्मादेतां गांयत्रीतीष्टिंमाहः संवथ्सरो

वै गांयत्री संवथ्सरो वै तदंपक्रम्यांतिष्ठद्यदेतयां देवा

प्रजां प्शूनवृं अत् तस्मादेता । संवर्ग इतीष्टिं माहुर्यो

असुराणामोजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यम् (१०)

भ्रातृंव्यवान्थ्स्याथ्स स्पर्धमान पृतयेष्ट्यां यजेतासयें संवर्गायं पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेत्तः शृतमासंत्रमेतेन यज्ञंषाभि मृशेदोजं एव बलंमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां प्शून्भ्रातृंव्यस्य वृङ्के भवत्यात्मना परौंस्य भ्रातृंव्यो भवति॥ (११)

बर्लमस्येतयां देवा असुराणामोजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यं पश्चंचत्वारि श्वा ——[3] प्रजापितः प्रजा असृजत् ता अस्माथ्सृष्टाः परांचीरायन्ता यत्रावंसन्ततों गुर्मुदुदंतिष्ठत्ता बृह्स्पतिश्चान्ववेता स् सौ-

यत्रावस्-तता गुमुदुदातष्ठता बृह्स्पातश्चा-ववता सा-ऽब्रवीद्वह्स्पतिर्नया त्वा प्र तिष्ठान्यथं त्वा प्रजा उपावध्स्य्नितित् तम्प्रातिष्ठत्ततो व प्रजापितिं प्रजा उपावर्तन्त् यः प्रजाकांमः स्यात्तस्मां एतम्प्रांजापृत्यं गामुतं

चुरुं निर्विपेत्र्युजापंतिम् (१२)

एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मैं प्रजाम्प्र जंनयति प्रजापंतिः पृशूनंसृजत् तैंऽस्माथ्सृष्टाः परांश्च आयन्ते यत्रावंसन्ततों गुर्मुदुदंतिष्ठत्तान्पूषा चान्ववैता १ सौंऽब्रवीत्पूषानयां मा प्र तिष्ठाथं त्वा पृशवं उपावंथ्स्य्नतीति माम्प्र तिष्ठेति सोमोंऽब्रवीन्मम् वै (१३)

अकृष्ट्रपच्यमित्युभौ वाम्प्र तिष्ठानीत्यं ब्रवीत्तौ प्रातिष्ठत्ततो

वै प्रजापंतिम्प्शवं उपावंतन्त यः पृशुकांमः स्यात्तस्मां पृतः सोमापौष्णं गौर्मुतं चुरुं निर्वपेथ्सोमापूषणांवेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित तावेवास्मैं पृशून्प्र जनयतः सोमो वै रेतोधाः पूषा पंशूनाम्प्रंजनियता सोमं पृवास्मै रेतो दर्धाति पूषा पशून्प्र जनयित॥ (१४)

ब्षेत्र्य जापंतिं वै दर्धाति पूषा त्रीणि च॥———[४]
अग्ने गोभिर्न् आ गृहीन्दों पुष्ट्या जुंषस्व नः। इन्द्रों धूर्ता

गृहेषुं नः॥ स्विता यः संहस्त्रियः स नों गृहेषुं रारणत्। आ पूषा पुत्वा वसुं॥ धाता दंदातु नो र्यिमीशांनो जगंतस्पतिः। स नः पूर्णेनं वावनत्॥ त्वष्टा यो वृष्भो वृषा स नों गृहेषुं रारणत्। सहस्रंणायुतेन च॥ येनं देवा अमृतम् (१५)

दीर्घ श्रवी दिव्यैरंयन्त। रायंस्पोष त्वम्समभ्यं गवाँ कुल्मिं जीवस् आ युंवस्व। अग्निर्गृहपंतिः सोमी विश्वविनेः सिवता सुमेधाः स्वाहाँ। अग्ने गृहपते यस्ते घृत्यो भागस्तेन सह ओजं आक्रमंमाणाय धेहि श्रेष्ठगौत्पथो मा योषं मूर्धा भूयास् स्वाहाँ॥ (१६)

अुमृतंमुष्टात्रिर्शच॥———[५]

चित्रयां यजेत पृशुकांम इयं वे चित्रा यद्वा अस्यां विश्वंम्भूतमिधं प्रजायंते तेनेयं चित्रा य एवं विद्वा श्रिश्चत्रयां पृशुकांमो यजंते प्र प्रजयां पृशुभिंमिंथुनैर्जायते प्रैवाग्नेयेनं वापयित रेतः सौम्येनं दधाति रेतं एव हितं त्वष्टां रूपाणि वि कंरोति सारस्वतौ भंवत एतद्वे दैव्यंग्मिथुनं दैव्यंमेवास्मैं (१७)

मिथुनम्मंध्यतो दंधाति पृष्टौं प्रजनंनाय सिनीवाल्ये चरुर्भविति वाग्वे सिनीवाली पृष्टिः खलु वे वाक्पुष्टिमेव वाचमुपैत्यैन्द्र उत्तमो भंविति तेनैव तिन्मंथुन स्प्तैतानिं ह्वी १ षिं भवन्ति सप्त ग्राम्याः पृशवः स्प्तार्ण्याः सप्त छन्दा इस्युभयस्यावं रुद्धा अथैता आहुंती जुंहोत्येते वे देवाः पृष्टिंपतयस्त पृवास्मिन्पृष्टिं दधित पृष्यंति प्रजयां पृश्मिरथो यदेता आहुंती जुंहोति प्रतिष्ठित्ये॥ (१८)

अस्मै त पुव द्वादंश च॥———[8

मारुतमंसि मुरुतामोजोऽपां धारांं भिन्द्धि र्मयंत मरुतः श्येनमायिन्म्मनोजवसं वृषंणः सुवृक्तिम्। येन् शर्धं उग्रमवंसृष्ट्मेति तदंश्विना परि धत्तः स्वस्ति। पुरोवातो वर्षंश्चिन्वरावृथ्स्वाहां वातावद्वर्षंत्रुग्ररावृथ्स्वाहां स्त्नयन्वर्षंनीमरावृथ्स्वाहांनश्चयंवस्फूर्जन्दिद्युद्वर्षंन्त्वेषरावृथ्वर्षंन्पूर्तिरावृत् (१९)

स्वाहां बहु ह्यमंवृषादितिं श्रुतरावृथ्स्वाह्यतपंति वर्षंन्विराडावृथ्स्वाहांवस्फूर्जन्दिद्युद्धर्षंन्भूतरावृथ्स्वाह्य मान्दा वाशाः शुन्ध्यूरजिराः। ज्योतिष्मतीस्तमंस्वरीरुन्दंतीः सुफेनाः। मित्रंभृतः क्षत्रंभृतः सुराष्ट्रा इह मांऽवत। वृष्णो अश्वंस्य संदानंमसि वृष्ट्यै त्वोपं नह्यामि॥ (२०)

पूर्तिरावृद्धिचंत्वारि ५शच॥

देवां वसव्या अग्ने सोम सूर्य। देवाः शर्मण्या मित्रांवरुणार्यमत्र्। देवाः सपीत्योऽपां नपादाशुहेमत्र्। उद्रो देत्तोऽद्धिम्भिन्त द्विवः पूर्जन्यादन्तिरक्षात्पृथिव्यास्ततों नो

दंत्तोऽद्धिम्भिन्त दिवः पूर्जन्यांदन्तिरक्षात्पृथिव्यास्ततों नो वृष्ट्यांऽवत। दिवां चित्तमः कृण्वन्ति पूर्जन्यंनोदवाहेनं। पृथिवीं यद्युन्दन्ति। आ यं नर्रः सुदानंवो ददाशुषे दिवः कोशमचुंच्यवः। वि पूर्जन्याः सृजन्ति रोदंसी अनु धन्वंना यन्ति (२१) वृष्टयः। उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वंर्षयथा युन्ति देवा विर्शतिश्चं॥—

पुरीषिणः। न वो दस्रा उपं दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथां अवृथ्सत। सृजा वृष्टिं दिव आद्भिः संमुद्रं पृंण। अज्ञा असि प्रथम्जा बलमिस समुद्रियम्। उन्नम्भय पृथिवीम्भिन्द्धीदं दिव्यं नर्भः। उद्रो दिव्यस्यं नो देहीशांनो वि सृजा दितम्। ये देवा दिविभांगा येंऽन्तिरक्षभागा ये पृथिविभांगाः। त इमं यज्ञमंवन्तु त इदं क्षेत्रमा विंशन्तु त इदं क्षेत्रमनु वि विंशन्तु॥ (२२)

मा्रुतमंसि म्रुतामोज इति कृष्णं वासः कृष्णतूषं परि धत्त एतद्वे वृष्टौं रूप स्रूप एव भूत्वा पुर्जन्यं वर्षयति रुमयंत मरुतः श्येनमायिनमिति पश्चाद्वातं प्रति मीवति

पुरोवातमेव जंनयति वर्षस्यावंरुद्धै वातनामानिं जुहोति वायुर्वे वृष्ट्यां ईशे वायुमेव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावति स एवास्मै पुर्जन्यं वर्षयत्युष्टौ (२३)

जुहोति चर्तस्रो वै दिश्श्वतंस्रोऽवान्तरिदशा दिग्भ्य एव वृष्टिष् सम्प्र च्यांवयित कृष्णाजिने सं यौति हृविरेवाकरन्तर्वेदि सं यौत्यवंरुद्धौ यतीनामुद्यमानाना ॥ शीर्षाणि परांपत्नते खुर्जूरां अभवन्तेषा रसं ऊर्ध्वो-ऽपत्तानिं क्रीरांण्यभवन्थ्सौम्यानि वै क्रीरांणि सौम्या खलु वा आहंतिर्दिवो वृष्टिं च्यावयति यत्क्रीरांणि भवंन्ति (२४)

सौम्ययैवाहुंत्या दिवो वृष्टिमवं रुन्द्धे मध्रुषा सं यौत्यपां वा एष ओषधीना रसो यन्मध्वद्ध एवौषधीभ्यो वर्षत्यथों अद्ध एवौषधीभ्यो वृष्टिं नि नंयति मान्दा वाशा इति सं यौति नामधेयैरेवैना अच्छैत्यथो यथां ब्रूयादसावेहीत्येवमेवैनां नामधेयैरा (२५)

च्याव्यति वृष्णो अश्वस्य संदानमिस् वृष्ट्यै त्वोपं नह्यामीत्यांह् वृषा वा अश्वो वृषां पूर्जन्यः कृष्ण इंव खलु वै भूत्वा वंर्षति रूपेणैवैन् समर्धयति व्रषस्यावंरुद्धै॥ (२६)

अष्टौ भवंन्ति नाम्धेयैरैकान्नत्रिर्शर्च॥————[९]

देवां वसव्या देवाः शर्मण्या देवाः सपीतय इत्या बंध्नाति देवतांभिरेवान्वहं वृष्टिंमिच्छति यदि वर्षेत्तावंत्येव होत्व्यं यदि न वर्षेच्छो भूते ह्विर्निवंपेदहोरात्रे वै मित्रावर्रुणावहोरात्राभ्यां खलु वै पुर्जन्यो वर्षित नक्तं वा हि दिवां वा वर्षिति मित्रावर्रुणावेव स्वेनं भागुधेयेनोपं धावति तावेवास्मैं (२७)

अहोरात्राभ्यां पूर्जन्यं वर्षयतोऽग्नये धामच्छदे पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपेन्मारुतः सप्तकंपालः सोर्यमेकंकपालमृग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयित मुरुतः सृष्टां नंयन्ति यदा खलु वा असावांदित्यो न्यंङ्गिभिभिः पर्यावर्ततेऽथं वर्षित धामच्छिदिंव खलु वे भूत्वा वर्षत्येता वे देवता वृष्ट्यां ईशते ता एव स्वेनं भाग्धेयेनोपं धावित ताः (२८)

पुवास्में पूर्जन्यं वर्षयन्त्युतावंर्षिष्यन्वर्षंत्येव सृजा वृष्टिं दिव आद्भिः संमुद्रं पृणेत्यांहेमाश्चेवामूश्चापः समर्धयत्यथां आभिरेवामूरच्छैंत्युज्ञा असि प्रथमजा बर्लमसि समुद्रियमित्यांह यथायजुरेवैतदुन्नंम्भय पृथिवीमितिं वर्षाह्वां जुंहोत्येषा वा ओषंधीनां वृष्टिविनस्तयैव वृष्टिमा च्यांवयित् ये देवा दिविभांगा इतिं कृष्णाजिनमवं धूनोतीम एवास्में लोकाः प्रीता अभीष्टां भवन्ति॥ (२९)

अस्मै धावति ता वा एकंवि श्यतिश्च॥———[१०]

सर्वाणि छन्दा ईस्येतस्यामिष्ट्यांमृनूच्यानीत्यांहु स्त्रिष्टुभो वा पृतद्वीर्यं यत्कु कु बुष्णिहा जगंत्यै यदंष्णिह कु कु भांवन्वाह ते नैव सर्वाणि छन्दा इस्यवं रुन्द्वे गायत्री वा एषा यदुष्णिहा यानि चत्वार्यध्यक्षरांणि चतुंष्पाद एव ते पृशवो यथां पुरोडाशें पुरोडाशोऽध्येवमेव तद्यदृच्यध्यक्षरांणि यञ्जगंत्या (३०)

प्रिद्ध्यादन्तं युज्ञं गंमयेत्रिष्टुभा परि दधातीन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुगिन्द्रिय एव वीर्यं युज्ञं प्रति ष्ठापयित् नान्तं गमयत्यग्ने त्री ते वाजिना त्री ष्धस्थेति त्रिवंत्या परि दधाति सरूपत्वाय सर्वो वा एष युज्ञो यत्रैधात्वीयं कामायकामाय प्र युज्यते सर्वेभ्यो हि कामेभ्यो युज्ञः प्रयुज्यते त्रैधात्वीयेन यजेताभिचर्न्थ्सर्वो वै (३१)

पुष युज्ञो यत्रैधात्वीय् सर्वेणैवैनं युज्ञेनाभि चंरति स्तृणुत एवैनंमेतयैव यंजेताभिचर्यमाणः सर्वो वा एष युज्ञो यत्रैधात्वीय् सर्वेणैव युज्ञेनं यज्ञते नैनंमभिचरंन्थ्स्तृणुत एतयैव यंजेत सहस्रेण युक्ष्यमाणः प्रजातमेवैनंद्ददात्येतयैव यंजेत सहस्रेणेजानोऽन्तं वा एष पंशूनां गंच्छति (३२) यः सहस्रंण यजंते प्रजापंतिः खलु वै पृशूनंसृजत् ताः स्रंधात्वीयंनेवासंजत् य एवं विद्वाः स्रंधात्वीयंन पृशुकांमो यजंते यस्मादेव योनेः प्रजापंतिः पृशूनसृंजत् तस्मादेवेनां न्थ्सृजत् उपेन्मुत्तंर सहस्रं नमित देवतां भ्यो वा एष आ वृंश्यते यो युक्ष्य इत्युक्ता न यजंते त्रैधात्वीयंन यजेत सर्वो वा एष यज्ञः (३३)

यत्रैधात्वीय् सर्वेणैव य्ज्ञेनं यजत् न देवताँभ्य आ वृंश्च्यत् द्वादेशकपालः पुरोडाशो भवत् ते त्रयश्चतुंष्कपालाग्निः षमृद्धत्वाय त्रयः पुरोडाशां भवन्ति त्रयं इमे लोका एषां लोकानामाप्त्या उत्तरउत्तरो ज्यायाँ-भवत्येविमव हीमे लोका यवमयो मध्यं एतद्वा अन्तरिक्षस्य रूप समृद्धौ सर्वेषामभिगमयन्नवं द्यत्यछंम्बद्धार् हिरंण्यं ददात् तेजं एव (३४)

अवं रुन्द्वे ताप्यं देदाति पृशूनेवावं रुन्द्वे धेनुं देदात्याशिषं पृवावं रुन्द्वे साम्नो वा पृष वर्णो यद्धिरंण्यं यजुंषां ताप्यमंक्थामदानां धेनुरेतानेव सर्वान् वर्णानवं रुन्द्धे॥ (३५)

उपह्वमैंच्छत् तं नोपाँह्वयत पुत्रम्मेऽवधीरिति स यंज्ञवेश्मसं कृत्वा प्रासहा सोममिपिबृत्तस्य यद्त्यशिष्यत् तत्त्वष्टाहवनीयमुप् प्रावंत्य्यस्वाहेन्द्रेशत्रुवंर्धस्वेति स यावंदूर्धः पंराविध्यति तावंति स्वयमेव व्यरमत् यदि वा तावंत्प्रवणम् (३६) आसीद्यदि वा तावदध्यग्नेरासीथ्स सम्भवंत्रग्नीषोमांविभ

जर्गत्याऽभिचर्न्थ्सर्वो वै गंच्छति यज्ञस्तेजं एव त्रिष्ट्शर्च॥———[११]

त्वष्टां हतपुत्रो वीन्द्र सोममाहंरत्तस्मिन्निन्द्रं

समंभव्यस इंषुमात्रमिषुमात्रं विष्वंङ्घर्धत् स इमाल्राँकानंवृणोद्य वृत्रत्वन्तस्मादिन्द्रोंऽबिभेदिप् त्वष्टा तस्मै त्वष्टा वर्ज्ञमसिश्चत्तपो वै स वर्ज्ज आसीत्तमुद्यंन्तुं नाशंक्रोदथ् वै तर्हि विष्णुं: (३७) अन्या देवतांसीथ्सोंऽब्रवीद्विष्णवेहीदमा हंरिष्यावो

अन्या द्वतासाथ्साऽब्रवााद्वष्ण्वहादमा हारष्यावा येनायमिदमिति स विष्णुंस्रेधात्मानं वि न्यंधत्त पृथिव्यां तृतीयम्नतिरेक्षे तृतीयं दिवि तृतीयमभिपर्यावर्ताद्धविभेद्यत्पृंथिव तृतीयमासीत्तेनेन्द्रो वज्रमुदंयच्छद्विष्णवंनुस्थितः सौऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम् (३८) मेति तद्विष्णुवेति प्रायंच्छत्तद्विष्णुः प्रत्यंगृह्णादस्मास्विन्द्रं

इन्द्रियं दंधात्विति यदन्तरिक्षे तृतीयमासीत्तेनेन्द्रो

मियं वीयं तत्ते प्र दाँस्यामीति तदंस्मै प्रायंच्छ्तत्प्रत्यंगृह्णादध्

वज्रमुदंयच्छ्द्रिष्णवंनुस्थितः सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम् (३९) मियं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीति तदंस्मै प्रायंच्छ्तत्प्रत्यंगृह्णाद्विम् इति तद्विष्णविति प्रायंच्छ्तद्विष्णुः प्रत्यंगृह्णाद्स्मास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्विति यद्दिवि तृतीयमासीत्तेनेन्द्रो वज्रमुदंयच्छ्दिष्ण् सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हार्येनाहम् (४०) इदमस्मि तत्ते प्र दौस्यामीति त्वी (३) इत्यंब्रवीथ्सन्धान्तु

सं देधावहै त्वामेव प्र विशानीति यन्माम्प्रविशेः किम्मां भुआ इत्यंब्रवीत्त्वामेवेन्धीय तव भोगाय त्वाम्प्र विशेयमित्यंब्रवीत्तं वृत्रः प्राविशदुदरं वै वृत्रः क्षुत्खलु वै मेनुष्यंस्य भ्रातृं व्यो यः (४१) एवं वेद हन्ति क्षुधम्भ्रातृं व्यन्तदंस्मै प्रायंच्छत्तत्प्रत्यंगृह्णात्रिर्माष

इति तद्विष्ण्वेति प्रायंच्छ्तद्विष्णुः प्रत्यंगृह्णाद्समास्विन्द्रं इन्द्रियं दंधात्विति यत्रिः प्रायंच्छित्रिः प्रत्यगृह्णात्तित्रिधातौस्त्रिधातुत यद्विष्णुंर्न्वतिष्ठत् विष्णुवेति प्रायंच्छत्तस्मांदैन्द्रावैष्णुव श् ह्विर्भवति यद्वा इदं किं च तदंस्मै तत्प्रायंच्छ्दचः सामांनि यजू श्रेषि सहस्रं वा अंस्मै तत्प्रायंच्छ्तस्मांथ्सहस्रंदक्षिणम्॥ (४

प्रवणं विष्णुर्वा इदिम्दिम्हं यो भंवत्येकंवि शतिश्वा——[१२] देवा वै राजन्यां ज्ञायंमानादि बिभयुस्तम्-तरेव सन्तं दाम्नापौम्भुन्थ्स वा एषोऽपौद्धो जायते यद्गां जन्यो यद्वा एषो-ऽनंपोद्धो जायेत वृत्रान्म्न श्रृश्चेरद्यं कामयेत राजन्यंमनंपोद्धो

ऽनंपोब्धो जायेत वृत्रान्प्रःश्चरेद्यं कामयेत राजन्यंमनेपोब्धो जायेत वृत्रान्प्रःश्चरेदिति तस्मा एतमैंन्द्राबार्हस्पृत्यं चरुं निर्वपेदैन्द्रो व राजन्यौ ब्रह्म बृह्स्पतिर्ब्रह्मणैवैनं दाम्रोऽपोम्भेनान्मुश्चिति हिर्ण्मयं दाम् दक्षिणा साक्षादेवैनं दाम्रोऽपोम्भेनान्मुश्चिति॥ (४३)

पुनं द्वादंश च॥———[१३]

नवीनवो भवति जायमानोऽह्रां केतुरुषसामेत्यग्रें। भागं देवेभ्यो वि देधात्यायन्त्र चन्द्रमांस्तिरति दीर्घमायुः। यमादित्या अर्शुमांप्याययंन्ति यमक्षित्मक्षितयः पिबंन्ति। तेनं नो राजा वर्रुणो बृहुस्पतिरा प्याययन्तु भुवंनस्य गोपाः। प्राच्यां दिशि त्विमंन्द्रासि राजोतोदींच्यां वृत्रहन्वृत्रहासिं। यत्र यन्ति स्रोत्यास्तत् (४४)

जितं ते दक्षिणतो वृष्म एिध् हव्यः। इन्द्रों जयाति न पर्गं जयाता अधिराजो राजंसु राजयाति। विश्वा हि भूयाः पृतंना अभिष्टीरुंपसद्यों नमस्यों यथासंत्। अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्। स्वराडिन्द्रो दम् आ विश्वगूर्तः स्वरिरमंत्रो ववक्षे रणांय। अभि त्वां शूर नोनुमोऽदुंग्धा इव धेनवंः। ईशांनम् (४५)

अस्य जगंतः सुवर्दश्मीशांनिमन्द्र तस्थुषंः। त्वामिद्धि हवांमहे साता वाजंस्य का्रवंः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पंतिं नर्स्त्वां काष्टास्ववंतः। यद्यावं इन्द्र ते श्तर श्तम्भूमींरुत स्युः। न त्वां विज्ञन्थ्यहस्रू सूर्या अनु न जातमेष्ट रोदंसी। पिबा सोमंमिन्द्र मन्दंतु त्वा यं ते सुषावं हर्यश्वाद्रिः। (४६)

सोतुर्बाहुभ्या १ सुयंतो नार्वा। रेवर्तीनः सधमाद इन्द्रें सन्तु तुविवांजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम। उदंग्ने शुचयस्तव वि ज्योतिषोदु त्यं जातवेदस१ सप्त त्वां हरितो रथे वहंन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण। चित्रं देवानामुदंगादनींकं चक्षुंर्मित्रस्य वरुंणस्याग्नेः। आऽप्रा द्यावांपृथिवी अन्तरिक्षः

सूर्यं आत्मा जगंतस्तस्थुषंः (४७)

च। विश्वे देवा ऋतावृधं ऋतुभिर्हवन्श्रुतंः। जुषन्तां युज्यम्पयंः। विश्वे देवाः शृणुतेम र हवम्मे ये अन्तरिक्षे य उप् द्यवि ष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजंत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् (४८)

देवा मंनुष्यां देवासुरा अंब्रुवन्देवासुरास्तेषाँङ्गायत्री प्रजापंतिस्ता यत्राग्ने गोभिंश्चित्रयां मारुतन्देवां वसव्या अग्ने मारुतमिति देवां वसव्या देवाः शर्मण्यास्त्वष्टां हृतपुंत्रो देवा वै राजुन्यांन्नवोनवश्चतुंर्दश॥———[१४]

[देवा मंनुष्याः प्रजां पुशून्देवां वसव्याः परिद्ध्यादिदमस्म्यृष्टाचंत्वारि ४शत्॥४८॥ देवा मंनुष्यां मादयध्वम्॥]

तदीशांनुमद्रिंस्तस्थुपंस्त्रि र्शचं॥ [१५]

विश्वरूपस्त्वष्टेन्द्रं वृत्रम्ब्रह्मवादिनः स त्वै नासोमयाज्येष वै देवर्थो देवा वै नर्चि नायुज्ञोऽग्नें महान्नीत्रिवीत्मायुष्ट्रे द्वादंश॥ [१६] विश्वरूपो नैनर् शीतरूरावृद्य वस् पूर्वेद्युर्वाजा इत्यग्नें महान्निवीतम्न्या यन्ति चर्तुःसप्ततिः॥74॥ विश्वरूपोऽन् ते दायि॥]

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानांमासीथ्स्वस्त्रीयोऽसुंराणान्तस्य त्रीणिं शीर्षाण्यांसन्थ्सोम्पानर् सुरापानंमन्नादंन्र् स प्रत्यक्षं देवेभ्यों भागमंवदत्परोक्षमसुरिभ्यः सर्वस्मै वै प्रत्यक्षं भागं वंदन्ति यस्मां एव प्रोक्षं वर्दन्ति तस्यं भाग उंदितस्तस्मादिन्द्रों-ऽबिभेदीदङ्के राष्ट्रं वि पूर्यावंतियतीति तस्य वर्ज्ञमादायं शीर्षाण्यंच्छिन्द्यथ्सोम्पानम् (१)

आसीथ्स कृपिञ्जंलोऽभव्द्यथ्सुंरापान् स कंल्विङ्को यद्त्रादंन् स तिंतिरिस्तस्यां अलिनां ब्रह्महृत्यामुपांगृह्णाताः संवथ्सरमंबिभस्तम्भूतान्यभ्यंक्रोश्-ब्रह्मंहृत्रिति स पृंथिवीमुपांसीदद्स्य ब्रह्महृत्यायै तृतींयं प्रतिं गृह्णोति साब्रंवीद्वरं वृणे खातात्पराभविष्यन्तीं मन्ये ततो मा परां भूविमितिं पुरा तें (२)

संवथ्सरादिपं रोहादित्यंब्रवीत्तस्माँत्पुरा संवथ्सरात्यृंथिव्ये खातमिपं रोहित वारंवृत् इ ह्यंस्ये तृतीयं ब्रह्महृत्याये प्रत्यंगृह्णात्तथ्स्वकृतिमिरिणमभवत्तस्मादाहिताग्निः श्रद्धादेवः स्वकृत् इरिणे नावं स्येद्कहृत्याये ह्यंष वर्णः स वनस्पतीनुपासीदद्स्ये ब्रह्महृत्याये तृतीयं प्रति गृह्णीतेति तेंऽब्रुवन्वरं वृणामहै वृक्णात् (३)

प्राभृ विष्यन्तों मन्यामहे ततो मा पर्रा भूमेत्यावश्चनाह्यो भूयार्रस् उत्तिष्ठानित्यंत्रवीत्तस्मादाव्रश्चनाह्युक्षाणाम्भूयार्रस् उत्तिष्ठन्ति वारेवृत् ह् ह्येषान्तृतीयं ब्रह्महृत्यायै प्रत्यंगृह्नन्थ्स निर्यासोऽभवृत्तस्मात्रिर्यासस्य नाश्यं ब्रह्महृत्यायै ह्येष वर्णोऽथो खलु य एव लोहितो यो वाऽऽव्रश्चनात्रिर्येषित तस्य नाश्यम् (४)

कामंम्न्यस्य स श्लीषश्सादमुपांसीदद्स्यै ब्रह्महृत्यायै तृतीयं प्रतिं गृह्णीतेति ता अंब्रुवन्वरं वृणामहा ऋत्वियात्प्रजां विन्दामहै काम्मा विजेनितोः सम्भवामेति तस्मादृत्वियाध्ब्रियः प्रजां विन्दन्ते काम्मा विजेनितोः सम्भवन्ति वारेवृत् ह्यांसान्तृतीयं ब्रह्महृत्यायै प्रत्यंगृह्णन्थ्सा मलंबद्वासा अभवत्तस्मान्मलंबद्वाससा न सं वेदेत (५)

न सहासींत नास्या अन्नंमद्याद्भह्महृत्यायै ह्येषा वर्णं प्रतिमुच्यास्तेऽथो खल्वांहुर्भ्यञ्जंनं वाव स्त्रिया अन्नंमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं कामंमन्यदिति याम्मलंबद्वाससः सम्भवन्ति यस्ततो जायंते सोऽभिश्वस्तो यामरंण्ये तस्यै स्तेनो यां परांचीं तस्यै ह्वीतमुख्यंपगुल्भो या स्नाति तस्यां अपस् मार्रुको या (६)

अभ्यक्कें तस्यैं दुश्चर्मा या प्रंलिखते तस्यैं खलतिरंपमारी याऽऽक्कें तस्यैं काणो या दतो धावते तस्यैं श्यावदन् या नुखानिं निकृन्तते तस्यैं कुनुखी या कृणत्ति तस्यैं क्कीबो या रज्जुर्र सृजति तस्यां उद्बन्धुंको या पूर्णेन पिबंति तस्यां उन्मादुंको या खर्वेण् पिबंति तस्यै खुर्वस्तिस्रो रात्रींर्वृतं चेरेदञ्जलिनां वा पिबेदखंर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथायं॥ (७)

यथ्सोम्पानन्ते वृक्णात्तस्य नाश्यं वदेत् मारुंको याऽखंर्वेण वा त्रीणि च॥———[१]

त्वष्टां ह्तपुंत्रो वीन्द्र सोम्माहंर्त्तस्मित्निन्द्रं उपह्वमैंच्छत् तं नोपाँह्वयत पुत्रम्में-ऽवधीरिति स यंज्ञवेश्नसं कृत्वा प्रासहा सोमंमपिबृत्तस्य यद्त्यशिष्यत् तत्त्वष्टांहव्नीयमुप् प्रावंतयथ्स्वाहेन्द्रंशत्रुवधस्विति यदवंतयत्तद्वृत्रस्यं वृत्रत्वं यदब्रवीथ्स्वाहेन्द्रंशत्रुवधस्विति तस्मादस्य (८)

इन्द्रः शत्रुंरभवृथ्स सुम्भवंत्रुग्नीषोमांवृभि समंभवृथ्स इंषुमात्रिमिषुमात्रुं विष्वंङ्कःवर्धत् स इमाल्लाँकानंवृणोद् यदिमाल्लाँकानवृणोत्तद्द्वत्रस्यं वृत्रत्वन्तस्मादिन्द्रोऽिबभेथ्स प्रजापंतिमुपांधावृच्छत्रुंर्मेऽजनीति तस्मै वज्र सिका प्रायंच्छदेतेनं जहीति तेनाभ्यायत् तावंब्रतामग्रीषोमो मा (९)

प्र हांरावम्नतः स्व इति मम् वै युवः स्थ इत्यंब्रवीन्माम्भ्येत्मिति तौ भांगुधेयंमैच्छेतान्ताभ्यांमेतमंग्रीषोमीयमेकांदशकपालम्पूर्णमांसे प्रायंच्छतावंब्र्ताम्भि सन्दंष्टौ वै स्वो न शंक्रुव ऐतुमिति स इन्द्रं आत्मनः शीतरूरावंजनयत्तच्छींतरूरयोर्जन्म् य एवः शीतरूरयोर्जन्म् वेदं (१०)

नैनर् शीतरूरौ हंत्स्ताभ्यांमेनम्भ्यंनय्त्तस्मां अञ्चभ्यमांनाद्ग्रीषोमो निरंकामतां प्राणापानो वा एंनं तदंजिहताम् प्राणो वै दक्षोऽपानः क्रतुस्तस्मां अञ्चभ्यमांनो ब्रूयान्मियं दक्षकृत् इतिं प्राणापानावेवात्मन्थंते सर्वमायुरिति स देवतां वृत्रान्निर्हूय वार्त्रघ्र हुविः पूर्णमांसे निरंवपुद्धन्ति वा एंनम्पूर्णमांस् आ (११)

अमावास्यायययित् तस्माद्वार्त्रघ्नी पूर्णमासेऽनूँच्येते वृधंन्वती अमावास्यांयान्तथ्स्ड्स्था वार्त्रघ्न हिवर्वज्रमादाय पुनंर्भ्यायत् ते अंब्रूतान्द्यावांपृथिवी मा प्र हांरावयोर्वे श्रित इति ते अंब्रूतां वरं वृणावहै नक्षंत्रविहिताऽहमसानीत्यसावंब्रवीचित्रविहिता-ऽहमितीयन्तस्मान्नक्षंत्रविहिताऽसौ चित्रविहितेयं य एवं द्यावांपृथिव्योः (१२)

वरं वेदैनं वरों गच्छति स आभ्यामेव प्रसूत इन्द्रों वृत्रमंहन्ते देवा वृत्र॰ हत्वा-ऽग्नीषोमावब्रुवन्ह्व्यं नों वहत्मिति तावंब्रूतामपंतेजसौ वै त्यौ वृत्रे वै त्ययोस्तेज इति तेंंऽब्रुव्न्क इदमच्छेतीति गौरित्यंब्रुव्न्गौर्वाव सर्वस्य मित्रमिति साऽब्रंवीत् (१३)

वरं वृणे मय्येव स्तोभर्येन भुनजाध्वा इति तद्गौराहंर्त्तस्माद्गविं स्तोभर्येन भुञ्जत एतद्वा अग्नेस्तेजो यद्धृतमेतथ्सोमंस्य यत्पयो य एवम्ग्नीषोमंयोस्तेजो वेदं तेज्स्ब्येव भंवित ब्रह्मवादिनो वदन्ति किन्देवृत्यंम्पौर्णमासमितिं प्राजापृत्यमितिं ब्रूयात्तेनेन्द्रं ज्येष्ठम्पुत्रं निरवांसाययदिति तस्मां अयेष्ठम्पुत्रं धर्नेन निरवंसाययन्ति॥ (१४)

अस्य मा वेदा द्यावांपृथिव्योरंब्रवीदिति तस्मांचृत्वारिं च॥_____[२]

इन्ह्रं वृत्रं जंघ्निवारसम्मृथोऽभि प्रावेपन्त स एतं वैमृथम्पूणमांसेऽनुनिर्वाप्यंमपश्यत्तं निरंवप्तेन् वै स मृथोऽपांहत् यद्वैमृथः पूर्णमांसेऽनुनिर्वाप्यो भवंति मृथं एव तेन् यजमानोऽपं हत् इन्द्रो वृत्रर हत्वा देवतांभिश्चेन्द्रियेणं च व्याध्यत् स एतमाँग्नेयम्ष्टाकंपालममावास्यांयामपश्यदैन्द्रं दिधं (१५)

तं निरंवप्त्तेन् वै स देवताँश्चेन्द्रियं चार्वारुन्द्ध् यदाँग्नेयौंऽष्टाकंपालोऽमावास्यांयाम्भवंत्यैन्द्रं दिधं देवताँश्चेव तेनैन्द्रियं च यजंमानोऽवं रुन्द्ध् इन्द्रंस्य वृत्रं ज्ञ्चष्ठुषं इन्द्रियं वीर्यं पृथिवीमनु व्यार्च्छ्तत्तदोषंधयो वीरुधोंऽभवन्थ्स प्रजापंतिमुपांधावद्दृत्रं में जुन्नुषं इन्द्रियं वीर्यम् (१६)

पृथिवीमन् व्यार्त्तदोषंधयो वी्रुधोऽभूवित्रिति स प्रजापंतिः पृशूनंब्रवीदेतदंस्मै सं नंयतेति तत्पृशव ओषंधीभ्योऽध्यात्मन्थ्समंनयन्तत्प्रत्यंदुह्न् यथ्समनंयन्तथ्सान्नाय्यस्यं सान्नाय्यत्वं यत्प्रत्यदंहुन्तत्प्रतिधुषंः प्रतिधुक्तः समनेषुः प्रत्यंधुक्षन्न तु मियं श्रयत् इत्यंब्रवीदेतदंस्मै (१७)

शृतं कुंरुतेत्यंब्रवीत्तदंस्मै शृतमंकुर्वन्निन्द्र्यं वावास्मिन्वीर्यं तदंश्रयन्तच्छृतस्यं शृतृत्व र समंनैषुः प्रत्यंधुक्षञ्छृतमंकृत्र तु मां धिनोतीत्यंब्रवीदेतदंस्मै दिधं कुरुतेत्यंब्रवीत्तदंस्मै दध्यंकुर्वन्तदंनमधिनोत्तद्दश्रो दंधित्वं ब्रह्मवादिनों वदन्ति दश्नः पूर्वस्यावदेयम् (१८)

दिध् हि पूर्वं क्रियत् इत्यनांदृत्य् तच्छृतस्यैव पूर्वस्यावं द्येदिन्द्र्यमेवास्मिन्वीर्यर्ध् श्रित्वा द्र्योपरिष्टाद्धिनोति यथापूर्वमुपैति यत्पूर्तीकैर्वा पर्णवृत्कैर्वात्रश्चाथ्सौम्यं तद्यत्क्वेलै राक्ष्मसं तद्यत्तंण्डुलैर्वेश्वदेवं तद्यदातश्चनेन मानुषं तद्यद्व्या तथ्सेन्द्रं द्या तनिक्त (१९)

सेन्द्रत्वायाँग्निहोत्रोच्छेषणम्भ्यातंनिक्त यज्ञस्य सन्तंत्या इन्द्रों वृत्र॰ हृत्वा पराँ परावतंमगच्छ्दपाराधिमिति मन्यंमान्स्तं देवताः प्रैषंमैच्छ्न्थ्सौऽब्रवीत्प्रजापंतिर्यः प्रंथमौ- ऽनुविन्दित् तस्यं प्रथमम्भाग्धेयमिति तम्पितरोऽन्वंविन्दन्तस्मांत्पितृभ्यः पूर्वेद्यः क्रियते सोऽमावास्यां प्रत्यागंच्छत्तं देवा अभि समंगच्छन्तामा वै नः (२०)

अद्य वसुं वस्तीतीन्द्रो हि देवानां वसु तदमावास्याया अमावास्यत्वं ब्रह्मवादिनीं वदन्ति किन्देवत्य सान्नाय्यमितिं वैश्वदेवमितिं ब्रूयाद्विश्वे हि तद्देवा भागधेयम्भि समर्गच्छन्तेत्यथो खल्वैन्द्रमित्येव ब्रूयादिन्द्रं वाव ते तद्धिषज्यन्तोऽभि समंगच्छन्तेति॥ (२१)

दिधं मे जुघुषं इन्द्रियं वीर्यमित्यंब्रवीदेतदंस्मा अवदेयंन्तनिक्त नो द्विचंत्वारि शच॥-[३]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै देशपूर्णमासौ यंजेत् य एंनौ सेन्द्रौ यजेतेतिं वैमृधः पूर्णमांसेऽनुनिर्वाप्यों भवित तेनं पूर्णमांसः सेन्द्रं ऐन्द्रं दध्यंमावास्यांयां तेनांमावास्यां सेन्द्रा य एवं विद्वान्दंशपूर्णमासौ यजंते सेन्द्रांवेवैनौं यजते श्वःश्वौंऽस्मा ईजानाय वसीयो भवित देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा एताम् (२२)

इष्टिंमपश्यन्नाग्नावैष्ण्वमेकांदशकपालुर् सरंस्वत्ये चुरुर सरंस्वते चुरुं ताम्पौर्णमासर स्र्थ्रस्थाप्यानु निरंवपन्ततों देवा अभवन्यरासुरा यो भ्रातृंव्यवान्थ्रस्याथ्स पौर्णमासर स्र्थ्रस्थाप्येतामिष्टिमनु निर्वपेत्पौर्णमासेनैव वज्रम्भ्रातृंव्याय प्रहृत्यांग्नावैष्णवेनं देवतांश्च युज्ञं च भ्रातृंव्यस्य वृक्के मिथुनान्पशून्थ्सारस्वताभ्यां यावंदेवास्यास्ति तत् (२३)

सर्वं वृङ्के पौर्णमासीमेव यंजेत् भ्रातृंव्यवान्नामांवास्यारं हृत्वा भ्रातृंव्युं ना प्यांययित साकम्प्रस्थायीयेन यजेत पृश्वकांमो यस्मै वा अत्येनाहरंन्ति नात्मना तृप्यंति नान्यस्मै ददाति यस्मै महता तृप्यंत्यात्मना ददात्यन्यस्मै महता पूर्णर होत्व्यंन्तृप्त एवैन्मिन्द्रंः प्रजयां पृश्वभिंस्तपेयित दारुपात्रेणं जुहोति न हि मृन्मयुमाहुंतिमानुश औदुंम्बरम् (२४)

भ्वत्यूग्वा उंदुम्बर् ऊर्क्प्शवं ऊर्जेवास्मा ऊर्जं पृश्नवं रुन्द्वे नागंतश्रीर्महेन्द्रं यंजेत् त्रयो वै गृतिश्रयः शुश्रुवान्त्रांमुणी राजन्यंस्तेषांम्महेन्द्रो देवता यो वै स्वां देवतांमित्यजंते प्र स्वाये देवतांये च्यवते न पराम्प्राप्नोति पापीयान्भवति संवथ्सरिमन्द्रं यजेत संवथ्सरश् हि ब्रुतं नाति स्वा (२५)

पुवैनं देवतेज्यमाना भूत्यां इन्द्धे वसीयान्भवति संवथ्सरस्यं पुरस्तांद्ग्नयें व्रतपंतये पुरोडाशंमुष्टाकंपालं निर्वपेथ्संवथ्सरमेवेनं वृत्रं जिघ्नवारसंमुग्निर्वृतपंतिर्वृतमा लेम्भयति ततो- ऽधि कार्मं यजेत॥ (२६)

पुतान्तदौदुंम्बर्ड् स्वा त्रिर्शर्च॥——

-[8]

नासोमयाजी सं नेयेदनांगतं वा एतस्य पयो योऽसोमयाजी यदसोमयाजी संनयेंत्पिरमोष एव सोऽनृतं करोत्यथो परैव सिंच्यते सोमयाज्येंव सं नेयेत्पयो वे सोमः पर्यः सान्नाय्यम्पर्यसैव पर्य आत्मन्धंत्ते वि वा एतम्प्रजयां पृश्भिरर्धयति वर्धयंत्यस्य भ्रातृंच्यं यस्यं हिविर्निरुप्तम्पुरस्तां चुन्द्रमाः (२७)

अभ्युंदेतिं त्रेधा तंण्डुलान् वि भंजेद्ये मंध्यमाः स्युस्तानुग्रये दात्रे पुरोडाशंमुष्टाकंपालं कुर्याद्ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे द्धइश्चरं येऽणिष्ठास्तान् विष्णंवे शिपिविष्टायं शृते च्रुमिग्नेरेवास्मै प्रजाम्प्रंजनयंति वृद्धामिन्द्रः प्र यंच्छति यज्ञो वै विष्णुंः पृशवः शिपियंज्ञ एव पृशुषु प्रति तिष्ठति न द्वे (२८)

युजेत यत्पूर्वया सम्प्रति यजेतोत्तंरया छुम्बद्धुंर्याच्यदुत्तंरया सम्प्रति यजेत पूर्वया छम्बद्धुंर्यात्रिष्टिर्भवंति न यज्ञस्तदनुं हीतमुख्यंपगुल्भो जायत एकांमेव यंजेत प्रगुल्भौंऽस्य जायतेऽनांदत्य तद्धे एव यंजेत यज्ञमुखमेव पूर्वयालभेते यजेत उत्तरया देवतां एव पूर्वयावरुन्द्ध इंन्द्रियमुत्तरया देवलोकमेव (२९)

पूर्वयाभिजयंति मनुष्यलोकमुत्तंरया भूयंसो यज्ञकृतूनुपैत्येषा वै सुमना नामेष्टिर्यमुद्येजानम्पश्चाचुन्द्रमां अभ्युंदेत्यस्मिन्नेवास्मैं लोकेऽर्धुकम्भवति दाक्षायणयज्ञेनं सुवर्गकामो यजेत पूर्णमासे सं नयेन्मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षयामावास्यायां यजेत पूर्णमासे वै देवाना स् सुतस्तेषांमेतमंर्धमासम्प्रसुंतस्तेषांम्मैत्रावरुणी वृशामावास्यायामनूबन्थ्यां यत् (३०)

पूर्वेद्युर्यजंते वेदिमेव तत्करोति यद्यथ्सानंपाकरोति सदोहविर्धाने एव सिम्मिनोति यद्यजंते देवैरेव सुत्यार सम्पादयित स एतमर्धमासर संधुमादं देवैः सोमंग्पिबति यन्मैत्रावरुण्यामिक्षयामावास्यायां यजति येवासौ देवानां वृशानूंबन्थ्यां सो एवेषेतस्यं साक्षाद्वा एष देवानुभ्यारोहित य एषां यज्ञम् (३१)

अभ्यारोहिति यथा खलु वै श्रेयांनुभ्यारूढः कामयंते तथां करोति यद्यंविविध्यंति पापीयान्भवित यदि नाविविध्यंति सृदङ्खावित्कांम एतेनं युज्ञेनं यजेत क्षुरपविर्ह्णेष युज्ञस्ताजक्पुण्यों वा भविति प्र वां मीयते तस्यैतद्वृतं नानृतं वदेन्न मार्समंश्रीयान्न स्रियमुपेयान्नास्य पर्ल्पूलनेन वार्सः पल्पूलयेयुरेतद्धि देवाः सर्वं न कुर्वन्ति॥ (३२)

चुन्द्रमा द्वे देवलोकमेव यद्यज्ञं पेल्पूलयेयुः षट्वं॥————[५]

पृष वै देवर्थो यद्दंरशपूर्णमासौ यो दंरशपूर्णमासाविष्ट्वा सोमेन यजंते रथंस्पष्ट पृवावसाने वरं देवानामवं स्यत्येतानि वा अङ्गापरूरंषि संवथ्सरस्य यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यज्तेऽङ्गापरूर्ध्येव संवथ्सरस्य प्रति दधात्येते वै संवथ्सरस्य चक्षंषी यद्दंरशपूर्णमासौ य पृवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यजंते ताभ्यामेव सुंवर्गं लोकमन् पश्यति (३३)

पुषा वै देवानां विक्रान्तिर्यर्दर्शपूर्णमासौ य पुवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजंते देवानांमेव विक्रान्तिमनु वि कंमत पुष वै देवयानः पन्था यद्रशपूर्णमासौ य पुवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजंते य पुव देवयानः पन्थास्तर समारोहत्येतौ वै देवानार् हरी यद्रशपूर्णमासौ य पुवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजंते यावेव देवानार् हरी ताभ्याम (३४)

एवैभ्यों हुव्यं वंहत्येतद्वै देवानांमास्यं यद्दंरशपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यजंते साक्षादेव देवानांमास्यें जुहोत्येष वै हंविर्धानी यो दंरशपूर्णमासयाजी सायम्प्रांतरग्निहोत्रं जुहोति यजंते दरशपूर्णमासावहंरहरहविर्धानिना स्युतो य एवं विद्वान्दंरशपूर्णमासौ यजंते हविर्धान्यंस्मीति सर्वमेवास्यं बर्हिष्यं दत्तम्भंवित देवा वा अहंः (३५)

युज्ञियं नाविन्दन्ते दंर्शपूर्णमासावंपुनन्तौ वा एतौ पूतौ मेध्यौ यद्दंर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दंर्शपूर्णमासौ यजंते पूतावेवैनौ मेध्यौ यजते नामांवास्यांयां च पौर्णमास्यां च स्त्रियमुपेयाद्यदंपेयात्रिरिन्द्रियः स्याथ्सोमंस्य वै राज्ञौंऽर्धमासस्य रात्रयः पत्नंय आसुन्तासांममावास्यां च पौर्णमासीं च नोपैत् (३६)

ते एनम्भि समनहोतान्तं यक्ष्मं आर्च्छ्र्ंद्राजांनुं यक्ष्मं आर्दिति तद्रांजयक्ष्मस्य जन्म् यत्पापीयानभवत्तत्पापयक्ष्मस्य यञ्चायाभ्यामिविन्दत्तञ्चायेन्यंस्य य एवमेतेषां यक्ष्मांणां जन्म् वेद नैनंमेते यक्ष्मां विन्दन्ति स एते एव नंमस्यन्नुपाधावत्ते अन्नूतां वरं वृणावहा आवं देवानां भाग्धे असाव (३७)

आवदिधं देवा इंज्यान्ता इति तस्माँथ्सदृशीना र रात्रीणाममावास्यायां च पौर्णमास्यां चं देवा इंज्यन्त एते हि देवानां भागुधे भागुधा अस्मै मनुष्यां भवन्ति य एवं वेदं भूतानि क्षुधंमघ्रन्थ्सद्यो मंनुष्यां अर्धमासे देवा मासि पितरंः संवथ्सरे वनस्पतंयस्तस्मादहंरहर्मनुष्यां अर्शनिमच्छन्तेऽर्धमासे देवा इंज्यन्ते मासि पितृभ्यंः क्रियते संवथ्सरे वनस्पतंयः फर्लं गृह्णन्ति य एवं वेद हिन्तु क्षुधुम्भ्रातृंव्यम्॥ (३८)

पृश्यृति ताभ्यामहंरैदसाव फलर्५ सप्त चं॥______[६]

देवा वै नर्चि न यर्जुष्यश्रयन्त ते सामन्त्रेवाश्रयन्त हिं केरोति सामैवाकर्हिं केरोति यत्रैव देवा अश्रयन्त तर्त एवैनान्प्र युंङ्के हिं केरोति वाच एवैष योगो हिं केरोति प्रजा एव तद्यर्जमानः सृजते त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां युज्ञस्यैव तद्वर्सम् (३९)

नृह्यत्यप्रस्नश्साय सन्तंतमन्वांह प्राणानांमुन्नाद्यंस्य सन्तंत्या अथो रक्षंसामपंहत्यै राथंतरीम्प्रथमामन्वांह राथंतरो वा अयं लोक इममेव लोकम्भि जंयित त्रिर्वि गृह्णाति त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्भि जंयित बार्हतीमुत्तमामन्वांह बार्हतो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकम्भि जंयित प्र वंः (४०)

वाजा इत्यनिरुक्ताम्प्राजापुत्यामन्वांह युज्ञो वै प्रजापंतिर्युज्ञमेव प्रजापंतिमा रंभते प्र वो वाजा इत्यन्वाहात्रुं वै वाजोऽत्रमेवावं रुन्द्धे प्र वो वाजा इत्यान्वाहु तस्मात्प्राचीन् १ रेतों धीयतेऽग्र आ याहि वीतय इत्यांहु तस्मात्प्रतीचीः प्रजा जांयन्ते प्र वो वाजाः (४१)

इत्यन्बांहु मासा वै वाजां अर्धमासा अभिद्यंवो देवा हुविष्मंन्तो गौर्घृताचीं युज्ञो देवाञ्जिगाति यजमानः सुम्रयुरिदमंसीदम्सीत्येव युज्ञस्य प्रियं धामावं रुन्द्धे यं कामयेत् सर्वमायुरियादिति प्र वो वाजा इति तस्यानूच्याग्र आ यांहि वीतय इति सन्तंतमुत्तंरमर्ध्चमा लंभेत (४२)

प्राणेनेवास्यापानं दांधार् सर्वमायुरिति यो वा अर्ति सामिधेनीनां वेदार्त्नावेव भ्रातृंव्यं कुरुतेऽर्ध्वां सं दंधात्येष वा अर्तिः सामिधेनीनां य एवं वेदार्त्नावेव भ्रातृंव्यं कुरुत ऋषेर्ंऋषेवां एता निर्मिता यथ्सामिधेन्यंस्ता यदसंयुक्ताः स्यः प्रजयां पशुभिर्यजमानस्य वि तिष्ठेरन्नर्ध्वां सन्दंधाति सं युनक्त्येवैनास्ता अस्मै संयुक्ता अवरुद्धाः सर्वामाशिषं दुह्ने॥ (४३)

बुर्सं वों जायन्ते प्र वो वाजां लभेत दधाति सन्दर्श च॥———[७] अर्यज्ञो वा एष योंऽसामाऽग्न आ यांहि वीतय इत्यांह रथन्तुरस्यैष वर्णस्तं त्वां सुमिद्भिरङ्गिर् इत्यांह वामदेव्यस्यैष वर्णों बृहदंग्ने सुवीर्यमित्यांह बृह्त एष वर्णो यदेतं तृचमुन्वाहं यज्ञमेव तथ्सामंन्वन्तं करोत्यग्निर्मुष्मिं ह्याँक आसींदादित्यों ऽस्मिन्ताविमौ लोकावशांन्तौ (४४)

आस्तान्ते देवा अंब्रुवृत्रेतेमौ वि पर्यूह्यमेत्यग्र आ याहि बीतय इत्यस्मिल्लौँकै-ऽग्निमंदधुर्बृहदंग्ने सुवीर्यमित्यमुष्मिल्लौंक आंदित्यन्ततो वा इमौ लोकावंशाम्यतां यदेवम्न्वाह्यनयोंलींकयोः शान्त्यै शाम्यंतोऽस्मा इमौ लोकौ य एवं वेद पश्चंदश सामिधेनीरन्वांह पश्चंदश (४५)

वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमास्याः संवथ्सर आप्यते तासां त्रीणि च श्तानि पृष्टिश्चाक्षराणि तावंतीः संवथ्सरस्य रात्रयोऽक्षर्श एव संवथ्सरमाँप्रोति नृमेर्धश्च परुंच्छेपश्च ब्रह्मवाद्यमवदेताम्स्मिन्दारांवाद्वैऽग्निं जंनयाव यत्रो नौ ब्रह्मीयानिति नृमेधोऽभ्यंवद्थस धूममंजनयुत्परुंच्छेपोऽभ्यंवद्थसौंऽग्निमंजनयुद्ध इत्यंब्रवीत् (४६)

यथ्समाविद्विद्व कथा त्वमुग्निमजीजनो नाहिमिति सामिधेनीनांमेवाहं वर्णं वेदेत्यंत्रवीद्यद्धृतवेत्पदमंनूच्यते स आंसां वर्णस्तं त्वां सुमिद्धिरङ्गिर् इत्यांह सामिधेनीष्वेव तज्ज्योतिर्जनयति स्त्रियस्तेन यद्द्यः स्त्रियस्तेन यद्गांयत्रियः स्त्रियस्तेन यथ्सांमिधेन्यों वृषंण्वतीमन्वांह (४७)

तेन् पुइस्वंती्स्तेन् सेन्द्रास्तेनं मिथुना अग्निर्देवानां दूत आसींदुशनां काव्यो-ऽसुंराणान्तौ प्रजापंतिम्प्रश्नमेंतार् स प्रजापंतिर्प्निं दूतं वृंणीमह् इत्यमि पूर्यावंतित् ततो देवा अभवन्परासुंरा यस्यैवं विदुषोऽग्निं दूतं वृंणीमह् इत्यन्वाह् भवंत्यात्मना परांस्य आतृंव्यो भवत्यध्वरवंतीमन्वांह् भ्रातृंव्यमेवैतयां (४८)

ध्वरित शोचिष्केंशस्तमींमह् इत्यांह प्वित्रंमेवैतद्यजंमानमेवैतयां पवयित सिमेंद्धो अग्न आहुतेत्यांह परिधिमेवैतं परि दधात्यस्केन्दाय् यदतं ऊर्ध्वमंभ्याद्ध्याद्यथां बहिःपरिधि स्कन्दंति ताद्दगेव तत्रयो वा अग्नयो हव्यवाहंनो देवानां कव्यवाहंनः पितृणा सहरंक्षा असुराणान्त एतरह्या शर्ससन्ते मां वंरिष्यते माम् (४९)

इति वृणीध्वः हंव्यवाहंनमित्याह् य एव देवानां तं वृणीत आर्षेयं वृणीते बन्धोरेव नैत्यथो सन्तंत्यै पुरस्तांदुर्वाची वृणीते तस्मात्पुरस्तांदुर्वाश्ची मनुष्यान्मित्रोऽनु प्र पिंपते॥ (५०)

अशौन्तावाह् पश्चंदशाब्रवीदन्वांहैतयां वरिष्यते मामेकान्नत्रि रशर्च॥————[८]

अग्नें महार असीत्यांह महान् ह्यंष यद्ग्निर्ब्राह्मणेत्यांह ब्राह्मणो ह्यंष भार्तेत्यांहैष हि देवेभ्यों ह्व्यम्भरित देवेद्ध इत्यांह देवा ह्यंतमैन्थंत मन्विंद्ध इत्यांह मनुरह्यंतमुत्तरो देवेभ्य ऐन्द्धर्षिष्टुत इत्याहर्षयो ह्यंतमस्तुवन्वप्रानुमदित इत्यांह (५१)

विप्रा होते यच्छुंश्रुवारसंः कविश्वस्त इत्यांह क्वयो होते यच्छुंश्रुवारसो ब्रह्मंसरशित् इत्यांह् ब्रह्मंसरशितो होष घृताहंवन इत्यांह घृताहुतिर्ह्मस्य प्रियतंमा प्रणीर्यज्ञानामित्यांह प्रणीर्ह्मोष युज्ञानारं रुथीरंध्वराणामित्यांहैष हि देवरुथोंऽतूर्तो होतेत्यांह न होतं कश्चन (५२)

तरंति तूर्णिर्हव्यवाडित्यांह् सर्वेड् ह्यंष तर्त्यास्पात्रं जुहूर्देवानामित्यांह जुहूर्ह्यंष देवानांश्चमसो देवपान इत्यांह चमसो ह्यंष देवपानोऽरार इंवाग्ने नेमिर्देवाड्स्त्वं परिभूरसीत्यांह देवान् ह्यंष परिभूर्यद्भृयादा वंह देवान्देवयते यर्जमानायेति भ्रातृंव्यमस्मै (५३)

जुन्येदा वह देवान् यजंमाना्येत्यांह् यजंमानमेवेतेनं वर्धयत्यग्निमंग्न आ वह सोम्मा वहेत्यांह देवतां एव तद्यंथापूर्वमुपं ह्वयत् आ चाँग्ने देवान् वहं सुयजां च यज जातवेद इत्यांहाग्निमेव तथ्सङ् श्यंति सौंऽस्य सर्शितो देवेभ्यों हव्यं वहत्यग्निर्होतां (५४)

इत्यांहाभिर्वे देवाना होता य एव देवाना होता तं वृंणीते स्मो वयमित्यांहात्मानंमेव सत्त्वं गंमयित साधु ते यजमान देवतेत्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते यद्भूयाद्यौऽभि होतांर्मवृंथा इत्यभिनोंभ्यतो यजमानं पिरं गृह्णीयात् प्रमायुंकः स्याद्यजमानदेवत्यां वे जुहूर्भांतृव्यदेवत्योंपुभृत् (५)

यद्वे इंव ब्रूयाद्भातृंव्यमस्मै जनयेद्भृतवंतीमध्वर्यो सुचुमास्यस्वेत्यांह् यजंमानमेवैतेनं वर्धयित देवायुव्मित्यांह देवान् ह्येपावंति विश्ववांग्रमित्यांह् विश्वर् ह्येपावतीडांमहै देवार ईडेन्यांन्नमस्यामं नमस्यान् यजांम यज्ञियानित्यांह मनुष्यां वा ईडेन्याः पितरो नमस्यां देवा यज्ञियां देवतां एव तद्यंथाभागं यंजति॥ (५६)

विप्रांनुमदित् इत्यांह चुनास्मै होतोंपुभृद्देवतां एव त्रीणिं च॥———[९]

त्री १ स्तृचानन् ब्रूयाद्राजन्यंस्य त्रयो वा अन्ये रांजन्यांत्पुरुंषा ब्राह्मणो वैश्यः श्रूद्रस्तानेवास्मा अनुकान्करोति पश्चंदशान् ब्रूयाद्राजन्यंस्य पश्चदशो वै रांजन्यः स्व

एवैन्ड्रं स्तोमे प्रतिं ष्ठापयति त्रिष्टुभा परिं दध्यादिन्द्रियं वै त्रिष्टुर्गिन्द्रियकांमः खलु वै राजन्यों यजते त्रिष्टुभैवास्मां इन्द्रियं परिं गृह्णात् यदिं कामयेत (५७)

ब्रह्मवर्च्सम्स्त्वितं गायित्रया परिं दध्याद्वह्मवर्चसं वै गांयत्री ब्रह्मवर्च्सम्व भंवित सप्तद्शानं ब्र्याद्वेश्यंस्य सप्तद्शो वै वैश्यः स्व एवेन् इ स्तोम् प्रतिं ष्ठापयित् जगंत्या परिं दध्याञ्चागता वै पृशवः पृश्वनंमः खलु वै वैश्यों यजते जगंत्यैवास्में पृश्नपरिं गृह्णात्येकंविश्शित्मनं ब्र्यात्प्रतिष्ठाकांमस्यैकविश्शाः स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्ये (५८)

चतुंर्वि शतिमन् ब्रूयाद्वह्मवर्च्सकांमस्य चतुंर्वि शत्यक्षरा गायत्री गांयत्री ब्रह्मवर्च्सङ्गायत्रियेवास्में ब्रह्मवर्च्समवं रुन्छे त्रि श्रातमन् ब्रूयादन्नेकामस्य त्रि श्रात्यक्षरा विराह्य विराह्यिराजैवास्मां अन्नाद्यमवं रुन्छे द्वात्रि शरात्मन् ब्रूयात्प्रतिष्ठाकांमस्य द्वात्रि श्रादक्षरानुष्टुंगनुष्टुप्छन्दंसां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्ये षद्वि श्रात्मन् ब्रूयात्प्रशुकांमस्य षद्वि श्रादक्षरा वृहती बार्ह्ताः प्रश्वो वृहत्यैवास्मे प्रात् (५९)

अवं रुन्द्धे चतुंश्चत्वारि शत्मनुं ब्रूयादिन्द्रियकां मस्य चतुंश्चत्वारि शदक्षरा त्रिष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुप्तिष्टुभैवास्मां इन्द्रियमवं रुन्द्धेऽष्टाचंत्वारि शत्मनुं ब्रूयात्पशुकां मस्याष्टाचंत्वारि शत्करा जगंती जागंताः पृशवो जगंत्यैवास्में पृशूनवं रुन्द्धे सर्वाणि छन्दा इस्यनुं ब्रूयाद्वहुयाजिनः सर्वाणि वा एतस्य छन्दा इस्यवं रुन्द्धानि यो बहुयाज्यपंरिमित् मनुं ब्रूयाद्वपरिमित् स्यावं रुद्धे॥ (६०)

कामयेत् प्रतिष्ठित्ये पृशून्थ्सप्तचंत्वारि १शच॥-----[१०]

निर्वीतम्मनुष्यांणाम्प्राचीनावीतिम्पितृणामुपंवीतं देवानामुपं व्ययते देवलुक्ष्ममेव तत्कुंरुते तिष्ठन्नन्वांह् तिष्ठन् ह्याश्रुंततर् वदंति तिष्ठन्नन्वांह सुवर्गस्यं लोकस्याभिजित्या आसीनो यजत्यस्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठति यत्क्रौश्चम्न्वाहांसुरं तद्यन्मुन्द्रम्मांनुषं तद्यदंन्तरा तथ्सदेवमन्तरानूच्यरं सदेवत्वायं विद्वारसो वै (६१)

पुरा होतारोऽभूवन्तस्माद्विधृंता अध्वानोऽभूंवन्न पन्थांनः समंरुक्षन्नन्तर्वेद्यंन्यः पादो भवंति बहिर्वेद्यंन्योऽथान्वाहाध्वंनां विधृंत्ये पृथामसर्ररोहायाथों भूतं चैव भविष्यचावं रुन्द्धेऽथो परिमितं चैवापरिमितं चावं रुन्द्धेऽथौं ग्राम्याङ्श्चेव पृशूनार्ण्याङ्श्चावं रुन्द्धेऽथौं (६२)

देवलोकं चैव मंनुष्यलोकं चाभि जंयित देवा वै सामिधेनीर्नूच्यं युज्ञं नान्वंपश्यन्थस प्रजापितस्तूष्णीमांघारमाघारयत्ततो वै देवा युज्ञमन्वंपश्यन् यत्तूष्णीमांघारमाघारयति युज्ञस्यानुंख्यात्या अथों सामिधेनीरेवाभ्यंनुक्त्यलूँक्षो भवति य एवं वेदाथों तुर्पर्यत्येवैनास्तृप्यंति प्रजयां पृशुभिः (६३)

य एवं वेद यदेकंयाघारयेदेकां प्रीणीयाद्यद्वाभ्यां द्वे प्रीणीयाद्यत्तिसृभिरित् तर्द्रेचयेन्मन्सा घारयित् मनसा ह्यनाप्तमाप्यते तिर्यश्चमा घारयत्यछम्बद्धारं वाक्र मनश्चार्तीयेतामृहं देवेभ्यो हुव्यं वहामीति वार्गब्रवीदहं देवेभ्य इति मन्स्तौ प्रजापितम्प्रश्ञमैता्र् सौंऽब्रवीत् (६४)

प्रजापंतिर्दूतीर्व त्वं मनंसोऽस् यद्धि मनंसा ध्यायंति तद्वाचा वद्तीति तत्खलु तुभ्यं न वाचा जुंहवृन्नित्यंब्रवीत् तस्मान्मनंसा प्रजापंतये जुह्वति मनं इव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यं परिधीन्थ्सम्मांष्टिं पुनात्येवैनान्निर्मध्यमं त्रयो वै प्राणाः प्राणानेवाभि जंयित निर्दक्षिणाध्यं त्रयंः (६५)

इमे लोका इमानेव लोकान्मि जंयित त्रिरुंत्तरार्ध्यं त्रयो वै देवयानाः पन्थांनस्तानेवाभि जंयित त्रिरुपं वाजयित त्रयो वै देवलोका देवलोकानेवाभि जंयित द्वादंश सम्पंदाने द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरमेव प्रीणात्यथी संवथ्सरमेवास्मा उपं दधाति सुवर्गस्यं लोकस्य समध्या आघारमा घारयित तिर इंव (६६)

वै सुंवर्गो लोकः सुंवर्गमेवास्मै लोकम्प्र रोयत्यृज्ञमा घारयत्यृज्ञरिव हि प्राणः सन्तंतमा घारयित प्राणानामन्नाद्यस्य सन्तंत्या अथो रक्षसामपहत्यै यं कामयेत प्रमायुंकः स्यादिति जिह्नां तस्या घारयेत्प्राणमेवास्मांजि्ह्नां नयित ताजक्प्र मीयते शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदांघार आत्मा ध्रुवा (६७)

आघारमाघार्य ध्रुवा समंनक्त्यात्मन्नेव यज्ञस्य शिरः प्रतिं दधात्यग्निर्देवानां दूत आसीद्देव्याऽसुंराणान्तौ प्रजापंतिम्प्रश्ञमेता सप्तापंतिक्राह्मणमंत्रवीदेविद्व ब्रूहीत्या श्रांव्येतीदं देवाः शृणुतेति वाव तदंब्रवीद्ग्निर्देवो होतेति य एव देवानां तमंवृणीत् ततों देवाः (६८)

अभेवन्परांसुरा यस्यैवं विदुषंः प्रवरम्प्रंवृणते भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंच्यो भवति यद्ग्रांह्मणश्चाब्रांह्मणश्च प्रश्ञमेयातां ब्राह्मणायाधि ब्रूयाद्यद्वांह्मणायाध्याहात्मनेऽध्यांह् यद्ग्रांह्मणम्पराहात्मनं परांह् तस्मांद्वाह्मणो न परोच्यंः॥ (६९)

वा आंर्ण्याङ्श्चावं रुन्धेऽथों पृशुभिः सौंऽब्रवीद्दक्षिणाृध्यंत्रयं इव ध्रुवा देवाश्चंत्वारिर्श्यचं॥[११]

आयुष्ट आयुर्दा अंग्र् आ प्यायस्व सं तेऽवं ते हेड उद्ग्तमम्प्र णो देव्या नो दिवोऽग्नाविष्णू अग्नाविष्णू इमं में वरुण तत्त्वां याम्युद् त्यं चित्रम्। अपां नपादा ह्यस्थांदुपस्थं जिह्नानांमूर्ध्वो विद्युतं वसानः। तस्य ज्येष्ठम्महिमानं वहंन्तीर्हिरंण्यवर्णाः परिं यन्ति यहीः। सम् (७०)

अन्या यन्त्युपं यन्त्यन्याः संमानमूर्वं नद्यः पृणन्ति। तम् शुचि शुचंयो दीदिवा श्संम्पां नपातं परि तस्थुरापं। तमस्मेरा युवतयो युवानम्मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापं। स शुकेण शिक्षंना रेवद्ग्निदीदायांनिध्मो घृतर्निर्णिगुफ्स्। इन्द्रावरुणयोर्ह श्सम्राजोरव आ वृंणे। ता नौ मृडात ईट्शैं। इन्द्रावरुणा युवमंध्वरायं नः (७१)

विशे जनांय मिह् शर्म यच्छतम्। दीर्घप्रंयज्युमित् यो वंनुष्यितं वयं जंयेम् पृतंनासु दूढांः। आ नों मित्रावरुणा प्र बाहवां। त्वं नों अग्ने वरुणस्य विद्वां देवस्य हेडोऽवं यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वहिंतमः शोश्चानो विश्वा द्वेषारसि प्र मुंमुग्ध्यस्मत्। स त्वं नों अग्नेऽवमो भंवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्यंष्टौ। अवं यक्ष्व नो वरुणम् (७२)

ररांणो वीहि मृंडीकर सुहवों न एि। प्रप्रायमग्निर्भर्तस्यं शृण्वे वि यथ्सूर्यो न रोचंते बृहद्भाः। अभि यः पूरुं पृंतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः। प्र ते यिश्च प्र तं इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यों नो हवेषु। धन्वंत्रिव प्रपा अंसि त्वमंग्न इयक्षवें पूरवें प्रत्न राजन्न। (७३)

वि पाजंसा वि ज्योतिषा। स त्वमंग्ने प्रतींकेन् प्रत्योष यातुधान्यः। उ्रुक्षयेषु दीद्यंत्। तर सुप्रतींकर सुदृश्र् स्वश्रमविद्वारसो विदुष्टर सपेम। स येक्षद्विश्वां वयुनानि विद्वान्प्र ह्व्यम्भिर्मृतेषु वोचत्। अर्ह्होमुचे विवेष यन्मा वि नं इन्द्रेन्द्रं क्षुत्रमिन्द्रियाणि शतक्रतोऽनुं ते दायि (७४)

यह्वीः समध्वरायं नो वर्रुणः राजुङ् श्चतुंश्चत्वारिःशच॥————[१२]

[स्मिध्श्रक्षुंषी प्रजापंतिराज्यंं देवस्य स्फाम्ब्रंह्मवादिनोऽद्भिरग्नेस्रयो मर्नुः पृथिव्याः पृशवोऽग्नीधं देवा वै यज्ञस्यं युक्ष्वोशन्तंस्त्वा द्वादंश]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां द्वितीयकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

स्मिधों यजित वस्नतमेवर्तूनामवं रुन्द्धे तनूनपातं यजित ग्रीष्ममेवावं रुन्द्ध इडो यंजित वृर्षा पृवावं रुन्द्धे ब्रहिर्यंजिति श्रदंमेवावं रुन्द्धे स्वाहाकारं यंजित हेम्नतमेवावं रुन्द्धे तस्माथ्स्वाहांकृता हेमन्पुशवोऽवं सीदिन्त समिधों यजत्युषसं एव देवतानामवं रुन्द्धे तनूनपातं यजित युज्ञमेवावं रुन्द्धे (१)

इडो यंजित पृशूनेवावं रुन्द्धे बुर्हियंजिति प्रजामेवावं रुन्द्धे सुमानंयत उपभृतस्तेजो वा आज्यं प्रजा बुर्हिः प्रजास्वेव तेजों दधाति स्वाहाकारं यंजित् वाचंमेवावं रुन्द्धे दश् सम्पंद्यन्ते दशाक्षिरा विराह्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्धे सुमिधों यजत्यस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति तनूनपातं यजित (२)

युज्ञ एवान्तरिक्षे प्रति तिष्ठतीडो यंजित पृशुष्वेव प्रति तिष्ठित ब्रहियंजिति य एव देवयानाः पन्थानस्तेष्वेव प्रति तिष्ठति स्वाहाकारं यंजित सुवृगं एव लोके प्रति तिष्ठत्येतावंन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यंथापूर्वं प्रति तिष्ठति देवासुरा एषु लोकेष्वंस्पर्धन्त ते देवाः प्रयाजैरेभ्यो लोकेभ्योऽसुंरान्प्राणुंदन्त तत्प्रयाजानाम् (३)

प्रयाज्ञत्वं यस्यैवं विदुषंः प्रयाजा इज्यन्ते प्रैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृंव्यान्नुदतेऽभिकामं जुहोत्यभिजिंत्ये यो वै प्रयाजानांम्मिथुनं वेद प्र प्रजयां पृशुभिर्मिथुनेजांयते समिधों बह्वीरिव यजित तनूनपांतमेकिमिव मिथुनं तिदेडो बह्वीरिव यजित ब्रहिरेकिमिव मिथुनं तदेतद्वे प्रयाजानांम्मिथुनम् य एवं वेद प्र (४)

प्रजयां प्रशिभिमिथुनैर्जायते देवानां वा अनिष्टा देवता आसन्नथासुंरा युज्ञमंजिघारसन्ते देवा गांयत्रीं व्यौह्न पञ्चाक्षराणि प्राचीनांनि त्रीणि प्रतीचीनांनि ततो वर्म युज्ञायाभंवृद्धम् यर्जमानाय यत्प्रयाजानूयाजा इज्यन्ते वर्मेव तद्यज्ञायं क्रियते वर्म यर्जमानाय आतृंव्याभिभूत्ये तस्माद्धरूथप्रस्ताद्वर्षीयः पृक्षाद्धसीयो देवा वै पुरा रक्षौभ्यः (५)

इति स्वाहाकारेणं प्रयाजेषुं यज्ञर स्ड्स्थाप्यंमपश्यन्तः स्वांहाकारेणं प्रयाजेषु समंस्थापयन्वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यथ्स्वांहाकारेणं प्रयाजेषुं सङ्स्थापयंन्ति प्रयाजानिङ्घा ह्वीरष्यभि घारयति यज्ञस्य सन्तंत्या अथों ह्विरेवाक्रयों यथापूर्वमुपैति पिता वै प्रयाजाः प्रजानूंयाजा यत्प्रंयाजानिष्ट्वा ह्वी १ ष्यंभिघारयंति पितैव तत्पुत्रेण साधारणम् (६)

कुरुते तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च न कथा पुत्रस्य केवेलं कथा साधारणिम्पतुरित्यस्कंन्नमेव तद्यत्प्रयाजेष्विष्टेषु स्कन्दिति गायत्र्येव तेन गर्मं धत्ते सा प्रजां पशून् यजमानाय प्र जनयति॥ (७)

युज्ति युज्ञमेवावंरुन्धे तनूनपातं यजति प्रयाजानामेवं वेद् प्र रक्षोंभ्यः साधारण् पर्श्वति १शच॥

चक्षुंषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यंभागौ यदाज्यंभागौ यजंति चक्षुंषी एव तद्यज्ञस्य प्रतिं दधाति पूर्वार्धे जुंहोति तस्मांत्पूर्वार्धे चक्षुंषी प्रवाहुंग्जुहोति तस्मांत्प्रवाहुकक्षुंषी देवलोकं वा अग्निना यजंमानोऽनुं पश्यति पितृलोक सोमेनोत्तरार्धेंऽग्नये जुहोति दक्षिणार्धे सोमायैविमिव हीमौ लोकावनयौर्लोकयोरनुंख्यात्यै राजांनौ वा एतौ देवतांनाम् (८)

यद्ग्रीषोमांवन्तरा देवतां इज्येते देवतांनां विधृंत्ये तस्माद्राज्ञां मनुष्यां विधृंता ब्रह्मवादिनों वदन्ति किं तद्युज्ञे यज्ञंमानः कुरुते येनान्यतोदतश्च पृश्रून्दाधारोभ्यतोदतश्चेत्रयुचंमनूच्याज्यंभागस्य जुषाणेनं यजित् तेनान्यतोदतो दाधार्र्चमनूच्यं ह्विषं ऋचा यंजित् तेनोभ्यतोदतो दाधार मूर्धन्वती पुरोनुवाक्यां भवित मूर्धानंमेवेन समानानां करोति (९)

नियुत्वंत्या यजित् आतृंव्यस्यैव पृश्ति युंवते केशिन है ह दार्न्यं केशी सात्यंकामिरुवाच सप्तपंदां ते शर्करी है श्वो यज्ञे प्रयोक्तासे यस्यै वीर्येण प्र जातान्आतृंव्यानुदते प्रतिं जिन्ष्यमाणान् यस्यै वीर्येणोभयौंर्लोकयोज्यीतिर्धत्ते यस्यै वीर्येण पूर्वार्धनानुद्वान्भुनिक्तं जघनार्धनं धेनुरितिं पुरस्तां छक्ष्मा पुरोनुवाक्यां भवित जातानेव आतृंव्यान्प्र णुंदत उपरिष्टा छक्ष्मा (१०)

याज्यां जिन्ष्यमाणानेव प्रतिं नुदते पुरस्तां स्नक्ष्मा पुरोनुवाक्यां भवत्यस्मिन्नेव लोके ज्योतिर्धत्त उपरिष्टा स्नक्ष्मा याज्यां मुष्मिन्नेव लोके ज्योतिर्धत्ते ज्योतिष्मन्तावस्मा इ.मौ लोको भंवतो य एवं वेदं पुरस्तां स्नक्ष्मा पुरोनुवाक्यां भवित तस्मां त्पूर्वर्धनां नुङ्घान्भुं नत्त्युपरिष्टा स्नक्ष्मा याज्यां तस्मां ज्ञायां योज्यां वेष्ट्र योज्यां वेष्ट्र योज्यां वेष्ट्र अज्यां वेष्ट्र अज्ञां वेष्ट्र अज्यां वेष्ट्र अज्यां वेष्ट्र अज्यां वेष्ट्र अज्ञां वेष्ट्र अज्ञां वेष्ट्र अज्यां वेष्ट्र अज्ञां वेष्ट्र व

वज्रों वषद्भारिस्रवृतंमेव वज्रर्थ सम्भृत्य भ्रातृंव्याय प्र हंर्त्यछंम्बद्भारमपुगूर्य वषंद्भरोति

स्तृत्यें गायत्री पुंरोनुवाक्यां भवति त्रिष्टुग्याज्यां ब्रह्मंत्रेव क्षत्रमन्वारंम्भयति तस्मांद्वाह्मणो मुख्यो मुख्यो भवति य एवं वेद प्रैवेनं पुरोनुवाक्ययाह् प्र णयति याज्यया गुमयंति वषद्वारेणैवेनं पुरोनुवाक्यया दत्ते प्र यंच्छति याज्यया प्रति (१२)

वृषद्भारेणं स्थापयित त्रिपदां पुरोनुवाक्यां भवित त्रयं इमे लोका पृष्वेव लोकेषु प्रितं तिष्ठित् चतुंष्पदा याज्यां चतुंष्पद एव पृश्नवं रुन्द्धे द्यक्षरो वंषद्भारो द्विपाद्यजंमानः पृशुष्वेवोपरिष्टात्प्रितिं तिष्ठित गायत्री पुरोनुवाक्यां भवित त्रिष्टुरयाज्येषा व सप्तपंदा शक्तरी यद्वा एतयां देवा अशिक्षन्तदंशक्नुवन् य एवं वेदं शक्नोत्येव यच्छिक्षंति॥ (१३)

देवतांनाङ्करोत्युपरिष्टालुक्ष्माऽऽज्यंभागौ प्रतिं शुक्रोत्येव द्वे चं॥————[२]

प्रजापंतिर्देवेभ्यों युज्ञान्व्यादिश्वथ्स आत्मन्नाज्यंमधत्त् तं देवा अंब्रुवन्नेष वाव युज्ञो यदाज्यमप्येव नोत्रास्त्वित् सौंऽब्रवीद्यजान् व आज्यंभागावुपं स्तृणान्भि घारयानिति तस्माद्यज्ञन्त्याज्यंभागावुपं स्तृणन्त्यभि घारयन्ति ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्माध्यत्याद्यातयांमान्युन्यानिं हवीश्ष्ययांतयामुमाज्युमितिं प्राजापुत्यम् (१४)

इतिं ब्रूयादयांतयामा हि देवानां प्रजापंतिरिति छन्दा रेसि देवेभ्योऽपाँकामुन्न वी-ऽभागानिं हृव्यं वेक्ष्याम् इति तेभ्यं पृतचंतुरवृत्तमंधारयन्युरोनुवाक्याये याज्याये देवताये वषद्वाराय् यचंतुरवृत्तं जुहोति छन्दा इस्येव तत्प्रीणाति तान्यंस्य प्रीतानि देवेभ्यो हृव्यं वहन्त्यिङ्गिरसो वा इत उत्तमाः सुंवर्गं लोकमायन्तदर्षयो यज्ञवास्त्वंभ्यवायन्ते (१५)

अपुश्यन्पुरोडाशंं कूर्मम्भूत र सर्पन्तं तमंब्रुविन्निन्द्रांय ध्रियस्व बृह्स्पतंये ध्रियस्व विश्वेंभ्यो देवेभ्यों ध्रियस्वेति स नाध्रियत् तमंब्रुवन्नग्नयं ध्रियस्वेति सौंऽग्नयंऽध्रियत् यदांग्नेयोंऽष्टाकंपालो-ऽमावास्यांयां च पौर्णमास्यां चांच्युतो भवंति सुवर्गस्य लोकस्याभिजिंत्ये तमंब्रुवन्कथाहांस्था इत्यनुंपाक्तोऽभूविमित्यंब्रवीद्यथाक्षोऽनुंपाक्तः (१६)

अवार्च्छत्येवमवार्मित्युपरिष्टाद्भ्यज्याधस्तादुपांनक्ति सुवर्गस्यं लोकस्य समंध्ये सर्वाणि कृपालांन्यभि प्रथयति तावतः पुरोडाशांनमुष्मिल्लांकेऽभि जयिति यो विदंग्धः स नैर्ंऋतो योऽश्वंतः स रौद्रो यः श्वतः स सर्देवस्तस्मादविदहता श्वतंकृत्यः सदेवत्वाय भस्मंनाभि वांसयति तस्मान्मार्श्सेनास्थिं छुत्रं वेदेनाभि वांसयति तस्मांत् (१७)

केशैः शिर्रश्छुन्नं प्रच्युंत्ं वा पृतद्स्माल्लोकादगंतं देवलोकं यच्छृत १

ह्विरनंभिघारितमभिघार्योद्वांसयित देवृत्रैवैनंद्रमयित यद्येकं कृपालं नश्येदेको मासंः संवथ्सरस्यानंवेतः स्यादथ् यर्जमानः प्र मीयेत् यद्वे नश्येतां द्वौ मासौ संवथ्सरस्यानंवेतौ स्यातामथ यर्जमानः प्र मीयेत संख्यायोद्वांसयित यर्जमानस्य (१८)

गोपीथाय यदि नश्येदाश्विनं द्विंकपालं निर्वपद्मावापृथिव्यंमेकंकपालम्श्विनौ वै देवानौं भिषजौ ताभ्यांमेवास्मै भेषजं करोति द्यावापृथिव्यं एकंकपालो भवत्यनयोवी एतन्नश्यिति यन्नश्येत्वर्यनयोरेवेनंद्विन्दिति प्रतिष्ठित्यै॥ (१९)

प्राजापत्यन्तेऽक्षोऽनुंपाक्तो वेदेनाभि वांसयित् तस्माद्यजंमानस्य द्वात्रिर्शच॥———[३]

देवस्यं त्वा सिवतुः प्रंस्व इति स्फ्यमा दंत्ते प्रसूँत्या अश्विनौर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तौम् पूष्णो हस्तौभ्यामित्यांहु यत्यै शतभृष्टिरसि वानस्पत्यो द्विषतो वध इत्यांहु वज्रमेव तथ्स इर्थात् भ्रातृंव्याय प्रहिष्धिन्थन्थस्तम्बय्जुर्हंरत्येतावंती वै पृथिवी यावंती वेदिस्तस्यां पृतावंत एव भ्रातृंव्यां निर्भजिति (२०)

तस्मान्नाभागं निर्भजन्ति त्रिर्हरिति त्रयं इमे लोका पृभ्य पृवैनं लोकेभ्यो निर्भजिति तूष्णीं चंतुर्थर हंर्त्यपंरिमितादेवैनं निर्भजत्युद्धन्ति यदेवास्यां अमेध्यं तदपं हुन्त्युद्धन्ति तस्मादोषधयः परां भवन्ति मूलं छिनत्ति भ्रातृंव्यस्यैव मूलं छिनत्ति पितृदेवृत्यातिंखातेयंतीं खनति प्रजापंतिना (२१)

यज्ञमुखेन सम्मितामा प्रतिष्ठायै खनित यजमानमेव प्रतिष्ठा गमयित दक्षिणतो वर्षीयसीं करोति देवयजनस्यैव रूपमंकः पुरीषवतीं करोति प्रजा वै पृशवः पुरीषम्प्रजयैवैनेम्पश्भिः पुरीषवन्तं करोत्युत्तरं परिग्राहं परि गृह्णात्येतावंती वै पृथिवी यावंती वेदिस्तस्यां पृतावंत एव भ्रातृंव्यं निर्भज्यात्मन उत्तरं परिग्राहं परि गृह्णाति क्रूरिमंव वै (२२)

पुतत्कंरोति यद्वेदिं कुरोति धा असि स्वधा असीति योयुप्यते शान्त्यै प्रोक्षंणीरा सादयत्यापो वै रक्षोघ्नी रक्षंसामपंहत्यै स्फास्य वर्त्मन्थ्सादयति यज्ञस्य सन्तंत्यै यं द्विष्यात्तं ध्यांयेच्छुचैवैनंमर्पयति॥ (२३)

भ्जृति प्रजापितिनेव वै त्रयंस्त्रिश्शच॥———[४] ब्रह्मवादिनों वदन्त्युद्भिर्ह्वोशिष् प्रौक्षीः केनाप इति ब्रह्मणेतिं ब्रूयादुद्भिर्ह्मेव हवीशिष

प्रोक्षित् ब्रह्मणाप इध्माब्र्हिः प्रोक्षेति मेध्यमेवैनंत्करोति वेदिं प्रोक्षंत्युक्षा वा एषाऽलोमकां-ऽमेध्या यद्वेदिर्मेध्यांमेवैनां करोति दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्ये त्वेतिं ब्र्हिरासाद्य प्र (२४)

उक्षत्येभ्य एवैनंश्लोकेभ्यः प्रोक्षंति क्रूरमिंव वा एतत्कंरोति यत्खनंत्यपो नि नंयित् शान्त्ये पुरस्तांत्प्रस्तरं गृह्णाति मुख्यंमेवेनं करोतीयंन्तं गृह्णाति प्रजापंतिना यज्ञमुखेन सिम्मंतम्ब्र्हिः स्तृंणाति प्रजा वै ब्र्हिः पृंथिवी वेदिः प्रजा एव पृंथिव्यां प्रति ष्ठापयत्यनंतिदृश्च स्तृणाति प्रजयैवेनंम्पृश्भिरनंतिदृश्चं करोति (२५)

उत्तरम्बर्हिषंः प्रस्तरः सांदयित प्रजा वै ब्रहिर्यजंमानः प्रस्त्रो यजंमानमेवायंजमानादुत्तंरं करोति तस्माद्यजंमानोऽयंजमानादुत्तंरोऽन्तर्दथाित व्यावृत्त्या अनिक्ते हिविष्कृतमेवैनः सुवर्गं लोकं गंमयित त्रेधानिक त्रयं इमे लोका एभ्य एवैनं लोकभ्योंऽनिक्त न प्रति शृणाित यत्प्रतिशृणी्यादनूष्वम्भावुकं यजमानस्य स्यादुपरीव प्रहंरित (२६)

उपरींव हि सुंवर्गो लोको नि येच्छति वृष्टिमेवास्मै नि येच्छति नात्यंग्रम्प्र हंरेचदत्यंग्रम्प्रहरेदत्यासारिण्यंध्वर्योर्नाशुंका स्यात्र पुरस्तात्प्रत्यंस्येचतपुरस्तात्प्रत्यस्येंध्सुवर्गाञ्चोकार् प्रति नुदेत्प्राश्चम्प्र हंरति यजमानमेव सुंवर्गं लोकं गमयित न विष्वंश्चं वि युंयाद्यद्विष्वंश्चं वियुयात (२७)

स्र्यंस्य जायेतोर्ध्वमुद्यौत्यूर्ध्वमिव हि पुर्सः पुमानेवास्यं जायते यथ्स्फोर्न वोपवेषेणं वा योयुप्येत स्तृतिरेवास्य सा हस्तेन योयुप्यते यजमानस्य गोपीथायं ब्रह्मवादिनों वदन्ति किं यज्ञस्य यजमान् इति प्रस्त्र इति तस्य कं सुवर्गो लोक इत्याहवनीय इति ब्र्याद्यत्प्रंस्त्रमाहवनीये प्रहरंति यजमानमेव (२८)

सुवर्गं लोकं गंमयित वि वा पृतद्यजंमानो लिशते यत्प्रंस्त्रं योयुप्यन्ते ब्रिहरनु प्रहंरित् शान्त्यां अनारम्भूण इंव वा पृतर्ह्यांध्वर्युः स ईंश्वरो वेपनो भवितोर्धुवासीतीमाम्भि मृंशितीयं वे ध्रुवाऽस्यामेव प्रति तिष्ठति न वेपनो भवत्यगा(३)नंग्रीदित्यांहु यद्भूयादगंत्रप्रिरित्यग्नावृग्निं गंमयेत्रिर्यजंमान सुवर्गां लोकं गंमयिति॥ (२९)

आसाद्य प्रानंतिदृश्ञं करोति हरति वियुयाद्यजंमानमेवाग्निरितिं सप्तदंश च॥———[५]

अग्नेस्नयो ज्याया रेसो भ्रातंर आसन्ते देवेभ्यों हुव्यं वहंन्तः प्रामीयन्त सौंऽग्निरंबिभेदित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स निलायत् सोंऽपः प्राविशत्तं देवताः प्रैषंमैच्छुन्तम्मथ्स्यः प्रान्नवीत्तमंशपिंद्धयािथया त्वा वध्यासुर्यो मा प्रावोच् इति तस्मान्मथ्स्यं धियािथया घ्रन्ति श्वाः (३०)

हि तमन्वंविन्दन्तमंब्रुवृत्रुपं न् आ वंतस्व हृव्यं नों वृहेति सौंऽब्रवीृद्धरं वृणै यदेव गृहीृतस्याहृंतस्य बहिःपरिधि स्कन्दात्तन्मे आतृंणाम्भागधेयंमसदिति तस्माद्यद्गृंहीृतस्याहृंतस्य बहिःपरिधि स्कन्दंति तेषां तद्भांगधेयं तानेव तेनं प्रीणाति परिधीन्परि दधाति रक्षंसामपहत्यै सङ्स्पंशयति (३१)

रक्षंसामनंन्ववचाराय न पुरस्तात्परि दधात्यादित्यो ह्यंवोद्यन्पुरस्ताद्रक्षा ईस्यपहन्त्यूर्ध्वे समिधावा दंधात्युपरिष्टादेव रक्षाङ्स्यपं हन्ति यर्जुषान्यां तूष्णीमृन्याम्मिंधुनृत्वाय द्वे आ दंधाति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्ये ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वे यंजेत् यो यज्ञस्यार्त्या वसीयान्थस्यादिति भूपंतये स्वाहा भुवंनपतये स्वाहां भूतानाम् (३२)

पतंये स्वाहेति स्कन्नमन् मन्नयेत यज्ञस्यैव तदात्या यजंमानो वसीयान्भवित भूयंसीर्हि देवताः प्रीणाति जामि वा एतद्यज्ञस्यं क्रियते यद्नवश्चौ पुरोडाशांबुपा श्याजमंन्तरा यंज्त्यजांमित्वायाथी मिथुन्त्वायाग्निर्मुष्टिमेश्लौंक आसींद्यमों ऽस्मिन्ते देवा अंब्रुवन्नेतेमौ वि पर्यूहामेत्यन्नाद्येन देवा अग्निम् (३३)

उपामंत्रयन्त राज्येनं पितरों यमं तस्मांद्रिग्नेदेवानांमन्नादो यमः पितृणा॰ राजा य एवं वेद प्र राज्यमन्नाद्यंमाप्नोति तस्मां एतद्भागधेयम्प्रायंच्छन् यद्ग्रयें स्विष्टकृतेऽवद्यन्ति यद्ग्रयें स्विष्टकृतेऽवद्यति भाग्धेयेनैव तद्रुद्व॰ समर्धयति स्कृथ्संकृदवं द्यति स्कृदिव् हि रुद्र उत्तरार्धादवं द्यत्येषा वे रुद्रस्यं (३४)

दिख्स्वायांमेव दिशि रुद्रं निरवंदयते द्विर्भि घारयित चतुरवत्तस्यास्यै पृशवो वै पूर्वा आहुंतय एष रुद्रो यद्ग्रियंत्पूर्वा आहुंतीर्भि जुंहुयाद्रुद्रायं पृश्निपे दध्यादपृशुर्यजमानः स्यादित्हाय पूर्वा आहुंतीर्जुहोति पशूनां गोंपीथायं॥ (३५)

श्रप्तः स्पर्शयति भूतानांमुग्निः रुद्रस्यं सप्तित्रिःशच॥————[६]

मर्नुः पृथिव्या युज्ञियंमैच्छुथ्स घृतं निषिक्तमविन्द्थ्सौऽब्रवीत्कौऽस्येश्वरो युज्ञेऽपि कर्तोरिति तावंब्रूताम्मित्रावरुंणौ गोरेवावमींश्वरौ कर्तोः स्व इति तौ ततो गार समैरयतार् सा यत्रंयत्र न्यकांमृत्ततों घृतमंपीड्यत् तस्मांद्धृतपंद्युच्यते तदंस्यै जन्मोपंहूत रथन्तर स् सह पृंथिव्येत्यांह (३६)

ड्यं वै रंथन्त्रिम्मामेव सहान्नाद्येनोपं ह्वयत् उपंहूतं वामदेव्य सहान्तिरिक्षेणेत्यांह पृशवो वै वामदेव्यं पृश्नेव सहान्तिरिक्षेणोपं ह्वयत् उपंहूतम्बृहथ्सह दिवेत्याहैरं वै बृहिदरामेव सह दिवोपं ह्वयत् उपंहूताः सप्त होत्रा इत्यांह होत्रा एवोपं ह्वयत् उपंहूता धेनुः (३७)

सहर्षभेत्यांह मिथुनमेवोपं ह्रयत् उपंहूतो भृक्षः सखेत्यांह सोमपीथमेवोपं ह्रयत् उपंहूताँ (४) हो इत्यांहात्मानमेवोपं ह्रयत आत्मा ह्युपंहूतानां वसिष्ठ इडामुपं ह्रयते पृशवो वा इडां पृश्नेवोपं ह्रयते चतुरुपं ह्रयते चतुष्पादो हि पृशवों मानवीत्यांह मनुरह्येताम् (३८)

अग्रेऽपंश्यद्भृतप्दीत्यांह् यदेवास्यै प्दाद्भृतमपींड्यत् तस्मादेवमांह मैत्रावरुणीत्यांह् मित्रावरुणी ह्येना स्मिरंयतां ब्रह्मं देवकृत्मुपंहृत्मित्यांह् ब्रह्मेवोपं ह्वयते दैव्यां अध्वर्यव् उपंहृता उपंहृता मनुष्यां इत्यांह देवमनुष्यानेवोपं ह्वयते य इमं यज्ञमवान् ये यज्ञपंतिं वर्धानित्यांह (३९)

युज्ञायं चैव यजंमानाय चािशिषमा शांस्त उपंहूते द्यावांपृथिवी इत्यांह् द्यावांपृथिवी एवोपं ह्वयते पूर्वजे ऋतावंरी इत्यांह पूर्वजे ह्येते ऋतावंरी देवी देवपुत्रे इत्यांह देवी ह्येते देवपुत्रे उपंहूतोऽयं यजंमान इत्यांह् यजंमानमेवोपं ह्वयत् उत्तरस्यां देवयुज्यायामुपंहूतो भूयंसि हिवष्करंण उपंहूतो दिव्ये धामुजुपंहूतः (४०)

इत्यांह प्रजा वा उत्तरा देवयुज्या पृशवो भूयों हिव्षष्करंण सुवुर्गो लोको दिव्यं धामेदर्मसीदम्सीत्येव यज्ञस्यं प्रियं धामोपं ह्वयते विश्वंमस्य प्रियमुपंहूत्मित्याहार्छम्बद्वारमेवोपं ह्वयते॥ (४१)

आह् धेनुरेतां वर्धानित्यांह् धामृत्रुपंहूत्श्चतुंश्चि॰शच॥———[७]

पुशवो वा इडाँ स्वयमा दंत्ते कामंमेवात्मनां पश्नामा दंत्ते न ह्यंन्यः कामंम्पश्नाम्प्रयच्छंति वाचस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्चामीत्यांह् वाचंमेव भांगधेयेन प्रीणाति सदंसस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्चामीत्यांह स्वगाकृंत्यै चतुरवृत्तम्भंवति ह्विर्वे चंतुरवृत्तम्पुशवंश्चतुरवृत्तं यद्धोतां प्राश्चीयाद्धोतां (४२)

आर्तिमार्च्छेद्यदुग्नौ जुंहुयाद्रुद्रायं पृश्निपं दध्यादपृशुर्यजंमानः स्याद्वाचस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्रामीत्याह पुरोक्षंमेवैनंञ्जहोति सदंसस्पतंये त्वा हुतम्प्राश्रामीत्याह स्वगाकृत्यै प्राश्नंन्ति तीर्थ एव प्राश्नंन्ति दक्षिणां ददाति तीर्थ एव दक्षिणां ददाति वि वा एतद्यज्ञम् (४३)

छिन्दन्ति यन्मध्यतः प्राश्नन्त्यद्भिर्मांजयन्त् आपो वै सर्वा देवतां देवतांभिरेव यज्ञश् सं तन्वन्ति देवा वै यज्ञाद्रुद्रमन्तरायन्थ्स यज्ञमंविध्यत्तं देवा अभि समगच्छन्त् कल्पंतां न इदमिति तेंऽब्रुवन्थ्रित्वष्टं वै नं इदम्भंविष्यति यदिमश् राधियष्याम् इति तथ्स्वष्टकृतः स्विष्टकृत्त्वन्तस्याविद्धं निः (४४)

अकुन्त्न् यवेन् सम्मित्ं तस्मौद्यवमात्रमवं द्येद्यज्ञ्यायोऽव्द्येद्रोपयेत्तद्यज्ञस्य यदुपं च स्तृणीयाद्भि चं घारयेदुभयतःसङ्श्वायि कुंर्यादव्दायाभि घारयति द्विः सम्पंद्यते द्विपाद्यज्ञमानः प्रतिष्ठित्यै यत्तिंरश्चीनंमित्हरेदनंभिविद्धं यज्ञस्याभि विध्येदग्रेण् पिरं हरित तीर्थेनैव पिरं हरित तत्पूष्णे पर्यहर्नतत् (४५)

पूषा प्राश्यं द्तोंऽरुण्त्तस्मौत्पूषा प्रंपिष्टभांगोऽद्न्तको हि तं देवा अंब्रुवृन्वि वा अयमौर्ध्यप्राशित्रियो वा अयमभूदिति तद्बृह्स्पतंये पर्यहर्न्थ्सोऽविभेद्बृह्स्पितंपित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स एतम्मन्नंमपश्यथ्सूर्यस्य त्वा चक्षुंषा प्रति पश्यामीत्यंब्रवीन्न हि सूर्यस्य चक्षुं (४६)

किं चन हिनस्ति सोंऽबिभेत्प्रतिगृह्णन्तं मा हि॰सिष्यतीति देवस्यं त्वा सिवतुः प्रसिवैं-ऽश्विनौंर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्यां प्रति गृह्णामीत्यंब्रवीथ्सिवतुप्रंसूत एवैन्द्वह्मंणा देवताभिः प्रत्यंगृह्णाथ्सोंऽबिभेत्प्राश्चन्तं मा हि॰सिष्यतीत्यग्नेस्त्वास्येन प्राश्चामीत्यंब्रवीन्न ह्यंग्नेग्रस्यं किं चन हिनस्ति सोंऽबिभेत (४७)

प्राशितं मा हि॰सिष्यतीतिं ब्राह्मणस्योदरेणेत्यंब्रवीत्र हि ब्राह्मणस्योदरं किं चन हिनस्ति बृह्स्यतेर्ब्रह्मणेति स हि ब्रह्मिष्ठोऽप वा एतस्मात्प्राणाः क्रांमन्ति यः प्रांशित्रम्प्राक्षात्यद्भिर्मांर्जयित्वा प्राणान्थ्सम्मृंशतेऽमृतं वे प्राणा अमृत्मापंः प्राणानेव यंथास्थानमुपं ह्रयते॥ (४८)

प्राश्जीयाद्धोतां यज्ञं निरंहर्-तचक्षंरास्यंिक्षं चन हिनस्ति सोऽिकभेचत्रंश्वत्वारि श्वा — [८] अग्रीध् आ दंधात्यग्निमंखानेवर्त्नग्नीणाति समिधमा दंधात्युत्तंरासामाहंतीनां प्रतिष्ठित्या

अथों समिद्वंत्येव जुंहोति परिधीन्थ्सम्माँष्टिं पुनात्येवैनाँन्थ्सकृथ्संकृथ्सम्माँष्टिं परांङिव् ह्यंतर्रहें युज्ञश्चतुः सम्पंद्यते चतुंष्पादः पृशवंः पृश्नवेवावं रुन्द्धे ब्रह्मन्त्र स्थाँस्याम् इत्याहात्र वा पृतर्रहिं युज्ञः श्रितः (४९)

यत्रं ब्रह्मा यत्रैव यज्ञः श्रितस्ततं एवैन्मा रंभते यद्धस्तेन प्रमीवेद्वेपनः स्याद्यच्छी्राणां शीर्षिक्तमान्थ्स्याद्यतूष्णीमासीतासंम्प्रत्तो यज्ञः स्यात्प्र तिष्ठेत्येव ब्रूयाद्वाचि वै यज्ञः श्रितो यत्रैव यज्ञः श्रितस्ततं एवैन् सम्प्र यंच्छति देवं सवितरेतत्ते प्र (५०)

आहेत्यांह प्रसूँत्ये बृह्स्पतिंर्ब्रह्मेत्यांह स हि ब्रह्मिष्टः स युज्ञम्पांहि स युज्ञपंतिम्पाहि स माम्पाहीत्यांह युज्ञाय यजंमानायात्मने तेभ्यं पुवाशिषमा शास्तेऽनांत्यां आश्राव्यांह देवान् युजेतिं ब्रह्मवादिनों वदन्तीष्टा देवता अथं कत्म एते देवा इति छन्दा सीतिं ब्र्याद्मायत्रीं त्रिष्टुभम् (५१)

जर्गतीमित्यथो खल्बांहुर्ब्राह्मणा वै छन्दार्श्सीति तानेव तद्यंजित देवानां वा इष्टा देवता आसन्नथाग्निर्नोदंज्वलत्तं देवा आहुंतीभिरन्याजेष्वन्वंविन्दन् यदंन्याजान् यजंत्यग्निमेव तथ्समिन्द्व एतदुर्वे नामांसुर आंसीथ्स एतर्हि यज्ञस्याशिषंमवृङ्क यद्ग्यादेतत् (५२)

उ द्यावापृथिवी भद्रमंभूदित्येतदुंमेवासुरं यज्ञस्याशिषं गमयेदिदं द्यांवापृथिवी भद्रमंभूदित्येव ब्रंयाद्यजंमानमेव यज्ञस्याशिषंम्गमयत्यार्ध्मं सूक्तवाकमुत नेमोवाकमित्यांहेदमंराथ्स्मेति वावैतदाहोपंश्रितो दिवः पृथिव्योरित्यांह द्यावांपृथिव्योर्हि यज्ञ उपंश्रित ओमंन्वती तेऽस्मिन् यज्ञे यंजमान् द्यावांपृथिवी (५३)

स्तामित्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते यद्भूयाथ्सूंपावसाना चं स्वध्यवसाना चेतिं प्रमायुंको यर्जमानः स्याद्यदा हि प्रमीयतेऽथेमामुपावस्यतिं सूपचर्णा चं स्वधिचर्णा चेत्येव ब्रूंयाद्वरीयसीमेवास्मै गर्व्यूतिमा शाँस्ते न प्रमायुंको भवति तयोराविद्यग्निरिद हिवरंजुष्तेत्यांह या अयाँक्ष्म (५४)

देवतास्ता अंरीरधामेति वावैतदांह यन्न निर्दिशेत्प्रतिवेशं यज्ञस्याशीर्गच्छेदा शाँस्ते-ऽयं यजमानोऽसावित्याह निर्दिश्यैवैनर् सुवर्गं लोकं गमयत्यायुरा शाँस्ते सुप्रजास्त्वमा शाँस्त इत्याहाशिषमेवैतामा शाँस्ते सजातवनस्यामा शाँस्त इत्याह प्राणा वै संजाताः प्राणानेव (५)

नान्तरेति तद्ग्रिर्देवो देवेभ्यो वनंते वयम्ग्रेर्मानुषा इत्याहाग्निर्देवेभ्यो वनुते वयं

मंनुष्यैभ्य इति वावैतदांहेह गतिर्वामस्येदं च नमों देवेभ्य इत्यांह याश्चेव देवता यजंति याश्च न ताभ्यं एवोभयीभ्यो नमंस्करोत्यात्मनोऽनाँत्यै॥ (५६)

श्रितस्ते प्र त्रिष्टुर्भमेतद्मावांपृथिवी या अयांक्ष्म प्राणानेव षद्वंत्वारि १शच॥———[९]

देवा वै यज्ञस्यं स्वगाकृतिरं नाविन्दन्ते शं युम्बार्हस्पृत्यमंब्रुवित्रिमं नी यज्ञ स्वगा कुर्विति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै यदेवाब्राह्मणोक्तोऽश्रंहधानो यजाते सा में यज्ञस्याशीरसदिति तस्माद्यदब्राह्मणोक्तोऽश्रंहधानो यजते शं युमेव तस्यं बार्हस्पृत्यं यज्ञस्याशीर्गच्छत्येतन्ममेत्यंब्रवीत्किम्में प्रजायाः (५७)

इति योऽपगुराते श्तेनं यातयाद्यो निहनंथ्सहस्रेण यातयाद्यो लोहितं करवद्यावंतः प्रस्कद्यं पार्सून्थ्संगृह्णातावंतः संवथ्सरान्यितृलोकं न प्र जांनादिति तस्माँद्वाह्मणाय नापं गुरेत न नि हंन्यात्र लोहितं कुर्यादेतावंता हैनंसा भवति तच्छं योरा वृंणीमह् इत्यांह युज्ञमेव तथ्स्वगा करोति तत् (५८)

शं योरा वृंणीमह् इत्यांह शं युमेव बांर्हस्पृत्यम्भांगुधेयेन् समंध्यित गातुं यज्ञायं गातुं यज्ञपंतय इत्यांहाशिषंमेवैतामा शांस्ते सोमं यजित रेतं एव तद्दंधाति त्वष्टांरं यजित रेतं एव हितं त्वष्टां रूपाणि वि कंरोति देवानाम्पर्भीर्यजिति मिथुनृत्वायाभिं गृहपंतिं यजित प्रतिष्ठित्ये जामि वा एतद्यज्ञस्यं क्रियते (५९)

यदाज्येन प्रयाजा इज्यन्त आज्येन पत्नीसंयाजा ऋचंमनूच्यं पत्नीसंयाजानांमृचा यंजत्यजांमित्वायाथों मिथुनत्वायं पङ्किप्रायणो वै यज्ञः पङ्क्षांदयनः पश्चं प्रयाजा इंज्यन्ते चत्वारंः पत्नीसंयाजाः संमिष्टयजुः पंश्चमम्पङ्किमेवानं प्र यन्ति पङ्किमनूद्यंन्ति॥ (६०)

प्रजायाः करोति तिक्रियते त्रयंस्त्रिश्शच॥-----[१०]

युक्ष्वा हि देवहूर्तमा् अश्वारं अग्ने र्थीरिव। नि होतां पूर्व्यः संदः। उत नों देव देवार अच्छां वोचो विदुष्टरः। श्रद्धिश्वा वार्यां कृधि। त्वर ह् यद्यंविष्ठ्य सहंसः सूनवाहुत। ऋतावां युज्ञियो भुवंः। अयमृग्निः संहुस्निणो वार्जस्य श्वितनस्पितंः। मूर्धा क्वी रंथीणाम्। तं नेमिमृभवों यथा नमस्व सहूंतिभिः। नेदीयो युज्ञम् (६१)

अङ्गिरः। तस्मै नूनम्भिद्यंवे वाचा विंरूप् नित्यंया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्। कर्मुं व्यिदस्य सेनंयाग्नेरपांकचक्षसः। पृणिं गोषुं स्तरामहे। मा नों देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः।

कृशं न हांसुरिष्नंयाः। मा नः समस्य दूढाः परिद्वेषसो अरह्तिः। ऊर्मिर्न नावमा विधीत्। नर्मस्ते अग्न ओर्जसे गृणन्ति देव कृष्टयः। अमैः (६२)

अमित्रंमर्दय। कुविथ्सु नो गविष्ट्येऽग्नें संवेषिषो रियम्। उरुकृदुरु णंस्कृिध। मा नो अस्मिन्मंहाधने परा वर्ग्भार्भृद्यंथा। संवर्ग्र् स॰ रियञ्जंय। अन्यम्समिद्ध्या इयमभ्रे सिषंक्त दुच्छुना। वर्धा नो अमंबच्छवं। यस्याजुंषत्रमस्विनः शमीमदुंर्मखस्य वा। तं घेदिग्निर्वृधावंति। परंस्या अधि (६३)

संवतोऽवंरार अभ्या तंर। यत्राहमस्मि तार अंव। विद्या हि ते पुरा व्यमग्ने पितुर्यथावंसः। अधा ते सुम्नमीमहे। य उग्र इंव शर्यहा तिग्मर्थङ्गो न वरसंगः। अभ्रे पुरो रुरोजिंथ। सर्खायः सं वंः सम्यश्चिमिष्ट् स्तोमं चाग्नयें। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो निश्चे सहंस्वते। सरसमिद्यंवसे वृषन्नभ्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्प्दे सिमेध्यसे स नो वसून्या भरा प्रजापते स वेंद सोमापूषणेमौ देवौ॥ (६४)

यज्ञममैरिधं वृषन्नेकान्नवि रशितश्चं॥

-[99]

उ्शन्तंस्त्वा हवामह उ्शन्तः सिमेधीमिह। उ्शन्नुंशत आ वंह पितॄन् ह्विषे अत्तंव। त्वर सीम् प्रचिकितो मनीषा त्वर रिजिष्टमनुं नेषि पन्थांम्। तव प्रणीती पितरी न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः। त्वया हि नः पितरः सोम् पूर्वे कर्माणि चृकुः पंवमान् धीराः। वन्वन्नवातः परिधीर रपौर्ण वीरेभिरश्वैर्म्घवां भव (६५)

नः। त्वर सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावांपृथिवी आ तंतन्थ। तस्मैं त इन्दो ह्विषां विधेम वय स्यांम् पतंयो रयीणाम्। अग्निष्वात्ताः पितर् एह गंच्छत् सदंःसदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता ह्वीरिष् प्रयंतानि ब्रहिष्यथां र्यिर सर्ववीरं दधातन। बर्हिषदः पितर ऊत्यंवांगिमा वो ह्व्या चंकृमा जुषध्वम्ं। त आ गुतावंसा शन्तंमेनाथास्मभ्यम्ं (६६)

शं योरंप्पो दंधात। आहं पितृन्थ्सुंविदत्रार्थ अविथ्सि नपांतश्च विक्रमंणं च विष्णोः। ब्रह्षियो ये स्वधयां सुतस्य भजंन्त पित्वस्त इहार्गमिष्ठाः। उपंहूताः पितरो बर्हिष्येषु निधिषुं प्रियेषुं। त आगमन्तु त इह श्रुंवन्त्विधं ब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्। उदीरतामवंर् उत्परांस उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुम् (६७)

य ईयुरंबृका ऋंत्ज्ञास्ते नोंऽवन्तु पितरो हवेषु। इदिम्पितृभ्यो नमों अस्त्वद्य ये

पूर्वांसो य उपंरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषंता ये वां नून एसंवृजनांसु विक्षु। अधा यथां नः पितरः परांसः प्रवासों अग्न ऋतमांशुषाणाः। शुचीदंयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामां भिन्दन्तों अरुणीरपं व्रन्न। यदंग्ने (६८)

कृव्यवाह्न पितृन् यक्ष्यृंतावृधंः। प्र चं ह्व्यानिं वक्ष्यसि देवेभ्यंश्च पितृभ्य आ। त्वमंग्न ईडितो जांतवेदोऽवांं हुव्यानिं सुर्भीणिं कृत्वा। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्निद्धिः त्वं देव प्रयंता ह्वी १ षिं। मातंली कृव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पित्रुऋकंभिर्वावृधानः। या १ श्वं देवा वांवृधुर्ये चं देवान्थ्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मंदन्ति। (६९)

ड्मं यंम प्रस्त्रमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आ त्वा मन्नाः कविश्स्ता वंहन्त्वेना राजन् ह्विषां मादयस्व। अङ्गिरोभिरा गंहि युज्ञियंभिर्यमं वैरूपैरिह मादयस्व। विवंसवन्त ह्वे यः पिता तेऽस्मिन् युज्ञे ब्रहिष्या निषद्यं। अङ्गिरसो नः पितरो नवंग्वा अर्थवाणो भृगंवः सोम्यासः। तेषां वय स्प्मृतौ युज्ञियानामपि भुद्रे सौमन्से स्याम॥ (७०)

[स्मिधों याज्यां तस्मान्नाभाग॰ हि तमन्वित्यांह प्रजा वा आहेत्यांह युक्ष्वा हि संप्ततिः॥70॥ समिधंः सौमनसे स्यांम॥]

भुवास्मभ्यमसुं यदंग्ने मदन्ति सौमनुस एकेश्च॥—————[१२]

प्रजापंतिरकामयतेष तें युज्ञं वै प्रजापंतेर्जायंमानाः प्राजापृत्या यो वा अयंथादेवतिमृष्टगों निग्राभ्याः स्थ यो वै देवां जुष्टोऽग्निनां र्यिमेकांदश॥————[१३]

॥काण्डम् ३॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

प्रजापंतिरकामयत प्रजाः सृंजेयेति स तपोंऽतप्यत् स सूर्पानंसृजत् सोंऽकामयत प्रजाः सृंजेयेति स द्वितीयंमतप्यत् स वयाईस्यसृजत् सोंऽकामयत प्रजाः सृंजेयेति स तृतीयंमतप्यत् स एतं दींक्षितवादमंपश्यत्तमंवद्त्ततो वै स प्रजा अंसृजत् यत्तपंस्तृष्ट्वा दींक्षितवादं वदंति प्रजा एव तद्यजंमानः (१)

सृज्ते यद्वै दींक्षितों ऽमेध्यम्पश्यत्यपाँस्माद्दीक्षा क्रांमित नीलंमस्य हरो व्येंत्यबंद्धम्मनीं दिरिद्रं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषा् श्रेष्ठो दीक्षे मा मां हासीिरित्यांहु नास्माद्दीक्षापं कामिति नास्य नीलं न हरो व्येति यद्वै दींक्षितमंभिवर्षित दिव्या आपोऽशाँन्ता ओजो बलं दीक्षाम् (२)

तपौंऽस्य निर्प्रन्दतीर्बर्लं धृत्तौजों धत्त् बर्लं धत्त् मा में दीक्षां मा तपो निर्विधिष्टेत्याहैतदेव सर्वमात्मन्धेत्ते नास्यौजो बलुं न दीक्षां न तपो निर्प्रन्त्यग्निर्वे दीक्षितस्यं देवता सौंऽस्मादेतर्हिं तिर इंव यर्हि याति तमींश्वर रक्षारंसि हन्तौः (३)

भ्द्राद्भि श्रेयः प्रेहि बृहुस्पतिः पुरण्ता ते अस्त्वित्यांहु ब्रह्म वै देवानाम्बृहुस्पतिस्तमेवान्वारंभते स एन् सम्पारयत्येदमंगन्म देवयजंनं पृथिव्या इत्यांह देवयजंन् हुं ह्येष पृथिव्या आगच्छंति यो यजंते विश्वे देवा यदजंषन्त पूर्व इत्यांहु विश्वे ह्येतद्देवा जोषयंन्ते यद्ग्रांह्मणा ऋंख्सामाभ्यां यजंषा सन्तरंन्त इत्यांहर्ख्सामाभ्याः ह्येष यजंषा सन्तरंति यो यजंते रायस्पोषेण सिमषा मंदेमेत्यांहाशिषंमेवैतामा शांस्ते॥ (४)

पुष ते गायत्रो भाग इति में सोमाय ब्रूतादेष तेंँतरैष्ठुंभो जागंतो भाग इति में सोमाय ब्रूताच्छन्दोमाना साम्राज्यं गुच्छेति में सोमाय ब्रूताच्छे वै सोम् राजांन साम्राज्यं लोकं गमयित्वा कीणाति गच्छंति स्वाना साम्राज्यं छन्दा सिम् खलु वै सोमस्य राज्ञः साम्राज्यो लोकः पुरस्ताथ्सोमस्य क्रयादेवम्भि मंत्रयेत साम्राज्यमेव (५)

पुनं लोकं गंमियुत्वा कींणाति गच्छंति स्वाना् साम्रांज्यं यो वै तांनून्ष्रस्यं प्रतिष्ठां वेद् प्रत्येव तिष्ठति ब्रह्मवादिनों वदन्ति न प्राश्नन्ति न जुंह्वत्यथ् के तानून्ष्रं प्रति तिष्ठतीतिं प्रजापंतौ मनुसीतिं ब्र्यात्रिरवं जिघ्नेत्प्रजापंतौ त्वा मनसि जुहोमीत्येषा वै तांनून्ष्रस्यं प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति यः (६)

वा अध्वर्योः प्रतिष्ठां वेद् प्रत्येव तिष्ठति यतो मन्येतानंभिक्रम्य होष्यामीति तत्तिष्ठन्ना श्रांवयेदेषा वा अध्वर्योः प्रतिष्ठा य एवं वेद् प्रत्येव तिष्ठति यदिभिक्रम्यं जुहुयात्प्रतिष्ठायां इयात्तस्मांथ्समानत्र तिष्ठंता होत्व्यं प्रतिष्ठित्ये यो वा अध्वर्योः स्वं वेद् स्ववानेव भविति स्रुग्वा अस्य स्वं वाय्व्यंमस्य (७)

स्वं चंम्सौंऽस्य स्वं यद्वांयव्यं वा चम्सं वाऽनंन्वारभ्याश्रावयेथ्स्वादियात्तस्मांदन्वारभ्याश्राव्य स्वादेव नैति यो वै सोम्मप्रंतिष्ठाप्य स्तोत्रमुंपाक्रोत्यप्रंतिष्ठितः सोमो भवत्यप्रंतिष्ठितः स्तोमोऽप्रंतिष्ठितान्युक्थान्यप्रंतिष्ठितो यजंमानोऽप्रंतिष्ठितोऽध्वर्युर्वायव्यं वै सोमंस्य प्रतिष्ठा चंम्सौंऽस्य प्रतिष्ठा सोमः स्तोमंस्य स्तोमं उक्थानां ग्रहं वा गृहीत्वा चंम्सं वोन्नीयं स्तोत्रमुपाकुंर्यात्प्रत्येव सोमई स्थापयंति प्रति स्तोम्म्प्रत्युक्थानि प्रति यजंमानस्तिष्ठंति प्रत्येध्वर्युः॥ (८)

एव तिष्ठति यो वायव्यमस्य ग्रह्ं वैकान्नविर्श्यतिश्चं॥————[२]

युज्ञं वा पृतथ्सम्भंरिन्त् यथ्सोम्ऋयंण्ये पृदं यंज्ञमुखः हंविर्धान् यर्हिं हिव्धिन् प्राचीं प्रवृत्तियेयुस्तर्ह् तेनाक्ष्मपां अयाद्यज्ञमुख पृव युज्ञमन् सं तेनोति प्राश्चंमग्निम्प्र हंर्न्त्यृत्पत्नीमा नंयन्त्यन्वना ऐसि प्र वंतियन्त्यथ् वा अंस्येष धिष्णियो हीयते सोऽन् ध्यायित स ईश्वरो कृद्रो भूत्वा (९)

प्रजां पृशून् यजंमानस्य शर्मियतोर्यर्हिं पृशुमाप्रीत्मुदंश्चं नयंन्ति तर्हि तस्यं पशुश्रपंण हरेत्तेनैवैनंम्भागिनं करोति यजंमानो वा आहवनीयो यजंमानं वा एति क्रि कर्षन्ते यदाहवनीयां त्पशुश्रपंण हरेत्ति स वैव स्यान्निर्मन्थ्यं वा कुर्याद्यजंमानस्य सात्मृत्वाय् यिदं पृशोरंवदानं नश्येदाज्यंस्य प्रत्याख्यायमवं द्येथ्सैव ततः प्रायक्षित्तिर्ये पृशुं विमध्रीरन् यस्तान्कामयेतार्तिमार्च्छेयुरितिं कुविद्ङ्गेति नमोवृक्तिवत्यर्चाग्रीप्रे जुहुयान्नमोवृक्तिमेवैषां वृङ्के

ताुजगार्तिमार्च्छन्ति॥ (१०)

भूत्वा ततुः षड्विर्श्यतिश्च॥———[३]

प्रजापंतेर्जायंमानाः प्रजा जाताश्च या इमाः। तस्मै प्रति प्र वेदय चिकित्वा अन् मन्यताम्। इमम्प्शुम्पंशुपते ते अद्य बुध्राम्यंग्ने सुकृतस्य मध्यै। अन् मन्यस्व सुयजां यजाम् जुष्टं देवानांमिदमंस्तु ह्व्यम्। प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्ति पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरंन्तम्। सुवर्गं याहि पृथिभिदिवयानैरोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः। येषामीशैं (११)

पृशुपितः पशूनां चतुंष्पदामुत चं द्विपदांम्। निष्क्रीतोऽयं यृज्ञियंम्भागमेतु रायस्पोषा यजंमानस्य सन्तु। ये बृध्यमांनमनुं बृध्यमांना अभ्येक्षंन्त् मनंसा चक्षुंषा च। अग्निस्ताः अग्रे प्र मुंमोक्तु देवः प्रजापंतिः प्रजयां संविदानः। य आर्ण्याः पृशवों विश्वरूपा विरूपाः सन्तों बहुधैकंरूपाः। वायुस्ताः अग्रे प्र मुंमोक्तु देवः प्रजापंतिः प्रजयां संविदानः। प्रमुश्रमांनाः (१२)

भुवंनस्य रेतों गातुं धेत्त् यर्जमानाय देवाः। उपाकृति शशमानं यदस्थाँ श्चीवं देवानामप्येतु पार्थः। नानां प्राणो यर्जमानस्य पृशुनां युज्ञो देवेभिः सह देवयानः। जीवं देवानामप्येतु पार्थः सत्याः सन्तु यर्जमानस्य कामाः। यत्पृशुर्मायुमकृतोरों वा पृद्धिराहते। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मश्चत्व रहेसः। शर्मितार उपेतन युज्ञम् (१३)

देवेभिरिन्वितम्। पाशाँत्पशुम्प्र मृंश्चत बुन्धाद्यज्ञपंतिं परिं। अदितिः पाश्चम्प्र मृंमोक्केतं नमः पृश्चभ्यः पशुपतंये करोमि। अरातीयन्तमधरं कृणोमि यं द्विष्मस्तस्मिन्प्रतिं मृश्चामि पाशम्। त्वामु ते दंधिरे हव्यवाह र्थं शृतङ्कर्तारंमृत यृज्ञियं च। अग्ने सदंक्षः सतंनुर्रहि भूत्वाऽथं ह्व्या जांतवेदो जुषस्व। जातंवेदो वपयां गच्छ देवान्त्व हि होतां प्रथमो बुभूथं। घृतेन त्वं तुनुवों वर्धयस्व स्वाहांकृत हिवरंदन्तु देवाः। स्वाहां देवेभ्यों देवेभ्यः स्वाहां॥ (१४)

र्इशें प्रमुश्रमांना युज्ञन्त्व १ षोडंश च॥------[४]

प्राजापत्या वै प्रावस्तेषार् रुद्रोऽधिपितयिंदेताभ्यांमुपाक्रोति ताभ्यांमेवेनं प्रतिप्रोच्या लंभत आत्मनोऽनांब्रस्काय द्वाभ्यांमुपाकरोति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या उपाकृत्य पश्चं जुहोति पाङ्काः प्रावः पृश्ननेवावं रुन्द्वे मृत्यवे वा एष नीयते यत्पृशुस्तं यदंन्वारभेत प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ३)

प्रमायुंको यजंमानः स्यान्नानां प्राणो यजंमानस्य पुशुनेत्यांह व्यावृंत्त्ये (१५)

यत्पशुर्मायुमकृतेति जुहोति शान्त्यै शमितार उपेत्नेत्यांह यथायुजुरेवैतद्वपायां वा आँह्रियमांणायामुग्नेर्मेथोऽपं कामित त्वामु ते दंधिरे हव्यवाह्मिति वपाम्भि जुंहोत्युग्नेरेव मेथ्मवं रुन्द्धेऽथों शृत्तवायं पुरस्तौध्स्वाहाकृतयो वा अन्ये देवा उपरिष्टाध्स्वाहाकृतयोऽन्ये स्वाहां देवेभ्यों देवेभ्यः स्वाहेत्यभितों वृपां जुंहोति तानेवोभयौन्प्रीणाति॥ (१६)

व्यावृत्त्या अभितो वृपां पश्चं च॥-----[५]

यो वा अयंथादेवतं युज्ञमुंपूचर्त्या देवताँभ्यो वृथ्यते पापीयान्भवित यो यंथादेवतं न देवताँभ्य आ वृथ्यते वसीयान्भवत्याभ्रेय्यर्चाभ्रींध्रम्भि मृंशेद्वैष्ण्व्या हंविर्धानंमाभ्रेय्या सुचीं वाय्व्यंया वाय्व्याँन्यैन्द्रिया सदीं यथादेवतमेव युज्ञमुपं चरित न देवताँभ्य आ वृथ्यते वसीयान्भवित युनिज्मं ते पृथिवीं ज्योतिषा सह युनिज्मं वायुम्नतरिक्षेण (१७)

ते सह युनज्मि वाचर्र सह सूर्येण ते युनज्मि तिस्रो विपृचः सूर्यस्य ते। अग्निर्देवतां गायत्री छन्दं उपार्शाः पात्रमिस सोमों देवतां त्रिष्ठुप्छन्दोंऽन्तर्यामस्य पात्रमसीनद्रों देवता जगती छन्दं इन्द्रवायुवोः पात्रमिस बृह्स्पतिर्देवतांऽनुष्ठुप्छन्दों मित्रावरुणयोः पात्रमस्यश्विनौ देवतां पिङ्काश्छन्दोऽश्विनोः पात्रमिस सूर्यो देवतां बृह्ती (१८)

छन्दंः शुक्रस्य पात्रंमिस चन्द्रमां देवतां सतोबृंहती छन्दां मृन्थिनः पात्रंमिस विश्वं देवा देवतोष्णिहा छन्दं आग्रयणस्य पात्रंमसीन्द्रों देवतां कुकुच्छन्दं उक्थानाम्पात्रंमिस पृथिवी देवतां विराद्वन्दौं ध्रवस्य पात्रंमिस॥ (१९)

अन्तरिक्षेण बृहती त्रयंस्त्रि शच॥_____

[٤]

इष्टर्गो वा अध्वर्युर्यजंमानस्येष्टर्गः खलु वै पूर्वोऽर्ष्टुः क्षीयत आस्नयाँन्मा मन्नाँत्पाहि कस्याँश्चिद्भिशंस्त्या इति पुरा प्रांतरनुवाकान्नंहुयादात्मनं एव तदंध्वर्युः पुरस्ताच्छर्मं नह्यते- ऽनाँत्यें संवेशायं त्वोपवेशायं त्वा गायित्रयास्त्रिष्टुभो जगत्या अभिभूँत्ये स्वाहा प्राणांपानौ मृत्योमां पातं प्राणांपानौ मा मां हासिष्टं देवतांसु वा एते प्रांणापानयौः (२०)

व्यायंच्छन्ते येषा ् सोमंः समृच्छते संवेशायं त्वोपवेशाय् त्वेत्यांह् छन्दा रेसि वै संवेश उपवेशश्छन्दों भिरेवास्य छन्दा रेसि वृङ्के प्रेतिवन्त्याज्यांनि भवन्त्यभिजित्ये मुरुत्वंतीः प्रतिपदो विजित्या उभे बृंहद्रथन्तरे भवत इयं वाव रथन्तरमुसौ बृहद्यभ्यामेवैनंमुन्तरैत्युद्य वाव रंथन्तुर श्वो बृहदंद्याश्वादेवैनंमुन्तरंति भूतम् (२१)

वाव रंथन्त्रम्भंविष्यद्भृहदूताचैवेनंम्भविष्युतश्चान्तरंति परिंमितं वाव रंथन्त्रमपंरिमितम्बृहत्परिंमिताचैवेन्मपंरिमिताचान्तरंति विश्वामित्रजमदृग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेताः स पृतज्ञमदंग्निविंहृव्यंमपश्यतेन् वे स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्कः यद्विंहृव्यः शस्यतं इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्के यस्य भूयाः सो यज्ञकृतव इत्यांहुः स देवतां वृङ्कः इति यद्यंग्निष्टोमः सोमः प्रस्ताथ्स्यादुक्थ्यं कुर्वीत् यद्युक्थ्यः स्यादंतिरात्रं कुर्वीत यज्ञकर्तुभिरेवास्यं देवतां वृङ्कः वसींयान्भवति॥ (२२)

प्राणापानयौर्भूतं वृंङ्केऽष्टावि ५शतिश्च॥—

[/o]

नि्रग्राभ्याः स्थ देवश्रुत् आयुंर्मे तर्पयत प्राणं में तर्पयतापानं में तर्पयत व्यानं में तर्पयत् व्यानं में तर्पयत् श्रोत्रं में तर्पयत् मनों में तर्पयत् वार्चं में तर्पयतात्मानं में तर्पयताङ्गांनि में तर्पयत प्रजां में तर्पयत प्रश्नून्में तर्पयत गृहान्में तर्पयत गुणान्में तर्पयत सर्वगंणं मा तर्पयत तर्पयंत मा (२३)

गुणा में मा वि तृष्त्रोषंधयों वै सोमंस्य विशो विशः खलु वै राज्ञः प्रदांतोरीश्वरा ऐन्द्रः सोमोऽवींवृधं वो मनंसा सुजाता ऋतंप्रजाता भग इद्धंः स्याम। इन्द्रेंण देवीर्वीरुधंः संविदाना अनुं मन्यन्ता सवंनाय सोम्मित्याहौषंधीभ्य एवैन् स्वायै विशः स्वायै देवतायै निर्याच्याभि षुणोति यो वै सोमंस्याभिष्यमाणस्य (२४)

प्रथमोऽ रेशः स्कन्दिति स ईश्वर इन्द्रियं वीर्यं प्रजां प्रशून् यर्जमानस्य निर्हन्तोस्तम्भि मंत्रयेता मास्कान्थ्सह प्रजयां सह रायस्पोषंणेन्द्रियं में वीर्यं मा निर्वधीरित्याशिषंमेवैतामा शास्त इन्द्रियस्यं वीर्यंस्य प्रजायें पशूनामनिर्घाताय द्रफ्सश्चंस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च् योनिमनु यश्च पूर्वः। तृतीयं योनिमन् सश्चरंन्तं द्रफ्सं जुंहोम्यन् सप्त होत्राः॥ (२५)

तुर्पयंत माऽभिषूयमांणस्य यश्च दशं च॥=

-[/1

यो वै देवान्देंवयश्सेनार्पयंति मनुष्यांन्मनुष्ययश्सेनं देवयश्स्येंव देवेषु भवंति मनुष्ययश्सी मंनुष्येषु यान्प्राचीनंमाग्रयणाद्ग्रहांन्गृह्णीयात्तानुंपार्शु गृह्णीयाद्यानूर्ध्वा १ स्तानुंपब्दिमतों देवानेव तद्देवयश्सेनांपयति मनुष्यांन्मनुष्ययश्सेनं देवयश्स्येव देवेषुं भवति मनुष्ययश्सी मंनुष्येष्वग्निः प्रांतःसवने पाँत्वस्मान् वैश्वान्ररो मंहिना विश्वशंम्भूः। स नः पावको द्रविणं दधातु (२६)

आयुंष्मन्तः सहभंक्षाः स्याम। विश्वं देवा मुरुत् इन्द्रों अस्मान्स्मिन्द्वितीये सर्वने न जंह्यः। आयुंष्मन्तः प्रियमेषां वर्दन्तो वयं देवानार् सुमृतौ स्याम। इदं तृतीय्र सर्वनं कवीनामृतेन ये चंम्समैरंयन्त। ते सौधन्वनाः सुवंरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वसीयो नयन्तु। आयतंनवतीर्वा अन्या आहुंतयो हूयन्तेऽनायत्ना अन्या या आंघारवंतीस्ता आयतंनवतीर्याः (२७)

सौम्यास्ता अनायत्ना ऐँन्द्रवायवमादायांघारमा घारयेदध्वरो युज्ञीऽयमंस्तु देवा ओषंधीभ्यः पृशवें नो जनाय विश्वंस्मै भूतायांध्वरोऽसि स पिंन्वस्व घृत्वंद्देव सोमेति सौम्या एव तदाहुंतीरायतंनवतीः करोत्यायतंनवान्भवति य एवं वेदाथो द्यावांपृथिवी एव घृतेन व्यंनत्ति ते व्यंत्ते उपजीवनीयें भवत उपजीवनीयों भवति (२८)

य एवं वेदैष ते रुद्र भागो यं निरयांचथास्तं जुंषस्व विदेगौंपत्यः रायस्पोषः सुवीर्यः संवथ्सरीणाः स्वस्तिम्। मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यंभज्ञथ्स नाभानेदिष्ठं ब्रह्मचर्यं वसन्तं निरंभज्ञथ्स आगंच्छुथ्सौंऽब्रवीत्कृथा मा निरंभागिति न त्वा निरंभाक्षमित्यंब्रवीदिङ्गिरस इमे स्तमांसते ते (२९)

सुवर्गं लोकं न प्र जांनित् तेभ्यं इदम्ब्राह्मंणम्ब्रूहि ते सुंवर्गं लोकं यन्तो य एंपाम्पशवस्ताः स्तें दास्यन्तीति तदेंभ्योऽब्रवीत्ते सुंवर्गं लोकं यन्तो य एंपाम्पशव आस्नतानंस्मा अददुस्तम्पशुभिश्चरंन्तं यज्ञवास्तौ रुद्र आगंच्छुथ्सौंऽब्रवीन्मम् वा इमे पृशव इत्यदुर्वे (३०)

मह्यमिमानित्यंब्रवीन्न वै तस्य त ईशत् इत्यंब्रवीचर्चज्ञवास्तौ हीयंते मम् वै तदिति तस्मांचज्ञवास्तु नाभ्यवेत्य स् सौंऽब्रवीच्ज्ञे मा भुजार्थं ते पृश्चन्नाभि मर्श्स्य इति तस्मां एतम्मन्थिनः सङ्ख्रावमंजुहोत्ततो वै तस्यं रुद्रः पृश्चन्नाभ्यंमन्यत् यत्रैतमेवं विद्वान्मन्थिनः सङ्ख्रावं जुहोति न तत्रं रुद्रः पृश्चनिभ मन्यते॥ (३१)

द्धात्वायतंनवतीर्या उपजीवनीयों भवति तेऽदुर्वे यत्रैतमेकांदश च॥————[९]

जुष्टी वाचो भूयास् जुष्टी वाचस्पतंये देवि वाक्। यद्वाचो मधुमृत्तस्मिन्मा धाः स्वाहा सर्रस्वत्यै। ऋचा स्तोम् समर्भय गायत्रेणं रथन्तरम्। बृहद्गायत्रवर्ति। यस्तै द्रफ्सः स्कन्दिति यस्ते अर्शुर्बाहुच्युंतो धिषणंयोरुपस्थात्। अध्वर्योर्वा परि यस्ते पुवित्राथ्स्वाहांकृत्मिन्द्रांय तं जुंहोमि। यो द्रफ्सो अर्शुः पंतितः पृथिव्यां पंरिवापात् (३२)

पुरोडाशाँत्करम्भात्। धानासोमान्मन्थिनं इन्द्र शुक्राथ्स्वाहांकृत्मिन्द्रांय तं जुंहोमि। यस्तें द्रफ्सो मधुंमा॰ इन्द्रियाबान्थ्स्वाहांकृतः पुनंरप्येतिं देवान्। दिवः पृथिव्याः पर्यन्तिरिक्षाथ्स्वाहांकृत्मिन्द्रांय तं जुंहोमि। अध्वर्युर्वा ऋत्विजां प्रथमो युंज्यते तेन् स्तोमो योक्तव्यं इत्यांहुर्वागंग्रेगा अग्रं एत्वृजुगा देवेभ्यो यशो मिय दर्धती प्राणान्पशुषुं प्रजाम्मियं (३३)

च यजंमाने चेत्यांह् वाचंमेव तद्यंज्ञमुखे युंनिक्त वास्तु वा एतद्यज्ञस्यं क्रियते यद्भ्हाँनगृहीत्वा बंहिष्पवमान सर्पन्ति पराँश्चो हि यन्ति परांचीभिः स्तुवतें वैष्णव्यर्चा पुनरेत्योपं तिष्ठते यज्ञो वै विष्णुंर्यज्ञमेवाकुर्विष्णो त्वं नो अन्तंमः शर्म यच्छ सहन्त्य। प्रते धारां मधुश्चत उथ्मं दुह्रते अक्षितमित्यांह् यदेवास्य शयांनस्योपशुष्यंति तदेवास्यैतेना प्यांययति॥ (३४)

अग्निनां र्यिमंश्रवत्योषंमेव दिवेदिवे। युशसंं वीरवंत्तमम्॥ गोमारं अग्नेऽविंमार अश्वी युज्ञो नृवथ्संखा सद्मिदंप्रमृष्यः। इडांबार एषो अंसुर प्रजावान्दीर्घो र्यिः पृथुबुधः सुभावान्॥ आ प्यायस्व सं ते॥ इह त्वष्टांरमग्नियं विश्वरूपमुपं ह्वये। अस्माकंमस्तु केवंलः॥ तन्नंस्तुरीपमधं पोषयितु देवं त्वष्टविं रंगुणः स्यस्व। यतो वीरः (३५)

कुर्मण्यः सुदक्षौ युक्तग्रांवा जायंते देवकांमः। शिवस्त्वंष्टिर्हा गंहि विभुः पोषं उत त्मनां। युज्ञेयंज्ञे न उदेव। पिशङ्गेरूपः सुभरों वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकांमः। प्रजां त्वष्टा वि ष्यंतु नाभिमस्मे अथां देवानामप्येतु पार्थः। प्र णों देव्या नों दिवः। पीपिवारसर् सरंस्वतः स्तनं यो विश्वदंर्शतः। धुक्षीमिहं प्रजामिषम् (३६)

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुंमन्तो घृत्श्चतंः। तेषां ते सुम्नमींमहे। यस्यं व्रतम्प्शवो यन्ति सर्वे यस्यं व्रतमुंपतिष्ठंन्त आपः। यस्यं व्रते पुंष्टिपतिर्निविष्टस्तर सरंस्वन्तमवंसे हुवेम। दिव्यर सुंपुर्णं वयसम्बृहन्तंमुपां गर्भं वृष्भमोषंधीनाम्। अभीपतो वृष्ट्या तुर्पयंन्तं तर सरंस्वन्तमवंसे हुवेम। सिनींवालि पृथुंष्टुके या देवानामसि स्वसां। जुषस्वं हुव्यम् (३७)

आहुंतं प्रजां देवि दिदिष्ट्वि नः। या सुंपाणिः स्वंङ्गरिः सुषूमां बहुसूवंरी। तस्यै

विश्पितिये ह्विः सिनीवाल्ये जुंहोतन। इन्ह्रंं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरः। असितवर्णा हर्रयः सुपूर्णा मिह्ये वसाना दिवमुत्पंतन्ति। त आऽवंवृत्रन्थ्सदंनानि कृत्वादित्पृथिवी घृतैर्व्युद्यते। हिरण्यकेशो रजंसो विसारेऽहिर्धृनिर्वातं इव ध्रजीमान्। शुचिंभ्राजा उषसः (३८)

नवेंदा यशंस्वतीरप्स्युवो न सृत्याः। आ तें सुपूर्णा अमिनन्त् एवैंः कृष्णो नीनाव वृष्मो यदीदम्। शिवाभिनं स्मयंमानाभिरागात्पतंन्ति मिहंः स्तनयंन्त्युआ। बाश्रेवं विद्युन्मिंमाति वृथ्सं न माता सिंपक्ति। यदेंषां वृष्टिरसंर्जि। पर्वतिश्चिन्मिहं वृद्धो बिंभाय दिवश्चिथ्सानुं रेजत स्वने वंः। यत्क्रीडंथ मरुतः (३९)

ऋष्टिमन्त् आपं इव स्प्रियंश्चो धवध्वे। अभि क्रंन्द स्त्नय् गर्भुमा धां उद्न्वता परि दीया रथेन। दित्र सु कंर्ष विषितं न्यंश्वर स्मा भवन्तूद्वतां निपादाः। त्वं त्या चिदच्युताग्ने पृश्चर्न यवसे। धामां हु यत्ते अजर् वनां वृश्चन्ति शिक्वंसः। अग्ने भूरीणि तवं जातवेदो देवं स्वधावोऽमृतंस्य धामं। याश्चं (४०)

माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदुधः पृष्टबन्धो। दिवो नीं वृष्टिम्मंरुतो ररीध्वम्प्र पिन्वत् वृष्णो अश्वस्य धाराः। अर्वाङ्कतेनं स्तनयित्नतेह्यपो निष्धिन्नत्तसुरः पिता नः। पिन्वन्त्यपो मुरुतः सुदानवः पयो घृतविद्विदर्थेष्वाभुवः। अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिन्मुर्थ्सं दुहन्ति स्तनयंन्तमिक्षितम्। उद्युतो मरुतस्ता इयर्त् वृष्टिम् (४१)

ये विश्वें मुरुतों जुनन्तिं। क्रोशांति गर्दा कुन्येंव तुन्ना पेरुं तुञ्जाना पत्येंव जाया। घृतेन द्यावांपृथिवी मधुंना समुंक्षत पयंस्वतीः कृणुताप ओषंधीः। ऊर्जं च तत्रं सुमृतिं चं पिन्वथ यत्रां नरो मरुतः सिञ्चथा मधुं। उद् त्यिश्चित्रम्। और्वभृगुवच्छुचिंमप्रवान्वदा हुंवे। अग्निश् संमुद्रवांससम्। आ स्वश् संवितुर्यथा भगंस्येव भुजिश् हुंवे। अग्निश् संमुद्रवांससम्। हुवे वातंस्वनं कृविम्पुर्जन्यंक्रन्युश् सहं। अग्निश् संमुद्रवांससम्॥ (४२)

वीर इषर् ह्व्यमुषसों मरुतश्च वृष्टिं भगस्य द्वादंश च॥———[११]

यो वै पर्वमानानान्त्रीणि परिभूः स्फ्यः स्वस्तिर्भक्षेहिं महीनां पर्योऽसि देवं सवितरेतत्तें श्येनाय यह्रै होतोंपयामुगृहीतोऽसि वाक्षुसत्प्र सो अंग्रु एकांदश॥———[१२]

[प्रजापंतिरकामयत प्रजापंतेर्जायंमाना व्यायंच्छन्ते मह्यमिमान्माया मायिनां द्विचंत्वारिश्शत्॥42॥ प्रजापंतिरकामयताग्निश् संमुद्रवांससम्॥]

॥ द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

यो वै पर्वमानानामन्वारोहान् विद्वान् यज्तेऽनु पर्वमानाना रोहित् न पर्वमानेभ्यो-ऽवंच्छिद्यते श्येनोंऽसि गायुत्रछंन्दा अनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय सुपुर्णोऽसि त्रिष्टुप्छंन्दा अनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय सर्घासि जगंतीछन्दा अनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पार्येत्यांहैते (१)

वै पर्वमानानामन्वारोहास्तान् य एवं विद्वान् यज्तेऽनु पर्वमानाना रोहिति न पर्वमानेभ्योऽवंच्छिद्यते यो वै पर्वमानस्य सन्तंतिं वेद सर्वमायुरिति न पुरायुंषः प्र मीयते पशुमान्भंवति विन्दते प्रजाम्पर्वमानस्य ग्रहां गृह्यन्तेऽथ् वा अंस्यैतेऽगृहीता द्रोणकलुश आंधवनीयंः पूत्भृत्तान् यदगृहीत्वोपाकुर्यात्पवंमानं वि (२)

छिन्द्यात्तं विच्छिद्यमानमध्वर्योः प्राणोऽन् विच्छिद्येतोपयामगृहीतोऽसि प्रजापंतये त्वेति द्रोणकलशमभि मृंशेदिन्द्रांय त्वेत्यांधवनीयं विश्वेंभ्यस्त्वा देवेभ्य इतिं पूतभृतम्पवंमानमेव तथ्सं तंनोति सर्वमायुरेति न पुरायुंषः प्र मीयते पशुमान्भविति विन्दते प्रजाम्॥ (३)

एते वि द्विचंत्वारि शच॥

त्रीणि वाव सर्वनान्यथं तृतीय् सर्वनमर्व लुम्पन्त्यन् शु कुर्वन्तं उपा १ शु हुत्वोपा रेशुपात्रे ऽरेशुम्वास्य तं तृतीयसवने ऽपिसृज्याभि पुणुयाद्यदाँप्याययंति तेना रंशुमद्यदंभिषुणोति तेनंर्जीषि सर्वांण्येव तथ्सवंनान्य रशुमन्ति शुऋवंन्ति सुमावंद्वीर्याणि करोति द्वौ संमुद्रौ वितंतावजूर्यो पूर्यावंतिते जठरेव पादाः। तयोः पश्यंन्तो अति यन्त्यन्यमपंश्यन्तः (४)

सेतुनातिं यन्त्यन्यम्। द्वे द्रधंसी स्ततीं वस्त एकंः केशी विश्वा भुवनानि विद्वान्। तिरोधायैत्यसितं वसानः शुक्रमा देत्ते अनुहायं जार्यै। देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतम्मंहायज्ञमंपश्यन्तमंतन्वताऽग्निहोत्रं व्रतमंकुर्वत तस्माद्विव्रंतः स्याद्विर्ह्यंग्निहोत्रं जुह्वंति पौर्णमासं यज्ञमंग्नीषोमीयम् (५)

पशुमंकुर्वत दार्श्यं यज्ञमाँग्नेयम्पशुमंकुर्वत वैश्वदेवम्प्रांतःसवनमंकुर्वत

वरुणप्रघासान्माध्यंदिन् सर्वन साकमेधान्यितृयुज्ञं त्र्यम्बका इस्तृतीयसवनमंकुर्वत् तमेषामस्रीरा यज्ञम्नवाजिगा स्मन्तं नान्ववायन्ते ऽब्रुवन्नध्वर्त्वया वा इमे देवा अभूवन्निति तदेध्वरस्याध्वरत्वन्ततो देवा अभवन्यरास्रीरा य एवं विद्वान्थ्सोमेन यजेते भवंत्यात्मना परास्य भ्रातृंच्यो भवति॥ (६)

अपंश्यन्तोऽग्नीषोमीयंमात्मना परा त्रीणि च॥————[२]

परिभूरिग्नं परिभूरिन्द्रं परिभूर्विश्वां देवान्परिभूर्मा सह ब्रह्मवर्चसेन् स नंः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते श रांजन्नोषंधीभ्योऽच्छिन्नस्य ते रियपते सुवीर्यस्य रायस्पोषंस्य दिदतारंः स्याम। तस्यं मे रास्व तस्यं ते भक्षीय तस्यं त इदमुन्मृंजे। प्राणायं मे वर्चीदा वर्चसे पवस्वापानायं व्यानायं वाचे (७)

दक्षकृतुभ्यां चक्षुंभ्यां मे वर्चोदौ वर्चसे पवेथा श्रु श्रोत्रांयात्मनेऽङ्गेभ्य आयुंषे वीर्याय विष्णोरिन्द्रंस्य विश्वेषां देवानां जुठरंमिस वर्चोदा मे वर्चसे पवस्व कोऽिस को नाम् कस्मैं त्वा कार्य त्वा यं त्वा सोमेनातींतृपं यं त्वा सोमेनामींमद सुप्रजाः प्रजयां भूयास सुवीरों वीरेः सुवर्चा वर्चसा सुपोषः पोषैविश्वेभ्यो मे रूपेभ्यों वर्चोदाः (८)

वर्चसे पवस्व तस्यं मे रास्व तस्यं ते भक्षीय तस्यं त इदमुन्मृंजे। बुभूंषन्नवेंक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापंतिर्यज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंर्पयित स एनं तृप्तो भूत्याऽभि पंवते ब्रह्मवर्चसकामोऽवेंक्षेतेष वै पात्रियः प्रजापंतिर्यज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंर्पयित स एनं तृप्तो ब्रह्मवर्चसेनाभि पंवत आमयावी (९)

अवेंक्षेतेष वै पात्रियः प्रजापंतिर्य्ज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंप्यति स एंनं तृप्त आयुंषाभि पंवतेऽभिचर्त्रवेंक्षेतेष वै पात्रियः प्रजापंतिर्य्ज्ञः प्रजापंतिस्तमेव तंप्यति स एंनं तृप्तः प्राणापानाभ्यां वाचो दंक्षऋतुभ्यां चक्षुंभ्यां क्षुंभ्याः श्रोत्राभ्यामात्मनोऽङ्गेभ्य आयुंषोऽन्तरंति ताजकप्र धंन्वति॥ (१०)

वाचे रूपेभ्यों वर्चोदा आमयावी पश्चंचत्वारि १ शच॥———[३]

स्प्र्यः स्वस्तिर्विघनः स्वस्तिः पर्शुर्वेदिः पर्शुर्नः स्वस्तिः। युज्ञियां यज्ञकृतः स्थ् ते मास्मिन् यज्ञ उपं ह्वयध्वमुपं मा द्यावांपृथिवी ह्वयेतामुपांस्तावः कलशः सोमो अग्निरुपं देवा उपं यज्ञ उपं मा होत्रां उपहुवे ह्वयन्तान्नमोऽग्नयें मखन्ने मुखस्यं मा यशौं ऽर्यादित्याहवनीयमुपं तिष्ठते यज्ञो वै मुखः (११)

युज्ञं वाव स तदंहुन्तस्मां पुव नंमुस्कृत्य सदः प्र संर्पत्यात्मनोऽनाँत्यैं नमों रुद्रायं मखुप्ने नमंस्कृत्या मा पाहीत्याग्नींध्रं तस्मां पुव नंमङस्कृत्य सदः प्र संर्पत्यात्मनोऽनाँत्यैं नम् इन्द्रांय मखुप्न इंन्द्रियं में वीर्यम्मा निर्वधीरितिं होत्रीयंमाशिषंमेवैतामा शाँस्त इन्द्रियस्यं वीर्यस्यानिर्घाताय या वे (१२)

देवताः सद्स्यार्तिमार्पयंन्ति यस्ता विद्वान्य्रसर्पति न सद्स्यार्तिमार्च्छति नमोऽग्नयं मख्घ्र इत्यांहैता वै देवताः सद्स्यार्तिमार्पयन्ति ता य एवं विद्वान्य्रसर्पति न सद्स्यार्तिमार्च्छति दृढे स्थंः शिथिरे समीची मारहंसस्पातर सूर्यो मा देवो दिव्यादरहंसस्पातु वायुरन्तरिक्षात् (१३)

अग्निः पृथिव्या युमः पितृभ्यः सरंस्वती मनुष्यैभ्यो देवी द्वारौ मा मा सं तांष्ठम् नमः सदंसे नमः सदंसस्पतंये नमः सखीनां पुरोगाणां चक्षुंषे नमो दिवे नमः पृथिव्या अहं दैधिष्व्योदतंस्तिष्ठान्यस्य सदंने सीद् योऽस्मत्पाकंतर् उन्निवत् उदुद्वतंश्च गेषम्पातम्मौ द्यावापृथिवी अद्याहुः सदो वै प्रसर्पन्तम् (१४)

पितरोऽनु प्र संर्पन्ति त एंनमीश्वरा हिश्सिंतोः सदः प्रसृप्यं दक्षिणार्धं परेंक्षेतागंन्त पितरः पितृमान्हं युष्मार्भिभूयासश् सुप्रजसो मयां यूयम्भूयास्तेति तेभ्यं एव नंमस्कृत्य सदः प्र संर्पत्यात्मनोऽनाँत्ये॥ (१५)

मुखो वा अन्तरिक्षात्प्रसर्पन्तुत्रयंस्त्रि १ शच॥ ______[४]

भक्षेहि मा विंश दीर्घायुत्वायं शन्तनुत्वायं रायस्पोषांय वर्चसे सुप्रजास्त्वायेहिं वसो पुरोवसो प्रियो में हृदौँऽस्यश्विनौँस्त्वा बाहुभ्यार्थ सघ्यासम् नृचक्षंसं त्वा देव सोम सुचक्षा अवं ख्येषम् मृन्द्राभिभूतिः केतुर्यज्ञानां वाग्जुंषाणा सोमंस्य तृप्यतु मृन्द्रा स्वंर्वाच्यदितिरनांहतशीर्ष्णी वाग्जुंषाणा सोमंस्य तृप्यत्वेहिं विश्वचर्षणे (१६)

शुम्भूर्मयोभूः स्वस्ति मां हरिवर्ण् प्र चंर् ऋत्वे दक्षांय रायस्पोषांय सुवीरतांयै मा मां राज्ञिन्व बीभिषो मा मे हार्दि त्विषा वंधीः। वृषंणे शुष्मायायुंषे वर्चसे॥ वसुंमद्गणस्य सोम देव ते मित्विदेः प्रातःसवनस्यं गायत्रछंन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराशः संपीतस्य पितृपीतस्य मधुंमत् उपहूतस्योपंहूतो भक्षयामि रुद्रवंद्गणस्य सोम देव ते मित्विवदो माध्यंदिनस्य सर्वनस्य त्रिष्टुप्छंन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराशः संपीतस्य (१७)

पितृपीतस्य मधुमत् उपंहूतस्योपंहूतो भक्षयाम्यादित्यवंद्गणस्य सोम देव ते मित्विदंस्तृतीयंस्य सर्वनस्य जगंतीछन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराश १ संपीतस्य पितृपीतस्य मधुमत् उपंहूतस्योपंहूतो भक्षयामि। आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम् वृष्णियम्। भवा वार्जस्य सङ्ग्रथे। हिन्वं मे गात्रां हिरवो गृणान्मे मा वि तीतृषः। शिवो मे सप्तर्षीनुपं तिष्ठस्व मा मेऽवाङ्गाभिमिति (१८)

गाः। अपाम् सोमंम्मृतां अभूमादंश्म्ं ज्योतिरविंदाम देवान्। किम्स्मान्कृंणवृदरांतिः किम् धूर्तिरंमृत् मर्त्यंस्य। यन्मं आत्मनों मिन्दाभूंदग्निस्तत्पुन्राहाँर्जातवेंदा विचंर्षणिः। पुनंर्ग्निश्चक्षंरदात्पुन्रिन्द्रो बृह्स्पतिः। पुनंर्मे अश्विना युवं चक्षुरा धंत्तमृक्ष्योः। इष्टयंजुषस्ते देव सोम स्तुतस्तोमस्य (१९)

शुस्तोक्थंस्य हरिवत इन्द्रंपीतस्य मधुंमत उपंहूत्स्योपंहूतो भक्षयामि। आपूर्याः स्था मां पूरयत प्रजयां च धनेन च। एतत्ते तत् ये च त्वामन्वेतत्ते पितामह प्रपितामह् ये च त्वामन्वत्रं पितरो यथाभागम्मन्दध्वम् नमों वः पितरो रसाय नमों वः पितरः शुष्माय नमों वः पितरो जीवाय नमों वः पितरः (२०)

स्वधायै नमों वः पितरो मृन्यवे नमों वः पितरो घोराय पितरो नमों वो य एतिस्मिं ह्यों के स्थ युष्मा इस्तेऽनु यें ऽस्मि ह्यों के मां तेऽनु य एतिस्मि ह्यों के स्थ यूयं तेषां विसेष्ठा भूयास्त यें ऽस्मि ह्यों कें ऽहं तेषां विसेष्ठो भूयास्म प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वां जातानि परि ता बंभूव (२१)

यत्कांमास्ते जुहुमस्तन्नों अस्तु व्यक्ष् स्यांम् पतंयो रयीणाम्। देवकृंत्स्यैनंसो-ऽव्यजंनमसि मनुष्यंकृत्स्यैनंसोऽव्यजंनमसि पितृकृंत्स्यैनंसोऽव्यजंनमस्यपस् धौतस्यं सोम देव ते नृभिः सुतस्येष्टयंजुषः स्तृतस्तोंमस्य श्रस्तोक्थंस्य यो भृक्षो अश्वसनियीं गोसनिस्तस्यं ते पितृभिर्भक्षं कृंतुस्योपंहृत्स्योपंहृतो भक्षयामि॥ (२२)

विश्वचर्षणे त्रिष्ठपर्छंन्दस् इन्द्रंपीतस्य नराशश्संपीतस्यातिं स्तुतस्तोमस्य जीवाय नमो वः पितरो बभूव चतुंश्चत्वारिश्शच॥————[५]

मृहीनाम्पयोऽिस विश्वेषां देवानां तुनूर्ऋध्यासंमुद्य पृषतीनां ग्रह्म्पृषंतीनां ग्रहोऽिस् विष्णोर्ह्रदंयमस्येकंमिष विष्णुस्त्वानु वि चंक्रमे भूतिर्द्धा घृतेनं वर्धतां तस्यं मेष्टस्यं वीतस्य द्रविणमा गंम्याञ्चोतिरिस वैश्वान्रं पृश्विये दुग्धम् यावंती द्यावापृथिवी महित्वा यावंच सप्त सिन्धंवो वितस्थुः। तावंन्तमिन्द्र ते (२३)

ग्रह र सहोर्जा गृंह्याम्यस्तृंतम्। यत्कृंष्णशकुनः पृषदाज्यमंवमृशेच्छूद्रा अस्य प्रमायुंकाः स्युर्यच्छाऽवंमृशेचतुंष्पादोऽस्य पृशवंः प्रमायुंकाः स्युर्यथ्सकन्देद्यजंमानः प्रमायुंकः स्यात्पशवो व पृषदाज्यम्पृशवो वा एतस्यं स्कन्दित् यस्यं पृषदाज्य स्कन्दिति यत्पृषदाज्यम्पुनंगृंह्याति प्रशूनेवास्मे पुनंगृंह्याति प्राणो व पृषदाज्यं प्राणो व (२४)

पुतस्यं स्कन्दित् यस्यं पृषद्ाज्यः स्कन्दित् यत्पृषद्ाज्यम्पुनंगृह्णितिं प्राणमेवास्मे पुनंगृह्णिति हिरंण्यमवधायं गृह्णात्यमृतं वे हिरंण्यं प्राणः पृषद्ाज्यम्मृतंमेवास्यं प्राणे देधाति श्तमानम्भवित श्तायुः पुरुषः श्तेन्द्रियं आयुंष्येवेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठत्यश्वमवं प्रापयित प्राजाप्त्यो वा अश्वः प्राजाप्त्यः प्राणः स्वादेवास्मे योनैः प्राणं निर्मिमीते वि वा पृतस्यं यज्ञशिखंद्यते यस्यं पृषदाज्यः स्कन्दिति वैष्ण्वयर्चा पुनंगृह्णिति यज्ञो वे विष्णुंर्यज्ञेनैव यज्ञः सं तनोति॥ (२५)

ते पृष्दाज्यं प्राणो वै योनैं प्राणं द्वावि १ शतिश्व॥———[६]

देवं सिवतरेतत्ते प्राह् तत्प्र चं सुव प्र चं यज् बृह्स्पितिंर्ब्रह्मायुंष्मत्या ऋचो मा गांत तनूपाथ्साम्नंः सत्या वं आशिषंः सन्तु सत्या आकृंतय ऋतं चं सत्यं चं वदत स्तुत देवस्यं सिवतुः प्रंस्वे स्तुतस्यं स्तुतम्स्यूर्ज्म्मह्मा स्तुतं दुंह्मा मां स्तुतस्यं स्तुतं गम्याच्छुस्रस्यं शुस्त्रम् (२६)

अस्यूर्जम्मह्य शक्तं दुंहामा मा शक्त्रस्यं शक्तं गम्यादिन्द्रियावंन्तो वनामहे धुक्षीमिहें प्रजामिषम्। सा में सत्याशीर्देवेषुं भूयात् ब्रह्मवर्चसं मा गम्यात्। युज्ञो बंभूव स आ बंभूव स प्र जंज्ञे स वांवृधे। स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्माश अधिपतीन्करोतु वय इस्याम् पत्यो रयीणाम्। युज्ञो वा वै (२७)

य्ज्ञपंतिं दुहे य्ज्ञपंतिर्वा य्ज्ञं दुंहे स यः स्तृंतश्स्त्रयोदींह्मविद्वान् यजेते तं य्ज्ञो दुंहे स इङ्घा पापीयान्भवित य एनयोदींहं विद्वान् यजेते स य्ज्ञं दुंहे स इङ्घा वसीयान्भवित स्तृतस्यं स्तृतम्स्यूर्ज्म्महाई स्तृतं दुंहामा मां स्तृतस्यं स्तृतं गंम्याच्छ्स्तस्यं श्रुम्लमस्यूर्ज्म्महाई श्रुस्तं गंम्यादित्याहेष वै स्तृंतश्रुस्त्रयोदींहुस्तं य एवं विद्वान् यजेते दुह एव य्ज्ञमिङ्घा वसीयान्भवित॥ (२८)

शुस्त्रं वै शुस्त्रन्दुंहान्द्वावि ५ शतिश्च॥---

श्येनाय पत्वंने स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमों विष्टम्भाय धर्मणे स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमें परिधयें जनप्रथंनाय स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमं ऊर्जे होत्राणा स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमः पर्यसे होत्राणा स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमः प्रजापंतये मनेवे स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमं ऋतमृतपाः सुवर्वाद्श्स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमं स्वर्तायः सुवर्वाद्श्स्वाहा वद्श्स्वयमंभिगूर्ताय नमंस्तृम्पन्ता हे होत्रा मधौर्षृतस्य यज्ञपंतिमृषय एनंसा (२९)

आहुः। प्रजा निर्भक्ता अनुतृप्यमांना मध्व्यौ स्तोकावप तौ रंराध। सं नुस्ताभ्या ए सृजतु विश्वकर्मा घोरा ऋषयो नमी अस्त्वेभ्यः। चक्षुंष एषाम्मनंसश्च संधौ बृहुस्पतंये मिह् षद्युमन्नमः। नमो विश्वकर्मणे स उं पात्वस्मानंनन्यान्थ्सोम्पान्मन्यंमानः। प्राणस्य विद्वान्थ्सम्रे न धीर् एनश्चकृवान्मिहं बुद्ध एषाम्। तं विश्वकर्मन् (३०)

प्र मुंश्चा स्वस्तये ये भृक्षयंन्तो न वसूँन्यानृहुः। यानुग्नयोऽन्वतंप्यन्त धिष्णिया इयं तेषांमवया दुरिष्ठ्ये स्विष्टिं नस्तां कृणोतु विश्वकंमां। नमः पितृभ्यों अभि ये नो अख्यंन् यज्ञकृतों यज्ञकांमाः सुदेवा अंकामा वो दक्षिणां न नीनिम् मा नस्तस्मादेनंसः पापियष्ट। यावन्तो वे संदस्यांस्ते सर्वे दक्षिण्यांस्तेभ्यो यो दक्षिणां न (३१)

न्येदैभ्यों वृश्चेत् यहैं श्वकर्मणानिं जुहोतिं सद्स्यांनेव तत्प्रीणात्यस्मे देवासो वपुंषे चिकिथ्सत् यमाशिरा दम्पंती वाममंश्रुतः। पुमान्युत्रो जायते विन्दते वस्वथ् विश्वे अर्पा एंधते गृहः। आशीर्दाया दम्पंती वाममंश्रुतामिरिष्टो रायः सचता समोकसा। य आसिचथ्सन्दुंग्धं कुम्भ्या सहेष्टेन यामन्नमंतिं जहातु सः। सिपिग्रीवी (३२)

पीवंर्यस्य जाया पीवांनः पुत्रा अकृंशासो अस्य। सहजांनिर्यः सुंमख्स्यमांन् इन्द्रांयाशिर स्मह कुम्भ्यादाँत्। आशीर्म् ऊर्जमुत सुंप्रजास्त्विमषं दधातु द्रविण् स् सर्वर्चसम्। सुंजयन्क्षेत्राणि सहंसाहिमन्द्र कृण्वानो अन्या अधेरान्थ्सपत्नान्। भूतमंसि भूते मां धा मुखंमसि मुखंम्भूयासम् द्यावांपृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णामि विश्वं त्वा देवा वैश्वानराः (३३)

प्र च्यांवयन्तु दिवि देवां हर्ष्हान्तरिक्षे वयार्षि पृथिव्याम्पार्थिवान्ध्रुवं ध्रुवेणं ह्विषाव् सोमं नयामिस। यथां नः सर्विमिञ्जगंदयक्ष्मर सुमना असंत्। यथां न इन्द्र इद्विशः केवंलीः सर्वाः समनसः करंत्। यथां नः सर्वा इद्दिशोऽस्माकं केवंलीरसर्त्र्॥ (३४)

एनंसा विश्वकर्मन् यो दक्षिणां न संपिर्ग्रीवी वैश्वानराश्चंत्वारिर्श्यचं॥————[८]

यद्वे होताँध्वर्युमेभ्याह्वयंते वज्रंमेनम्भि प्र वंतयत्युक्थंशा इत्यांह प्रातःसवनम्प्रंतिगीर्य् त्रीण्येतान्यक्षराणि त्रिपदां गायत्री गायत्रम्प्रांतःसवनं गायत्रियेव प्रांतःसवने वज्रंमन्तर्थंत्त उक्थं वाचीत्यांहु माध्यंदिन् सवंनं प्रतिगीर्यं चत्वार्येतान्यक्षराणि चतुंष्पदा त्रिष्टुत्रेष्टुंभूम्माध्यंदिन् सवंनं त्रिष्टुभैव माध्यंदिने सवंने वज्रंमन्तर्थत्ते (३५)

उक्थं वाचीन्द्रायेत्यांह तृतीयसवनम्प्रंतिगीर्यं स्प्तैतान्यक्षरांणि स्प्तपंदा शक्वंरी शाक्करो वज्रो वज्रेणैव तृतीयसवने वज्रमन्तर्धत्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वा अध्वर्युः स्याद्यो यंथासवनम्प्रंतिग्रे छन्दा स्सि सम्पादयेत्ते जंः प्रातःसवन आत्मन्दधीतेन्द्रियम्माध्यंदिने सर्वने पृशू इस्तृतीयसवन इत्युक्थंशा इत्याह प्रातःसवनम्प्रंतिगीर्य त्रीण्येतान्यक्षरांणि (३६)

त्रिपदां गायत्री गांयत्रम्प्रांतःसब्नम्प्रांतःसब्न एव प्रंतिग्रे छन्दारंसि सम्पांदयत्यथो तेजो वै गांयत्री तेजंः प्रातःसब्नं तेजं एव प्रांतःसब्न आत्मन्धंत्त उक्थं वाचीत्यांह् माध्यंदिन् सवंनं प्रतिगीर्यं चत्वार्येतान्यक्षरांणि चतुंष्पदा त्रिष्ठुन्नेष्ठुंभूम्माध्यंदिन् सवंनम्माध्यंदिन एव सवंने प्रतिग्रे छन्दारंसि सम्पांदयत्यथों इन्द्रियं वै त्रिष्ठुगिन्द्रियम्माध्यंदिन् सवंनम् (३७)

इन्द्रियमेव मार्ध्यंदिने सर्वन आत्मन्धंत उक्थं वाचीन्द्रायेत्यांह तृतीयसवनम्प्रंतिगीर्यं स्प्तैतान्यक्षराणि सप्तपंदा शक्वंरी शाक्वराः पृशवो जागंतं तृतीयसवनं तृंतीयसवन एव प्रंतिग्रे छन्दारंसि सम्पादयत्यथों पृशवो वै जगंती पृशवंस्तृतीयसवनं पृश्नेव तृंतीयसवन आत्मन्धंते यहै होतांष्व्युंमभ्याह्वयंत आव्यंमस्मिन्दधाति तद्यन्न (३८)

अपहर्नीत पुरास्यं संवथ्सराद्गृह आ वैवीर्ञ्छोश्सा मोदं इवेति प्रत्याह्नंयते तेनैव तदपं हते यथा वा आयंताम्प्रतिक्षेत एवमंध्वर्युः प्रंतिग्रम्प्रतीक्षते यदंभिप्रतिगृणीयाद्यथायंतया समृच्छते ताहगेव तद्यदंर्ध्चां छुप्येत यथा धावंद्र्यो हीयंते ताहगेव तत्प्रबाहुग्वा ऋत्विजां मुद्रीथा उद्रीथ एवोद्गांतृणाम् (३९)

ऋचः प्रणाव उक्थश्र्सिनां प्रतिग्रोऽध्वर्यूणाम् य एवं विद्वान्प्रतिगृणात्येन्नाद एव

द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ३)

भंवत्यास्यं प्रजायां वाजी जांयत इयम्बे होतासावंध्वर्युर्यदासीनः शरसंत्यस्या एव तद्धोता नैत्यास्तं इव हीयमथीं इमामेव तेन यर्जमानो दुहे यत्तिष्ठन्प्रतिगृणात्यमुष्यां एव तदंध्वर्युर्नेतिं (४०)

तिष्ठंतीव ह्यंसावथों अमूमेव तेन् यजंमानो दुहे यदासीनः शश्संति तस्मांदितःप्रंदानं देवा उपं जीवन्ति यत्तिष्ठंन्प्रतिगृणाति तस्मांदमुतंःप्रदानम्मनुष्यां उपं जीवन्ति यत्प्राङासीनः शश्संति प्रत्यिङ्गष्ठंन्प्रतिगृणाति तस्मांत्प्राचीन् रेतों धीयते प्रतीचीः प्रजा जांयन्ते यद्वै होतांष्वर्युमंभ्याह्वयंते वर्ज्रमेनम्भि प्र वंतयति पराङा वंतते वर्ज्रमेव तन्नि कंरोति॥ (४१)

सर्वने वर्ज्रमन्तर्धत्ते त्रीण्येतान्यक्षरांणीन्द्रियम्माध्यंन्दिन् सर्वनन्नोद्गांतृणामंध्वर्युर्नेतिं वर्तयत्यष्टी

उपयामगृहीतोऽसि वाक्षसदेसि वाक्पाभ्यां त्वा ऋतुपाभ्यांमस्य यज्ञस्यं ध्रुवस्याध्यंक्षाभ्यां गृह्णाम्युपयामगृहीतोऽस्यृत्सदेसि चक्षुष्पाभ्यां त्वा ऋतुपाभ्यांमस्य यज्ञस्यं ध्रुवस्याध्यंक्षाभ्यां गृह्णाम्युपयामगृहीतोऽसि श्रुत्सदेसि श्रोत्रपाभ्यां त्वा ऋतुपाभ्यांमस्य यज्ञस्यं ध्रुवस्याध्यंक्षाभ्यां गृह्णामि देवेभ्यंस्त्वा विश्वदेवेभ्यस्त्वा विश्वम्यस्त्वा देवेभ्यो विष्णंवुरुक्षमेष ते सोमस्त १ रक्षस्व (४२)

तं तें दुश्वक्षा मार्व ख्यत् मिय् वसुंः पुरोवसुंर्वाक्या वार्चं मे पाहि मिय् वसुंर्विदद्वंसुश्वक्षुष्पाश्वक्षुंर्मे पाहि मिय् वसुंः संयद्वंसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहि भूरंसि श्रेष्ठां रश्मीनाम्प्राणपाः प्राणं में पाहि धूरंसि श्रेष्ठां रश्मीनामपानपा अपानं में पाहि यो नं इन्द्रवायू मित्रावरुणाविधनाविभदासंति भ्रातृंव्य उत्पिपीते शुभस्पती इदमहं तमर्थरम्पादयामि यथैन्द्राहमुंत्तमश्चेतयानि॥ (४३)

रुक्षस्व भ्रातृंव्यस्रयोदश च॥-----[१०]

प्र सो अंग्रे तबोतिभिः सुवीरांभिस्तरित वार्जकर्मभिः। यस्य त्वर सुख्यमाविथ। प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्रये भरता बृहत्। विपां ज्योतीर्रिष् बिभ्रंते न वेधसें। अग्रे त्री ते वार्जिना त्री षुधस्थां तिस्रस्तें जिह्वा ऋंतजात पूर्वीः। तिस्र उं ते तुनुवों देववांतास्ताभिनिः पाहि गिरो अप्रयुच्छत्र। सं वां कर्मणा सिम्षा (४४)

हिनोमीन्द्रांविष्णू अपंसस्पारे अस्य। जुषेथां युज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पृथिभिः

पारयंन्ता। उभा जिंग्यथुर्न पर्रा जयेथे न पर्रा जिग्ये कत्रश्चनैनौः। इन्द्रश्च विष्णो यदपंस्पृधेथां त्रेधा सहस्रुं वि तदैरयेथाम्। त्रीण्यायू १षि तवं जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसंस्ते अग्ने। ताभिर्देवानामवीं यक्षि विद्वानर्थं (४५)

भृव यर्जमानाय शं योः। अग्निस्नीणि त्रिधातून्या क्षेति विदर्थां कृविः। स त्रीरेरेकाद्शार इह। यक्षंच पिप्रयंच नो विप्रो दूतः परिष्कृतः। नभंन्तामन्यके संमे। इन्द्रांविष्णू दरहिताः शम्बंरस्य नव पुरो नवृतिं चं श्रिथष्टम्। शृतं वृचिंनः सहस्रं च साकर हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्। उत माता महिषमन्ववेनद्मी त्वां जहित पुत्र देवाः। अथाँब्रवीद्वत्रमिन्द्रों हिनिष्यन्थसर्खे विष्णो वितरं वि क्रंमस्व (४६)

डुषाऽर्थ त्वा त्रयोदश च॥-

-[88]

[यो वै स्फ्यः स्वस्तिः स्वधायै नमः प्र मुंश्च तिष्ठंतीव षट्वंत्वारिश्शत्॥46॥ यो वै पर्वमानानां वि क्रंमस्व॥]

अग्नें तेजस्विन्वायुर्वसंवस्त्वैतद्वा अपां वायुरंसि प्राणो नामं देवा वै यद्यज्ञेन न प्रजापंतिर्देवासुरानायुर्दा एतं युवान् सूर्यो देव इदं वामेकांदश॥————[१२]

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

अग्नें तेजस्विन्तेज्स्वी त्वं देवेषुं भूयास्तेजंस्वन्तम्मामायुंष्मन्तं वर्चस्वन्तम्मनुष्येषु कुरु दीक्षायं च त्वा तपंसश्च तेजंसे जुहोमि तेजोविदंसि तेजों मा मा हांसीन्माऽहं तेजों हासिष्ं मा मां तेजों हासीदिन्द्रौजस्विन्नोज्स्वी त्वं देवेषुं भूया ओजंस्वन्तम्मामायुंष्मन्तं वर्चस्वन्तम्मनुष्येषु कुरु ब्रह्मणश्च त्वा क्षत्रस्यं च (१)

ओजंसे जुहोम्योजो्विद्स्योजों मा मा हांसीन्माहमोजों हासिष्ं मा मामोजों हासी्थ्सूर्यं भ्राजस्विन्भ्राज्स्वी त्वं देवेषुं भूया भ्राजंस्वन्तम्मामायुंष्मन्तं वर्चस्वन्तम्मनुष्येषु कुरु वायोश्चं त्वाऽपां च भ्राजंसे जुहोमि सुवविदिसि सुवंमा मा हांसीन्माहर सुवंर्हासिष्ं मा मार् सुवंर्हासीन्मियं मेथाम्मियं प्रजाम्मय्यग्निस्तेजों दथातु मियं मेथाम्मियं प्रजाम्मयीन्द्रं इन्द्रियं दंधातु मियं मेधाम्मियं प्रजाम्मिय् सूर्यो भ्राजो दधातु॥ (२)

क्षुत्रस्यं चु मियु त्रयोवि शतिश्च॥_____

[8]

वायुर्हिंकुर्ताऽग्निः प्रस्तोता प्रजापंतिः साम् बृह्स्पतिंरुद्गाता विश्वे देवा उपगातारो मुरुतः प्रतिहर्तार् इन्द्रो निधनं ते देवाः प्राणभृतः प्राणम्मियं दधत्वेतद्वे सर्वमध्वर्युरुपाकुर्वन्नुद्गातुभ्यं उपाकरोति ते देवाः प्राणभृतः प्राणम्मियं दधत्वित्याहैतदेव सर्वमात्मन्थंत् इडां देवहूर्मनुंयंज्ञनीर्बृहस्पतिंरुक्थामुदानि शश्सिषद्विश्वे देवाः (३)

सूक्तवाचः पृथिवि मात्मां मां हिश्सीम्ध्रं मनिष्ये मध्रं जनिष्ये मध्रं वक्ष्यामि मध्रं विद्यामि मध्रंमतीं देवेभ्यो वाचंमुद्यासश् शुश्रूषेण्यांम्मनुष्येभ्यस्तम्मां देवा अंवन्तु शोभायें पितरोऽनुं मदन्तु॥ (४)

शुरसिषद्विश्वं देवा अष्टाविर्श्शतिश्व॥_____

[a]

वसंवस्त्वा प्र वृंहन्तु गायुत्रेण छन्दंसाऽग्नेः प्रियम्पाथ् उपेंहि रुद्रास्त्वा प्र वृंहन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसन्द्रंस्य प्रियम्पाथ् उपेँह्यादित्यास्त्वा प्र वृंहन्तु जागंतेन् छन्दंसा विश्वेषां देवानां प्रियम्पाथ् उपेंहि मान्दांसु ते शुक्र शुक्रमा धूंनोमि भन्दनांसु कोतंनासु नूतंनासु रेशींषु मेषींषु वाशींषु विश्वभृथ्सु माध्वींषु ककुहासु शक्नेरीषु (५)

शुकास्ं ते शुक्र शुक्रमा धूंनोमि शुक्रं ते शुक्रेणं गृह्णाम्यह्रों रूपेण सूर्यस्य रृश्मिभिः। आऽस्मिन्नुग्रा अंचुच्यवृर्दिवो धारां असश्चत। कृकुहर रूपं वृष्पस्यं रोचते बृहथ्सोमः सोमंस्य पुरोगाः शुक्रः शुक्रस्यं पुरोगाः। यत्ते सोमादाँभ्यं नाम जागृंवि तस्मै ते सोम् सोमाय स्वाहोशिक्तं देव सोम गायुत्रेण छन्दंसाऽग्नेः (६)

प्रियम्पाथो अपीहि वृशी त्वं देव सोम् त्रैष्टुंभेन् छन्दसेन्द्रंस्य प्रियम्पाथो अपीह्यस्मध्संखा त्वं देव सोम् जागंतेन् छन्दंसा विश्वेषां देवानां प्रियम्पाथो अपीह्या नः प्राण एत् परावत् आन्तरिक्षाद्दिवस्परिं। आयुंः पृथिव्या अध्यमृतंमिस प्राणायं त्वा। इन्द्राग्नी मे वर्चः कृणुतां वर्चः सोमो बृह्स्पतिः। वर्चो मे विश्वे देवा वर्चो मे धत्तमिश्वना। द्धन्वे वा यदीमनु वोचद्वह्माणि वेरु तत्। परि विश्वांनि काव्यां नेमिश्चक्रमिंवाभवत्॥ (७)

शक्तरीष्वग्नेर्बृहस्पतिः पश्चवि ४शतिश्च॥

[3]

एतद्वा अपां नांम्धेयं गृह्यं यदांधावा मान्दांसु ते शुक्र शुक्रमा धूंनोमीत्यांहापामेव नांम्धेयेंन गृह्यंन दिवो वृष्टिमवं रुन्द्धे शुक्रं तें शुक्रणं गृह्यामीत्यांहैतद्वा अहीं रूपं यद्रात्रिः सूर्यस्य रुश्मयो वृष्ट्यां ईश्तेऽह्नं एव रूपेण सूर्यस्य रुश्मिभिर्दिवो वृष्टिं च्यावयुत्याऽस्मिन्नुग्राः (८)

अचुच्यवुरित्यांह यथायुजुरेवैतत्कंकुह र रूपं वृष्मस्यं रोचते बृहदित्यांहैतद्वा अस्य ककुह र रूपं यद्दृष्टीं रूपेणैव वृष्टिमवं रुन्द्वे यत्तें सोमादाँ नम् जागृवीत्यांहैष ह् वै हुविषां हुविर्यंजिति योऽदाँ यं गृहीत्वा सोमांय जुहोति परा वा एतस्यायुं प्राण एति (९)

योऽ रेशुं गृह्णात्या नंः प्राण एंतु परावत् इत्याहायुंरेव प्राणमात्मन्धंत्तेऽमृतंमिस प्राणाय् त्वेति हिरंण्यम्भि व्यनित्यमृतं वै हिरंण्यमायुंः प्राणोऽमृतेंनेवायुंरात्मन्धंते श्तमानम्भवति श्तायुः पुरुषः श्तेन्द्रिय आयुंष्ये्वेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठत्यप उपं स्पृशिति भेषुजं वा आपों भेषुजमेव कुंरुते॥ (१०)

उग्रा पुत्यापुस्त्रीणिं च॥___

—г×1

वायुरंसि प्राणो नामं सिवतुराधिपत्येऽपानं में दाश्चश्चंरिस् श्रोत्रुं नामं धातुराधिपत्य आयुंमें दा रूपमंसि वर्णो नाम बृह्स्पतेराधिपत्ये प्रजां में दा ऋतमंसि सत्यं नामेन्द्रस्याधिपत्ये क्षुत्रं में दा भूतमंसि भव्यं नामं पितृणामाधिपत्येऽपामोषंधीनां गर्भं धा ऋतस्यं त्वा व्योमन ऋतस्यं (११)

त्वा विभूमन ऋतस्यं त्वा विधर्मण ऋतस्यं त्वा स्त्यायर्तस्यं त्वा ज्योतिषे प्रजापंतिर्विराजमपश्यत्तयां भूतं च भव्यं चासृजत् तामृषिभ्यस्तिरोऽदधात्तां जमदंग्रिस्तपंसा-ऽपश्यत्तया वै स पृश्चीन्कामांनसृजत् तत्पृंश्चीनां पृश्चित्वम् यत्पृश्चंयो गृह्यन्ते पृश्चीनेव तैः कामान् यजमानोऽवं रुन्द्धे वायुरंसि प्राणः (१२)

नामेत्यांह प्राणापानावेवावं रुन्द्धे चक्षुंरिस श्रोत्रं नामेत्याहायुरेवावं रुन्द्धे रूपमंसि वर्णो नामेत्यांह प्रजामेवावं रुन्द्ध ऋतमंसि सत्यं नामेत्यांह क्षत्रमेवावं रुन्द्धे भूतमंसि भव्यं नामेत्यांह पुशवो वा अपामोषंधीनां गर्भः पुशूनेव (१३)

अवं रुन्द्व पुताबुद्वे पुरुषम्परितस्तदेवावं रुन्द्व ऋतस्यं त्वा व्योमन् इत्यांहेयं

वा ऋतस्य व्योमेमामेवाभि जंयत्यृतस्यं त्वा विभूमन् इत्यांहान्तरिक्षं वा ऋतस्य विभूमान्तरिक्षमेवाभि जंयत्यृतस्यं त्वा विधर्मण् इत्यांह् द्यौर्वा ऋतस्य विधर्म् दिवंमेवाभि जंयत्यृतस्यं (१४)

त्वा स्त्यायेत्यांहु दिशो वा ऋतस्यं स्त्यं दिशं एवाभि जंयत्यृतस्यं त्वा ज्योतिष् इत्यांह सुवर्गो वै लोक ऋतस्य ज्योतिः सुवर्गमेव लोकम्भि जंयत्येतावंन्तो वै देवलोकास्तानेवाभि जंयति दश् सम्पंचन्ते दशांक्षरा विराडन्नं विराड्विराज्येवान्नाचे प्रतिं तिष्ठति॥ (१५)

व्योमन ऋतस्यं प्राणः पृश्नेव विधर्म् दिवमेवाभि जंयत्यृतस्य षद्गंत्वारि शच॥——[५]

देवा वै यद्यज्ञेन नावार्घन्यत् तत्परै्रवांघन्यत् तत्परांणां पर्त्वम् यत्परें गृह्यन्ते यदेव यज्ञेन नावंघन्द्दे तस्यावंघद्दे यम्प्रथमं गृह्णातीममेव तेनं लोकम्भि जंयित् यं द्वितीयंम्नतरिक्षं तेन् यं तृतीयंम्मुमेव तेनं लोकम्भि जंयित यदेते गृह्यन्तं एषां लोकानांमभिजिंत्ये (१६)

उत्तरेष्वहं स्वमुतोऽर्वाश्चों गृह्यन्तेऽभिजित्यैवेमाल्लोंकान्युनिर्मं लोकम्प्रत्यवंरोहन्ति यत्पूर्वेष्वहं स्वितः पराश्चा गृह्यन्ते तस्मादितः पराश्च इमे लोका यदुत्तरेष्वहं स्वमुतोऽर्वाश्चो गृह्यन्ते तस्मादमुतोऽर्वां चं इमे लोकास्तस्मादयातयाम्रो लोकान्मनुष्यां उपं जीवन्ति ब्रह्मविनो वदन्ति कस्माथ्मुत्यादुद्ध ओषंधयः सम्भवन्त्योषंधयः (१७)

मृनुष्याणामन्नं प्रजापंतिं प्रजा अनु प्र जांयन्त् इति परानन्वितिं ब्र्याद्यद्गृह्णात्युद्धस्त्वौषंधीभ्यो गृह्णामीति तस्मादुद्ध ओषंधयः सम्भवन्ति यद्गृह्णात्योषंधीभ्यस्त्वा प्रजाभ्यो गृह्णामीति तस्मादोषंधयो मनुष्याणामन्नम् यद्गृह्णाति प्रजाभ्यंस्त्वा प्रजापंतये गृह्णामीति तस्मात्युजापंतिं प्रजा अनु प्र जांयन्ते॥ (१८)

अभिजित्या ओषंधयोऽष्टाचंत्वारिश्शच॥----[६]

प्रजापंतिर्देवासुरानंसृजत् तदनुं युज्ञोऽसृज्यत युज्ञं छन्दारंसि ते विष्वंश्चो व्यंक्रामृन्थ्सो-ऽसुंराननुं युज्ञोऽपाकामद्यज्ञं छन्दारंसि ते देवा अमन्यन्तामी वा इदमंभूवन् यद्वयश् स्म इति ते प्रजापंतिमुपाधावन्थ्सोऽब्रवीत्प्रजापंतिश्छन्दंसां वीर्यमादाय तद्वः प्र दास्यामीति स छन्दंसां वीर्यम् (१९) आदाय तदेंभ्यः प्रायंच्छतत्त्वनु छन्दा्र्इस्यपाँकाम्ञ्छन्दार्शसे युज्ञस्ततो देवा अभवन्यरासुरा य एवं छन्दंसां वीर्यं वेदा श्रांवयास्तु श्रोषडाज् ये यजांमहे वषद्वारो भवंत्यात्मना पराँऽस्य भ्रातृंच्यो भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मै कर्मध्वर्युरा श्रांवयतीति छन्दंसां वीर्यायति ब्र्यादेतद्वे (२०)

छन्दंसां वीर्यमा श्रांवयास्तु श्रीष्डाज् ये यजांमहे वषद्भारो य एवं वेद् सवींर्येरेव छन्दोंभिरचित् यत्किं चार्चित् यदिन्द्रों वृत्रमहंन्नमेध्यं तद्यद्यतींन्पावंपदमेध्यं तदथ् कस्मांदैन्द्रो यज्ञ आ सङ्स्थांतोरित्यांहुरिन्द्रंस्य वा एषा यज्ञियां तुनूर्यद्यज्ञस्तामेव तद्यंजन्ति य एवं वेदोपैनं यज्ञो नंमिति॥ (२१)

स छन्दंसां वीर्यं वा एव तद्ष्टौ चं॥_____

—[16]

आयुर्वा अंग्ने ह्विषों जुषाणो घृतप्रंतीको घृतयोंनिरेधि। घृतम्पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेवं पुत्रम्भि रक्षतादिमम्। आ वृंश्च्यते वा एतद्यजमानोऽग्निभ्यां यदेनयोः शृतंकृत्याथान्यत्रावभृथम्वेत्यांयुर्वा अंग्ने ह्विषों जुषाण इत्यंवभृथमंवैष्यञ्जंहयादाहुत्यैवेनौं शमयति नार्तिमार्च्छति यजमानो यत्कुसीदम् (२२)

अप्रतित्तम्मिय् येनं यमस्यं बृिलना चरामि। इहैव सिन्न्रिरवंदये तदेतत्तदंग्ने अनृणो भंवामि। विश्वंलोप विश्वदावस्यं त्वासञ्जंहोम्यग्धादेकोऽहुतादेकः समसुनादेकः। ते नः कृण्वन्तु भेषुज्ञ सदः सहो वरेण्यम्। अयं नो नभंसा पुरः स्ट्रस्फानी अभि रक्षितु। गृहाणामसंमत्ये बहवो नो गृहा असन्न। स त्वं नः (२३)

नुभुसुस्पृत ऊर्जं नो धेहि भुद्रयाँ। पुनेनों नृष्टमा कृषि पुनेनों रियमा कृषि। देवं सङ्स्फान सहस्रपोषस्येशिषे स नों रास्वाज्यानि र रायस्पोषर सुवीर्यर संवथ्सरीणाई स्वस्तिम्। अग्निर्वाव यम इयं युमी कुसींदं वा एतद्यमस्य यर्जमान् आ देत्ते यदोषंधीभिर्वेदिई स्तृणाति यदनुंपौष्य प्रयायाद्वीवबुद्धमेनम् (२४)

अमुष्मिंश्लोंके नेनीयेर्न् यत्कुसींद्मप्रंतीत्तम्मयीत्युपौषती्हैव सन् युमं कुसींदं निरवदायांनृणः सुंवर्गं लोकमेंति यदिं मिश्रमिंव चरेंदञ्जलिना सक्तूंन्प्रदाव्ये जुहुयादेष वा अग्निर्वैश्वानरो यत्प्रंदाव्यः स एवेनई स्वदयत्यह्नां विधान्यांमेकाष्ट्रकायांमपूपं चतुंःशरावम्पक्ता प्रातरेतेन कक्षमुपौषेद्यदिं (२५) दहंति पुण्यसमंम्भवित् यिद् न दहंति पाप्समंमेतेनं ह स्म वा ऋषयः पुरा विज्ञानेन दीर्घस्त्रमुपं यन्ति यो वा उपद्रष्टारंमुपश्रोतारंमनुख्यातारं विद्वान् यजेते सम्मुष्मिश्लौक इंष्टापूर्तेनं गच्छतेऽग्निर्वा उपद्रष्टा वायुरुंपश्रोताऽऽदित्योऽनुख्याता तान् य एवं विद्वान् यजेते सम्मुष्मिश्लौंक इंष्टापूर्तेनं गच्छतेऽयं नो नभसा पुरः (२६)

इत्यांहाऽग्निर्वे नर्भसा पुरौंऽग्निमेव तदांहैतन्में गोपायेति स त्वं नो नभसस्पत् इत्यांह वायुर्वे नर्भसस्पतिंवा्युमेव तदांहैतन्में गोपायेति देवं सङ्स्फानेत्यांहासौ वा आंदित्यो देवः सङ्स्फानं आदित्यमेव तदांहैतन्में गोपायेति॥ (२७)

कुसींद्नत्वन्नं एनमोषेद्यदिं पुर आंदित्यमेव तदांहैतन्में गोपायेतिं॥———[८]

पृतं युवांनं परिं वो ददामि तेन क्रीडंन्तीश्चरत प्रियेणं। मा नंः शाप्त जनुषां सुभागा रायस्पोषेण सिम्षा मंदेम। नमों मिहुम्न उत चक्षुंषे ते मरुंताम्पित्स्तद्हं गृंणामि। अनुं मन्यस्व सुयजां यजाम् जुष्टं देवानांमिदमंस्तु ह्व्यम्। देवानांमेष उपनाह आंसीद्पां गर्भ ओषंधीषु न्यंक्तः। सोमंस्य द्रफ्समंवृणीत पूषा (२८)

बृहन्नद्रिरभवत्तदेषाम्। पिता वृथ्सानाम्पतिरिघ्यानामथो पिता मंहृतां गर्गराणाम्। वृथ्सो ज्रायुं प्रतिधुक्पीयूषं आमिक्षा मस्तुं घृतमंस्य रेतः। त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वाश् हंवन्त मुरुतः स्वर्काः। वर्ष्मन्क्षत्रस्यं कुकुभिं शिश्रियाणस्ततो न उग्रो वि भंजा वसूंनि। व्यृंद्धेन वा एष पृश्चनां यजते यस्यैतानि न क्रियन्तं एष हु त्वे समृद्धेन यजते यस्यैतानि क्रियन्ते॥ (२९)

पूषा क्रियन्तं पृषोंऽष्टो चं॥———[१]

सूर्यो देवो दिविषद्धो धाता क्षत्रायं वायुः प्रजाभ्यः। बृह्स्पतिस्त्वा प्रजापंतये ज्योतिष्मतीं जुहोतु। यस्याँस्ते हरितो गर्भोऽथो योनिर्हरण्ययौ। अङ्गान्यह्रंता यस्यै तां देवैः समंजीगमम्। आ वर्तन वर्तय् नि निवर्तन वर्तयेन्द्रं नर्दबुद। भूम्याश्चतंस्रः प्रदिश्रस्ताभिरा वर्तया पुनः। वि ते भिनद्मि तक्रीं वि योनिं वि गंवीन्यौ। वि (३०)

मातरं च पुत्रं च वि गर्भं च जरायुं च। बहिस्तें अस्तु बालितिं। उ्रुद्रफ्सो विश्वरूप् इन्दुः पर्वमानो धीरं आनञ्च गर्भम्ं। एकंपदी द्विपदीं त्रिपदी चतुंष्पदी पश्चंपदी षद्वंदी सप्तपंद्यष्टापंदी भुवनानुं प्रथता्ड् स्वाहां। मही द्योः पृंथिवी च न इमं यज्ञम्मिंमिक्षताम्। पिपृतां नो भरींमभिः॥ (३१)

गुवीन्यौ वि चतुंश्चत्वारि १शच॥-----[१०]

ड्दं वांमास्यें ह्विः प्रियमिंन्द्राबृहस्पती। उक्थम्मदेश्च शस्यते। अयं वां परिं षिच्यते सोमं इन्द्राबृहस्पती। चार्र्मदांय पीतयें। अस्मे इंन्द्राबृहस्पती रृयिं धंत्तर शत्विनम्। अश्वावन्तर सह्स्रिणम्। बृह्स्पतिर्नः परिं पातु पृश्चादुतोत्तंरस्मादधंरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तांदुत मंध्यतो नः सखा सर्खिभ्यो वरिंवः कृणोतु। वि ते विष्वग्वातंज्ञ्तासो अग्रे भामांसः (३२)

शुचे शुचंयश्चरन्ति। तुविम्रक्षासों दिव्या नवंग्वा वनां वनन्ति धृष्ता रुजन्तः। त्वामंश्चे मानुंषीरीडते विशों होत्रविदं विविचि रख्यातमम्। गुहा सन्तरं सुभग विश्वदंशित तुविष्मणसर् सुयजं घृत्श्रियम्। धाता दंदातु नो र्यिमीशांनो जगंतस्पितिः। स नः पूर्णेनं वावनत्। धाता प्रजायां उत राय ईशे धातेदं विश्वम्भुवंनं जजान। धाता पुत्रं यजंमानाय दातां (३३)

तस्मां उ हुव्यं घृतविद्विधेम। धाता दंदातु नो रियम्प्राचीं जीवातुमिक्षिताम्। वयं देवस्यं धीमिह सुमृति स् सत्यराधसः। धाता दंदातु दाशुषे वसूनि प्रजाकांमाय मीदुषे दुरोणे। तस्मैं देवा अमृताः सं व्यंयन्तां विश्वं देवासो अदितिः सजोषाः। अनुं नोऽद्यानुंमितिर्यज्ञं देवेषुं मन्यताम्। अग्निश्चं हव्यवाहंनो भवंतां दाशुषे मयः। अन्विदंनुमते त्वम् (३४)

मन्यांसै शं चं नः कृषि। ऋत्वे दक्षांय नो हिनु प्र ण् आयूर्शि तारिषः। अनुं मन्यतामनुमन्यंमाना प्रजावंन्तर रियमक्षीयमाणम्। तस्ये वयर हेर्डसि मापि भूम सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छत्। यस्यांमिदम्प्रदिशि यद्विरोचतेऽनुंमितिं प्रतिं भूषन्त्यायवंः। यस्यां उपस्थं उवंन्तरिक्षर् सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छत् (३५)

राकामहर सुहवारं सुष्टुती हुंवे शृणोतुं नः सुभगा बोधंतु त्मनां। सीव्यत्वपंः सूच्याऽच्छिंद्यमानया ददांतु वीरर शतदायमुक्थ्यम्। यास्ते राके सुमृतयः सुपेशंसो याभिर्ददांसि दाशुषे वसूंनि। ताभिर्नो अद्य सुमनां उपागंहि सहस्रपोषर सुभगे रराणा। सिनींवालि या सुपाणिः। कुहूमहर सुभगां विद्यनापंसम्स्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीिम। सा नो ददातु श्रवंणिम्पतृणां तस्यांस्ते देवि ह्विषां विधेम। कुहूर्देवानांमृमृतंस्य पत्नी

हव्यां नो अस्य हुविषेश्चिकेतु। सं दाशुषें किरतु भूरिं वाम रायस्पोषें चिकितुषें दधातु॥ (३६)

भामांसो दाता त्वमन्तरिक्षर् सा नों देवी सुहवा शर्म यच्छतु श्रवंणुं चतुर्विरशतिश्च॥[११]

वि वा एतस्या वांयो इमे वै चित्तश्चाग्निर्भूतानां देवा वा अभ्यातानानृंताषाझ्रष्ट्रकांमाय देविंका वास्तोंष्यते त्वमंग्ने बृहदेकांदश॥—[१२] वि वा एतस्येत्यांह मृत्युर्गन्यवींऽवं रुन्थे मध्यतस्त्वमंग्ने बृहथ्यद्वंत्वारि १शत्॥४६॥ वि वा एतस्यं प्रियासंः॥

॥ चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

वि वा एतस्यं युज्ञ ऋष्यते यस्यं हुविरंतिरिच्यंते सूर्यो देवो दिविषद्ध इत्यांहु बृहुस्पतिना चैवास्यं प्रजापंतिना च युज्ञस्य व्यृद्धमपि वपति रक्षारंसि वा एतत्पृशुर संचन्ते यदेंकदेवत्यं आलंब्यो भूयान्भवंति यस्यांस्ते हरितो गर्भ इत्यांह देवत्रैवैनां गमयति रक्षंसामपंहत्या आ वंतन वर्तयेत्यांह (१)

ब्रह्मंणैवेनमा वंर्तयित वि ते भिनिद्य तक्रीमित्यांह यथायजुरेवेतदुंरुद्रफ्सो विश्वरूप् इन्दुरित्यांह प्रजा वे पृशव इन्दुंः प्रजयैवेनम्पृशुभिः समर्धयित दिवं वे यज्ञस्य व्यृद्धं गच्छति पृथिवीमितिरिक्तन्तद्यन्न शुमयेदार्तिमार्च्छेद्यजमानो मृही द्यौः पृथिवी चं न इति (२)

आह् द्यावांपृथिवीभ्यांमेव यज्ञस्य व्यृंद्धं चातिंरिक्तं च शमयति नार्तिमार्च्छति यजंमानो भस्मंनाभि समूहिति स्वगाकृत्या अथों अनयोवी एष गर्भोऽनयोरेवैनं दधाति यदंवद्येदित तद्रेंचयेद्यन्नाव्द्येत्पृशोरालंब्यस्य नावं द्येत् पुरस्तान्नाभ्यां अन्यदंवद्येदुपरिष्टादुन्यत्पुरस्ताद्धे नाभ्यें (३)

प्राण उपरिष्टादपानो यावानेव पृशुस्तस्यावं द्यति विष्णंवे शिपिविष्टायं जुहोति यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यंते यः पृशोर्भूमा या पृष्टिस्तद्विष्णुः शिपिविष्टोऽतिरिक्त पृवातिरिक्तं दधात्यतिरिक्तस्य शान्त्यां अष्टाप्रूङ्किरंण्यं दक्षिणाऽष्टापंदी ह्येषात्मा नंवमः पृशोरास्यां अन्तरकोश उष्णीषेणाविष्टितम्भवत्येवमिव हि पृशुरुल्बंमिव चर्मेव मार्समिवास्थींव यावानेव पुशुस्तमाुम्वावं रुन्द्धे यस्यैषा युज्ञे प्रायश्चित्तिः क्रियतं इङ्घा वसीयान्भवति॥ (४)

वुर्तयेत्याह नु इति वै नाभ्या उल्बंमिवैकंविश्शतिश्च॥______

आ वांयो भूष श्रुचिपा उपं नः सहस्रंं ते नियुतों विश्ववार। उपों ते अन्थों मद्यंमयामि यस्यं देव दिधेषे पूँर्विपयम्। आकूँत्यै त्वा कामांय त्वा समृधें त्वा कििक्कटा ते मनः प्रजापंतये स्वाहां कििक्कटा ते प्राणं वायवे स्वाहां कििक्कटा ते चक्षुः सूर्याय स्वाहां कििक्कटा ते श्रोत्रं द्यावांपृथिवीभ्याः स्वाहां कििक्कटा ते वाच् सरंस्वत्यै स्वाहां (५)

त्वं तुरीयां वृशिनीं वृशिसिं स्कृद्यत्वा मनसा गर्भ आशंयत्। वृशा त्वं वृशिनीं गच्छ देवान्थ्सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामाः। अजासिं रियष्टा पृथिव्या सीदोर्ध्वान्तरिक्षमुपं तिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भाः। तन्तुं तुन्वन्नजंसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पृथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्बणं वंयत् जोगुंवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। मनंसो ह्विरिस प्रजापंतेवर्णो गात्रांणां ते गात्रभाजो भूयास्म॥ (६)

सरंस्वत्यै स्वाहा मनुस्नयोदश च॥-

−[२]

इमे वै स्हास्तान्ते वायुर्व्यवात्ते गर्भमदधातान्तः सोमः प्राजनयद्ग्निरंग्रसत् स एतं प्रजापंतिराग्नेयम्ष्टाकंपालमपश्यत्तं निरंवपृत्तेनैवैनांमग्नेरिध निरंकीणात्तस्मादप्यंन्यदेवृत्यांमालभंमाः आग्नेयम्ष्टाकंपालम्पुरस्तान्निवंपेदग्नेरेवैनामिधं निष्क्रीया लंभते यत् (७)

वायुर्व्यवात्तस्माँद्वायव्यां यदिमे गर्भमदंधातां तस्माँद्वावापृथिव्यां यथ्सोमः प्राजनयदग्निरग्नंसत् तस्मांदग्नीषोमीया यदनयौर्वियत्योर्वागवंदत्तस्माँथ्सारस्वती यत्प्रजापंतिरग्नेरधिं निरक्रीणात्तस्माँत्प्राजापत्या सा वा एषा संवदेवत्यां यदजा वृशा वायव्यामा लभेत भूतिकामो वायुर्वे क्षेपिष्ठा देवतां वायुमेव स्वेनं (८)

भागुधेयेनोपं धावित स एवैन्म्भूतिं गमयित द्यावापृथिव्यांमा लंभेत कृषमाणः प्रतिष्ठाकांमो दिव एवास्मैं पूर्जन्यो वर्षित् व्यंस्यामोषंधयो रोहन्ति समर्धुकमस्य सस्यम्भवत्यग्रीषोमीयामा लंभेत यः कामयेतान्नंवानन्नादः स्यामित्यग्निनैवान्नमवं रुन्द्धे सोमैनान्नाद्यमन्नंवानेवान्नादो भवित सारस्वतीमा लंभेत् यः (९)

ईश्वरो वाचो विदेतोः सन्वाचं न वदेद्वाग्वै सरम्वती सरम्वतीमेव स्वेनं भागधेयेनोपं

धावित सैवास्मिन्वार्चं दधाित प्राजापृत्यामा लंभेत् यः कामयेतानंभिजितम्भि जंयेयुमिति प्रजापितः सर्वा देवतां देवतांभिरेवानंभिजितम्भि जंयित वायव्यंयोपाकंरोति वायोरेवैनांमवरुध्या लंभत् आकूँत्यै त्वा कामांय त्वा (१०)

इत्यांह यथायजुर्वेतित्किकिटाकारं जुहोति किकिटाकारेण वै ग्राम्याः पृशवो रमन्ते प्रार्ण्याः पंतन्ति यिकिकिटाकारं जुहोति ग्राम्याणां पशूनां धृत्ये पर्यग्रौ क्रियमाणे जुहोति जीवंन्तीमेवेनारं सुवर्गं लोकङ्गंमयित त्वं तुरीयां वृशिनीं वृशासीत्यांह देवृत्रैवेनां गमयित सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामा इत्यांहैष वै कामः (११)

यजमानस्य यदनाँतं उद्दचं गच्छंति तस्मादेवमांहाजासिं रियष्ठेत्यांहैष्वेवैनां लोकेषु प्रतिं ष्ठापयति दिवि तें बृहद्भा इत्यांह सुवर्ग एवास्मैं लोके ज्योतिर्दधाति तन्तुं तन्वन्नजंसो भानुमन्विहीत्यांहेमानेवास्मै लोकां ज्योतिष्मतः करोत्यनुल्बुणं वयत् जोगुंवामप् इतिं (१२)

आह् यदेव यज्ञ उल्बर्णं ऋियते तस्यैवैषा शान्तिर्मनुंर्भव जनया दैव्यं जन्मित्यांह मान्व्यों वै प्रजास्ता एवाद्याः कुरुते मनंसो हृविर्सीत्याह स्वगाकृत्यै गात्रांणां ते गात्रभाजों भूयास्मेत्यांहाशिषंमेवैतामा शास्ते तस्यै वा एतस्या एकंमेवादेवयजनं यदालंब्यायामुभः (१३)

भवंति यदालंब्यायामुभः स्याद्फ्सु वाँ प्रवेशयेथ्सर्वां वा प्राक्षीयाद्यद्फ्सु प्रवेशयेद्यज्ञवेश्चसं कुंर्याथ्सर्वामेव प्राक्षीयादिन्द्रियमेवात्मन्धत्ते सा वा एषा त्रयाणामेवावंरुद्धा संवथ्सर्सदं सहस्रयाजिनों गृहमेधिनुस्त एवैतयां यजेरुन्तेषांमेवैषाप्ता॥14॥

यथ्स्वेनं सारस्वृतीमा लेभेत् यः कामाय त्वा कामोऽप् इत्युभ्रो द्विचंत्वारि १शच॥—[३]

चित्तं च चित्तिश्चाकूंतं चाकूंतिश्च विज्ञांतं च विज्ञानं च मनंश्च शक्वंरीश्च दर्शंश्च पूर्णमांसश्च बृहचं रथन्तरं चं प्रजापंतिर्जयानिन्द्रांय वृष्णे प्रायंच्छदुग्रः पृंत्नाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स हि हव्यो बुभूवं देवासुराः संयंत्ता आसुन्थ्स इन्द्रः प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एताञ्चयान्प्रायंच्छ्तानंजुहोत्ततो वै देवा असुंरानजयन् य-दर्जयन्तज्ञयानां जयत्वङ् स्पर्धमानेनैते होत्व्यां जयंत्येव तां पृतनाम्॥ (१५)

उप पश्चंवि शातिश्च॥______[४

अग्निर्भूतानामधिपतिः स मांवृत्विन्द्रौं ज्येष्ठानौं युमः पृंथिव्या वायुर्न्तिरक्षस्य सूर्यो

दिवश्चन्द्रमा नक्षंत्राणाम्बृह्स्पतिर्ब्रह्मंणो मित्रः सत्यानां वर्रुणोऽपार संमुद्रः स्रोत्यानामत्रुर् साम्राज्यानामधिपति तन्मांवतु सोम् ओषंधीनार सिवता प्रस्वानारं रुद्रः पंशूनां त्वष्टां रूपाणां विष्णुः पर्वतानाम्मरुतो गुणानामधिपतयस्ते मांवन्तु पितंरः पितामहाः परेऽवरे ततांस्ततामहा इह मांवत। अस्मिन्ब्रह्मंत्रस्मिन्क्षत्रेंऽस्यामाशिष्यस्याम्पुंरोधायांमस्मिन्कर्मत्रस्यां देवहूँत्याम्॥ (१६)

अवरे सप्तदंश च॥-----[५]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा एतानंभ्यातानानंपश्यन्तान्भ्यातंन्वत् यद्देवानां कर्मासीदार्ध्यत् तद्यदसुंराणां न तदाँध्यत् येन् कर्मणेर्थ्यत्तत्रं होत्व्यां ऋप्रोत्येव तेन् कर्मणा यद्विश्वं देवाः समभंर्न्तस्मादभ्याताना वैश्वदेवा यत्प्रजापंतिर्जयान्प्रायंच्छत्तस्माञ्जयाः प्राजापत्याः (१७)

यद्राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमादंदत् तद्राष्ट्रभृता र्र राष्ट्रभृत्त्वन्ते देवा अभ्यातानैरसुंरान्भ्यातंन्वत् जयैरजयत्राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमादंदत् यद्देवा अभ्यातानैरसुंरान्भ्यातंन्वत् तदेभ्यातानानांमभ्यातान्त्वं यज्ञयैरजयन्तज्ञयानां जयत्वं यद्राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमादंदत् तद्राष्ट्रभृता र्र राष्ट्रभृत्त्वन्ततो देवा अभवन्यरासुंरा यो आतृंव्यवान्थ्स्याथ्स एताञ्चंह्रयादभ्यातानैरेव आतृंव्यान्भ्यातंनुते जयैर्जयित राष्ट्रभृद्धी राष्ट्रमा दंत्ते भवत्यात्मना परास्य आतृंव्यो भवति॥ (१८)

प्राजापत्याः सौंऽष्टादंश च॥———[६]

ऋताषाङ्गतथामाऽग्निर्गन्थवस्तस्यौषंथयोऽपस्रस् ऊर्जो नाम् स इदं ब्रह्मं क्षत्रम्यांतु ता इदं ब्रह्मं क्षत्रम्यांन्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहां स॰िहतो विश्वसामा सूर्यो गन्धवस्तस्य मरींचयोऽपस्रसं आयुवंः सुषुम्नः सूर्यरिष्मश्चन्द्रमां गन्धवस्तस्य नक्षत्राण्यपस्रसो बेकुरयो भुज्यः सुंपूर्णो यज्ञो गन्धवस्तस्य दक्षिणा अपस्रसः स्तवाः प्रजापंतिर्विश्वकर्मा मनः (१९)

गुन्धर्वस्तस्यंर्छ्सामान्यंप्रस्तरसो वह्नंय इषि्रो विश्वव्यंचा वातो गन्धर्वस्तस्यापौँऽप्रस्तरसो मुदा भुवनस्य पते यस्यं त उपिरं गृहा इह चं। स नो रास्वाज्यांनि र रायस्पोष र सुवीर्य र संवथ्सरीणा र्रं स्वस्तिम्। पुरमेष्ठाधिपतिर्मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य विश्वंमप्रस्तरसो भुवंः सुक्षितिः सुभूतिर्भद्रकृथ्सुवंवान्युर्जन्यो गन्ध्वंस्तस्यं विद्युतौँऽप्रसुरसो रुचो दूरेहेतिरमृड्यः (२०) मृत्युर्गन्धर्वस्तस्यं प्रजा अंफ्सरसों भीरुवश्चार्रः कृपणकाशी कामों गन्धर्वस्तस्याधयौं-ऽफ्सरसंः शोचयंन्तीर्नाम् स इदं ब्रह्मं क्षत्रम्पांतु ता इदं ब्रह्मं क्षत्रम्पांन्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहा स नो भुवनस्य पते यस्यं त उपिरं गृहा इह चं। उरु ब्रह्मं क्षत्राय मिह शर्मं यच्छ॥ (२१)

मनोंऽमृडयः षट्वंत्वारि॰शच॥=

[*v*]

राष्ट्रकांमाय होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रेणै्वास्मैं राष्ट्रमवं रुन्द्धे राष्ट्रमेव भंवत्यात्मनें होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रं प्रजा राष्ट्रम्पशवों राष्ट्रं यच्छ्रेष्ठो भवंति राष्ट्रेणै्व राष्ट्रमवं रुन्द्धे विसेष्ठः समानानां भवित ग्रामंकामाय होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रं संजाता राष्ट्रेणै्वास्मै राष्ट्रं संजातानवं रुन्द्धे ग्रामी (२२)

एव भंवत्यिधेदेवंने जुहोत्यिधेदेवंन एवास्मैं सजातानवं रुन्ध्वे त एंनुमवंरुद्धा उपं तिष्ठन्ते रथमुख ओर्जस्कामस्य होत्व्यां ओजो वै राष्ट्रभृत ओजो रथ ओर्जसैवास्मा ओजोऽवं रुन्द्व ओज्स्व्येव भंवित यो राष्ट्रादपंभृतः स्यात्तस्मैं होत्व्यां यावंन्तोऽस्य रथाः स्युस्तान्ब्र्याद्युङ्ग्वितिं राष्ट्रमेवास्मैं युनिक्त (२३)

आहुंतयो वा एतस्याक्रृंसा यस्यं राष्ट्रं न कल्पंते स्वर्थस्य दक्षिणं चुकम्प्रवृद्धं नाडीम्भि जुंहुयादाहुंतीरेवास्यं कल्पयित ता अस्य कल्पंमाना राष्ट्रमनुं कल्पते सङ्ग्रामे संयंत्ते होत्व्यां राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतों राष्ट्रे खलु वा एते व्यायंच्छन्ते ये सङ्ग्रम॰ संयन्ति यस्य पूर्वस्य जुह्वंति स एव भविति जयंति तं सङ्गमं मान्धुक इध्मः (२४)

भ्वत्यङ्गारा एव प्रतिवेष्टंमाना अमित्राणामस्य सेनां प्रति वेष्टयन्ति य उन्माद्येत्तस्मैं होत्व्यां गन्धर्वाफ्स्रसो् वा एतमुन्मादयन्ति य उन्माद्यंत्येते खलु वै गंन्धर्वाफ्स्रसो् यद्राष्ट्रभृत्स्तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहेति जुहोति तेनैवैनांञ्छमयति नैयंग्रोध् औद्ंम्बर् आर्थत्थः प्राक्ष इती्ध्मो भवत्येते वै गंन्धर्वाफ्स्रसां गृहाः स्व एवैनान् (२५)

आयतंने शमयत्यभिचरंता प्रतिलोम होत्व्याः प्राणानेवास्यं प्रतीचः प्रतिं यौति तं ततो येन केनं च स्तृणुते स्वकृत इरिंणे जुहोति प्रदरे वैतद्वा अस्ये निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋतिगृहीत एवैनं निर्ऋत्या ग्राहयित यद्वाचः क्रूरन्तेन वर्षद्वरोति वाच एवैनं क्रूरेण प्र वृंश्चति ताजगार्तिमार्च्छति यस्यं कामयेतान्नाद्यम् (२६) आ देदीयेति तस्यं स्भायांमुत्तानो निपद्य भुवंनस्य पत् इति तृणांनि सं गृह्णीयात्प्रजापंतिर्वे भुवंनस्य पतिः प्रजापंतिनैवास्यात्राद्यमा देत्त इदमहम्मुष्यांमुष्यायणस्यात्राद्यर् हरामीत्यांहात्राद्यंमेवास्यं हरति षङ्किर्हंरति षङ्घा ऋतवंः प्रजापंतिनैवास्यात्राद्यंमादायुर्तवौऽस्मा अनु प्र यंच्छन्ति (२७)

यो ज्येष्ठबंन्युरपंभूतः स्यात्तः स्थलेऽव्साय्यं ब्रह्मौद्नं चतुःशरावम्प्रका तस्मै होत्व्यां वर्ष्म् वै राष्ट्रभृतो वर्ष्म् स्थलं वर्ष्मणैवैनं वर्ष्मं समानानां गमयित् चतुःशरावो भविति दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति क्षीरे भवित् रुचमेवास्मिन्दधात्युद्धरित शृत्त्वायं सूर्पिष्वांन्भविति मेध्यत्वायं चुत्वारं आर्षेयाः प्राश्नंन्ति दिशामेव ज्योतिषि जुहोति॥ (२८)

ग्रामी युंनक्तीध्मः स्व एवैनांनुत्राद्यं यच्छुन्त्येकाुत्रपंश्चाशचं॥————[८]

देविंका निर्विपत्प्रजाकांमुश्छन्दार्श्सि वै देविंकाुश्छन्दार्श्सीव खलु वै प्रजाश्छन्दोभिरेवास्मै प्रजाः प्र जंनयित प्रथमं धातारं करोति मिथुनी एव तेनं करोत्यन्वेवास्मा अनुमितिर्मन्यते राते राका प्र सिनीवाली जंनयित प्रजास्वेव प्रजांतासु कुह्वां वार्चं दधात्येता एव निर्विपत्पशुकांमुश्छन्दार्शसे वै देविंकाुश्छन्दार्शसे (२९)

ड्व खलु वै प्शव्श्छन्दोंभिरेवास्मैं पुश्न्म्र जनयित प्रथमं धातारं करोति प्रैव तेनं वापयत्यन्वेवास्मा अनुंमतिर्मन्यते राते राका प्र सिनीवाली जनयित पुश्न्वेव प्रजातान्कुह्वां प्रतिं ष्ठापयत्येता एव निर्वेपद्भामंकामृश्छन्दार्श्सि वै देविंकाृश्छन्दार्श्सीव खलु वै ग्रामृश्छन्दोंभिरेवास्मै ग्रामम् (३०)

अवं रुन्द्वे मध्यतो धातारं करोति मध्यत एवैनं ग्रामंस्य दधात्येता एव निर्वपृष्ट्योगांमयावी छन्दारंसि वै देविकाश्छन्दारंसि खलु वा एतम्भि मंन्यन्ते यस्य ज्योगामयंति छन्दोंभिरेवैनंमगृदं करोति मध्यतो धातारं करोति मध्यतो वा एतस्याक्रृप्तं यस्य ज्योगामयंति मध्यत एवास्य तेनं कल्पयत्येता एव निः (३१)

व्पेद्यं युज्ञो नोपनमेच्छन्दार्रस् वै देविकाश्छन्दार्रस् खलु वा एतं नोपं नमन्ति यं युज्ञो नोपनमंति प्रथमं धातारं करोति मुखत एवास्मै छन्दार्रस दधात्युपैनं युज्ञो नंमत्येता एव निर्वपेदीजानश्छन्दार्रस् वै देविका यातयांमानीव खलु वा एतस्य छन्दार्रस् य ईजान उंत्तमं धातारं करोति (३२)

उपिरेष्टादेवास्मै छन्दाङ्स्ययांतयामान्यवं रुन्द्ध उपैनमुत्तरो यज्ञो नंमत्येता एव निर्विपेद्यम्मेधा नोपनमेच्छन्दार्शस् वै देविकाश्छन्दार्शस् खलु वा एतं नोपं नमन्ति यम्मेधा नोपनमंति प्रथमं धातारं करोति मुख्त एवास्मै छन्दार्शसे दधात्युपैनम्मेधा नंमत्येता एव निर्वेपेत् (३३)

रुक्कांमुश्छन्दार्शस् वै देविंकाुश्छन्दार्शसीव् खलु वै रुक्छन्दोंभिरेवास्मिन्नुचं दधाति क्षीरे भंवन्ति रुचंमेवास्मिन्दधित मध्यतो धातारं करोति मध्यत एवैनर्श रुचो दंधाति गायत्री वा अनुंमतिस्त्रिष्टुग्राका जगंती सिनीवाल्यंनुष्टुप्कुहूर्धाता वंषद्वारः पूर्वपक्षो राकापंरपक्षः कुहूरंमावास्यां सिनीवाली पौर्णमास्यनुंमतिश्चन्द्रमां धाताऽष्टो (३४)

वसंबोऽष्टाक्षंरा गायुत्र्येकांदश रुद्रा एकांदशाक्षरा त्रिष्टुब्द्वादंशादित्या द्वादंशाक्षरा जगंती प्रजापंतिरनुष्टुब्याता वंषद्वार एतद्वे देविंकाः सर्वाणि च छन्दार्श्स सर्वांश्च देवतां वषद्वारस्ता यथ्सह सर्वा निर्वपंदीश्वरा एंनम्प्रदहो द्वे प्रंथमे निरुप्यं धातुस्तृतीयं निर्वपंत्तथों एवोत्तरे निर्वपंत्तथें न प्र दहन्त्यथो यस्मै कामांय निरुप्यन्ते तमेवाभिरुपांप्रोति॥ (३५)

पृशुकांमुश्छन्दार्रस् वै देविकाृश्छन्दार्रस् ग्रामंङ्कल्पयत्येता एव निरुत्तमन्धातारं करोति मेधा नमत्येता एव निर्वपेदष्टौ दहन्ति नवं च (९) देविकाः प्रजाकामो मिथुनी पशुकाम॥_[९]

वास्तौष्यते प्रतिं जानीह्यस्मान्थ्स्वांवेशो अनमीवो भंवा नः। यत्त्वेमंहे प्रति तन्नों जुषस्व शं नं एि द्विपदे शं चतुंष्पदे। वास्तौष्पते शुग्मयां सुर्सदां ते सक्षीमिहें रुण्वयां गातुमत्यां। आवः क्षेमं उत योगे वर्रं नो यूयम्पांत स्वस्तिभिः सदां नः। यथ्सायम्प्रांतरिग्नहोत्रं जुहोत्यांहुतीष्टका एव ता उपं धत्ते (३६)

रुद्रः खलु वै वाँस्तोष्पृतिर्यदहुंत्वा वास्तोष्पृतीयंम्प्रयायाद्रुद्र एंनम्भूत्वाग्निरंनूत्थायं हन्याद्वास्तोष्पृतीयं जुहोति भागुधेयेंनैवैन र् शमयति नार्तिमार्च्छति यजंमानो यद्युक्ते र्जुंहुयाद्यथा प्रयांते वास्तावाहुंतिं जुहोतिं ताहगेव तद्यदयुंक्ते जुहुयाद्यथा क्षेम् आहुंतिं जुहोतिं ताहगेव तदहुंतमस्य वास्तोष्पतीय स्थात् (३८)

दक्षिणो युक्तो भवंति स्व्योऽयुक्तोऽर्थं वास्तोष्प्तीर्यं जुहोत्युभयंमेवाक्रपंरिवर्गमेवैन र् शमयति यदेक्या जुहुयाद्दंविहोमं कुंर्यात्पुरोनुवाक्यांमनूच्यं याज्यंया जुहोति सदेवत्वाय् यद्भुत आंद्ध्याद्भुद्रं गृहान्-वारोहयेद्यदंवक्षाणा्न्यसम्प्रक्षाप्य प्रयायाद्यथां यज्ञवेश्वसं वादहंनं वा ताद्दगेव तद्यं ते योनिर्ऋत्विय इत्यरण्योः सुमारोहयति (३९)

पुष वा अग्नेर्योनिः स्व पुवैनं योनौं समारोहयत्यथो खल्वांहुर्यद्रण्यौः समार्रूहे नश्येदुदंस्याग्निः सीदेत्पुनराधेर्यः स्यादिति या ते अग्ने यज्ञियां तुनूस्तयेह्या रोहेत्यात्मन्थ्समारोहयते यजमानो वा अग्नेर्योनिः स्वायांमेवैनं योन्यार्थं समारोहयते॥ (४०)

धृत्तेऽर्वाचीन ई स्याथ्समारोहयित पश्चंचत्वारि शच॥-----[१०]

त्वमंग्ने बृहद्वयो दर्धांसि देव दा्शुषें। कृविर्गृहपंतिर्युवां॥ हव्यवाड्ग्निर्जरः पिता नों विभुर्विभावां सुदर्शोको अस्मे। सुगार्ह्पत्याः समिषों दिदीह्यस्मद्रियख्सिम्मेमीहि श्रवारेसि। त्वं चं सोम नो वशों जीवातुं न मंरामहे। प्रियस्तौत्रो वनस्पतिः। ब्रह्मा देवानां पद्वीः कंवीनामृषिर्विप्राणाम्महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृंधाणा्ड् स्विधितिर्वनांना्ड् सोमेः (४१)

पुवित्रमत्येति रेभन्नं। आ विश्वदेवु सत्पंति स्कृतेर्द्या वृंणीमहे। सृत्यसंव स् सिवृतारम्॥ आ सृत्येन रजंसा वर्तमानो निवेशयंत्रमृतम्मर्त्यं च। हिर्ण्ययेन सिवृता रथेना देवो याति भुवंना विपश्यन्नं। यथां नो अदितिः कर्त्यश्चे नृभ्यो यथा गर्वे। यथां तोकायं रुद्रियम्। मा नंस्तोके तनये मा न आयुंषि मा नो गोषु मा (४२)

नो अश्वेषु रीरिषः। बीरान्मा नो रुद्र भामितो वंधीर्ह्विष्मन्तो नर्मसा विधेम ते। उद्ग्रुतो न वयो रक्षमाणा वावंदतो अभ्रियंस्येव घोषाः। गिरिभ्रजो नोर्मयो मदंन्तो बृह्स्पतिम्भ्यंका अनावन्न। हुर्सैरिव सर्खिभिर्वावंदद्भिरश्मन्मयानि नहंना व्यस्यन्नं। बृह्स्पतिरिभे कनिकद्गा उत प्रास्तौदुर्च विद्वार अंगायत्। एन्द्रं सान्सिर र्यिम् (४३)

स्जित्वांन सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर। प्र संसाहिषे पुरुहूत् शत्रू अर्थष्ठंस्ते शुष्मं इह रातिरंस्तु। इन्द्रा भेर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूंनामसि रेवतींनाम्। त्व सुतस्यं पीतयें सद्यो वृद्धो अंजायथाः। इन्द्र ज्येष्ठ्यांय सुक्रतो। भुवस्त्विमन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सर्वनेषु युज्ञियंः। भुवो नृङ्थ्यौत्रो विश्वंस्मिन्भरे ज्येष्ठंश्च मर्त्रः (४४)

विश्वचर्षणे। मित्रस्यं चर्षणीधृतः श्रवों देवस्यं सान्सिम्। सत्यं चित्रश्रंवस्तमम्। मित्रो जनान् यातयित प्रजानिन्मत्रो दांधार पृथिवीमुत द्याम्। मित्रः कृष्टीरिनिमिषाभि चंष्टे सत्यायं हृव्यं घृतवंद्विधेम। प्र स मित्रु मर्तो अस्तु प्रयंस्वान् यस्तं आदित्य शिक्षंति व्रतेनं। न हंन्यते न जींयते त्वोतो नैनमश्हों अश्लोत्यन्तितो न दूरात्। यत् (४५)

चिद्धि ते विशों यथा प्र देव वरुण ब्रुतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि। यत्किं चेदं वंरुण् दैव्ये जर्नेऽभिद्रोहम्मंनुष्यांश्चरांमसि। अचिती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनंसो देव रीरिषः। कित्वासो यद्विरिपुर्न दीवि यद्वां घा सत्यमुत यन्न विद्या। सर्वा ता विष्यं शिथिरेवं देवाथां ते स्याम वरुण प्रियासंः॥ (४६)

सोमो गोषु मा र्यिं मन्रो यर्च्छिथिरा सप्त चं॥-----[११]

पूर्णर्षयोऽग्निना ये देवाः सूर्यो मा सन्त्वां नह्यामि वषद्भारः स खंदिर उपयामगृंहीतोऽसि यां वै त्वे ऋतुम्प्र देवमेकांदश॥[१२] पूर्णा संहजान्तवाँग्ने प्राणेरेव षद्गिर्श्शत्॥36॥ पूर्णा सन्ति देवाः॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां तृतीयकाण्डे पश्चमः प्रश्नः॥

पूर्णा पृश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिंगाय। तस्याँ देवा अधि संवसन्त उत्तमे नाकं इह मादयन्ताम्। यत्ते देवा अद्धुर्भागुधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा। सा नौ यज्ञम्पिपृहि विश्ववारे र्यिं नौ धेहि सुभगे सुवीरम्। निवेशनी संगमनी वसूनां विश्वां रूपाणि वसून्यावेशयन्ती। सहस्रुपोष स्मुभगा रर्गणा सा न आ गुन्वर्चसा (१)

संविदाना। अग्नीषोमो प्रथमो वीर्येण वसूँत्रुद्रानांदित्यानिह जिन्वतम्। माध्यश् हि पौर्णमासं जुषेथां ब्रह्मणा वृद्धौ सुंकृतेनं सातावथास्मभ्यश् सहवीराश र्यिं नि यंच्छतम्। आदित्याश्चाङ्गिरसश्चाग्नीनादंधत् ते दंर्शपूर्णमासौ प्रैफ्सन्तेषामङ्गिरसां निरुप्तश् ह्विरासीदर्थादित्या एतौ होमावपश्यन्तावंजुहवुस्ततो वै ते दंर्शपूर्णमासौ (२) पूर्व आलंभन्त दर्शपूर्णमासावालभंमान एतौ होमौं पुरस्तां ज्ञुहुयाथ्साक्षादेव दंर्शपूर्णमासावा लंभते ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वे दंर्शपूर्णमासावालंभेत य एंनयोरनुलोमं चं प्रतिलोमं चं विद्यादित्यंमावास्यांया ऊर्ध्वं तदंनुलोमम्पौर्णमास्यै प्रतीचीनं तत्प्रतिलोमं यत्पौर्णमासीम्पूर्वांमालभेत प्रतिलोममेनावा लंभेतामुमंपृक्षीयंमाणमन्वपं (३)

क्षीयेत सार्स्वतौ होमौ पुरस्तां श्रुह्यादमावास्यां वे सरंस्वत्यनुलोममेवेनावा लंभतेऽमुमाप्यायमानमन्वा प्यांयत आग्नावेष्ण्वमेकांदशकपालम्पुरस्तात्रिवंपेथ्सरंस्वत्ये चरु सरंस्वते द्वादंशकपालं यदांग्रेयो भवंत्यग्निवें यंज्ञमुखं यंज्ञमुखमेविद्धंम्पुरस्तां द्वते यद्वैष्ण्वा भवंति यज्ञो वे विष्णुर्यज्ञमेवारभ्य प्र तंनुते सरंस्वत्ये चरुर्भवित सरंस्वते द्वादंशकपालोऽमावास्यां वे सरंस्वती पूर्णमां सः सरंस्वान्तावेव साक्षादा रंभत ऋश्नोत्यांभ्यां द्वादंशकपालः सरंस्वते भवित मिथुन्त्वाय प्रजांत्ये मिथुनौ गावौ दक्षिणा समृद्धौ॥ (४)

वर्चसा वै ते दंर्शपूर्णमासावपं तनुते सरंस्वत्यै पश्चंवि शतिश्च॥————[१]

ऋषयो वा इन्द्रंम्प्रत्यक्षं नापंश्यन्तं विसेष्ठः प्रत्यक्षंम्पश्यथ्भौंऽब्रवीद्वाह्मणं ते वक्ष्याम् यथा त्वत्पुरोहिताः प्रजाः प्रंजनिष्यन्तेऽथ मेतंरेभ्य ऋषिंभ्यो मा प्र वोच इति तस्मां एतान्थ्स्तोमंभागानब्रवीत्ततो विसेष्ठपुरोहिताः प्रजाः प्राजांयन्त तस्माद्वासिष्ठो ब्रह्मा कार्यः प्रेव जांयते रुश्मिरसि क्षयांय त्वा क्षयं जिन्वेति (५)

आहु देवा वै क्षयों देवेभ्यं एव यज्ञम्प्राहु प्रेतिरिस् धर्माय त्वा धर्मं जिन्वेत्यांह मनुष्यां वै धर्मो मनुष्येभ्य एव यज्ञम्प्राहान्वितिरिस दिवे त्वा दिवें जिन्वेत्यांहैभ्य एव लोकेभ्यों यज्ञम्प्राहं विष्टुम्भोंऽसि वृष्टैं त्वा वृष्टिं जिन्वेत्यांहु वृष्टिंमेवावं (६)

रुन्द्धे प्रवास्यंनुवासीत्यांह मिथुनृत्वायोशिगंसि वसुंभ्यस्त्वा वसूँश्चिन्वेत्यांहाष्टौ वसंव एकांदश रुद्रा द्वादंशादित्या एतावंन्तो वै देवास्तेभ्यं एव यज्ञम्प्राहौजोंऽसि पितृभ्यंस्त्वा पितृश्चिन्वेत्यांह देवानेव पितृननु सं तनोति तन्तुंरसि प्रजाभ्यंस्त्वा प्रजा जिन्व (७)

इत्यांह पितृनेव प्रजा अनु सं तंनोति पृतनाषाडंसि पृशुभ्यंस्त्वा पृशूञ्चिन्वेत्यांह प्रजा एव पृशूननु सं तंनोति रेवद्स्योषंधीभ्यस्त्वौषंधीर्जिन्वेत्याहौषंधीष्वेव पृशून्प्रतिं ष्ठापयत्यभिजिदंसि युक्तग्रावेन्द्रांय त्वेन्द्रं जिन्वेत्यांहाभिजित्या अधिपतिरसि प्राणायं त्वा प्राणम् (८) पश्चमः प्रश्नः (काण्डम् ३)

जिन्वेत्यांह प्रजास्वेव प्राणान्दंधाति त्रिवृदंसि प्रवृद्सीत्यांह मिथुनृत्वायं स॰रोहोंऽसि नीरोहोंऽसीत्यांह प्रजात्ये वसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिर्सीत्यांह प्रतिष्ठित्ये॥ (९)

जिन्वेत्यवं प्रजा जिन्व प्राणित्रिष्शचं॥———[२]

अग्निनां देवेन पृतंना जयामि गायुत्रेण छन्दंसा त्रिवृता स्तोमेन रथन्तरेण साम्नां वषद्ग्रेण वर्षेण पूर्वजान्भ्रातृंव्यानधंरान्यादयाम्यवैनान्बाधे प्रत्येनान्नुदेऽस्मिन्क्षयेऽस्मिन्भूमिलोके यौंऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मो विष्णोः क्रमेणात्येनान्क्रामामीन्द्रेण देवेन पृतंना जयामि त्रैष्ट्रंभेन छन्दंसा पश्चद्शेन स्तोमेन बृह्ता साम्नां वषद्ग्रोरेण वर्षेण (१०)

स्हजान् विश्वेंभिर्देविभिः पृतंना जयाम् जागंतेन् छन्दंसा सप्तद्शेन् स्तोमेन वामदेव्येन् साम्नां वषद्कारेण् वर्ज्ञेणापर्जानिन्द्रेण स्युजो वयः सांस्ह्यामं पृतन्यतः। घ्रन्तो वृत्राण्यंप्रति। यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासं यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वंचस्वी भूयासं यत्ते अग्ने हर्स्तेनाहः हर्रस्वी भूयासम्॥ (११)

बृह्ता साम्नां वषद्भारेण वज्रेण षद्धंत्वारिश्शच॥———[३]

ये देवा यंज्ञहनों यज्ञमुषंः पृथिव्यामध्यासंते। अग्निर्मा तेभ्यों रक्षतु गच्छेंम सुकृतों वयम्। आगंन्म मित्रावरुणा वरेण्या रात्रींणाम्भागो युवयोयों अस्ति। नार्क गृह्णानाः सुंकृतस्यं लोके तृतीयें पृष्ठे अधि रोचने दिवः। ये देवा यंज्ञहनों यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यासंते। वायुर्मा तेभ्यों रक्षतु गच्छेंम सुकृतों व्यम्। यास्ते रात्रीः सवितः (१२)

देवयानीरन्त्रा द्यावांपृथिवी वियन्ति। गृहैश्च सर्वैः प्रजया न्वग्रे सुवो रुहांणास्तरता रजारंसि। ये देवा यंज्ञहनों यज्ञमुषी दिव्यध्यासंते। सूर्यो मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेंम सुकृतों व्यम्। येनेन्द्रांय समर्भरः पयाईं स्युत्तमेनं हृविषां जातवेदः। तेनांग्रे त्वमुत वंधयेम र संजाताना है श्रेष्ठम् आ धेंह्येनम्। यज्ञहनो वै देवा यंज्ञमुषंः (१३)

सन्ति त पृषु लोकेष्वांसत आददांना विमश्नाना यो ददांति यो यजंते तस्यं। ये देवा यंज्ञहनंः पृथिव्यामध्यासंते ये अन्तरिक्षे ये दिवीत्यांहेमानेव लोकाइस्तीत्वां सगृहः सपशः सुवृगं लोकमेत्यप् वै सोमेनेजानाद्देवतांश्च यज्ञश्चं कामन्त्याग्नेयं पश्चंकपालमुदवसानीयं निर्विपेदिग्निः सर्वा देवतांः (१४)

पाङ्को युज्ञो देवता श्रेव युज्ञं चार्व रुन्द्धे गायुत्रो वा अग्निर्गायुत्रछंन्दास्तं छन्दंसा

व्यर्धयित् यत्पश्चंकपालं क्रोत्यृष्टाकंपालः कार्यौं ऽष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रौं ऽग्निर्गायत्रछंन्दाः स्वेनैवेनं छन्दंसा समर्धयित पुङ्ग्यौं याज्यानुवाक्यें भवतः पाङ्कों यज्ञस्तेनैव यज्ञान्नेतिं॥ (१५)

स्वितर्देवा यंज्ञमुषः सर्वा देवतास्त्रिचंत्वारि १शच॥-----[४]

सूर्यो मा देवो देवेभ्यंः पातु वायुर्न्तरिक्षाद्यजंमानोऽग्निर्मा पातु चक्षुंषः। सक्ष् शूष् सवित्विश्वंचर्षण एतेभिः सोम् नामभिविधेम ते तेभिः सोम् नामभिविधेम ते। अहम्परस्तादहम्वस्तादहं ज्योतिषा वि तमो ववार। यद्न्तरिक्षं तद्ं मे पिताभूदहर सूर्यमुभ्यतो ददर्शाहम्भूयासमुत्तमः संमानानाम् (१६)

आ संमुद्रादाऽन्तिरिक्षात्मृजापंतिरुद्धिं च्यांवयातीन्द्रः प्र स्नौतु मुरुतों वर्षयुन्तून्नंभ्यय पृथिवीिम्भिन्द्धीदं दिव्यं नर्भः। उद्भो दिव्यस्यं नो देहीशानो वि सृंजा दितिम्। पृशवो वा एते यदांदित्य एष रुद्रो यद्ग्रिरोषंधीः प्रास्याग्नावांदित्यं जुंहोति रुद्रादेव पृशूनन्तर्दधात्यथो ओषंधीच्वेव पृशून् (१७)

प्रति ष्ठापयित कृविर्य्ज्ञस्य वि तंनोति पन्थां नार्कस्य पृष्ठे अधि रोचने दिवः। येनं हुव्यं वहंिसि यासि दूत इतः प्रचेता अमुतः सनीयान्। यास्ते विश्वाः सिमधः सन्त्यंग्ने याः पृथिव्याम्बर्हिषि सूर्ये याः। तास्ते गच्छन्त्वाहंितिं घृतस्यं देवायते यजमानाय शर्म। आशासानः सुवीर्यर्थं रायस्पोष्ड् स्विश्वयम्। बृह्स्पितिना राया स्वृगाकृतो मह्यं यजमानाय तिष्ठ॥ (१८)

स्मानानामोषंधीष्वेव पुशून्मह्यं यर्जमानायैकेश्च॥————[५]

सं त्वां नह्यामि पर्यसा घृतेन् सं त्वां नह्याम्यप ओषंधीभिः। सं त्वां नह्यामि प्रजयाहम् सा दींक्षिता संनवो वार्जमस्मे। प्रैतु ब्रह्मंणस्पत्नी वेदिं वर्णेन सीदत्। अथाहमनुकामिनी स्वे लोके विशा इह। सुप्रजसंस्त्वा वय सप्तिक्षेरपं सेदिम। अग्नें सपत्नदम्नंनमदंब्यासो अदाँभ्यम्। इमं वि ष्यामि वर्रणस्य पाशम् (१९)

यमबंप्रीत सिवता सुकेतंः। धातुश्च योनौं सुकृतस्यं लोके स्योनं में सह पत्यां करोमि। प्रेह्युदेह्युतस्यं वामीरन्वग्निस्तेऽग्रंं नयत्वदितिर्मध्यं ददता र रुद्रावंसुष्टासि युवा नाम मां हिर्र्सीर्वसुभ्यो रुद्रेभ्यं आदित्यभ्यो विश्वभ्यो वो देवेभ्यः पन्नेजनीर्गृह्णामि युज्ञायं वः पन्नेजनीः सादयामि विश्वस्य ते विश्वावतो वृष्णियावतः (२०)

तवाँग्ने वामीरन् सन्दिश् विश्वा रेता रेसि धिषीयार्गं देवान् युज्ञो नि देवीर्देवेभ्यों यज्ञमंशिषन्नस्मिन्थ्युंन्वति यजंमान आशिषः स्वाहांकृताः समुद्रेष्ठा गंन्धर्वमा तिष्ठताऽनुं। वार्तस्य पत्मंत्रिड ईंडिताः॥ (२१)

पाशं वृष्णियावतस्त्रि १शर्च॥

वषद्वारो वै गांयत्रियै शिरों ऽच्छिनत्तस्यै रसः परांपतथ्स पृंथिवीम्प्राविंशथ्स खंदिरों-ऽभवद्यस्यं खादिरः स्रुवो भवंति छन्दंसामेव रसेनावं द्यति सरंसा अस्याहंतयो भवन्ति तृतीयंस्यामितो दिवि सोमं आसीत्तं गांयत्र्याहंरत्तस्यं पर्णमंच्छिद्यत तत्पर्णोऽभवत्तत्पर्णस्यं पर्णत्वं यस्यं पर्णमयीं जुहः (२२)

भवंति सौम्या अस्याहुंतयो भवन्ति जुषन्तैंऽस्य देवा आहुंतीर्देवा वै ब्रह्मंत्रवदन्त् तत्पूर्ण उपार्श्वणोथ्सुश्रवा वै नाम यस्यं पूर्णमयी जुहूर्भविति न पाप अक्षेक र् शृणोति ब्रह्म वै पुर्णो विण्मुरुतोऽत्रुं विण्मांरुतौऽश्वत्थो यस्यं पर्णुमयी जुहूर्भवृत्याश्वंत्थ्युपुभृद्वह्मंणैवात्रुमवं रुन्द्धेऽथो ब्रह्मं (२३)

एव विश्यध्यूंहति राष्ट्रं वै पुर्णो विडंश्वत्थो यत्पंर्णमयी जुहूर्भवृत्याश्वंत्थ्युपुभृद्राष्ट्रम्व विश्यध्यूहित प्रजापितर्वा अंजुहोथ्सा यत्राहुंतिः प्रत्यतिष्ठत्ततो विकेङ्कत उदंतिष्ठत्ततः प्रजा अंसृजत् यस्य वैकंङ्कती ध्रुवा भवंति प्रत्येवास्याहुंतयस्तिष्ठन्त्यथो प्रैव जांयत एतद्वे सुचा ५ रूपं यस्यैव ५ रूपाः सुचो भवंन्ति सर्वांण्येवैन ५ रूपाणि पशूनामुपं तिष्ठन्ते नास्यापंरूपमात्मञ्जायते॥ (२४)

जुहूरथो ब्रह्मं सुचा सप्तदंश च॥---

उपयामगृंहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा ज्योतिंष्मते ज्योतिंष्मन्तं गृह्णाम् दक्षांय दक्षवृधे रातं देवेभ्यौंऽग्निजिह्वेभ्यंस्त्वर्तायुभ्य इन्द्रंज्येष्ठेभ्यो वर्रुणराजभ्यो वार्तापिभ्यः पर्जन्यात्मभ्यो दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वापेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यांसतो जह्मप यो नीं-ऽरातीयति तं जीहि प्राणायं त्वापानायं त्वा व्यानायं त्वा सते त्वासंते त्वाज्यस्त्वौषंधीभ्यो विश्वैभ्यस्त्वा भूतेभ्यो यतंः प्रजा अक्खिंद्रा अजायन्त तस्मैं त्वा प्रजापंतये विभूदाव्रे ज्योतिंष्मते ज्योतिंष्मन्तं जुहोमि॥ (२५)

ओषंधीभ्यश्चतुंर्दश च॥

•[८]

यां वा अध्वर्युश्च यजंमानश्च देवतांमन्तिर्तस्तस्या आ वृंश्चेते प्राजापृत्यं देधिग्रहं गृंह्णीयात्प्रजापंतिः सर्वा देवतां देवतांभ्य एव नि ह्रंवाते ज्येष्ठो वा एष ग्रहांणां यस्यैष गृह्यते ज्येष्ठमेव गंच्छिति सर्वांसां वा एतद्देवतांनाः रूपं यदेष ग्रहो यस्यैष गृह्यते सर्वांण्येवैनः रूपाणि पश्नामुपं तिष्ठन्त उपयामगृंहीतः (२६)

असि प्रजापंतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामीत्यांह् ज्योतिरेवैन समानानां करोत्यग्निजिह्नेभ्यंस्त्वर्तायुभ्य इत्यांहैतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं पृवेन सर्वाभ्यो गृह्णात्यपेंन्द्र द्विषतो मन् इत्यांह् आतृंव्यापनुत्त्ये प्राणायं त्वापानाय त्वेत्यांह प्राणानेव यजंमाने दधाति तस्मैं त्वा प्रजापंतये विभूदाव्वे ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं जुहोमि (२७)

इत्यांह प्रजापंतिः सर्वा देवताः सर्वाभ्य पुवैनं देवतांभ्यो जुहोत्याज्यग्रहं गृंह्णीयात्तेजंस्कामस्य तेजो वा आज्यं तेज्स्ब्यंव भविति सोमग्रहं गृंह्णीयाद्वह्मवर्च्सकांमस्य ब्रह्मवर्च्सं वै सोमों ब्रह्मवर्च्स्यंव भविति दिधग्रहं गृंह्णीयात्पशुकांमस्योग्वे दध्यूर्क्यशवं कुर्जीवास्मा ऊर्जं पृशूनवं रुन्द्वे॥ (२८)

उपयामगृहीतो जुहोमि त्रिचंत्वारि शच॥

-[^]

त्वे ऋतुमिपं वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुनां सृजा समतं ऊ षु मधु मधुनाभि योधि। उपयामगृहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः प्रजापंतये त्वा। प्राणग्रहान्गृह्णात्येतावद्वा अस्ति यावंदेते ग्रहाः स्तोमाश्छन्दाः सि पृष्ठानि दिशो यावंदेवास्ति तत् (२९)

अवं रुन्द्धे ज्येष्ठा वा पृतान्त्राँह्मणाः पुरा विद्वामंकुन्तस्मात्तेषा् सर्वा दिशोऽभिजिंता अभूवन् यस्यैते गृह्मन्ते ज्यैष्ठमंमेव गंच्छत्यभि दिशों जयित पश्चं गृह्मन्ते पश्च दिशः सर्वांस्वेव दिक्ष्वृंध्रुवन्ति नवंनव गृह्मन्ते नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधित प्रायणीयें चोदयनीयें च गृह्मन्ते प्राणा वै प्राणप्रहाः (३०)

प्राणेरेव प्रयन्तिं प्राणेरुद्यन्ति दश्मेऽहंन्गृह्यन्ते प्राणा वै प्राणग्रहाः प्राणेभ्यः खलु वा एतत्प्रजा यन्ति यद्वामदेव्यं योनेश्चयवंते दश्मेऽहंन्वामदेव्यं योनेश्चयवते यद्दंश्मेऽहंन्गृह्यन्तैं प्राणेभ्यं एव तत्प्रजा न यन्ति॥ (३१)

तत्प्राणग्रहाः सप्तत्रि ५शच॥

प्र देवं देव्या धिया भरंता जातवेदसम्। ह्व्या नों वक्षदानुषक्। अयमुष्य प्र देवयुरहोतां यज्ञायं नीयते। रथो न योर्भीवृंतो घृणीवाश्चेतिते त्मनां। अयमृग्निरुं रुष्यत्यमृतांदिव जन्मंनः। सहंसश्चिथ्सहीयां देवो जीवातंवे कृतः। इडांयास्त्वा पदे वयं नाभां पृथिव्या अधि। जातंवेदो नि धीमहाग्ने ह्व्याय वोढंवे। (३२)

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तम्प्रथमः सींद् योनिम्ँ। कुलायिनं घृतवंन्तर सिवित्रे यज्ञं नंय यजंमानाय साधा सीदं होतः स्व उं लोके चिकित्वान्थ्सादयां यज्ञर सुंकृतस्य योनौँ। देवावीर्देवान् ह्विषां यजास्यग्नं बृहद्यजंमाने वयों धाः। नि होतां होतृषदंने विदानस्त्वेषो दीदिवार अंसदथ्सुदक्षः। अदंब्यव्रतप्रमित्विंसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः। त्वं दूतस्त्वम् (३३)

उ नः पुरस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता। अग्ने तोकस्यं नुस्तनें तुनूनामप्रयुच्छुन्दीद्यंद्वोधि गोपाः। अभि त्वां देव सवितरीशानां वार्याणाम्। सदावन्भागमीमहे। मही द्यौः पृथिवी चं न इमं युज्ञम्मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः। त्वामंग्ने पुष्कंरादध्यर्थर्वा निरमन्थत। मूर्जो विश्वंस्य वाघतः। तम् (३४)

त्वा दृध्यङ्कृषिः पुत्र ईधे अथंवणः। वृत्रहणं पुरन्द्रम्। तम् त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तंमम्। धनंज्य रणेरणे। उत ब्रुंवन्तु जन्तव उद्ग्निर्वृत्रहाजंनि। धनंज्यो रणेरणे। आ यर हस्ते न खादिन्र शिशुं जातं न बिभ्रंति। विशामग्नि स्वध्वरम्। प्र देवं देववीतये भरंता वसुवित्तंमम्। आ स्वे योनौ नि षीदत्। आ (३५)

जातं जातवेदिस प्रियः शिंशीतातिथिम्। स्योन आ गृहपंतिम्। अग्निनाऽग्निः सिमंध्यते किवर्गृहपंतिय्वां। हृव्यवाङ्कुह्वांस्यः। त्वः ह्यंग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्थ्यता। सखा सख्यां सिम्ध्यसें। तम्मंजियन्त सुक्रतुं पुरोयावांनमाजिषुं। स्वेषु क्षयेषु वाजिनम्ं। यक्तेनं यक्तमंयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यांसन्न। ते ह् नाकंम्मिहिमानंः सचन्ते यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः (३६)

वोढंवे दूतस्त्वन्तम्ं सीद्त्वा यत्रं चृत्वारिं च॥———[११]

युआन हुमामंगृभ्णं देवस्य सन्ते वि पार्जसा वसंवस्त्वा समास्त्वोध्वी अस्याकूर्तिं यदंग्रे यान्यग्रे यं युज्ञमेकादश॥11॥ युआनो वर्म च स्थ आदित्यास्त्वा भारती स्वार अहर

॥काण्डम् ४॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

युआनः प्रथमम्मनंस्तृत्वायं सिवृता थियः। अग्निं ज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अध्याभेरत्। युक्ताय मनंसा देवान्थ्सुवर्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सिवृता प्र सुंवित् तान्। युक्तेन मनंसा वयं देवस्यं सिवृतः स्व। सुवृगेयाय शक्त्यै। युअते मनं उत युंअते थियो विप्रा विप्रस्य बृह्तो विप्श्चितः। वि होत्रां दधे वयुन्।विदेक इत् (१)

मही देवस्यं सिवृतुः परिष्ठतिः। युजे वां ब्रह्मं पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकां यन्ति पृथ्येव सूराः। शृण्वन्ति विश्वे अमृतंस्य पुत्रा आ ये धामांनि दिव्यानि तस्थुः। यस्यं प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्यं मिहुमानमर्चतः। यः पार्थिवानि विम्मे स एतंशो रजार्रसि देवः संविता महित्वना। देवं सवितः प्र सुंव यज्ञम्प्र सुंव (२)

युज्ञपंतिम्भगाय दिव्यो गंन्ध्रवः। कृत्पूः केतं नः पुनात् वाचस्पतिर्वाचम् स्वदाति नः। इमं नो देव सवितर्य्ज्ञं प्र सुंव देवायुवर् सखिविदर् सत्राजितं धन्जितर् सुवर्जितम्। ऋचा स्तोम् समर्धय गायुत्रेणं रथन्त्रम्। बृहद्गायुत्रवर्तिन। देवस्यं त्वा सवितुः प्रस्वेऽिश्वनौर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तौभ्याम्गायुत्रेण् छन्दसाऽऽदंदेऽङ्गिर्स्वदिश्वरिस् नारिः (३)

असि पृथिव्याः स्थस्थांदग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वदा भंर त्रैष्टुंभेन त्वा छन्द्साऽऽदंदे-ऽङ्गिर्स्वद्वभ्रिरसि नारिरसि त्वयां वयः स्थस्थ आग्निः शंकेम् खनितुं पुरीष्यं जागतेन त्वा छन्द्साऽऽदंदेऽङ्गिर्स्वद्धस्तं आधायं सिवता बिभ्रदभ्रिः हिर्ण्ययीम्। तया ज्योतिरजस्त्रिमद्ग्निं खात्वी न आ भुरानुष्टुभेन त्वा छन्द्साऽऽदंदेऽङ्गिर्स्वत्॥

इद्युज्ञं प्र सुव् नारिरानुष्टुभेन त्वा छन्दंसा त्रीणि च॥————[१]

ड्मामंगृभ्णत्रश्नामृतस्य पूर्व आयुंषि विदर्थेषु कृव्या। तयां देवाः सुतमा बंभूवुर्ऋतस्य सामंन्थ्सरमारपंन्ती। प्रतूंतं वाजिन्ना द्रंव वरिष्ठामनुं संवतम्। दिवि ते जन्मं पर्मम्न्तरिक्षे नाभिः पृथिव्यामिष् योनिः। युआथार् रासंभं युवमस्मिन् यामें वृषण्वस्। अग्निम्भरंन्तमस्मयुम्। योगेयोगे त्वस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सर्खाय

इन्द्रंमूतयें। प्रतूर्वन्नं (५)

एह्मंबुकामुन्नशंस्ती रुद्रस्य गाणंपत्यान्मयोभूरेहिं। उर्वन्तरिक्षमन्विहि स्वस्तिगंव्यृतिरभंयानि कृण्वन्न। पूष्णा स्युजां सह। पृथिव्याः स्थस्थांद्ग्निम्पुंरीप्यंमङ्गिर्स्वदच्छैंह् ऽग्निम्पुंरीप्यंमङ्गिर्स्वद्वंरिष्यामोऽग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वद्वंरामः। अन्वग्निरुषसामग्रंमख्यदन्वहांनि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्यस्य (६)

पुरुत्रा चं र्श्मीननु द्यावांपृथिवी आ तंतान। आगत्यं वाज्यध्वंनः सर्वा मृधो वि धूंनुते। अग्निर स्थस्थे महुति चक्षुंषा नि चिंकीषते। आक्रम्यं वाजिन्पृथिवीमग्निमिंच्छ रुचा त्वम्। भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनांम् तं वयम्। द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी स्थस्थमात्मान्तरिक्षर समुद्रस्ते योनिः। विख्याय चक्षुंषा त्वम्भि तिष्ठ (७)

पृतन्यतः। उत्क्रांम महते सौभंगायास्मादास्थानाँद्विषणोदा वांजिन्न्। वय स्यांम सुमृतौ पृथिव्या अग्निं खंनिष्यन्तं उपस्थे अस्याः। उदंक्रमीद्रिविणोदा वाज्यवीकः स लोक स्सुकृतं पृथिव्याः। ततः खनेम सुप्रतींकमृग्नि सुवो रुहांणा अधि नाकं उत्तमे। अपो देवीरुपं सृज् मध्रमतीरयक्ष्मायं प्रजाभ्यः। तासा इस्थानादु विहत्तामोषंधयः सुपिप्पलाः। जिर्घार्मि (८)

अग्निम्मनंसा घृतेनं प्रतिक्ष्यन्तम्भुवंनानि विश्वां। पृथुं तिर्श्वा वयंसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नर्थं रम्सं विदानम्। आ त्वां जिधर्मि वचंसा घृतेनांरक्षसा मनंसा तञ्जंषस्व। मर्यश्रीः स्पृह्यद्वंणीं अग्निर्नाभिमृशें तनुवा जर्ह्हंषाणः। पिर् वाजंपितः क्विर्ग्निर्ह्व्या न्यंक्रमीत्। दध्द्रत्नांनि दाशुर्षे। पिरं त्वाऽग्ने पुरं व्यं विप्ररं सहस्य धीमिह। धृषद्वंणं दिवेदिवे भेतारंम्भङ्कुरावंतः। त्वमंग्ने द्युभिस्त्वमांशुश्वक्षणिस्त्वमृद्धस्त्वमश्मंनस्पिरं। त्वं वनैभ्यस्त्वमोषंधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥ (९)

प्रतूर्वन्थ्सूर्यस्य तिष्ठ जिघंर्मि भेतारं विष्शृतिश्चं॥-----[२]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंसवैंऽिश्वनौंबा्हुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां पृथिव्याः स्थस्थे-ऽग्निम्पुरीष्यंमिङ्गर्स्वत्खंनामि। ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीक्मजंस्रेण भानुना दीद्यांनम्। शिवं प्रजाभ्योऽहिर्श्सन्तं पृथिव्याः स्थस्थेऽग्निं पुरीष्यंमिङ्गर्स्वत्खंनामि। अपां पृष्ठमंसि सप्रथां उर्वग्निम्भेरिष्यदपंराविषष्ठम्। वर्धमानम्मह आ च पुष्कंरं दिवो मात्रया विर्णा

प्रंथस्व। शर्म च स्थः (१०)

वर्म च स्थो अच्छिंद्रे बहुले उभे। व्यचंस्वती सं वंसाथाम्भूर्तमृग्निम्पुंरीष्यम्। सं वंसाथा स्वविंदां समीची उरंसा त्मनां। अग्निम्न्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजंस्रमित्। पुरीष्यों उसि विश्वभंराः। अर्थवां त्वा प्रथमो निरंमन्थदग्ने। त्वामंग्ने पुष्कंरादध्यर्थर्वा निरंमन्थत। मूर्ग्नो विश्वस्य वाघतः। तमुं त्वा दध्यङ्काषिः पुत्र ई्रेथे (११)

अर्थर्वणः। वृत्रहणं पुरन्द्रम्। तमुं त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तंमम्। धृनंज्यर रणेरणे। सीदं होतः स्व उं लोके चिंकित्वान्थ्सादयां यज्ञर सुंकृतस्य योनौं। देवावीर्देवान् ह्विषां यजास्यग्ने बृहद्यजंमाने वयों धाः। नि होतां होतृषदंने विदानस्त्वेषो दींदिवार अंसदथ्सुदक्षः। अदंब्यव्रतप्रमित्वंसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिंजिह्वो अग्निः। सर सीदस्व महार असि शोचंस्व (१२)

देववीतंमः। वि धूममंग्ने अरुषिम्मियेध्य सृज प्रंशस्त दर्शतम्। जिनेष्वा हि जेन्यो अग्रे अहार् हितो हितेष्वंरुषो वनेषु। दमेदमे सप्त रत्ना दर्धानोऽग्निरहोता नि षंसादा यजीयान्॥ (१३)

स्थु ईधे शोचंस्व सप्तवि शितिश्च॥

—[3]

सं ते वायुर्मात्तिरश्वां दधातूत्तानायै हृदंयं यिद्विलिष्टम्। देवानां यश्चरंति प्राणर्थेन तस्मैं च देवि वर्षंडस्तु तुभ्यम्। सुजांतो ज्योतिषा सह शर्म वर्रूथमासंदः सुवंः। वासो अग्ने विश्वरूप् सं व्यंयस्व विभावसो। उदं तिष्ठ स्वध्वरावां नो देव्या कृपा। दृशे चं भासा बृह्ता सुंशुक्रनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः। (१४)

ऊर्ध्व ऊ षु णं ऊतये तिष्ठां देवो न संविता। ऊर्ध्वो वाजंस्य सिनंता यदिक्षिभिवाधिद्विविह्वयांमहे। स जातो गर्भो असि रोदंस्योरग्ने चारुर्विभृंत ओषंधीषु। चित्रः शिशुः पिर तमा एस्यक्तः प्र मातृभ्यो अधि किनें कदद्गाः। स्थिरो भंव वीड्वं अध्यक्षिं वाज्यंवत्र। पृथुर्भव सुषद्स्त्वमृग्नेः पुरीष्वाहंनः। शिवो भंव (१५)

प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमंङ्गिरः। मा द्यावापृथिवी अभि शूंशुचो मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन्। प्रैतुं वाजी कनिऋदुन्नानंदद्रासंभः पत्वां। भरंत्रुग्निम्पुंरीष्यं मा पाद्यायुंषः पुरा। रासंभो वां कनिऋदथ्सुयुंक्तो वृषणा रथें। स वांमुग्निम्पुंरीष्यंमाशुर्दूतो वंहादितः। वृषाग्निं वृंषणम्भरंत्रुपां

गर्भ र समुद्रियम्। अग्रु आ यांहि (१६)

वीतयं ऋतर सृत्यम्। ओषंधयः प्रतिं गृह्णीताग्निमेतर शिवमायन्तंमुभ्यत्रं युष्मान्। व्यस्यन्विश्वा अमंतीररातीर्निषीदंत्रो अपं दुर्मृतिर हंनत्। ओषंधयः प्रतिं मोदध्वमेनम्पुष्पांवतीः सुपिप्पुलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रुवर सुधस्थुमासंदत्॥ (१७)

सुश्कितिभेंः शिवो भेव याहि षद्गिर्शशच॥———[४]

वि पाजंसा पृथुना शोशुंचानो बाधंस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः। सुशर्मणो बृह्तः शर्मणि स्यामुग्नेर्ह स् सुहवंस्य प्रणीतौ। आपो हि ष्ठा मंयोभुवस्ता नं ऊर्जे दंधातन। महे रणांय चक्षसे। यो वंः शिवतंमो रसस्तस्यं भाजयतेह नंः। उशतीरिंव मातरंः। तस्मा अर्र गमाम वो यस्य क्षयांय जिन्वंथ। आपो जुनयंथा च नः। मित्रः (१८)

स्रमुज्यं पृथिवीम्भूमिं च ज्योतिषा स्ह। सुजांतं जातवेदसमृग्निं वैश्वान्रं विभुम्। अयुक्ष्मायं त्वा सर सृंजामि प्रजाभ्यः। विश्वे त्वा देवा वैश्वान्राः सर सृंजन्त्वानृष्टभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वत्। रुद्राः सम्भृत्यं पृथिवीम्बृहञ्च्योतिः समीधिरे। तेषां भान्रजम् इच्छुको देवेषुं रोचते। सरसृष्टां वसुंभी रुद्रैधीरैंः कर्मण्याम्मृदम्। हस्ताभ्याम्मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली करोत् (१९)

ताम्। सिनीवाली सुंकपूर्वा सुंकुरीरा स्वौप्शा। सा तुभ्यंमदिते मह् ओखां दंधातु हस्तंयोः। उखां कंरोतु शक्त्यां बाहुभ्यामदितिर्धिया। माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निम्बिंभर्तु गर्भ आ। मुखस्य शिरोऽसि यज्ञस्यं पुदे स्थंः। वसंवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण् छन्दंसाङ्गिर्स्वत्पृथिव्यंसि रुद्रास्त्वां कृण्वन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वदन्तरिक्षमसि (२०)

आदित्यास्त्वां कृण्वन्तु जागंतेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्वौरंसि विश्वें त्वा देवा वैश्वान्राः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्विद्दशोऽिस ध्रुवािसं धारया मियं प्रजा र रायस्पोषं गौपत्य र सुवीर्य र सजातान् यजमानायादित्ये रास्नास्यदितिस्ते बिलं गृह्णातु पाङ्केन् छन्दंसाङ्गिर्स्वत्। कृत्वाय सा महीमुखाम्मृन्मयीं योनिम्ग्रयें। ताम्पुत्रेभ्यः सम्प्रायंच्छददितिः श्रुपयानिति॥ (२१)

मित्रः करोत्वन्तरिक्षमिस प्र चत्वारि च॥—————[५]

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायुत्रेण् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्रुद्रास्त्वां धूपयन्तु त्रैष्टुंभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वदांदित्यास्त्वां धूपयन्तु जागंतेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्विश्वें त्वा देवा वैश्वान्रा

धूंपयन्त्वानुंष्टुभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वदिन्द्रंस्त्वा धूपयत्वङ्गिर्स्वद्विष्णुंस्त्वा धूपयत्वङ्गिर्स्वद्वरुंणस्त्वा धूपयत्वङ्गिर्स्वदर्दितिस्त्वा देवी विश्वदेवयावती पृथिव्याः स्धस्थेऽङ्गिर्स्वत्खंनत्ववट देवानां त्वा पत्नीः (२२)

देवीर्विश्वदेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वद्घंतूखे धिषणांस्त्वा देवीर्विश्वदेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वद्भीन्धंतामुखे ग्रास्त्वां देवीर्विश्वदेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वच्छ्रंपयन्तूखे वर्क्तंत्रयो जनंयस्त्वा देवीर्विश्वदेंव्यावतीः पृथिव्याः स्घस्थैंऽङ्गिर्स्वत्पंचन्तूखे। मित्रैतामुखाम्पंचैषा मा भेदि। ए।तां ते परि ददाम्यभित्त्यै। अभीमाम् (२३)

मृहिना दिवंग्मित्रो बंभूव सप्रथाः। उत श्रवंसा पृथिवीम्। मित्रस्यं चर्षणी्धृतः श्रवी देवस्यं सान्सिम्। द्युम्नं चित्रश्रंवस्तमम्। देवस्त्वां सिवतोद्वंपत् सुपाणिः स्वंङ्कृरिः। सुबाहुरुत शक्त्याः। अपंद्यमाना पृथिव्याशा दिश् आ पृंण। उत्तिष्ठ बृह्ती भंवोध्वा तिष्ठ भ्रुवा त्वम्। वसंवस्त्वाच्छंन्दन्तु गायत्रेण् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्वुद्रास्त्वा च्छंन्दन्तु त्रेष्ट्रभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्विश्वं त्वा देवा वैश्वान्ररा आच्छंन्दन्त्वानुंष्ट्रभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वद्विश्वं त्वा देवा वैश्वान्ररा आच्छंन्दन्त्वानुंष्ट्रभेन् छन्दंसाङ्गिर्स्वत्॥ (२४)

पर्नीरिमार रुद्रास्त्वाच्छूं-दुन्त्वेकान्नविर्श्रातिश्चं॥______[६]

समाँस्त्वाग्न ऋतवों वर्धयन्तु संवथ्सरा ऋषयो यानि सृत्या। सं दिव्येनं दीदिहि रोचनेन् विश्वा आ भांहि प्रदिशः पृथिव्याः। सं चेध्यस्वाँग्ने प्र चं बोधयैनमुचं तिष्ठ महुते सौभंगाय। मा चं रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणंस्ते युशसः सन्तु मान्ये। त्वामंग्ने वृणते ब्राह्मणा डुमे शिवो अंग्ने (२५)

संवर्णे भवा नः। सप्बहा नों अभिमातिजिच् स्वे गयें जागृह्यप्रयुच्छन्न्। इहैवाग्ने अधिं धारया रियें मा त्वा नि क्रेन्यूर्विचतों निकारिणः। क्षत्रमंग्ने सुयममस्तु तुभ्यंमुपस्ता वंर्धतां ते अनिष्टतः। क्षत्रणांग्ने स्वायुः स॰ रंभस्व मित्रेणांग्ने मित्रधेयें यतस्व। सजातानांम्मध्यम्स्था एंधि राज्ञांमग्ने विह्व्यों दीदिहीह। अतिं (२६)

निहो अति स्निधोऽत्यचितिमत्यरांतिमग्ने। विश्वा ह्यंग्ने दुरिता सह्स्वाथास्मभ्य र सहवीरा रियं दौः। अनाधृष्यो जातवैदा अनिष्टतो विराडंग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह। विश्वा आशाः प्रमुश्चन्मानुंषीर्भियः शिवाभिर्द्य परिं पाहि नो वृधे। बृहंस्पते सवितर्बोधयैन्र संश्रीतं चिथ्सन्तुरा सं शिंशाधि। वृधयैनम्महते सौर्भगाय (२७)

विश्वं एन्मनुं मदन्तु देवाः। अमुत्रभूयादध् यद्यमस्य बृहंस्पते अभिशंस्तेरमुंश्चः। प्रत्यौहताम्श्विनां मृत्युमंस्माद्देवानांमग्ने भिषजा शचींभिः। उद्वयं तमंस्सपिर् पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगंन्म ज्योतिरुत्तरम्॥ (२८)

ड्मे शिवो अग्नेऽति सौभंगाय चतुंस्त्रि १ शच॥ _________[७]

ऊर्ध्वा अस्य समिधों भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोची १ ष्युग्नेः। द्युमत्तंमा सुप्रतींकस्य सूनोः। तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः। पृथ आर्निक्त मध्यां घृतेनं। मध्यां यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराश १ सो अग्ने। सुकृद्देवः संविता विश्ववारः। अच्छायमेति शवंसा घृतेनेंडानो विह्विर्नमंसा। अग्निः सुचों अध्वरेषुं प्रयथ्सुं। स यक्षदस्य महिमानमुग्नेः सः (२९)

र्ड् मृन्द्रासुं प्रयसंः। वसुश्चेतिष्ठो वसुधातंमश्च। द्वारों देवीरन्वंस्य विश्वें बृता दंदन्ते अग्नेः। उरुव्यचंसो धाम्ना पत्यंमानाः। ते अस्य योषंणे दिव्ये न योनांवुषासानक्तां। हमं युज्ञमंवतामध्वरं नंः। दैव्यां होतारावूर्ध्वमंध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वाम्भि गृंणीतम्। कृणुतं नः स्विष्टिम्। तिस्रो देवीर्ब्हिरेद संदन्त्विडा सरंस्वती (३०)

भारंती। मही गृंणाना। तन्नंस्तुरीप्मद्भंतं पुरुक्षु त्वष्टां सुवीरम्ं। रायस्पोषं वि ष्यंतु नाभिमस्मे। वनस्पतेऽवं सृजा रराणस्तमनां देवेषुं। अग्निर्हव्य शिमता सूंदयाति। अग्ने स्वाहां कृणुहि जातवेद इन्द्रांय ह्व्यम्। विश्वं देवा ह्विरिदं जुंषन्ताम्। हि्र्ण्यगर्भः समंवर्तताग्रें भूतस्यं जातः पित्रेरकं आसीत्। स दांधार पृथिवीं द्याम् (३१)

उतेमां कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। यः प्राणतो निमिष्तो महित्वैक इद्राजा जगतो बुभूवं। य ईशें अस्य द्विपदश्चतुंष्यदः कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। य आंत्मदा बंलुदा यस्य विश्वं उपासंते प्रशिष्ं यस्यं देवाः। यस्यं छायामृतं यस्यं मृत्युः कस्मैं देवायं हुविषां विधेम। यस्येमे हिमवंन्तो महित्वा यस्यं समुद्र रसयां सह (३२)

आहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्यं बाहू कस्मैं देवायं ह्विषां विधेम। यं ऋन्दंसी अवंसा तस्तभाने अभ्येक्षेताम्मनंसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदिंतौ व्येति कस्मैं देवायं ह्विषां विधेम। येन द्यौरुग्रा पृथिवी चं दृढे येन सुवः स्तिभृतं येन नार्कः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मैं देवायं ह्विषां विधेम। आपो ह् यन्महृतीर्विश्वम् (३३)

आयुन्दक्षं दर्धाना जनयंन्तीरुग्निम्। ततौ देवानां निरंवर्ततासुरेकः कस्मै देवायं ह्विषां

विधेम। यश्चिदापों महिना पूर्यपंश्यद्दक्षं दर्धाना जनयंन्तीरुग्निम्। यो देवेष्विधं देव एक् आसीत्कस्मैं देवायं हिवषां विधेम॥ (३४)

अग्नेः स सरंस्वती द्यार सह विश्वअर्तुस्त्रिHरशश्च॥———[८]

आकूंतिम्ग्निम्प्रयुज् इ स्वाह्य मनों मेधाम्ग्निम्प्रयुज् इ स्वाहां चित्तं विज्ञांतम्ग्निम्प्रयुज् इ स्वाहां वाचो विर्धृतिम्ग्निम्प्रयुज् इ स्वाहां प्रजापंतये मनेवे स्वाह्यग्नये वैश्वान्रयय स्वाह्य विश्वे देवस्यं नेतुर्मतों वृणीत सुख्यं विश्वे राय इंषुध्यसि द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाह्य मा सु भित्था मा सु रिषो द १ हंस्व वीडयंस्व सु। अम्बं धृष्णु वीरयंस्व (३५)

अग्निश्चेदं केरिष्यथः। दश्हंस्व देवि पृथिवि स्वस्तयं आसुरी माया स्वधयां कृतासिं। जुष्टं देवानांमिदमंस्तु ह्व्यमरिष्टा त्वमुदिहि युज्ञे अस्मिन्न्। मित्रैतामुखां तंपैषा मा भेदि। पृतान्ते परिं ददाम्यभित्त्ये। द्वंन्नः सूर्पिरांसुितः प्रबो होता वरेण्यः। सहंसस्पुत्रो अद्भंतः। परंस्या अधि संवतोऽवंराश अभ्या (३६)

त्र। यत्राहमस्मि ता अंव। प्रमस्याः परावतों रोहिदंश्व इहा गंहि। पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्रे त्वं तंरा मृधंः। सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वांन्यग्रे वयुनांनि विद्वान्। मैनांमर्चिषा मा तपंसाभि शूंशुचोऽन्तरंस्या श्रुक्तज्योतिर्वि भांहि। अन्तरंग्रे रुचा त्वमुखायै सदंने स्वे। तस्यास्त्व हरंसा तपुञ्जातंवेदः शिवो भंव। शिवो भूत्वा मह्यंमग्रेऽथों सीद शिवस्त्वम्। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिंमिहासंदः॥ (३७)

वीरयस्वा तपंन्वि १ श्रातिश्चं॥______[९]

यदंग्ने यानि कानि चा ते दारूणि द्ध्मिसं। तदंस्तु तुभ्यमिद्धृतं तञ्जंषस्व यिविष्ठा। यदत्त्युंपुजिह्निंका यद्धम्रो अंतिसर्पंति। सर्वं तदंस्तु ते घृतं तञ्जंषस्व यिविष्ठा। रात्रिंश्रात्रिमप्रंयावम्भर्न्तोऽश्वांयेव तिष्ठंते घासमस्मै। रायस्पोषंण सिम्षा मद्न्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम। नाभाँ (३८)

पृथिव्याः संमिधानमग्निः रायस्पोषांय बृह्ते हंवामहे। इर्म्मदम्बृहद्वंक्थं यजंत्रं जेतारमृग्निं पृतनासु सासहिम्। याः सेनां अभीत्वंरीराव्याधिनीरुगंणा उत। ये स्तेना ये च तस्कंरास्ताः स्तें अग्नेऽपिं दधाम्यास्यैं। दः ष्ट्राम्याम्मृलिम्नू अम्भ्येस्तस्कंराः उत। हनूँभ्याः स्तेनान्भंगवस्ताः स्त्वं खांद सुखांदितान्। ये जनेषु मृलिम्नंवः स्तेनास्स्तस्कंरा वर्नै। ये (३९)

कक्षेष्वघायवस्ताइस्ते दथामि जम्भयोः। यो अस्मभ्यंमरातीयाद्यश्चं नो द्वेषंते जनः। निन्दाद्यो अस्मान् दिफ्साँच् सर्वं तम्मंस्मसा कुंरुः। सर्श्वातं मे ब्रह्म सर्श्वातं वीर्यं बलम्। सर्श्वातं क्षुत्रं जिष्णु यस्याहमस्मिं पुरोहितः। उदेषाम्बाह् अतिर्मुद्वर्च उद् बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि (४०)

स्वार अहम्। दृशानो रुका उर्व्या व्यंद्यौदुर्मर्षमायुंः श्रिये रुचानः। अग्निर्मृतों अभवृद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजंनयथ्मुरेतांः। विश्वां रूपाणि प्रतिं मुश्चते कविः प्रासांवीद्भद्वं द्विपदे चतुंष्पदे। वि नाकंमख्यथ्सविता वरेण्योऽनुं प्रयाणंमुषसो वि रांजति। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकर् समीची। द्यावा क्षामा रुकाः (४१)

अन्तर्वि भांति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः। सुपूर्णोऽसि गुरुत्मांत्रिवृत्ते शिरों गायत्रं चक्षुः स्तोमं आत्मा सामं ते तुनूर्वामदेव्यम्बृहद्रथन्तरे पृक्षौ यंज्ञाय्ज्ञियम्पुच्छुं छन्दाः स्यङ्गांनि धिष्णियाः शुफा यज्ञू १षि नामं। सुपूर्णोऽसि गुरुत्मान्दिवं गच्छु सुवंः पत॥ (४२)

नाभा वने येनं यामि क्षामां रुक्भौऽष्टात्रिर्श्यच॥_____[१०]

अभ्रे यं युज्ञमंध्वरं विश्वतः परिभूरिसं। स इद्देवेषुं गच्छिति। सोम् यास्ते मयोभुवं कृतयः सन्ति दाशुर्षे। ताभिनीऽविता भव। अभिर्मूर्धा भुवंः। त्वं नः सोम् या ते धामानि। तथ्संवितुविरेण्यम्भर्गो देवस्यं धीमिह। धियो यो नः प्रचोदयात। अचित्ती यर्चकृमा दैव्ये जने दीनैदक्षेः प्रभूती पूरुष्त्वता। (४३)

देवेषुं च सवित्मानुंषेषु च त्वं नो अत्रं सुवतादनांगसः। चोद्यित्री सूनृतांनां चेतंन्ती सुमतीनाम्। यृज्ञं देधे सरंस्वती। पावीरवी कन्यां चित्रायुः सरंस्वती वीरपंत्री धियं धात्। ग्राभिरच्छिंद्र शर्ण स्जोषां दुराधर्षं गृणते शर्म य स्सत्। पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रंक्षत्वर्वतः। पूषा वाज समितातु नः। शुक्रं ते अन्यद्यंज्ञतं ते अन्यत् (४४)

विषुंरूपे अहंनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवंसि स्वधावो भुद्रा ते पूषित्रह रातिरंस्तु। तेऽवर्धन्त स्वतंवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चंिकरे सदंः। विष्णुर्यद्धावद्वृषंणम्मद्च्युतं वयो न सींद्न्निधं ब्रहिषं प्रिये। प्र चित्रमुकं गृंणते तुराय मारुताय स्वतंवसे भरध्वम्। ये सहार्रस् सहंसा सहंन्ते (४५)

रेजंते अग्ने पृथिवी मुखेभ्यः। विश्वे देवा विश्वे देवाः। द्यावां नः पृथिवी इम॰ सिप्रमुद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषुं यच्छताम्। प्र पूर्वजे पितरा नव्यंसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वर्ष्य सदेने ऋतस्यं। आ नों द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातम्मिहि वां वर्रूथम्। अग्निश् स्तोमेन बोधय सिमधानो अमर्त्यम्। ह्व्या देवेषुं नो दधत्। स हंव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्विति। शं नों भवन्तु वाजेवाजे॥ (४६)

पूरुपुत्वतां यज्ञतन्ते अन्यथ्सहंन्ते चनोहितोऽष्टौ चं॥————[११] विष्णोः क्रमोऽसि दिवस्पर्यन्नपुतेऽपेत् समितं या जाता मा नो हि॰सीद्भुवा-ऽस्यादित्यङ्गर्भमिन्द्रांग्री रोचनैकांदश॥————[१२]

विष्णोरस्मिन् ह्व्येतिं त्वाऽहं धीतिभि्रहोत्रां अष्टाचंत्वारि॰शत्॥४८॥ विष्णोः ऋमोऽसि स त्वन्नों अग्ने॥

॥ द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

विष्णोः क्रमोंऽस्यभिमातिहा गांयुत्रं छन्द् आ रोह पृथिवीमनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोंऽस्यभिशस्तिहा त्रेष्टुंमुं छन्द् आ रोहान्तरिक्षमनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोंऽ स्यरातीयतो हुन्ता जागंतं छन्द आ रोह दिवमनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः (१)

क्रमोंऽसि शत्रूयतो हुन्तानुष्टुभ्ं छन्द आ रोह् दिशोऽनु वि क्रंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मः। अर्क्नन्दद्ग्निः स्तुनयंत्रिव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समुञ्जत्र। सुद्यो ज्ञांना वि हीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुना भात्यन्तः। अग्नैंऽभ्यावर्तित्रभि न आ वर्तस्वायुषा वर्चसा सुन्या मेधया प्रजया धनेन। अग्नैं (२)

अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः। तासाम्पोषंस्य पोषेण पुनर्नो नृष्टमा कृषि पुनर्नो रियमा कृषि। पुनरूजां नि वर्तस्व पुनरम्न इषायुषा। पुनर्नः पाहि विश्वतः। सह रय्या नि वर्तस्वाम्ने पिन्वस्व धारया। विश्वपिस्नया विश्वतस्परिं। उद्तुमं वरुण्

पाशंमुस्मदवांधुमम् (३)

वि मध्यम अर्थाय। अर्था व्यमादित्य वृते तवानांगसो अदितये स्याम। आ त्वांहार्षम्-तरंभूर्ध्वस्तिष्ठाविंचाचितः। विशंस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मित्राष्ट्रमधि श्रय। अग्ने बृहत्रुषसांमूर्ध्वो अंस्थान्निर्जिग्मवान्तमंसो ज्योतिषागात। अग्निर्भानुना रुशंता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्यान्यप्राः। सीद त्वं मातुरुस्याः (४)

उपस्थे विश्वांन्यग्ने वयुनांनि विद्वान्। मैनांम्चिंषा मा तपंसाभि शूंशुचोऽन्तरंस्या॰ शुक्रज्योतिर्वि भांहि। अन्तरंग्ने रुचा त्वमुखाये सदेने स्वे। तस्यास्त्व॰ हरंसा तपुआतंवेदः शिवो भंव। शिवो भूत्वा मह्यमुग्नेऽथों सीद शिवस्त्वम्। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिंमिहासंदः। हु॰्सः शुंचिषद्वसुंरन्तरिक्ष्मखोतां वेदिषदितिथिर्दुरोण्सत्। नृषद्वंर्सदंत्सद्योम्सद्जा गोजा ऋत्जा अंद्रिजा ऋतम्बृहत्॥ (५)

दिवमनु वि ऋंमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोर्धनेनाग्नेऽधमम्स्याः शुंचिषथ्योडंश च॥[१]

दिवस्परिं प्रथमं जंज्ञे अग्निर्स्मिद्धितीयं परिं जातवेदाः। तृतीयंमुफ्सु नृमणा अजंस्रुमिन्धांन एनं जरते स्वाधीः। विद्या तें अग्ने त्रेधा त्र्याणि विद्या ते सद्य विभृतं पुरुत्रा। विद्या ते नामं पर्मं गृहा यद्विद्या तमुथ्सं यतं आज्गन्थं। सुमुद्रे त्वां नृमणां अफ्स्वंन्तर्नृचक्षां ईधे दिवो अंग्न ऊधर्त्र। तृतीयें त्वा (६)

रजंसि तस्थिवारसंमृतस्य योनौं मिह्षा अहिन्बन्न्। अर्न्नन्द्विग्नः स्तुनयंन्निव् द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समुञ्जन्न, सद्यो जंज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुनां भात्यन्तः। उशिक्पांवको अर्तिः सुंमेधा मर्तेष्वग्निर्मृतो निधायि। इयंर्ति धूममंरुषम्भरिभृदुच्छुकेणं शोचिषा द्यामिनक्षत्। विश्वंस्य कृतुर्भुवंनस्य गर्भु आ (७)

रोर्दसी अपृणाङ्गायंमानः। वीडुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयंजन्त पश्चं। श्रीणामुंदारो धुरुणो रयीणाम्मनीषाणाम्प्रापेणः सोमंगोपाः। वसौः सूनुः सहंसो अपस् राजा वि भात्यग्रं उषसांमिधानः। यस्ते अद्य कृणवंद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवंन्तमग्ने। प्र तं नय प्रतरां वस्यो अच्छाभि द्युम्नं देवभक्तं यविष्ठ। आ (८)

तम्भंज सौश्रवसेष्वंग्न उक्थउंक्थ् आ भंज शस्यमाने। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भंवात्युज्ञातेनं भिनदुदुज्जनित्वैः। त्वामंग्ने यजंमाना अनु द्यून् विश्वा वसूनि दिधरे वार्याणि। त्वयां सह द्रविणिम्च्छमाना व्रजं गोर्मन्तमुशिजो वि वंद्रः। दृशानो रुका उर्व्या व्यंद्यौदुर्मर्षमायुंः श्रिये रुचानः। अग्निर्मृतों अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयथ्सुरेताः॥ (९)

तृतीयेँ त्वा गर्भ आ यंविष्ठा यच्चत्वारिं च॥————[२]

अन्नप्तेऽन्नंस्य नो देह्यनमीवस्यं शुष्मिणंः। प्रप्नंदातारं तारिष् ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुंष्पदे। उद्दं त्वा विश्वं देवा अग्ने भरंन्तु चित्तिंभिः। स नी भव शिवतंमः सुप्रतींको विभावंसुः। प्रेदंग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिविभिर्पिचिभिस्त्वम्। बृहद्भिर्भानुभिर्भास्नमा हिर्ससिस्तुनुवा प्रजाः। सुमिधाग्निं दुंवस्यत घृतैर्बोधयुतातिथिम्। आ (१०)

अस्मिन् ह्व्या जुंहोतन। प्रप्रायम्प्रिर्भर्तस्यं शृण्वे वि यथ्सूर्यो न रोचंते बृहद्भाः। अभि यः पूरुम् पृतंनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नंः। आपो देवीः प्रति गृह्णीत् भस्मैतथ्स्योने कृणुध्वर सुर्भावं लोके। तस्मै नमन्तां जनंयः सुपर्शीमितिवं पुत्रम्बिंभृता स्वेनम्। अपस्वंश्रे सिष्टष्टवं (११)

सौषंधीरनुं रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः। गर्भो अस्योषंधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्रे गर्भो अपामंसि। प्रसद्य भस्मना योनिमपश्चं पृथिवीमंग्रे। स्रमुज्यं मातृभिस्त्वं ज्योतिष्मान्युन्तासंदः। पुनंतासद्य सदनम्पश्चं पृथिवीमंग्रे। शेषें मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्यार शिवतंमः। पुनंकुर्जा (१२)

नि वंर्तस्व पुनंरग्न इषायुंषा। पुनंनः पाहि विश्वतः। सह र्य्या नि वंर्तस्वाग्ने पिन्वंस्व धारंया। विश्वपिस्त्रंया विश्वतस्पिरं। पुनंस्त्वादित्या रुद्रा वसंवः सिनंन्यताम्पुनंर्ब्रह्माणो वसुनीथ युज्ञैः। घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामाः। बोधां नो अस्य वर्चसो यविष्ठ मश्हिष्ठस्य प्रभृंतस्य स्वधावः। पीयंति त्वो अनुं त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तनुवं वन्दे अग्ने। स बोधि सूरिर्म्घवां वसुदावा वसुंपितः। युयोध्यंस्मद्वेषारंसि॥ (१३)

आ तबोर्जाऽनु षोडंश च॥———[३]

अपेत वीत वि चं सर्पतातो येऽत्र स्थ पुंराणा ये च नूर्तनाः। अदांदिदं युमीं-ऽवसानं पृथिव्या अक्रेन्निमम् पितरी लोकमंस्मै। अग्नेर्भस्मौस्यग्नेः पुरीषमसि संज्ञानंमसि कामधरंणम्मिये ते कामधरंणम्भूयात्। सं या वंः प्रियास्तुनुवः सिम्प्रिया हृंदयानि वः। आत्मा वो अस्तु (१४) सिम्प्रियः सिम्प्रियास्तुनुवो मर्म। अय सो अग्निर्यस्मिन्थ्सोम्मिन्द्रः सुतं दुधे जुठरे वावशानः। सहस्रियं वाजमत्यं न सिप्ति सस्वान्थ्सन्थ्स्तूयसे जातवेदः। अग्ने दिवो अर्णमच्छां जिगास्यच्छां देवार ऊंचिषे धिष्णिया ये। याः प्रस्तांद्रोचने सूर्यस्य याश्चावस्तांदुपृतिष्ठंन्तु आपंः। अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषंधीषु (१५)

अप्रसु वां यजत्र। येनान्तरिक्षमुर्वात्ततन्थं त्वेषः स भानुरंर्ण्वो नृचक्षाः। पुरीष्यांसो अग्नयः प्रावणेभिः स्जोषंसः। जुषन्तारं हृव्यमाहुंतमनमीवा इषो महीः। इडांमग्ने पुरुदरसरं स्निं गोः शंश्वत्तमर हवंमानाय साध। स्यान्नः सुनुस्तनंयो विजावाग्ने सा ते सुमृतिर्भूत्वस्मे। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानत्र (१६)

अ्ग्न आ रोहाथां नो वर्धया र्यिम्। चिदंसि तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सींद परिचिदंसि तयां देवतंयाङ ङ्गिर्स्वद्भुवा सींद लोकं पृण छिद्रं पृणाथों सीद शिवा त्वम्। इन्द्राग्नी त्वा बृह्स्पतिंर्स्मिन् योनावसीषदत्र्। ता अंस्य सूदंदोहसः सोमई श्रीणन्ति पृश्नयः। जन्मं देवानां विशंक्षिष्वा रोचने दिवः॥ (१७)

अस्त्वोषंधीषु जानन्नृष्टाचंत्वारि १शच॥______

-[8]

समित्र सं केल्पेथार सिम्प्रियौ रोचिष्णू सुमन्स्यमानौ। इष्मूर्जमिभ सुंवसानौ सं वाम्मनार्रसि सं व्रता समुं चित्तान्याकरम्। अग्ने पुरीष्याधिपा भवा त्वं नः। इष्मूर्ज् यजमानाय धेहि। पुरीष्यंस्त्वमंग्ने रियमान्पृष्टिमार असि। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिहासंदः। भवतं नः समनसौ समोकसौ (१८)

अरेपसौँ। मा युज्ञ हि रिसिष्टं मा युज्ञपंतिं जातवेदसौ शिवौ भंवतम् द्य नंः। मातेवं पुत्रं पृथिवी पुरीष्यंमग्निः स्वे योनांवभारुखा। तां विश्वैद्वैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापंतिर्विश्वकर्मा वि मुंश्चतु। यदस्य पारे रजंसः शुक्रं ज्योतिरजांयत। तन्नंः पर्षदित द्विषोऽन्ने वैश्वानर् स्वाहां। नमः सु तें निर्ऋते विश्वरूपे (१९)

अयस्मयं वि चृंता बन्धमृतम्। यमेन् त्वं यम्यां संविदानोत्तमं नाक्मिधं रोहयेमम्। यत्तं देवी निर्ऋतिरा बबन्ध दामं ग्रीवास्वविचत्र्यम्। इदं ते तिद्व ष्याम्यायंषो न मध्यादथां जीवः पितुमंद्धि प्रमुंक्तः। यस्यांस्ते अस्याः क्रूर आसञ्जूहोम्येषाम्बन्धानांमवसर्जनाय। भूमिरितिं त्वा जनां विदुर्निर्ऋतिः (२०)

इति त्वाहं परि वेद विश्वतः। असुन्वन्तमयंजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यां तस्कर्स्यान्वेषि। अन्यमस्मिदिच्छु सा तं इत्या नमों देवि निर्ऋते तुभ्यंमस्तु। देवीमहं निर्ऋतिं वन्दंमानः पितेवं पुत्रं दंसये वचोंभिः। विश्वंस्य या जायंमानस्य वेद शिरंशिरः प्रतिं सूरी विचंष्टे। निवेशनः संगर्मनो वसूनां विश्वां रूपाभि चंष्टे (२१)

शर्चीभिः। देव इंव सिवता सत्यधूर्मेन्द्रो न तंस्थौ समुरे पंथीनाम्। सं वंर्त्रा दंधातन् निराहावान्कृणोतन। सिञ्चामंहा अवटमुद्रिणं वयं विश्वाहादंस्तमिक्षेतम्। निष्कृताहावमवटर सुंवर्त्रर सुंवेचनम्। उद्रिणरं सिञ्चे अक्षितम्। सीरां युञ्जन्ति कवयों युगा वि तन्वते पृथंक्। धीरां देवेषुं सुम्रया। युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौं वपतेह (२२)

बीजम्ँ। गिरा चं श्रुष्टिः सभरा असंत्रो नेदीय इथ्मृण्यां पृक्रमायंत्। लाङ्गंलम्पवीरवर् सुशेवर् सुमृतिथ्संरु। उदित्कृंषित् गामिविम्प्रफर्व्यं च पीविरीम्। प्रस्थावंद्रथ्वाहंनम्। शुनं नः फाला वि तुंदन्तु भूमिर् शुनं कीनाशां अभि यन्तु वाहान्। शुनम्पर्जन्यो मधुना पर्योभिः शुनांसीरा शुनम्स्मासुं धत्तम्। कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वर्रुणाय च। इन्द्रायाग्रये पूष्ण ओषधीभ्यः प्रजाभ्यः। घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वदेवरनुंमता मुरुद्धिः। ऊर्जस्वती पर्यसा पिन्वमानास्मान्थ्सीते पर्यसाभ्यावंवृथ्स्व॥ (२३)

समोंकसौ विश्वरूपे विदुर्निर्ऋतिर्भि चंष्ट इह मित्राय द्वाविरंशतिश्व॥———[५]

या जाता ओषंधयो देवेभ्यंस्त्रियुगम्पुरा। मन्दांमि बुभ्रूणांमह शतं धामांनि सप्त चं। शतं वो अम्ब धामांनि सहस्रंमत वो रुहंः। अथां शतकत्वो यूयिम्मं में अगृदं कृत। पुष्पांवतीः प्रसूवंतीः फुलिनीरफुला उत। अश्वां इव सुजित्वंरीवी्रुधंः पारियुष्णवेः। ओषंधीरितिं मातरस्तद्वों देवीरुपं ब्रुवे। रपार्श्स विघ्रतीरित रपंः (२४)

चातर्यमानाः। अश्वत्थे वो निषदंनम्पूर्णे वो वस्तिः कृता। गोभाज् इत्किलांसथ् यथ्सनवंथ पूरुंषम्। यदहं वाजयंत्रिमा ओषंधी्रहस्तं आद्धे। आत्मा यक्ष्मंस्य नश्यति पुरा जीवृगभों यथा। यदोषंधयः संगच्छंन्ते राजांनः समिताविव। विप्रः स उंच्यते भिषग्रंक्षोहामीव्चातंनः। निष्कृंतिर्नामं वो माताथां यूयः स्थ सङ्कृंतीः। सुराः पंतुत्रिणीः (२५)

स्थन् यदामयंति निष्कृंत। अन्या वो अन्यामंवत्वन्यान्यस्या उपांवत। ताः सर्वा ओषंधयः संविदाना इदम्मे प्रावंता वर्चः। उच्छुष्मा ओषंधीनां गावो गोष्ठादिवेरते। धनः सनिष्यन्तीनामात्मानं तवं पूरुष। अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इंव व्रजमंक्रमुः। ओषंधयः प्राचुंच्यवुर्यत् किं चं तनुवार रपंः। याः (२६)

त् आतस्थुरात्मानं या आंविविशुः पर्रःपरुः। तास्ते यक्ष्मं वि बांधन्तामुग्रो मध्यमुशीरिव। साकं यक्ष्म प्र पंत श्येनेनं किकिदीविनां। साकं वार्तस्य प्राज्यां साकं नंश्य निहाकंया। अश्वावतीः सोमवतीमूर्जयंन्तीमुदोंजसम्। आ विध्सि सर्वा ओषंधीर्स्मा अंरिष्टतांतये। याः फुलिनीयां अंफुला अंपुष्पा याश्चं पुष्पिणीः। बृहुस्पतिप्रसूतास्ता नों मुश्चन्त्व १ हंसः। याः (२७)

ओषंधयः सोमंराज्ञीः प्रविष्टाः पृथिवीमन्। तासां त्वमंस्युत्तमा प्र णों जीवातंवे स्व। अवपतंन्तीरवदन्दिव ओषंधयः परि। यं जीवमृश्ववामहै न स रिष्याति पूर्रुषः। याश्चेदमृपशृण्वन्ति याश्चं दूरं परांगताः। इह संगत्य ताः सर्वा अस्मै सं देत्त भेषजम्। मा वो रिषत्खिन्ता यस्मै चाहं खनांमि वः। द्विपचतुंष्पदस्माक् सर्वमस्त्वनांतुरम्। ओषंधयः सं वंदन्ते सोमेन सह राज्ञां। यस्मै क्रोति ब्राह्मणस्त राजन्यारयामसि॥ (२८)

रपंः पत्तित्रणीयां अरहंसो याः खनांमि वोऽष्टादंश च॥————[६]

मा नों हिश्सीज्ञनिता यः पृथिव्या यो वा दिवर्श सत्यर्धर्मा जाजानं। यश्चापश्चन्द्रा बृंहतीर्ज्जान् कस्मैं देवायं हिवषां विधेम। अभ्यावंतिस्व पृथिवि यज्ञेन पर्यसा सह। वपां ते अग्निरिष्ति।ऽवं सर्पत्। अग्ने यत्ते शुक्रं यचन्द्रं यत्पूतं यद्यज्ञियम्। तद्देवेभ्यों भरामसि। इष्मूर्जमहिमृत आ (२९)

द्द ऋतस्य धाम्नी अमृतंस्य योनैंः। आ नो गोषुं विश्वत्वौषंधीषु जहांमि सेदिमनिराममीवाम्। अग्ने तव श्रवो वयो मिहं भ्राजन्त्यर्चयो विभावसो। बृहंद्भानो शर्वसा वाजंमुक्थ्यं दर्धासि दाशुषं कवे। इर्ज्यन्नेग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर्स्मे रायो अमर्त्य। स दंर्श्तस्य वपुंषो वि राजसि पृणिक्षं सान्सि॰ र्यिम्। ऊर्जो नपाञ्चातंवेदः सुशुस्तिभिर्मन्दंस्व (३०)

धीतिभिर्हितः। त्वे इषः सं देधुर्भूरिरेतसिश्चित्रोतंयो वामजांताः। पावकवंर्चाः शुक्रवंर्चाः अनूनवर्चा उदियर्षि भानुनां। पुत्रः पितरां विचर्त्रुपांवस्युभे पृंणिक्षे रोदंसी। ऋतावानम्मिह्षं विश्वचंर्षणिम्ग्निर सुम्नायं दिधरे पुरो जनाः। श्रुत्कंर्णर सप्रथंस्तं त्वा गिरा दैव्यम्मानुषा युगा। निष्कृतारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयंन्त्र राधंसे महे। रातिम्भुगूंणामुशिजं कृविकंतुं

पृणक्षिं सानुसिम् (३१)

र्यिम्। चितंः स्थ परिचितं ऊर्ध्वचितंः श्रयध्वं तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद् ध्रुवाः सींदत। आ प्यांयस्व समेतु ते विश्वतंः सोम् वृष्णियम्। भवा वाजंस्य सङ्ग्थे। सं ते पयार्रस्य सम् यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्यभिमातिषाहंः। आप्यायंमानो अमृतांय सोम दिवि श्रवार्रस्युत्तमानि धिष्व॥ (३२)

अभ्यंस्थाद्विश्वाः पृतंना अरांतीस्तद्ग्निरांहु तदु सोमं आह। बृह्स्पतिः सिवता तन्मं आह पुषा मांधाथ्सुकृतस्यं लोके। यदक्रन्दः प्रथमं जायंमान उद्यन्थ्संमुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्यं पक्षा हिरिणस्यं बाहू उपंस्तुतं जिनम् तत्ते अर्वत्र्। अपां पृष्ठमंसि योनिर्ग्नेः संमुद्रम्भितः पिन्वंमानम्। वर्धमानम्महः (३३)

आ च पुष्कंरं दिवो मात्रंया वृरिणा प्रंथस्व। ब्रह्मं जज्ञानम्प्रंथमम्पुरस्ताद्वि सीमृतः सुरुचों वेन आंवः। स बुध्नियां उपमा अंस्य विष्ठाः सृतश्च योनिमसंतश्च विवंः। हिरुण्यगर्भः समंवर्तताग्नें भृतस्यं जातः पितरकं आसीत्। स दांधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्में देवायं हिविषां विधेम। द्रपसर्श्वस्कन्द पृथिवीमनुं (३४)

द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः। तृतीयं योनिमनुं स्श्चरंन्तं द्रफ्सं जुंहोम्यनुं स्प्त होत्राः। नमों अस्तु स्पेंभ्यो ये के चं पृथिवीमनुं। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः स्पेंभ्यो नमः। येंऽदो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रिष्मिषुं। येषांमुफ्सु सदः कृतं तेभ्यः स्पेंभ्यो नमः। या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पती रूर्नुं। ये वांवटेषु शेरते तेभ्यः स्पेंभ्यो नमः॥ (३५)

मृहोऽनुं यातुधानांनामेकांदश च॥______

ध्रुवासिं ध्रुणास्तृंता विश्वकंर्मणा सुकृंता। मा त्वां समुद्र उद्वंधीन्मा सुंपुर्णोऽव्यंथमाना पृथिवीं दर्ह। प्रजापंतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे व्यचंस्वतीम्प्रथंस्वतीम्प्रथंऽिस पृथिव्यंसि भूर्रसि भूमिंरुस्यदितिरिस विश्वधाया विश्वंस्य भुवंनस्य धुत्री पृथिवीं यंच्छ पृथिवीं दर्ह पृथिवीं मा हिर्स्मीर्विश्वंस्म प्राणायांपानायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठायैं (३६)

चरित्रांयाग्निस्त्वाभि पातु मृह्या स्वस्त्या छुर्दिषा शन्तंमेन तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा

सींद। काण्डाँत्काण्डात् प्ररोहंन्ती पर्रुषःपरुषः परिं। एवा नो दूर्वे प्र तंनु सहस्रेण शतेनं च। या शतेनं प्रतनोषिं सहस्रेण विरोहंसि। तस्याँस्ते देवीष्टके विधेमं ह्विषां वयम्। अषांढासि सहंमाना सहस्वारांतीः सहंस्वारातीयतः सहंस्व पृतंनाः सहंस्व पृतन्यतः। सहस्रंवीर्या (३७)

असि सा मां जिन्व। मधु वातां ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धंवः। माध्वींर्नः स्नित्वोषंधीः। मधु नक्तंमुतोषसि मधुंमृत्पार्थिवश् रज्ञःं। मधु द्यौरंस्तु नः पिता। मधुंमात्रो वनस्पित्मधुंमार अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। मृही द्यौः पृथिवी च न इमं युज्ञम्मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमिभः। तिद्वष्णौः पर्मम् (३८)

पुद सदां पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव चक्षुरातंतम्। ध्रुवासिं पृथिवि सहंस्व पृतन्यतः। स्यूता देवेभिंर्मृतेनागाः। यास्तें अग्रे सूर्ये रुचं उद्यतो दिवंमात्न्वन्तिं रिश्मिभिः। ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि। या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचंः। इन्द्रांग्री ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते। विराट् (३९)

ज्योतिरधारयथ्समाङ्गोतिरधारयथ्स्वराङ्गोतिरधारयत्। अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वांसो देव साधवंः। अरं वहंन्त्याशवंः। युक्ष्वा हि देवहूतंमार् अश्वारं अग्ने र्थीरिव। नि होतां पूर्व्यः संदः। द्रफ्सश्चंस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः। तृतीयं योनिमनुं सञ्चरंन्तं द्रफ्सं जुंहोम्यनुं सप्त (४०)

होत्राः। अभूदिदं विश्वंस्य भुवंनस्य वाजिनम्ग्नेवैश्वान्रस्यं च। अग्निज्योतिषा ज्योतिष्मात्रुक्तो वर्चसा वर्चस्वान्। ऋचे त्वां रुचे त्वा सिमथ्स्नंवन्ति स्रितो न धेनाः। अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः। घृतस्य धारां अभि चांकशीमि। हिर्ण्ययो वेतसो मध्यं आसाम्। तस्मिन्थ्सुपूर्णो मंधुकृत्कुंलायी भजन्नास्ते मधुं देवताभ्यः। तस्यांसते हरयः सप्त तीरें स्वधां दुहांना अमृतंस्य धाराम्॥ (४१)

प्रतिष्ठायै सहस्रवीर्या पर्मं विरादथ्सप्त तीरें चत्वारिं च॥———[९]

आदित्यं गर्भम्पयंसा सम्अन्थ्सहस्रंस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परि वृिङ्क् हरंसा माभि मृक्षः शतायुंषं कृणुहि चीयमानः। इमं मा हिर्श्सीर्द्विपादम्पशूनाः सहस्राक्ष् मेध् आ चीयमानः। मयुमारण्यमन् ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि षीद। वार्तस्य प्राजिं वर्रणस्य नाभिमर्श्वं जज्ञानः संरि्रस्य मध्यैं। शिशुं नदीनाः हरि्मद्रिंबुद्धमग्ने मा हिर्रसीः (४२)

प्रमे व्योमत्र। इमं मा हिर्श्सीरेक्शफम्पशूनां केनिकृदं वाजिन् वाजिनेष्। गौरमार्ण्यमन् ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि षीद। अजस्त्रिमिन्दुंमरुषम्भुर्ण्युमृत्रिमींडे पूर्वचित्तौ नमोभिः। स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिर्श्सीरदितिं विराजम्। इमर्श्समुद्रर श्रुतधार्मुथ्सं व्यच्यमानम्भुवनस्य मध्यै। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा (४३)

हिर्सीः प्रमे व्योमन्न। गुव्यमार्ण्यमन् ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तुन्वो नि षीद। वरूतिं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाः रजसः परंस्मात्। महीः सांहुस्रीमस्रंरस्य मायामभ्रे मा हिर्रसीः परमे व्योमन्न। इमाम्णीयुं वरुणस्य मायां त्वचम्पशूनां द्विपदां चतुंष्पदाम्। त्वष्टुंः प्रजानां प्रथमं जनित्रमभ्रे मा हिर्रसीः पर्मे व्योमन्न। उष्ट्रमार्ण्यमन् (४४)

ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि धींद। यो अग्निरग्नेस्तप्सोऽधि जातः शोचौत्पृथिव्या उत वां दिवस्परि। येनं प्रजा विश्वकंर्मा व्यानुद्गमंग्ने हेडः परि ते वृणक्तः। अजा ह्यंग्नेरजंनिष्ट् गर्भाथ्सा वा अपश्यज्ञनितारमग्नै। तया रोहंमायन्नुप् मेध्यांसस्तयां देवा देवतामग्नं आयत्र। शुर्भमारण्यमनुं ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तनुवो नि धींद॥ (४५)

अग्रे मा हि रसीरग्रे मोष्ट्रमार्ण्यमन् शर्भं नवं च॥———[१०]

इन्द्रौंग्नी रोचना दिवः पिर् वार्जेषु भूषथः। तद्वाँ चेति प्र वीर्यम्। श्रथंद्वृत्रमुत संनोति वाजिमन्त्रा यो अग्नी सहंरी सपूर्यात्। इर्ज्यन्तां वसव्यंस्य भूरेः सहंस्तमा सहंसा वाज्यन्तां। प्र चंर्षिणभ्यंः पृतना हवेषु प्र पृंथिव्या रिरिचाथे दिवश्चं। प्र सिन्धुंभ्यः प्र गि्रिभ्यों महित्वा प्रेन्द्रौंग्नी विश्वा भुवनात्यन्या। मरुतो यस्य हि (४६)

क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुंगोपातमो जनः। युज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मर्रुतः शृणुता हवम्। श्रियसे कम्भानुभिः सम्मिमिक्षिरे ते रिष्टमिभिस्त ऋकंभिः सुखादयः। ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मार्रुतस्य धाम्नः। अवं ते हेड उदुंत्तमम्। कयां निश्चित्र आ भुवदूती सुदावृधः सखाः। कया शचिष्ठया वृता। (४७)

को अद्य युंङ्के धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून्। आसन्निषून् हृथ्स्वसो मयोभून् य एषाम् भृत्यामृणधथ्स जीवात्। अग्ने नया देवाना् शं नो भवन्तु वाजेवाजे। अपस्वंग्ने सिधृष्टव सौषंधीरनं रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः। वृषां सोम द्युमार असि वृषां देव वृषंव्रतः। वृषा धर्माणि दिधषे। इमं में वरुण तत्त्वां यामि त्वं नों अग्ने सत्वं नों अग्ने सत्वं नों अग्ने॥ (४८)

हि वृता म् एकांदश च॥———[११]

अपां त्वेमंत्र्यं पुरो भुवः प्राचीं ध्रुविक्षिति्रस्यिविरिन्द्राँग्री मा छन्दं आशुिस्रवृद्ग्नेर्भागौ-ऽस्येकयेयमेव सा याग्ने जातानृग्निर्वृत्राणि त्रयोदश॥•[१२] अपां त्वेन्द्राँग्नी इयमेव देवताता षद्गिर्श्रात्॥36॥ अपां त्वेमंन् हिवषा वर्धनेन॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

अपां त्वेमंन्थ्सादयाम्यपां त्वोद्मंन्थ्सादयाम्यपां त्वा भस्मंन्थ्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायंने सादयाम्यपीं त्वायंने सादयाम्यपीं त्वायंने सादयाम्यपीं त्वायंने सादयाम्यपीं त्वायंने सादयाम्यपीं त्वायं स्विष्ठे सर्वने सीद्याप्यपीं त्वायां स्विष्ठे सादयाम्यपीं त्वायां स्विष्ठे सादयाम्यपीं त्वायां स्विष्ठे सादयाम्यपीं त्वायां सादयाम्यपीं त्वायां सादयाम्यपीं त्वायां सादयाम्यपीं त्वायां सादयाम्यपीं त्वायां सादयां सायं सादयां साय्यां साययं सादयां सादयां साययं साययं सादयां सादयां साययं सादयां

अयम्पुरो भुवस्तस्यं प्राणो भौवायनो वंसन्तः प्राणायनो गांयत्री वांसन्ती गांयत्रियै गांयत्रं गांयत्रादुंपा १ शुरुंपा १ शोस्त्रिवृत्रिवृतों रथन्तर १ रथन्तराद्वसिष्ठ ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया प्राणं गृंह्णाम प्रजाभ्योऽयं देक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनों वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मांन्सस्त्रिष्ठुग्ग्रैष्मी त्रिष्ठुभं ऐडमैडादंन्तर्यामाँ ५ त्रयामात् पंश्वद्शः पंश्वद्शाद्वृहद्वृंहृतो भ्रद्धांज् ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया मनः (२)

गृह्णामि प्रजाभ्योऽयम्पश्चाद्विश्वव्यंचास्तस्य चक्षुंर्वैश्वव्यच्सं वर्षाणि चाक्षुषाणि जगंती वार्षी जगंत्या ऋक्षंममृक्षंमाच्छुकः शुकाथ्संप्तद्शः संप्तद्शाद्वेरूपं वैरूपाद्विश्वामित्र ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया चक्षुंर्गृह्णामि प्रजाभ्यं इदमुंत्तराथ्सुवस्तस्य श्रोत्रर्थं सौवर श्रच्छ्रौत्र्यंनुष्टुप्छांरुघंनुष्टुभंः स्वारः स्वारान्मन्थी मुन्थिनं एकविर्शा एकविर्शाद्वैराजं वैराजाञ्जमदंग्निर्ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया (३)

त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यं इयमुपरि मृतिस्तस्यै वाङ्गाती हेम्न्तो वाँच्यायनः पङ्किर्हैम्न्ती पङ्क्षी निधनंवन्निधनंवत आग्रयण आग्रयणात्रिणवत्रयस्त्रिष्शौ त्रिणवत्रयस्त्रि र्शाभ्या ५ शाक्तररैवृते शांकररैवृताभ्यां विश्वकुर्मर्षिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया वार्चं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ (४)

त्वया मनों जमदंग्निरऋषिंः प्रजापंतिगृहीतया त्रिष्शचं॥-----[२]

प्राचीं दिशां वंसन्त ऋतूनामृग्निर्देवता ब्रह्म द्रविणं त्रिवृथ्स्तोम्ः स उं पश्चदशवंतिनुस्त्र्यविवयंः कृतमयानां पुरोवातो वातः सानंग ऋषिदक्षिणा दिशां ग्रीष्म ऋंतूनामिन्द्रों देवता क्षत्रं द्रविणं पश्चदशः स्तोमः स उं सप्तदशवंतीनिर्दित्यवाङ्वयस्रोतायानां दक्षिणाद्वातो वार्तः सनातन् ऋषिः प्रतीची दिशां वर्षा ऋतूनां विश्वे देवा देवता विट् (५)

द्रविंण र सप्तद्शः स्तोमः स उवेकवि रशवंतीनिम्निवथ्सो वयो द्वापरोऽयांनाम्पश्चाद्वातो वातोंऽहभून ऋषिरुदींची दिशा श्ररदंतूनाम्मित्रावरुंणौ देवता पुष्टं द्रविणमेकवि श्राः स्तोमः स उं त्रिणुववर्तनिस्तुर्युवाङ्वयं आस्कन्दो-ऽ यानामुत्तराद्वातो वार्तः प्रत्न ऋषिरूर्ध्वा दिशा । हेमन्तशिशिरावृंतूनाम्बृहस्पतिंर्देवता वर्चो द्रविणं त्रिणवः स्तोमः स उ त्रयस्त्रि शवर्तिनः पष्ठवाद्वयोऽभिभूरयानां विष्वग्वातो वार्तः सुपर्ण ऋषिः पितरः पितामहाः परेऽवंरे ते नः पान्तु ते नोंऽवन्त्वस्मिन्ब्रह्मंत्रस्मिन्क्षत्रेंऽस्यामाशिष्यस्याम्पुंरोधार्यामस्मिन्कर्मन्नस्यां देवहृँत्याम्॥ (६)

विद्वंष्ठ्वाङ्वयोऽष्टावि ५ शतिश्च॥____

ध्रुविक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासिं ध्रुवं योनिमा सींद साध्या। उख्यंस्य केतुम्प्रंथमम्पुरस्तांद्श्विनांष्व्यू सांदयतामिह त्वां। स्वे दक्षे दक्षंपितेह सींद देवत्रा पृथिवी बृहती रराणा। स्वासस्था तुनुवा सं विशस्व पितेवैधि सूनव आ मुशेवाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वाँ। कुलायिनी वसुमती वयोधा रुयिं नी वर्ध बहुल ५ सुवीरम्ं। (७)

अपामिति दुर्मितिम्बाधंमाना रायस्पोषं युज्ञपंतिमाभजन्ती सुवेधेहि युजमानाय पोषमिश्वनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा। अग्नेः पुरीषमिस देवयानी तां त्वा विश्वे अभि गृंणन्तु देवाः। स्तोमंपृष्ठा घृतवंतीृह सींद प्रजावंदस्मे द्रविणा यंजस्वाश्विनौध्वर्यू सांदयतामिह त्वौ। दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिविष्टम्भंनी दिशामधिपत्नी भुवनानाम्। (८)

ऊर्मिर्द्रफ्सो अपामंसि विश्वकंमां त् ऋषिंरश्विनांष्व्यं सांदयतामिह त्वां। स्जूर्ऋतुभिः स्जूर्विधाभिः स्जूर्वसुंभिः स्जूर्र्द्रेवः स्जूर्विधेर्देवेः स्जूर्द्वेवः स्जूर्द्वेवं स्जूर्द्वेवंयोनाधेरुग्नये त्वा वैश्वान्रायाश्विनांष्व्यं सांदयतामिह त्वां। प्राणं में पाह्यपानं में पाहि व्यानं में पाहि चक्षुंर्म उर्व्या वि भांहि श्रोत्रं मे श्लोकयापस्पिन्वोषंधीर्जिन्व द्विपात्पांहि चतुंष्पादव दिवो वृष्टिमेरय॥ (९)

सुवीरं भुवंनानामुर्व्या सप्तदंश च॥_____

—г×1

त्र्यविर्वयंस्त्रिष्टुप्छन्दों दित्यवाङ्वयों विराद्धन्दः पश्चांविर्वयों गायत्री छन्दंस्त्रिवृथ्सो वयं उिष्णहा छन्दंस्तुर्यवाङ्वयोंऽनुष्टुप्छन्दंः पष्टवाद्वयों बृह्ती छन्दं उक्षा वयंः स्तोबृहती छन्दं ऋष्मो वयंः कुकुच्छन्दों धेनुर्वयो जगंती छन्दोंऽनुङ्घान् वयंः पङ्किश्छन्दों बस्तो वयों विवृतं छन्दों वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयंस्तुन्द्रं छन्दौं व्याघ्रो वयोऽनांधृष्टं छन्दः सिन्दो वयंश्छिदिश्छन्दों विष्टम्भो वयोऽधिपितृश्छन्दः क्षत्रं वयो मयंदं छन्दों विश्वकंर्मा वयोः परमेष्ठी छन्दो मूर्था वयंः प्रजापंतिश्छन्दः॥ (१०)

पुर्रुषो वयः षड्वि १ शतिश्व॥-

—Г., 1

इन्द्रांग्री अव्यंथमानामिष्टंकां द॰हतं युवम्। पृष्ठेन द्यावांपृथिवी अन्तरिक्षं च् वि बांधताम्॥ विश्वकंमां त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचंस्वतीम्प्रथंस्वतीम्भास्वंती॰ सूरिमतीमा या द्याम्भास्या पृंथिवीमोर्वन्तरिक्षम्नतिरक्षं यच्छान्तरिक्षं द॰हान्तरिक्षं मा हि॰सीर्विश्वंस्मै प्राणायांपानायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठायं चरित्रांय वायुस्त्वाभि पांतु मृह्या स्वस्त्या छुर्दिषां (११)

शन्तंमेन तयां देवतंयाङ्गिरस्वद्भुवा सींद। राज्ञ्यंसि प्राची दिग्वराडंसि दक्षिणा दिख्सम्राडंसि प्रतीची दिख्स्वराड्स्युदींची दिगिधंपल्यिस बृह्ती दिगायुंमें पाहि प्राणं में पाह्यपानं में पाहि व्यानं में पाहि चक्षुंमें पाहि श्रोत्रं मे पाहि मनों मे जिन्व वाचें मे पिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिंमें यच्छ॥ (१२)

छर्दिषां पिन्व षट्गं॥____

मा छन्दंः प्रमा छन्दंः प्रतिमा छन्दाँ उम्रीविश्छन्दंः पङ्किश्छन्दं उण्णिह् छन्दों बृह्ती छन्दोंऽनुष्टुप्छन्दों विराद्वन्दों गायत्री छन्दोम्भिष्टुप्छन्दो जर्गती छन्दंः पृथिवी छन्दोऽन्तिरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षंत्राणि छन्दो मनुश्छन्दो वाक्छन्दंः कृषिश्छन्दो हिर्रण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दं। अग्निर्देवताँ (१३)

वातों देवता सूर्यों देवतां चन्द्रमां देवता वसंवो देवतां रुद्रा देवतांदित्या देवता विश्वें देवा देवतां मुरुतों देवता बृह्स्पतिंद्वितेन्द्रों देवता वर्रुणो देवतां मूर्धासि राङ्गुवासिं धुरुणां युच्र्यंसि यमित्रीषे त्वोर्जे त्वां कृष्यै त्वा क्षेमांय त्वा यन्त्री राङ्गुवासि धरणी धर्त्र्यंसि धरित्र्यायुषे त्वा वर्चसे त्वौजंसे त्वा बलांय त्वा॥ (१४)

देवताऽऽर्युषे त्वा षद्वं॥———[७]

आशुस्त्रिवृद्धान्तः पंश्चद्शो व्योम सप्तद्शः प्रतूर्तिरष्टाद्शस्तपो नवद्शोऽभिवृर्तः संविर्शो धरुणं एकविर्शो वर्चौ द्वाविर्शः सम्भरंणस्त्रयोविर्शो योनिश्चतुर्विर्शो गर्भौः पश्चविर्श ओजंस्त्रिण्वः ऋतुरेकित्रिर्शः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिर्शो ब्रध्नस्यं विष्टपं चतुस्त्रिर्शो नाकंः षिद्वरशो विवर्तौऽष्टाचत्वारिरशो धर्तश्चंतुष्टोमः॥ (१५)

आृशुः सप्तित्रिर्श्शत्॥————[८]

अग्नेर्भागोंऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्मं स्पृतं त्रिवृथ्स्तोम् इन्द्रंस्य भागोंऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्र स्पृतम्पंश्रद्शः स्तोमों नृचक्षंसाम्भागोंऽसि धातुराधिपत्यं जनित्र स्पृत स्पृतः संप्तदशः स्तोमों मित्रस्यं भागोंऽसि वर्रुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वाताः स्पृता एंकिवि १ शः स्तोमोऽदित्यै भागोंऽसि पूष्ण आधिपत्यमोजाः स्पृतं त्रिणवः स्तोमो वसूनाम्भागों-ऽसि (१६)

रुद्राणामधिपत्यं चतुंष्पाथस्पृतं चतुर्विर्शः स्तोमं आदित्यानां भागोऽसि म्रुतामधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पश्चिव्रशः स्तोमो देवस्यं सिवृतुर्भागोऽसि बृह्स्पतेराधिपत्य समीचीर्दिशः स्पृताश्चेतुष्टोमः स्तोमो यावानाम्भागोऽस्ययावानामधिपत्यं प्रजाः स्पृताश्चेतुश्चत्वारिर्शः स्तोमं ऋभूणाम्भागोऽसि विश्वेषां देवानामधिपत्यम्भूतं निशान्तः स्पृतं त्रेयस्त्रिर्शः स्तोमः॥ (१७)

वसूनां भागोऽसि षद्वंत्वारि श्चा [९]

एकंयास्तुवत प्रजा अंधीयन्त प्रजापंतिरिधंपितरासीत्तिसृभिंरस्तुवत् ब्रह्मांसृज्यत् ब्रह्मणस्पितरिधंपितरासीत् पश्चिभंरस्तुवत भृतान्यंसृज्यन्त भृतानाम्पितरिधंपितरासीथ्सप्तिभंरस्तुवत् सप्तर्षयोऽसृज्यन्त धातािधंपितरासीत्रविभंरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तािदितिरिधंपत्र्यासीदेकाद्शिभंर ऽसृज्यन्तार्त्वोऽधिपितरासीत् त्रयोद्शिभंरस्तुवत् मासां असृज्यन्त संवथ्सरोऽधिपितः (१८)

आसीत्पश्चद्रशभिरस्तुवत क्षुत्रमंसुज्यतेन्द्रोऽधिपितरासीथ्सप्तद्शभिरस्तुवत पृशवी-ऽसृज्यन्त् बृह्स्पित्रिधिपितरासीन्नवद्शभिरस्तुवत शूद्रार्यावंसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकंवि शत्यास्तुवतैकंशफाः पृशवीं ऽसृज्यन्त् वरुणोऽधिपितरासी त्रयों वि श्शत्यास्तुवत क्षुद्राः पृशवीं ऽसृज्यन्त पूषाधिपितरासीत्पश्चवि शत्यास्तुवतार्ण्याः पृशवीं ऽसृज्यन्त वायुरिधेपितिरासीथ्सप्तवि शत्यास्तुवत् द्यावीपृथिवी वि (१९)

ऐतां वसंवो रुद्रा आंदित्या अनु व्यायन्तेषामाधिपत्यमासीन्नवंविश्शत्यास्तुवत् वनस्पतंयोऽसृज्यन्त् सोमोऽधिपतिरासीदेकंत्रिश्शतास्तुवत प्रजा अंसृज्यन्त् यावानां चार्यावानां चार्धिपत्यमासीन्नयंस्त्रिश्शतास्तुवत भूतान्यंशाम्यन्प्रजापंतिः परमेष्ठाधिपतिरासीत्॥ (२०)

सुं वृथ्सरोऽधिपतिर्वि पश्चन्निश्शच॥_____

-[80]

ड्यमेव सा या प्रंथमा व्यौच्छंदन्तर्स्यां चंरित प्रविष्टा। वृथूर्जजान नवगञ्जनित्री त्रयं एनाम्मिह्मानंः सचन्ते॥ छन्दंस्वती उषसा पेपिंशाने समानं योनिमन् सञ्चरंन्ती। सूर्यपत्नी वि चंरतः प्रजानती केतुं कृण्वाने अजरे भूरिंरेतसा॥ ऋतस्य पन्थामन् तिस्र आगुस्त्रयों घुर्मासो अनु ज्योतिषागुंः। प्रजामेका रक्षत्यूर्जमेका (२१)

ब्रुतमेकां रक्षिति देवयूनाम्॥ चृतुष्टोमो अंभवद्या तुरीयां यज्ञस्यं पृक्षावृंषयो भवंन्ती। गायुत्रीं त्रिष्टुमं जर्गतीमनुष्टुभंम्बृहद्कं युंआनाः सुवराभंरत्रिदम्॥ पृश्चभिर्धाता वि दंधाविदं यत्तासा्ड् स्वसॄंरजनयृत्पश्चंपश्च। तासांमु यन्ति प्रयुवेण पश्च नानां रूपाणि ऋतंवो वसानाः॥ त्रिष्शथ्स्वसार् उपं यन्ति निष्कृत संमानं केतुम्प्रतिमुश्चमानाः। (२२)

ऋतू इस्तंन्वते क्वयंः प्रजान्तीर्मध्येछन्दसः परि यन्ति भास्वंतीः। ज्योतिष्मती प्रतिं मुञ्जते नभो रात्रीं देवी सूर्यस्य ब्रतानिं। वि पंश्यन्ति पृशवो जायमाना नानांरूपा मातुर्स्या उपस्थैं। एकाष्ट्रका तपंसा तप्यंमाना ज्जान् गर्भम्महिमान्मिन्द्रम्। तेन् दस्यून्व्यंसहन्त देवा हुन्तासुंराणामभव्च्छचींभिः। अनानुजामनुजाम्मामंकर्त सृत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत्। भूयासम् (२३)

अस्य सुमृतौ यथां यूयमृन्या वों अन्यामित मा प्र युंक्त। अभून्ममं सुमृतौ विश्ववेदा आष्टं प्रतिष्ठामिवेदि गाधम्। भूयासंमस्य सुमृतौ यथां यूयमृन्या वों अन्यामित मा प्र युंक्त। पश्च व्युष्टीरनु पश्च दोहा गां पश्चनाम्नीमृतवोऽनु पश्च। पश्च दिशः पश्चदशेनु क्रप्ताः संमानमूर्भीरिभ लोकमेकम् (२४)

ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूष्य्यपामेकां मिह्मानंम्बिभिति। सूर्यस्यैका चरित निष्कृतेषुं घर्मस्यैकां सिवृतेकां नि यंच्छति। या प्रथमा व्योच्छ्रथ्सा धेनुरंभवद्यमे। सा नः पर्यस्वती धुक्ष्वोत्तरामृत्तराष्ट्रं समाम्। शुक्रर्षमा नर्भसा ज्योतिषागाँद्विश्वरूपा शब्लीर्ग्निकेतुः। समानमर्थक्षं स्वपस्यमाना बिभ्रंती ज्रामंजर उष आगाः। ऋतूनाम्पत्नीं प्रथमेयमागादहाँ नेत्री जनित्री प्रजानाम्। एकां सती बंहुधोषो व्यंच्छ्रस्यजींर्णा त्वं जंरयसि सर्वमन्यत्॥ (२५)

ऊर्जुमेकौ प्रतिमुश्रमांना भूयासुमेकुं पत्र्येकान्नवि ५ शृतिश्चं॥————[११]

अभ्रें जातान्त्र णुंदा नः सपत्नान्त्रत्यजांताञ्चातवेदो नुदस्व। अस्मे दींदिहि सुमना अहंडन्तवं स्यार् शर्मित्रवर्रूष उद्भित्। सहंसा जातान्त्र णुंदा नः सपत्नान्त्रत्यजांताञ्चातवेदो नुदस्व। अधि नो ब्रूहि सुमन्स्यमांनो वयक्ष स्याम् प्र णुंदा नः सपत्नान्। चतुश्चत्वारिर्शः स्तोमो वर्चो द्रविण पोडशः स्तोम ओजो द्रविणं पृथिव्याः पुरीषमिस (२६)

अफ्सो नामं। एव्ष्छन्दो वरिव्ष्छन्दः शम्भूष्ठछन्दः परिभूष्छन्दं आच्छच्छन्दो मन्ष्छन्दो व्यच्ष्रछन्दः सिन्धुष्रछन्दः समुद्रं छन्दः सिक्तिलं छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तुरं छन्दो निकायश्चन्दो विव्धष्रछन्दो गिर्ष्छन्दो अज्रष्ठक्दः सृष्टुप्छन्दोऽनुष्टुप्छन्देः कुकुच्छन्दोस्निकुकुच्छन्देः काव्यं छन्दौऽङ्कुपं छन्दैः (२७)

प्दपंङ्किश्छन्दोऽक्षरंपङ्किश्छन्दों विष्टारपंङ्किश्छन्देः क्षुरो भृज्वाञ्छन्देः प्रच्छच्छन्देः पक्षश्छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विशालं छन्दो विष्पंर्धाश्छन्देश्छ्दिश्छन्दों दूरोहुणं छन्देस्तुन्द्रं छन्दौऽङ्काङ्कं छन्देः॥ (२८)

अस्यङ्कुपञ्छन्दस्रयंस्रि १शच॥_____

-[१२]

अग्निर्वृत्राणिं जङ्कनद्भविणस्युर्विपन्ययाँ। सिर्मिद्धः शुक्र आहुंतः॥ त्व॰ सोमासि सत्पतिस्त्व॰ राजोत वृंत्रहा। त्वं भद्रो अंसि कर्तुः॥ भद्रा तें अग्ने स्वनीक सन्दग्घोरस्य स्तो विषुणस्य चार्रुः। न यत्ते शोचिस्तर्मसा वर्रन्त न ध्वस्मानस्तुनुवि रेप आ धुः॥ भुद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य। (२९)

रुशं दृशे दृष्टशे नक्त्या चिदरूँ क्षितं दृश आ रूपे अन्नम्। सैनानींकेन सुविदन्नों अस्मे यष्टां देवार आयंजिष्ठः स्वस्ति। अदंब्यो गोपा उत नंः पर्स्पा अग्नें द्युमदुत रेविहेंदीहि। स्वस्ति नों दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुंधेहि यज्जथांय देव। यथ्सीमहिं दिविजातु प्रशंस्तुं तद्स्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। यथां होतुर्मनुंषः (३०)

देवतांता युज्ञेभिः सूनो सहस्मे यजांसि। पृवानों अद्य संम्ना संमानानुशन्नंग्र उश्तो यक्षि देवान्॥ अग्निमींडे पुरोहिंतं युज्ञस्यं देवमृत्विजम्। होतांर र रब्धातंमम्॥ वृषां सोम द्युमार असि वृषां देव वृषंव्रतः। वृषा धर्माणि दिधषे॥ सान्तंपना इदर ह्विर्मरुत्स्तज्ञंजुष्टन। युष्माकोती रिशादसः॥ यो नो मर्तो वसवो दुर्हणायुस्तिरः स्त्यानिं मरुतः (३१)

जिघारंसात्। द्रुहः पाशुं प्रति स मुंचीष्ट् तिपिष्ठेन तपंसा हन्तना तम्। संवथ्सरीणां मुरुतः स्वर्का उंश्वयाः सर्गणा मानुषेषु। तेंऽस्मत्पाशान्त्र मुंश्चन्त्वश्हंसः सान्तपुना मंदिरा मांदियण्णवः। पिप्रीहि देवाश उंश्वतो यंविष्ठ विद्वाश ऋतूश्र्रऋतुपते यजेह। ये देव्यां ऋत्विज्सतेभिरग्ने त्वश होतॄंणाम्स्यायंजिष्ठः। अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावंक (३२)

शोचे वेष्व है यज्वाँ। ऋता यंजासि मिहना वि यद्भ्रह्व्या वंह यविष्ठ या ते अद्या अग्निनां रियमंश्रवत्योषंमेव दिवेदिवे। यशसंं वीरवंत्तमम्॥ गृयस्फानों अमीवहा वंसुवित्युंष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव। गृहंमेधास आ गृत मरुतो मापं भूतन। प्रमुश्चन्तों नो अहहंसः। पूर्वीभिर्हि दंदाशिम श्राद्भिंमरुतो व्यम्। महोंभिः (३३)

चर्षणीनाम्। प्र बुध्नियां ईरते वो महा रेसि प्र णामांनि प्रयज्यवस्तिरध्वम्। सहस्रियं दम्यम्भागमेतं गृहमेधीयम्मरुतो जुषध्वम्। उप यमेतिं युवृतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्ंहुविष्मंती घृताचीं। उप स्वैनंमरमंतिर्वसूयः। इमो अंग्ने वीततमानि ह्व्याजंग्नो विक्षे देवतांतिमच्छं। प्रतिं न ई सर्भीणि वियन्तु। क्रीडं वः शर्थो मारुतमनुर्वाणरं रथेशुभम्। (३४)

कण्वां अभि प्र गांयत। अत्यांसो न ये मुरुतः स्वश्चों यक्षुदृशो न शुभयंन्तु मर्याः। ते हंम्येष्टाः शिशंवो न शुभा वृथ्सासो न प्रेक्तीडिनः पयोधाः। प्रैषामज्मेषु विथुरेवं रेजते भूमियांमेषु यद्धं युअते शुभे। ते क्रीडयो धुनयो भ्राजंदृष्टयः स्वयं मंहित्वं पंनयन्त धूतंयः। उपह्नुरेषु यदचिध्वं यृथिं वयं इव मरुतः केनं (३५)

चित्पथा। श्चोतंन्ति कोशा उपं वो रथेष्वा घृतमुंक्षता मध्वण्मचंते। अग्निमंग्निष्ट् हवींमिभः सदां हवन्त विश्पितिम्। ह्व्यवाहं पुरुप्रियम्। त॰ हि शश्चंन्त ईडंते स्रुचा देवं घृंतश्चतां। अग्नि॰ ह्व्याय वोढंवे। इन्द्रांग्नी रोचना दिवः श्लथंद्वृत्रमिन्द्रं वो विश्वतस्परीन्द्रं नरो विश्वंकर्मन् ह्विषां वावृधानो विश्वंकर्मन् ह्विषा वर्धनेन॥ (३६)

सूर्यस्य मनुषो मरुतः पार्वक महोभी रथेशुभं केन् षद्वंत्वारि श्चा ——[१३] रशिमरंसि राज्ञ्यंस्ययं पुरो हरिकेशोऽग्निर्मूर्धेन्द्राग्निभ्यां बृह्स्पतिंभूयस्कृदंस्यग्निनां विश्वाषाद्वजापंतिर्मनसा कृत्तिका मधुश्च समिद्दिशां द्वादंश।—[१४] रशिमरंसि प्रति धेनुमंसि स्तनियनुसनिरस्यादित्याना र् सुप्तित्र शत्॥37। रशिमरंसि को अद्य युंङ्के॥

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

र्श्मिरंसि क्षयांय त्वा क्षयं जिन्व प्रेतिंरसि धर्माय त्वा धर्मं जिन्वान्विंतिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व संधिरंस्यन्तिरंक्षाय त्वान्तिरंक्षं जिन्व प्रतिधिरंसि पृथिव्यै त्वां पृथिवीं जिन्व विष्टम्भोऽसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व प्रवास्यह्वे त्वाहंर्जिन्वानुवासि रात्रियै त्वा रात्रिं जिन्वोशिर्गसि (१)

वसुंभ्यस्त्वा वसूँश्चिन्व प्रकेतोंऽसि रुद्रेभ्यंस्त्वा रुद्राश्चिन्व सुदीतिरंस्यादित्येभ्यंस्त्वा ऽऽदित्याश्चिन्वौजोंऽसि पितृभ्यंस्त्वा पितृश्चिन्व तन्तुंरिस प्रजाभ्यंस्त्वा प्रजा जिन्व पृतनाषाडंिस पृशुभ्यंस्त्वा पृशूञ्चिन्व रेवद्स्योषंधीभ्यस्त्वौषंधीर्जिन्वाभिजिदंिस युक्तग्रावेन्द्रांय त्वेन्द्रं जिन्वाधिपतिरिस प्राणायं (२)

त्वा प्राणं जिन्व यन्तास्यंपानायं त्वापानं जिन्व स्र्सर्पोऽसि चक्षुंषे त्वा चक्षुंर्जिन्व वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्व त्रिवृदंसि प्रवृदंसि संवृदंसि विवृदंसि सर्गेहोंऽसि नीगेहोंऽसि प्रगेहोंऽस्यनुगेहोंऽसि वसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिरसि॥ (३)

उ्शिर्गसि प्राणाय त्रिचंत्वारिर्शच॥______[१

राज्यंसि प्राची दिग्वसंवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनाम्प्रंतिधर्ता त्रिवृत्त्वा स्तोमंः पृथिव्या श्रंयत्वाज्यंमुक्थमव्यंथयथ्स्तभ्रातु रथन्तुर साम् प्रतिष्ठित्ये विराडंसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय् इन्द्रों हेतीनाम्प्रंतिधर्ता पंश्चद्रशस्त्वा स्तोमंः पृथिव्या श्रंयतु प्रउंगमुक्थमव्यंथयथ्स्तभ्रातु बृहथ्साम् प्रतिष्ठित्ये सुम्राडंसि प्रतीची दिक् (४)

आदित्यास्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनाम्प्रंतिधर्ता संप्तद्रशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याः श्रंयत् मरुत्वतीयंमुक्थमव्यंथयथस्तभ्रात् वैरूपः साम् प्रतिष्ठित्ये स्वराड्स्युदींची दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो वर्रुणो हेतीनाम्प्रंतिधर्तेकंविःशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याः श्रंयतु निष्कंवल्यमुक्थमव्यंथयथस्तभ्रात् वैराजः साम् प्रतिष्ठित्या अधिपत्यसि बृह्ती दिङ्गरुतंस्ते देवा अधिपतयः (५)

बृह्स्पतिंर्हेतीनाम्प्रंतिधृतां त्रिणवत्रयिख्ने १ शौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याः श्रंयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यंथयन्ती स्तभ्रीताः शाक्कररैवृते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षायर्षयस्त्वा प्रथम्जा देवेषुं दिवो मात्रया विष्णा प्रथन्तु विधृतां चायमिष्पंपितिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकंस्य पृष्ठे सुंवर्गे लोके यर्जमानं च सादयन्तु॥ (६)

प्रतीची दिङ्गरुतंस्ते देवा अधिपतयश्चत्वारिष्शचं॥————[२]

अयम्पुरो हरिकेशः सूर्यरिशमस्तस्यं रथगृथ्सश्च रथौजाश्च सेनानिग्रामृण्यौ पुञ्जिकस्थला चं कृतस्थला चौप्प्सरसौ यातुधानां हेती रक्षार्थसि प्रहेतिर्यं दक्षिणा विश्वकंर्मा तस्यं रथस्वनश्च रथेंचित्रश्च सेनानिग्रामृण्यौ मेनका चं सहजुन्या चौप्प्सरसौ दङ्खवंः पृशवों हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिर्यम्पश्चाद्विश्वव्यंचास्तस्य रथप्रोतृश्चासंमरथश्च सेनानिग्रामृण्यौ प्रम्लोचंन्ती च (७)

अनुम्लोचेन्ती चापस्रसौं सूर्पा हेतिर्व्याघाः प्रहेतिर्यमुंत्त्राथ्स्यद्वंसुस्तस्यं सेन्जिचं सुषेणंश्च सेनानिग्राम्ण्यौं विश्वाचीं च घृताचीं चापस्रसावापों हेतिर्वातः प्रहेतिर्यमुपर्यवाग्वंसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्ठनेमिश्च सेनानिग्राम्ण्यांबुर्वशीं च पूर्वचित्तिश्चापस्रसौ विद्युद्धेतिरंवस्फूर्जुन्प्रहेंतिस्तेभ्यो नम्स्ते नी मृडयन्तु ते यम् (८)

द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधाम्यायोस्त्वा सदेने सादयाम्यवंतश्छायायां नमेः समुद्राय नमेः समुद्रस्य चक्षंसे परमेष्ठी त्वां सादयत् दिवः पृष्ठे व्यचंस्वतीम्प्रथंस्वतीं विभूमंतीम्प्रभूमंतीं पिर्भूमंतीं दिवं यच्छु दिवं द १ ह दिवं मा हि १ सीविश्वंस्मै प्राणायापानायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठायें चरित्रांय सूर्यस्त्वाभि पातु मह्या स्वस्त्या छुर्दिषा शन्तंमेन तयां देवतंयाङ्गिरस्वद्भुवा सीद। प्रोथदश्चो न यवंसे अविष्यन् यदा महः संवरंणाद्यस्थात्। आदंस्य वातो अनुं वाति शोचिरधं स्म ते व्रजनं कृष्णमंस्ति॥ (९)

प्रम्रोचंन्ती च यः स्वस्त्याष्टाविरंशतिश्च॥______

अग्निर्मूर्धा दिवः कुकुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपार रेतार्रसि जिन्वति॥ त्वामंग्ने पुष्कंरादध्यथंर्वा निरंमन्थत। मूर्ग्नो विश्वंस्य वाघतः॥ अयम्ग्निः संहुम्भिणो वाजंस्य श्तिनस्पतिः। मूर्धा क्वी रंयीणाम्॥ भुवो यज्ञस्य रजंसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सर्चसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दिधेषे सुवर्षां जिह्वामंग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥ अबौध्यग्निः स्मिधा जनांनाम् (१०)

प्रति धेनुमिंवायतीमुषासम्। यह्वा इंव प्र वयामुजिहांनाः प्र भानवंः सिस्रते नाक्मच्छं। अवोचाम क्वये मेध्याय वचो वन्दारुं वृष्भाय वृष्णें। गविष्ठिरो नर्मसा स्तोमंमुग्नौ दिवीवं रुक्ममुर्व्यश्चेमश्रेत्। जनस्य गोपा अंजनिष्ट जागृंविर्प्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृह्ता दिविस्पृशां द्युमद्वि भांति भरतेभ्यः शुचिः। त्वामंग्ने अङ्गिरसः (११)

गुहां हितमन्वंविन्दिञ्छिश्रियाणं वनेवने। स जांयसे मृथ्यमांनः सहों मृहत्त्वामांहुः सहंसस्पुत्रमंङ्गिरः। युज्ञस्यं केतुम्प्रंथुमम्पुरोहितमृग्निं नरिश्लिषधस्थे सिमन्धित। इन्द्रेण देवैः स्रथ्रं स ब्रहिष् सीदिन्नि होतां युज्ञथाय सुक्रतुः। त्वं चित्रश्रवस्तम् हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्नें हृव्याय् वोढंवे। सर्खायः सं वंः सुम्यश्रुमिषम् (१२)

स्तोमं चाग्नयं। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो निष्ठे सहंस्वते। सरस्मिद्यंवसे वृषन्त्रश्चे विश्वांन्यर्य आ। इडस्पदे सिमंध्यसे स नो वसून्या भरा एना वो अग्निं नमंसोर्जो नपातमा हुंवे। प्रियं चेतिष्ठमर्ति स्वध्वरं विश्वस्य दूतम्मृतम्। स योजते अरुषो विश्वभोजसा स दुंद्रवृथ्स्वांहुतः। सुब्रह्मां युज्ञः सुशर्मीं (१३)

वसूनां देव॰ राधो जनांनाम्। उदंस्य शोचिरंस्थादाजुह्वांनस्य मीढुषंः। उद्धूमासों अरुषासों दिविस्पृशः समृग्निमिन्थते नरंः। अग्ने वार्जस्य गोमंत ईशांनः सहसो यहो। अस्मे धेहि जातवेदो मिहु श्रवंः। स ईधानो वसुंष्क्विवर्ग्निरीडेन्यों गिरा। रेवद्स्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि। क्षुपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोंरुतोषसंः। स तिंग्मजम्भ (१४)

रक्षसों दह् प्रतिं। आ तें अग्न इधीमिह द्युमन्तंं देवाजरम्ं। यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयंति द्यवीष एक्ष्यं स्तोतृभ्य आ भर। आ तें अग्न ऋचा ह्विः शुक्रस्यं ज्योतिषस्पते। सुश्चन्द्र दस्म विश्पेते हव्यंवाद्गुभ्य र्ह्ष हूयत् इष एक्ष्येत् आ भर। उभे सुश्चन्द्र सूर्पिषो दर्वीं श्रीणीष आसिनं। उतो न उत्यंपूर्याः (१५)

उक्थेषुं शवसस्पत् इष इंस्तोतृभ्य आ भंर। अग्ने तम्द्याश्वं न स्तोमैः ऋतुं न भूद्र इंदिस्पृशम्। ऋध्यामां त ओहैंः। अधा हांग्ने ऋतींभूंद्रस्य दक्षंस्य साधोः। रथीर्ऋतस्यं बृह्तो बुभूथं। आभिष्टं अद्य गीभिंगृंणन्तोऽग्ने दाशेम। प्र ते दिवो न स्तंनयन्ति शुष्माः। एभिर्नो अर्कैभवां नो अर्वाङ् (१६)

सुवर्न ज्योतिः। अग्ने विश्वंभिः सुमना अनीकैः। अग्नि॰ होतांरम्मन्ये दास्वंन्तं वसौः सूनु॰ सहंसो जातवेदसम्। विग्नं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वयां स्वध्वरो देवो देवाच्यां कृपा। घृतस्य विभ्रांष्टिमनुं शुक्रशोचिष आजुह्वांनस्य सुर्पिषः। अग्ने त्वन्नो अन्तंमः। उत त्राता शिवो भव वरूथ्यः। तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः। सुम्नायं नूनमीमहे सर्खिभ्यः। वसुंरुग्निर्वसुंश्रवाः। अच्छां नक्षि द्युमत्तंमो रुपिं दाः॥ (१७)

जनांनामङ्गिरस् इषर् सुशर्मी तिग्मजम्भ पुपूर्या अर्वाङ्घसुंश्रवाः पञ्चं च॥———[४]

इन्द्राग्निभ्यां त्वा स्युजां युजा युनज्म्याघाराभ्यां तेजंसा वर्चसोक्थेभिः स्तोमेंभिश्छन्दोंभी रय्ये पोषांय सजातानांम्मध्यम्स्थेयांय मयां त्वा स्युजां युजा युनज्म्यम्बा दुला नित्तित्रभ्रयंन्ती मेघयंन्ती वर्षयंन्ती चुपुणीका नामांसि प्रजापंतिना त्वा विश्वाभिर्धीभिरुपं दधामि पृथिव्युंदपुरमन्नेन विष्टा मंनुष्यांस्ते गोप्तारोऽग्निर्वियंत्तोऽस्यां तामहम्प्र पंद्ये सा (१८)

मे शर्म च वर्म चास्त्वधिद्यौर्न्तरिक्षं ब्रह्मणा विष्टा मुरुतंस्ते गोप्तारी वायुर्वियंत्तोऽस्यां तामहम्प्र पद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु द्यौरपंराजितामृतेन विष्टादित्यास्ते गोप्तारः सूर्यो वियंत्तोऽस्यां तामहम्प्र पंद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु॥ (१९)

बृह्स्पतिंस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वंस्मै प्राणायांपानाय विश्वं ज्योतिंपच्छाग्निस्तेऽधिंपतिर्विश्वकंमां त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिंष्मतीं विश्वंस्मै प्राणायांपानाय विश्वं ज्योतिंर्यच्छ वायुस्तेऽधिंपतिः प्रजापितस्त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिंष्मतीं विश्वंस्मै प्राणायांपानाय विश्वं ज्योतिंर्यच्छ परमेष्ठी तेऽधिंपतिः पुरोवातसिनंरस्यभ्रसिनंरसि विद्युथ्सिनंः (२०)

असि स्तृन्यिबुसनिरसि वृष्टिसनिरस्यग्नेर्यान्यंसि देवानांमग्नेयान्यंसि वायोर्यान्यंसि देवानां वायोयान्यंस्यन्तिरंक्षस्य यान्यंसि देवानांमन्तिरक्षयान्यंस्यन्तिरंक्षमस्यन्तिरंक्षाय त्वा सिल्लिलायं त्वा सर्णांकाय त्वा सतींकाय त्वा केतांय त्वा प्रचेतसे त्वा विवंस्वते त्वा दिवस्त्वा ज्योतिष आदित्येभ्यंस्त्वर्चे त्वां रुचे त्वां द्युते त्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा यशोदां त्वा यशंसि तेजोदां त्वा तेजंसि पयोदां त्वा पर्यसि वर्चोदां त्वा वर्चसि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि तेनर्षिणा तेन ब्रह्मणा तयां देवतंयाङ्गिरस्वद्भवा सींद॥ (२१)

विद्युथ्सिनेर्द्युत्वैकान्नत्रिर्शर्च॥————[६]

भूयस्कृदंसि विश्वस्कृदंसि प्राच्यंस्यूर्ध्वास्यंन्तिरिक्षसदंस्यन्तिरिक्षे सीदाफ्सुषदंसि श्येन्सदंसि गृध्रसदंसि सुपर्णसदंसि नाकुसदंसि पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयाम्यन्तिरिक्षस्य त्वा द्रविणे सादयामि दिवस्त्वा द्रविणे सादयामि दिवशं त्वा द्रविणे सादयामि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि प्राणं में पाह्यपानं में पाहि व्यानम्में (२२)

पाह्मायुंर्मे पाहि विश्वायुंर्मे पाहि सुर्वायुंर्मे पाह्मग्ने यत्ते पर्९ हन्नाम् तावेहि सर् रंभावहै पार्श्वजन्येष्वप्येष्यग्ने यावा अर्यावा एवा ऊमाः सब्दः सर्गरः सुमेकंः॥ (२३)

अग्निनां विश्वाषाद्थ्सूर्येण स्वराद्भत्वा शचीपतिर्ऋष्भेण त्वष्टां यज्ञेनं मुघवान्दक्षिणया सुवर्गो मृन्युनां वृत्रहा सौहाँद्येन तनूधा अत्रेन् गर्यः पृथिव्यासंनोदृग्भिरंत्रादो वेषद्भारेणुर्दः साम्नां तनूपा विराजा ज्योतिष्मान् ब्रह्मणा सोमुपा गोभिर्युज्ञं दांधार क्षत्रेणं मनुष्यानश्वेन च रथेन च वृज्यृंतुभिंः प्रभुः संवथ्सरेणं परिभूस्तपुसानांधृष्टः सूर्यः सन्तनूभिंः॥ (२४)

अ्प्रिनैका्त्रपंश्चाशत्॥————[८]

प्रजापंतिर्मन्सान्धोऽच्छेंतो धाता दीक्षाया सिवता भृत्यां पूषा सोम्कर्यण्यां वर्रुण् उपंनुद्धोऽस्ंरः कीयमाणो मित्रः कीतः शिंपिविष्ट आसांदितो नरन्धिषः प्रोह्ममाणो-ऽधिपतिरागंतः प्रजापंतिः प्रणीयमानोऽग्निराग्नीष्ट्रो बृहस्पतिराग्नीप्रात्रणीयमान् इन्द्रों हिवधीने-ऽदितिरासांदितो विष्णुंरुपाविह्नयमाणोऽथवीपौत्तो यमोऽभिषुंतोऽपूत्पा आंधूयमानो वायः पूयमानो मित्रः क्षींर्श्रीर्मन्थी संत्तुश्रीर्वैश्वदेव उन्नीतो रुद्र आहुंतो वायुरावृंत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भृक्ष आगंतः पितृणां नांराश्र्साऽस्रुरात्तः सिन्धुंरवभृथमंवप्रयन्थ्संमुद्रोऽवंगतः सिल्ठः प्रष्टुंतः सुवंरुदर्चं गृतः॥ (२५)

रुद्र एकंवि॰शतिश्च॥____

—[o]

कृत्तिंका नक्षेत्रम्प्रिर्देवताग्ने रुचे स्थ प्रजापंतेर्धातुः सोमंस्युर्चे त्वां रुचे त्वां द्युते त्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षेत्रं प्रजापंतिर्देवतां मृगशीर्षं नक्षेत्र सोमों देवतार्द्रा नक्षेत्र रुद्रो देवता पुनर्वसू नक्षेत्रमदितिर्देवतां तिष्यों नक्षेत्रम्बृह्स्पतिर्देवतांश्लेषा नक्षेत्र सूर्पा देवतां मुघा नक्षेत्रम्पितरों देवता फल्गुंनी नक्षेत्रम् (२६)

अर्थमा देवता फल्गुंनी नक्षंत्रम्भगों देवता हस्तो नक्षंत्र सिवता देवतां चित्रा नक्षंत्रमिन्द्रों देवतां स्वाती नक्षंत्रं वायुर्देवता विशांखे नक्षंत्रमिन्द्राग्नी देवतांऽनूराधा नक्षंत्रम्मित्रो देवतां रोहिणी नक्षंत्रमिन्द्रों देवतां विचृतौ नक्षंत्रम्मितरों देवतांषाढा नक्षंत्रमापों देवतांषाढा नक्षंत्र वेवतां श्रोणा नक्षंत्र विष्णुंदेवता श्रविष्ठा नक्षंत्र वसंवः (२७)

देवतां श्तिभिष्ङ्गक्षंत्रमिन्द्रों देवतां प्रोष्ठपदा नक्षंत्रम्ज एकंपाद्देवतां प्रोष्ठपदा नक्षंत्रमहिंबुंध्रियों देवतां रेवती नक्षंत्रं पूषा देवतां खयुजौ नक्षंत्रमिनौ देवतां पूभरंणीर्नक्षंत्रं युमो देवतां पूर्णा पुश्चाद्यत्ते देवा अदंधुः॥ (२८)

फल्गुनी नक्षेत्रं वसंवस्त्रयंस्त्रि शच॥————

[80]

मधुंश्च माधंवश्च वासंन्तिकावृत् शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मांवृत् नभंश्च नभुस्यंश्च वार्षिकावृत् इषश्चोर्जश्च शारदावृत् सहंश्च सहस्यंश्च हैमंन्तिकावृत् तपंश्च तपुस्यंश्च शैशिरावृत् अग्नेरंन्तःश्चेषोऽसि कल्पंतां द्यावांपृथिवी कल्पंन्तामाप ओषंधीः कल्पंन्तामग्नयः पृथङ्गम् ज्यैष्ठ्यांय सर्वताः (२९)

यैंऽग्नयः समंनसोऽन्त्रा द्यावांपृथिवी शैंशिरावृत् अभि कल्पंमाना इन्द्रंमिव देवा अभि सं विंशन्तु संयच् प्रचेताश्चाग्नेः सोमंस्य सूर्यस्योग्ना चं भीमा चं पितृणां यमस्येन्द्रंस्य ध्रुवा चं पृथिवी चं देवस्यं सिवृतुर्म्रुरुतां वर्रुणस्य धर्त्री च धरित्री च मित्रावरुणयोर्मित्रस्यं धातुः प्राची च प्रतीची च वसूना र रुद्राणाम् (३०)

आदित्यानान्ते तेऽधिपतयस्तेभ्यो नमस्ते नौ मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामि सहस्रंस्य प्रमा असि सहस्रंस्य प्रतिमा असि सहस्रंस्य विमा असि सहस्रंस्योन्मा असि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वेमा में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्त्वेकां च शृतं चं सहस्रं चायुतं च (३१)

नियुतं च प्रयुत् चार्षुदं च न्यंर्षुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तंश्च परार्धश्चेमा में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्तु षृष्टिः सहस्रंमयुत्मक्षीयमाणा ऋत्स्थाः स्थंर्तावृधों घृतश्चतों मधुश्चत ऊर्जस्वतीः स्वधाविनीस्ता में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्तु विराजो नामं कामदुधां अमुत्रामुष्मिं ह्याँके॥ (३२)

सव्रंता रुद्राणांम्युर्तं च पश्चंचत्वारि शच॥———[११]

स्मिद्दिशामा्शयां नः सुवर्विन्मधो्रतो माधंवः पात्वस्मान्। अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदाँभ्य इदं क्षत्र रक्षतु पात्वस्मान्। र्थंत्र सामंभिः पात्वस्मान्गांयत्री छन्दंसां विश्वरूपा। त्रिवृत्नों विष्ठया स्तोमो अह्रारं समुद्रो वातं इदमोजंः पिपर्तु। उग्रा दिशाम्भिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहंन्योज्सीनाँ। इन्द्राधिपतिः पिपृतादतों नो महिं (३३)

क्षत्रं विश्वतो धारयेदम्। बृहथ्सामं क्षत्रभृद्धृद्धवृंष्णियं त्रिष्टभौजंः शुभितसुग्रवीरम्। इन्द्र स्तोमेन पश्चद्रशेन मध्यमिदं वार्तेन सगरेण रक्ष। प्राची दिशा॰ सहयंशा यशस्वती विश्वे देवाः प्रावृषाह्य सुवर्वती। इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाधृष्ट॰ सहस्रियु॰ सहंस्वत्। वैरूपे सामंत्रिह तच्छकेम् जगत्यैनं विक्ष्वा वेशयामः। विश्वे देवाः सप्तद्शेनं (३४)

वर्च इदं क्षुत्र संलिलवांतमुग्रम्। धूत्री दिशां क्षुत्रमिदं दांधारोपुस्थाशांनाम्मित्रवंदुस्त्वोजः। मित्रांवरुणा शुरदाह्रां चिकिलू अस्मै राष्ट्राय मिह् शर्म यच्छतम्। वैराजे सामृन्नधिं मे मनीषानुष्टुभा सम्भृतं वीर्यर्थ सहंः। इदं क्षुत्रम्मित्रवंदार्द्रदांनु मित्रांवरुणा रक्षंतुमाधिपत्यैः। सुम्राड्विशा सहसामी सहंस्वत्यृतुर्हेमन्तो विष्ठयां नः पिपर्तु। अवस्युवांताः (३५)

बृह्तीर्नु शक्नरीरिमं यज्ञमंवन्तु नो घृताचीः। सुवंवंती सुदुघां नः पर्यस्वती दिशां देव्यंवतु नो घृताचीं। त्वं गोपाः पुंरएतोत पृश्चाह्रह्रंस्पते याम्यां युङ्क्ति वाचम्ं। ऊर्ध्वा दिशाः रन्तिराशौषंधीनाः संवथ्सरेणं सिवता नो अह्नाम्। रेवथ्सामातिंच्छन्दा उ छन्दोजांतशत्रः स्योना नो अस्तु। स्तोमंत्रयस्त्रिःशो भुवनस्य पित्व विवंस्वद्वाते अभि नेः (३६)

गृणाहि। घृतवंती सवित्राधिपत्यैः पर्यस्वती रन्तिराशां नो अस्त्। ध्रुवा दिशां विष्णुपत्यघीरास्येशांना सहंसो या मनोतां। बृह्स्पतिर्मात्रिश्चोत वायुः संधुवाना वातां अभि नो गृणन्त्। विष्टुम्भो दिवो धुरुणंः पृथिव्या अस्येशांना जगंतो विष्णुपत्नी। विश्वव्यंचा इषयंन्ती सुभूतिः शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे। वैश्वानरो न ऊत्या पृष्टो दिव्यनुं नोऽद्यानुंमतिरन्विदंनुमते त्वङ्कयां नश्चित्र आ भुंवत्को अद्य युंङ्क्षे॥ (३७)

महिं सप्तद्शेनांवस्युवांता अभि नोऽनुं नृश्चतुंर्दश च॥———[१२]

नमंस्ते रुद्र नमों हिरंण्यबाहवे नमः सहंमानाय नमं आव्याधिनींश्यो नमों भुवाय नमों ज्येष्ठाय नमों दुन्दुश्याय नमः सोमाय नमं इरिण्याय द्रापें सहस्राण्येकांदश॥=[१३] नमंस्ते रुद्र नमों भुवाय द्रापें सप्तविरंशतिः॥27॥ नमंस्ते रुद्र तं वो जम्भे दधामि॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

नमंस्ते रुद्र मृन्यवं उतो त् इषंवे नमंः। नमंस्ते अस्तु धन्वंने बाहुभ्यांमुत ते नमंः। या त् इषुंः शिवतंमा शिवम्बभूवं ते धनुंः। शिवा शंर्व्या या तव तयां नो रुद्र मृडय। या ते रुद्र शिवा तुनूरघोरापांपकाशिनी। तयां नस्तुनुवा शन्तंमया गिरिंशन्ताभि चांकशीहि। यामिषुं गिरिशन्तु हस्तें (१)

बिभुर्ष्यस्तंवे। शिवां गिरित्रृ तां कुंरु मा हिर्श्सोः पुरुषं जगंत्। शिवेन् वर्चसा त्वा गिरिशाच्छां वदामसि। यथां नः सर्वमिञ्जगंदयक्ष्मश् सुमना असंत्। अध्यवीचदिधवक्ता प्रंथमो दैव्यों भिषक्। अहीर्श्रश्च सर्वांश्चम्भयन्थ्सर्वांश्च यातुधान्यः। असौ यस्ताम्रो अंरुण उत बभुः सुमङ्गलंः। ये चेमा रुद्रा अभितों दिक्षु (२)

श्रिताः संहस्रशोऽवैषा हेर्ड ईमहे। असौ योऽवसर्पति नीलंग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अंदश्त्रदंशन्नुदहार्यः। उतैनं विश्वां भूतानि स दृष्टो मृंडयाति नः। नमों अस्तु नीलंग्रीवाय सहस्राक्षायं मीदुषें। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमंः। प्र मृंश्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्बियोर्ज्याम्। याश्चं ते हस्त इषवः (३)

परा ता भंगवो वप। अवतत्य धनुस्त्व सहंस्राक्ष शतंषुधे। निशीर्यं श्रत्यानाम्मुखां शिवो नंः सुमनां भव। विज्यं धनुंः कपिर्दिनो विशंल्यो बाणंवा उत। अनेशत्रस्येषंव आभुरंस्य निष्क्षिं। या ते हेतिर्मीं ढुष्टम् हस्ते बुभूवं ते धनुंः। तयास्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया पिरं ब्भुज। नमंस्ते अस्त्वायुंधायानांतताय धृष्णवें। उभाभ्यामुत ते नमों बाहुभ्यां तव धन्वंने। पिरं ते धन्वंनो हेतिर्स्मान्वृंणक्त विश्वतः। अथो य इंषुधिस्तवारे अस्मित्र धेहि तम्॥ (४)

नमो हिरंण्यबाहवे सेनान्यें दिशां च पत्ये नमो नमों वृक्षेभ्यो हिरंकेशेभ्यः पश्नाम्पत्ये नमो नमों बस्रुशायं विव्याधिनेऽन्नांनाम्पत्ये नमो नमों बस्रुशायं विव्याधिनेऽन्नांनाम्पत्ये नमो नमों हिरंकेशायोपवीतिनें पुष्टानाम्पत्ये नमो नमों भ्वस्यं हेत्ये जगंताम्पत्ये नमो नमों रुद्रायांतताविने क्षेत्रांणाम्पत्ये नमो नमें सूतायाहंन्त्याय वनांनाम्पत्ये नमो नमें (५)

रोहिंताय स्थपतंये वृक्षाणाम्पतंये नमो नमों मुन्निणे वाणिजाय कक्षांणाम्पतंये नमो नमों भुवन्तयें वारिवस्कृतायौषंधीनाम्पतंये नमो नमं उच्चैर्घोषायाक्रन्दयंते पत्तीनाम्पतंये नमो नमः कृथ्स्नवीताय धावंते सत्वनाम्पतंये नमः॥ (६)

वनानाम्पतंये नमो नम् एकान्नत्रिष्टशर्च॥————[२]

नमः सहंमानाय निव्याधिनं आव्याधिनीनाम्पतंये नमो नमः ककुभायं निषक्षिणै स्तेनानाम्पतंये नमो नमो निषक्षिणं इषुधिमते तस्कराणाम्पतंये नमो नमो वश्चेते परिवर्श्वते स्तायूनाम्पतंये नमो नमो निचेरवे परिचरायारंण्यानाम्पतंये नमो नमः सृकाविभ्यो जिघारं सन्धो मुष्णुताम्पतंये नमो नमोऽसिमन्धो नक्तं चरन्धः प्रकृन्तानाम्पतंये नमो नमं उष्णीषिणे गिरिच्रायं कुलुञ्चानाम्पतंये नमो नर्मः (७)

इषुंमद्र्यो धन्वाविभ्यंश्च वो नमो नमं आतन्वानेभ्यः प्रतिदर्धानेभ्यश्च वो नमो नमं आयच्छंन्द्र्यो विसृजन्धंश्च वो नमो नमो उस्यंन्द्र्यो विध्यंन्न्यश्च वो नमो नम् आसीनेभ्यः शयानेभ्यश्च वो नमो नमः स्वपन्धो जाग्रन्द्र्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठंन्द्र्यो धावंन्न्यश्च वो नमो नमः सभाभ्यः सभापंतिभ्यश्च वो नमो नमो अश्वभ्योऽश्वंपतिभ्यश्च वो नमः॥ (८)

कुलुश्चानाम्पतंये नमो नमोऽश्वंपतिभ्यस्त्रीणिं च॥———[३]

नमं आव्याधिनींभ्यो विविध्यंन्तीभ्यश्च वो नमो नम् उगंणाभ्यस्तृ १ हृतीभ्यंश्च वो नमो नमो गृथ्सेभ्यो गृथ्सपंतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेंभ्यो व्रातंपितभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमो महज्ञ्याः क्षु ह्वकेभ्यंश्च वो नमो नमो र्थिभ्योऽर्थभ्यंश्च वो नमो नमो रथैंभ्यः (९)

रथंपितभ्यश्च वो नमो नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यंश्च वो नमो नमः श्वन्तभ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यंश्च वो नमो नम्स्तक्षंभ्यो रथकारेभ्यंश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कुर्मारभ्यश्च वो नमो नमः पुञ्जिष्टभ्यो निषादेभ्यंश्च वो नमो नमं इषुकृज्ञो धन्वकृज्ञ्यंश्च वो नमो नमो मृग्युभ्यः श्वनिभ्यंश्च वो नमो नमः श्वभ्यः श्वपंतिभ्यश्च वो नमः॥ (१०)

रथैंभ्यः श्वपंतिभ्यश्च द्वे चं॥______[४]

नमों भ्वायं च रुद्रायं च नमें शुर्वायं च पशुपतंये च नमो नीलंग्रीवाय च शितिकण्ठांय च नमें कप्रिंने च व्युंप्तकेशाय च नमें सहस्राक्षायं च शृतधंन्वने च नमों गिरिशायं च शिपिविष्टायं च नमों मीद्धष्टमाय चेपुंमते च नमों हृस्वायं च वामुनायं च नमों बृह्ते च वर्षीयसे च नमों वृद्धायं च संवृध्वंने च (११)

नमो अग्नियाय च प्रथमायं च नमं आशवें चाजिरायं च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नमं ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्रोतस्याय च द्वीप्याय च॥ (१२)

सुं वृथ्वंने च् पर्श्वविश्शतिश्च॥-----[५]

नमौं ज्येष्ठायं च किन्छायं च नमः पूर्वजायं चापर्जायं च नमों मध्यमायं चापगुल्भायं च नमों जघुन्याय च बुध्रियाय च नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमं उर्वृयाय च खल्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नर्मः श्रुवायं च प्रतिश्रुवायं च (१३)

नमं आशुषेणाय चाशुरंथाय च नमः शूराय चावभिन्दते च नमों वर्मिणें च वरूथिनें च नमों बिल्मिनें च कव्चिनें च नमेः श्रुतायं च श्रुतसेनायं च॥ (१४)

प्रतिश्रवायं च पर्श्वविरशतिश्च॥————[

नमों दुन्दुभ्यांय चाहन्न्यांय च नमों धृष्णवें च प्रमृशायं च नमों दूतायं च प्रिहेंताय च नमों निष्किणें चेषुधिमतें च नमंस्तीक्ष्णेषवें चायुधिनें च नमंः स्वायुधायं च सुधन्वेने च नमः स्रुत्यांय च पथ्यांय च नमः काट्यांय च नीप्यांय च नमः सूद्यांय च सर्स्यांय च नमों नाद्यायं च वैश्वन्तायं च (१५)

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्यायं च नमों मेघ्याय च विद्युत्याय च नमं ईप्रियाय चात्प्याय च नमो वात्याय च रेष्मियाय च नमों वास्तव्याय च वास्तुपायं च॥ (१६)

वै्शन्तार्यं च त्रिष्शर्च॥——————————[७]

नमः सोमाय च रुद्रायं च नमंस्ताम्रायं चारुणायं च नमः शुंगायं च पशुपतंये च नमं उग्रायं च भीमायं च नमों अग्रेवधायं च दूरेवधायं च नमों हुन्ने च हनीयसे च नमों वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमंस्ताराय नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्करायं च मयस्करायं च नमः शिवायं च शिवतंराय च (१७)

नम्स्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरंणाय चोत्तरंणाय च नमं आतार्याय चालाद्याय च नमः शष्य्याय च फेन्याय च नमः सिक्त्याय च प्रवाह्याय च॥ (१८)

श्वितंराय च त्रिर्शर्च॥_____[८]

नमं इिर्ण्याय च प्रपृथ्याय च नमंः किश्शिलायं च क्षयंणाय च नमंः कपिर्दिने च पुलुस्तये च नमो गोष्ठमाय च गृह्याय च नमुस्तल्प्याय च गेह्याय च नमंः काट्याय च गह्वरेष्ठायं च नमों हृद्य्याय च निवेष्प्याय च नमंः पाश्सव्याय च रजस्याय च नमः शुष्क्याय च हिर्त्याय च नमो लोप्याय चोलुप्याय च (१९)

नमं ऊर्व्याय च सूर्म्याय च नमंः पुण्याय च पर्णशृद्याय च नमोऽपगुरमाणाय

चाभिघ्नते च नमं आक्खिद्ते चं प्रक्खिद्ते च नमों वः किरिकेभ्यों देवाना ह हृदयेभ्यो नमों विक्षीणकेभ्यो नमों विचिन्वत्केभ्यो नमं आनिर्हतेभ्यो नमं आमीवत्केभ्याः॥ (२०)

उलुप्याय च त्रयंस्त्रिश्शच॥———[९]

द्रापे अन्धंसस्पते दरिंद्रज्ञीलंलोहित। एषां पुरुंषाणामेषाम्पंशूनां मा भेर्मारो मो एषां किं चनामंमत्। या तें रुद्र शिवा तुनः शिवा विश्वाहंभेषजी। शिवा रुद्रस्यं भेषजी तयां नो मृड जीवसें। इमा रुद्रायं तुवसें कपुर्दिनें क्षयद्वीराय प्र भंरामहे मृतिम्। यथां नः शमसंद्विपदे चतुंष्पदे विश्वम्पुष्टम्य्रामें अस्मित्र (२१)

अनांतुरम्। मृडा नों रुद्रोत नो मयंस्कृधि क्ष्यद्वीराय नमंसा विधेम ते। यच्छं च योश्च मनुंरायजे पिता तदंश्याम् तवं रुद्र प्रणींतौ। मा नों महान्तंमुत मा नों अर्भकं मा न उक्षंन्तमुत मा नं उक्षितम्। मा नों वधीः पितर्म्मोत मातरंिम्प्रिया मा नंस्तनुवंः (२२)

रुद्र रीरिषः। मा नंस्तोके तनये मा न आयुंषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वंधीर्ह्विष्मंन्तो नमंसा विधेम ते। आरात्तें गोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुम्रमुस्मे तें अस्तु। रक्षां च नो अधि च देव ब्रूह्यधां च नः शर्मं यच्छ द्विबर्हाः। स्तुहि (२३)

श्रुतं गेर्त्सदं युवानम्मृगं न भीममुंपहृत्नुमुग्रम्। मृडा जंरित्रे रुंद्र स्तवानी अन्यं तें अस्मिन्न वंपन्तु सेनाः। परि णो रुद्रस्यं हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्यं दुर्मृतिरंघायोः। अवं स्थिरा मृघवंद्र्यस्तनुष्व मीद्वंस्तोकाय तनयाय मृडय। मीद्वंष्टम् शिवंतम शिवो नः सुमनां भव। पुरमे वृक्ष आयुंधं निधाय कृत्तिं वसान आ चंरु पिनांकम् (२४)

बिश्रदा गंहि। विकिरिद् विलोहित् नमंस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्र^५ हेतयो-ऽन्यम्स्मन्नि वंपन्तु ताः। सहस्राणि सहस्रधा बांहुवोस्तवं हेतयः। तासामीशांनो भगवः पराचीना मुखां कृधि॥ (२५)

अस्मिः स्तुनुवंः स्तुहि पिनांकुमेकान्नत्रिर्शाचं॥———[१०]

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याँम्। तेषा सहस्रयोजनेऽव धन्वांनि तन्मसि। अस्मिन्महृत्यंर्ण्वेंऽन्तरिक्षे भवा अधि। नीलंग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षंमाचराः। नीलंग्रीवाः शितिकण्ठा दिवर् रुद्रा उपिश्रेताः। ये वृक्षेषुं सस्पिञ्जंरा नीलंग्रीवा विलोहिताः। ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपिर्दिनः। ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबंतो जनान्। ये पुथाम्पंथिरक्षंय ऐलबृदा युव्युधंः। ये तीर्थानिं (२६)

प्रचरंन्ति सृकावंन्तो निषक्षिणः। य एतावंन्तश्च भूयारं सश्च दिशों रुद्रा विंतस्थिरे। तेषारं सहस्रयोजनेऽव धन्वांनि तन्मसि। नमों रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येंऽन्तरिक्षे ये दिवि येषामत्रं वातों व्रषमिषंवस्तेभ्यो दश् प्राचीर्दशं दक्षिणा दशं प्रतीचीर्दशोदींचीर्दशोध्वांस्तेभ्यो नमुस्ते नों मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भें दधामि (२७)

तीर्थानि यश्च पद्वं॥———[११]

[अश्मन् य इमोदेनमाशः प्राचीं जीमूर्तस्य यदर्त्रन्दो मा नी मित्रो ये वाजिनं नवं (९) अश्मन्मनोयुजं प्राचीमनु शर्म यच्छतु तेषांम्भिगूँर्तिः षद्वंत्वारि श्रात्। अश्मन् हुविष्मान्॥]

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणां वातें पूर्जन्ये वरुणस्य शुष्में। अद्भा ओषंधीभ्यो वनस्पितृभ्योऽिध सम्भृतां तां न इष्मूर्जं धत्त मरुतः स॰रराणाः। अश्म १ स्ते क्षुद्मं ते शुर्गृच्छतु यं द्विष्मः। समुद्रस्यं त्वाऽवाक्याग्ने पिरं व्ययामिस। पावको अस्मभ्य १ शिवो भंव। हिमस्यं त्वा जुरायुणाग्ने पिरं व्ययामिस। पावको अस्मभ्य १ शिवो भंव। उपं (१)

ज्मन्नुपं वेत्सेऽवंत्तरं नृदीष्वा। अग्नें पित्तम्पामंसि। मण्डूंकि ताभिरा गंहि सेमं नों युज्ञम्। पावकवर्ण १ शिवं कृषि। पावक आ चितयंन्त्या कृपा। क्षामंत्रुरुच उषसो न भानुना। तूर्वन्न यामन्नेतंशस्य नू रण आ यो घृणे। न तंतृषाणो अजरंः। अग्ने पावक रोचिषां मुन्द्रयां देव जिह्नया। आ देवान् (२)

वृक्षि यिक्षे च। स नः पावक दीदिवोऽग्नें देवा इहा वह। उपं यज्ञ हिविश्चं नः। अपामिदं न्ययंन समुद्रस्यं निवेशंनम्। अन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्य शिवो भव। नर्मस्ते हरसे शोचिषे नर्मस्ते अस्त्वर्चिषें। अन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतयः

पावको अस्मभ्य रेशिवो भव। नृषदे वट् (३)

अप्रसुषदे वड्वंन्सदे वड्वंरिह्षदे वद्र्य्संवर्विदे वट्। ये देवा देवानां यज्ञियां यज्ञियांना संवथ्सरीणमुपं भागमासंते। अहुतादों हृविषों यज्ञे अस्मिन्थ्स्वयं जुंहुध्वम्मधुंनो घृतस्यं। ये देवा देवेष्विधं देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरएतारों अस्य। येभ्यो नर्ते पवंते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्रुषुं। प्राणदाः (४)

अपानदा व्यानदाश्चेक्षुर्दा वेर्चोदा वेरिवोदाः। अन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यः शिवो भंव। अग्निस्तिग्मेनं शोचिषा यः सद्विश्वं न्यंत्रिणम्। अग्निर्नो वः सते र्यिम्। सैनानीकेन सुविदत्रों अस्मे यष्टां देवाः आयंजिष्ठः स्वस्ति। अदंब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्नै द्युमदुत रेविद्देदीहि॥ (५)

उपं देवान् वद्गाणदाश्चतुंश्चत्वारि श्शच॥

-[8]

य इमा विश्वा भुवंनानि जुह्बृदृषिर्होतां निष्सादां पिता नंः। स आशिषा द्रविणिमिच्छमांनः परमृच्छदो वर् आ विवेश। विश्वकंर्मा मनंसा यिद्वहांया धाता विधाता परमोत स्न्द्द् तेषामिष्टानि सिम्षा मंदन्ति यत्रं सप्तर्षीन्पर एकंमाहुः। यो नंः पिता जिन्ता यो विधाता यो नंः सुतो अभ्या सञ्ज्ञानं। (६)

यो देवानां नाम्धा एकं एव तर संम्प्रश्वम्भुवंना यन्त्यन्या। त आयंजन्त द्रविंण्र् समंस्मा ऋषंयः पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्ता सूर्ता रजंसो विमाने ये भूतानिं समकृंण्वित्रमानिं। न तं विंदाथ य इदं ज्जानान्यद्युष्माकृमन्तंरम्भवाति। नीह्रारेण् प्रावृंता जल्प्यां चासुतृपं उक्थुशासंश्चरन्ति। पुरो दिवा पुर एुना (७)

पृथिव्या परो देवेभिरसुँरैर्गुहा यत्। कः स्विद्गर्भं प्रथमं देघ् आपो यत्रं देवाः समगंच्छन्त विश्वं। तिमद्गर्भम्प्रथमं देघ् आपो यत्रं देवाः समगंच्छन्त विश्वं। अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्निदं विश्वम्भुवनमिधं श्रितम्। विश्वकर्मा ह्यजंनिष्ट देव आदिद्गन्थवीं अभवद्वितीयः। तृतीयः पिता जंनितौषंधीनाम् (८)

अपां गर्भं व्यंदधात्पुरुत्रा। चक्षुंषः पिता मनंसा हि धीरों घृतमेंने अजनुत्रन्नंमाने। यदेदन्ता अदंद १ हन्त पूर्व आदिद्यावांपृथिवी अप्रथेताम्। विश्वतंश्वक्षुरुत विश्वतांमुखो विश्वतांहस्त उत विश्वतंस्पात्। सं बाहुभ्यां नमंति सम्पतंत्रैर्द्यावांपृथिवी जनयं देव एकंः। कि इं स्विदासीदिधिष्ठानमारम्भणं कतुमिथ्वित्कमांसीत्। यदी भूमिं जनयन्नं (९)

विश्वकंर्मा वि द्यामौर्णोन्मह्ना विश्वचंक्षाः। कि इस्वद्वनं क उस वृक्ष आंसीद्यतो द्यावांपृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यद्ध्यतिष्टद्भुवंनानि धारयत्रं। या ते धामानि पर्माणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मत्रुतेमा। शिक्षा सर्खिभ्यो हुविषि स्वधावः स्वयं यंजस्व तनुवं जुषाणः। वाचस्पतिं विश्वकंर्माणमूतयें (१०)

मनोयुजं वाजे अद्या हुंवेम। स नो नेदिष्ठा हवंनानि जोषते विश्वशंम्भूरवंसे साधुकंर्मा। विश्वकंम्न हुविषां वावृधानः स्वयं यंजस्व तुनुवं जुषाणः। मुद्यन्त्वन्ये अभितंः सपत्नां इहास्माकंम्म्घवां सूरिरंस्तु। विश्वकर्मन् हुविषा वर्धनेन त्रातार्मिन्द्रंमकृणोरव्ध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीर्यमुग्रो विह्व्यों यथासंत्। समुद्रायं वयुनांय सिन्धूंनाम्पतंये नर्मः। नुदीना् सर्वांसाम्प्रित्रे जुंहुता विश्वकंर्मणे विश्वाहामंत्र्यं हविः॥ (११)

ज्जानैनौषंधीनां भूमिं जनयंत्रूतये नमो नवं च॥————[२]

उदेनमुत्त्रां न्याग्नें घृतेनाहुत। रायस्पोषेण् स॰ सृंज प्रजयां च धनेन च। इन्द्रेमम्प्रंत्रां कृषि सजातानांमसद्ध्राः। समेनं वर्चसा सृज देवेभ्यों भाग्धा अंसत्। यस्यं कुर्मो ह्विर्गृहे तमंग्ने वर्धया त्वम्। तस्मै देवा अधि ब्रवन्नयं च ब्रह्मण्स्पितेः। उद्दं त्वा विश्वे देवाः (१२)

अभ्रे भरंन्तु चित्तिभिः। स नों भव शिवतंमः सुप्रतींको विभावंसुः। पश्च दिशो देवींर्यज्ञमंवन्तु देवीरपामितिं दुर्मितिम्बाधंमानाः। रायस्पोषे यज्ञपंतिमाभजंन्तीः। रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थाथ्सिमिछे अग्नाविधं मामहानः। उक्थपंत्र ईड्यो गृभीतस्तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्त। ऊर्जा यद्यज्ञमशंमन्त देवा दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रें। देवश्रीः श्रीमणाः श्तपंयाः (१३)

परिगृह्यं देवा यज्ञमायत्र्। सूर्यरिष्म्र्हिरिकेशः पुरस्तांध्सिविता ज्योतिरुदंयाः अजंस्रम्। तस्यं पूषा प्रंस्वं यांति देवः सम्पश्यन्विश्वा भुवंनानि गोपाः। देवा देवेभ्यां अध्वर्यन्तों अस्थुर्वितः शंमित्रे शंमिता यजध्यें। तुरीयों यज्ञो यत्रं हृव्यमेति ततः पावका आशिषों नो जुषन्ताम्। विमानं एष दिवो मध्यं आस्त आपप्रिवात्रोदंसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाचीर्मि (१४)

चृष्टे घृताचीरन्त्रा पूर्वमपेरं च केतुम्। उक्षा संमुद्रो अंरुणः सुंपूर्णः पूर्वस्य योनिम्पितुरा विवेश। मध्ये दिवो निहितः पृश्चिरशमा वि चंक्रमे रजंसः पात्यन्तौं। इन्द्रं विश्वां अवीवृधन्थ्समुद्रव्यंचसं गिरंः। र्थीतंम रथीनां वाजांना सत्पंतिम्पतिम्। सुम्रहूर्य्ज्ञो देवा आ चं वक्षव्यक्षंद्ग्निर्देवो देवा आ चं वक्षत्। वाजस्य मा प्रस्वेनौद्धाभेणोदंग्रभीत्। अथां स्पत्ना इन्द्रों मे निग्राभेणाधंरा अकः। उद्घामं चं निग्रामं च ब्रह्मं देवा अंवीवृधन्त्। अथां स्पत्नांनिन्द्राग्नी में विष्चीनान्व्यंस्यताम्॥ (१५)

देवाः शतपंया अभि वार्जस्य पड्वि रशितश्च॥———[

आ्शुः शिशांनो वृष्भो न युध्मो घंनाघृनः क्षोभंणश्चर्षणीनाम्। सङ्कन्दंनोऽनिमिष एंकवी्रः शत सेनां अजयथ्साकिमिन्द्रंः। स्ंकन्दंनेनािनिमेषणं जिष्णुनां युत्कारेणं दुश्च्यवनेनं धृष्णुनां। तिदन्द्रेण जयत् तथ्संहध्वं युधों नर् इषुंहस्तेन् वृष्णां। स इषुंहस्तैः स निष्किनिर्मवंशी सङ्ग्रंष्टा स युध् इन्द्रों गुणेनं। स्र्स्षृष्टजिथ्सोंम्पा बांहुशुर्ध्यूर्ध्वधंन्वा प्रतिहितािभुरस्तां। बृहंस्पते पिरं दीय (१६)

रथेन रक्षोहामित्रारं अपबार्धमानः। प्रमुश्जन्थ्सेनाः प्रमुणो युधा जयंत्रस्माकंमेध्यविता रथांनाम्। गोत्रुभिदं गोविदं वर्ज्ञबाहुं जयंन्तुमज्मं प्रमृणन्तुमोजंसा। इमर संजाता अनुं वीरयध्वमिन्द्ररं सखायोऽनु सर रभध्वम्। बलुविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहंस्वान् वाजी सहंमान उग्रः। अभिवीरो अभिसंत्वा सहोजा जैत्रंमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्। अभि गोत्राणि सहंसा गाहंमानोऽदायः (१७)

वीरः शतमंन्युरिन्द्रंः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडंयुध्यों ऽस्माक् १ सेनां अवतु प्र युथ्स्। इन्द्रं आसां नेता बृह्स्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानांमभिभञ्जतीनां जयंन्तीनाम्मुरुतो यन्त्वग्रें। इन्द्रंस्य वृष्णो वर्रुणस्य राज्ञं आदित्यानां म्मुरुता १ शर्थं उग्रम्। महामनसाम्भुवनच्यवानां घोषों देवानां जयंतामुदंस्थात्। अस्माकृमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकुं या इषेवस्ता जयन्तु। (१८)

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मानुं देवा अवता हवेषु। उद्धर्षय मघवन्नायुंधान्युथ्मत्वनाम्माम्कानाम्महा रेसि। उद्घंत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयंतामेतु घोषः। उप प्रेत जयंता नरः स्थिरा वंः सन्तु बाहवंः। इन्द्रों वः शर्म यच्छत्वनाधृष्या यथासंथ। अवसृष्टा परां पत् शरंब्ये ब्रह्मंस शिता। गच्छामित्रान्प्र (१९) विश्व मैषां कं चनोच्छिंषः। मर्माणि ते वर्मभिश्छादयामि सोमंस्त्वा राजामृतेनाभि वंस्ताम्। उरोर्वरीयो वरिवस्ते अस्तु जयंन्तं त्वामन् मदन्तु देवाः। यत्रं बाणाः सम्पर्तन्ति कुमारा विशिखा इंव। इन्द्रों नुस्तत्रं वृत्रहा विश्वाहा शर्म यच्छतु॥ (२०)

दीया दायो जंयन्त्वमित्रान्प्र चंत्वारि १ शर्च॥_____

प्राचीमन् प्रदिशम्प्रेहिं विद्वान्ग्नेरंग्ने पुरो अंग्निर्भवेह। विश्वा आशा दीद्यांनो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुंष्पदे। क्रमंध्वम्ग्निना नाक्मुख्यूर् हस्तेषु बिभ्रंतः। दिवः पृष्ठर सुवंर्गत्वा मिश्रा देवेभिराद्धम्। पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमार्रुहम्न्तरिक्षादिवमार्रुहम्। दिवो नाकंस्य पृष्ठाथसुवर्ज्योतिरगाम् (२१)

अहम्। सुवर्यन्तो नापेंक्षन्त आ द्यार रोहन्ति रोदंसी। युज्ञं ये विश्वतोधार्ष् सुविद्वारसो वितेनिरे। अग्ने प्रेहिं प्रथमो देवयतां चक्षुंद्वानांमुत मर्त्यानाम्। इयंक्षमाणा भृगुंभिः सुजोषाः सुवंयन्तु यजमानाः स्वस्ति। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकर्र समीची। द्यावा क्षामां रुक्यो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः। अग्ने सहस्राक्ष (२२)

शृत्मूर्ध्ञ्छतं ते प्राणाः सहस्रंमपानाः। त्व॰ सांहुस्रस्यं गुय ईशिषे तस्मै ते विधेम् वाजांय स्वाहां। सुपूर्णोऽसि गुरुत्मांन्पृथिव्या॰ सींद पृष्ठे पृथिव्याः सींद भासान्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तंभान् तेजंसा दिश उद्दृ॰ह। आजुह्वांनः सुप्रतींकः पुरस्तादग्ने स्वां योनिमा सींद साध्या। अस्मिन्थ्स्पस्थे अध्युत्तंरस्मिन्विश्वं देवाः (२३)

यजंमानश्च सीदत। प्रेद्धों अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजंस्रया सूर्म्यां यविष्ठ। त्वार शर्श्वन्त् उपं यन्ति वाजाः। विधेमं ते पर्मे जन्मंत्रग्ने विधेम् स्तोमैरवंरे स्धस्थे। यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तम्प्र त्वे ह्वीरिषं जुहुरे सिमेद्धे। तार संवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृंणे सुमृतिं विश्वजंन्याम्। यामस्य कण्वो अदुंहुत्प्रपीनार सहस्रंधाराम् (२४)

पर्यसा महीं गाम्। सप्त ते अग्ने स्मिधः सप्त जिह्वाः स्प्तर्षयः स्प्त धामं प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वां यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेनं। ईटङ्गांन्याटङ्गेताटङ्गे प्रतिटङ्गे मितश्च सम्मितश्च सभराः। शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च स्त्यज्योतिश्च ज्योतिष्माः श्च स्त्यश्चर्तपश्चात्यर्थहाः। (२५) ऋतजिर्च सत्यजिर्च सेन्जिर्च सुषेणश्चान्त्यंमित्रश्च दूरेअमित्रश्च गुणः। ऋतश्चं सत्यश्चं ध्रुवश्चं ध्रुक्णंश्च धृतां चं विधृतां चं विधार्यः। ईदृक्षांस एतादृक्षांस ऊ षु णः सृदृक्षांसः प्रतिसदृक्षांस एतंन। मितासंश्च सिम्मितासश्च न ऊतये सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन्निन्द्रं दैवीविंशों मुरुतोऽनुंवर्त्मान एविम्मं यजमानं दैवीश्च विशो मान्षीश्चानुंवर्त्मानो भवन्तु॥ (२६)

अगार सहस्राक्ष देवाः सहस्रंधारामत्यर्रहा अनुवर्त्मानः षोडंश च॥————[५]

जीमूर्तस्येव भवित प्रतींकं यहुर्मी याति समदांमुपस्थैं। अनांविद्धया तुनुवां जय् त्वर स त्वा वर्मणो मिहुमा पिपर्तु। धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम् धन्वना तीव्राः समदों जयेम। धनुः शत्रोंरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशों जयेम। वृक्ष्यन्तीवेदा गंनीगन्ति कर्णम्प्रियर सर्वायं परिषस्वजाना। योषेव शिक्के वितृताधि धन्वन्नं (२७)

ज्या इय समंने पारयंन्ती। ते आचरंन्ती समंनेव योषां मातेवं पुत्रिम्बिभृतामुपस्थैं। अप शत्र न्विध्यता संविदाने आर्ली इमे विष्फुरन्तीं अमित्रान्। बृह्वीनाम्पिता बृहुरंस्य पुत्रिश्चेश्चा कृंणोति समंनावगत्यं। इषुिधः सङ्काः पृतंनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनंद्धो जयित प्रसूतः। रथे तिष्ठंत्रयित बाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयंते सुषार्थिः। अभीशूंनाम्महिमानम् (२८)

प्नायत् मनः पृश्चादन् यच्छन्ति रूष्टमयः। तीव्रान्घोषाँन्कृण्वते वृषंपाण्योऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः। अवक्रामंन्तः प्रपंदैर्मित्राँन्श्चिणन्ति शत्रूर्रनंपव्ययन्तः। रथवाहंन १ ह्विरंस्य नाम् यत्रायुंधं निहितमस्य वर्म। तत्रा रथमुपं श्रग्म १ संदेम विश्वाहां वय १ सुमन्स्यमानाः। स्वादुष्रसदः पितरो वयोधाः कृंच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुंबला अमृंधाः सतोवीरा उरवौ व्रातसाहाः। ब्राह्मणासः (२९)

पितंरः सोम्यांसः शिवे नो द्यावांपृथिवी अंनेहसाँ। पूषा नः पातु दुरितादंतावृधो रक्षा मार्किर्नो अघशर्रस ईशत। सुपूर्णं वस्ते मृगो अंस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवंन्ति तत्रास्मभ्यमिषंवः शर्म यरसन्न। ऋजीते परि वृिङ्क्ष नोऽश्मां भवतु नस्तुनः। सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः (३०)

शर्म यच्छतु। आ जंङ्घन्ति सान्वेषां जघना ५ उपं जिघ्नते। अश्वांजिन् प्रचेतसो-ऽश्वांन्थ्समर्थ्सु चोदय। अहिंरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्यायां हेतिं पंरिबार्धमानः। हुस्तुघ्नो विश्वां वयुनांनि विद्वान्युमान्युमार्श्सं परिं पातु विश्वतः। वनस्पते वीड्वंङ्गो हि भूया अस्मर्थ्संखा प्रतरंणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीडयंस्वास्थाता ते जयतु जेत्वांनि। दिवः पृथिव्याः परिं (३१)

ओज् उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृत् सहंः। अपामोज्मानं परि गोभिरावृत्मिन्द्रंस्य वज्रं ह्विषा रथं यज। इन्द्रंस्य वज्रों मुरुतामनीकिम्मित्रस्य गर्भी वरुणस्य नाभिः। सेमां नो ह्व्यदांतिं जुषाणो देवं रथ प्रतिं ह्व्या गृभाय। उपं श्वासय पृथिवीमुत द्याम्पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सुजूरिन्द्रेण देवैर्द्रात् (३२)

दवींयो अपं सेध् शत्रून्ं। आ क्रंन्दय् बलुमोजों न आ धा नि ष्टंनिहि दुरिता बाधंमानः। अपं प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनार्ं इत इन्द्रंस्य मुष्टिरंसि बीडयंस्व। आमूरंज प्रत्यावंतंयेमाः केंतुमहुंन्दुभिर्वावदीति। समश्वंपर्णाश्चरंन्ति नो नरोऽस्माकंमिन्द्र रुथिनों जयन्तु॥ (३३)

धन्वंनमिह्मानं ब्राह्मंणासोऽदितिः पृथिव्याः परिं दूरादेकंचत्वारि १शच॥————[६]

यदर्नन्दः प्रथमं जायंमान उद्यन्थ्संमुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्यं पृक्षा हेरिणस्यं बाहू उंप्स्तुत्यम्मिहं जातं ते अर्वत्र। यमेनं दत्तं त्रित एनमायुन्गिन्द्रं एणम्प्रथमो अध्यंतिष्ठत्। गृन्धर्वो अस्य रश्नामंगृभ्णाथ्सूरादश्वं वसवो निरंतष्ट। असिं यमो अस्यांदित्यो अंर्वृत्रसिं त्रितो गृह्येन व्रतेनं। असि सोमेन समया विपृक्तः (३४)

आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धंनानि। त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धंनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः संमुद्रे। उतेवं मे वर्रुणश्छन्थस्यर्वन् यत्रां त आहुः पंर्मं जनित्रम्। इमा तें वाजिन्नवृमार्जनानीमा शुफानार् सिन्तुर्निधानां। अत्रां ते भुद्रा रंशना अंपश्यमृतस्य या अंभिरक्षंन्ति गोपाः। आत्मानं ते मनसारादंजानामवो दिवा (३५)

प्तयंन्तम्पतंगम्। शिरों अपश्यम्पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहंमानम्पतृत्रि। अत्रां ते रूपमृंत्तममंपश्यं जिगीषमाणिम्ष आ पदे गोः। यदा ते मर्तो अनु भोगमानुडादिद्वसिष्ठ ओषंधीरजीगः। अनुं त्वा रथो अनु मर्यो अर्वृत्रनु गावोऽनु भगः कृनीनाम्। अनु व्रातांस्स्तवं सुख्यमीयुरनुं देवा मंमिरे वीर्यम् (३६)

ते। हिरंण्यशृङ्गोऽयों अस्य पादा मनोंजवा अवंर इन्द्रं आसीत्। देवा इदंस्य हविरद्यंमायन् यो अर्वन्तम्प्रथमो अध्यतिष्ठत्। ईर्मान्तांसः सिलिंकमध्यमासः स॰ शूरंणासो दिव्यासो अत्याः। हुर्सा इंव श्रेणिशो यंतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः। तव् शरीरम्पतियण्ववंनतवं चित्तं वातं इव् ध्रजीमान्। तव् शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारंण्येषु जर्भुराणा चरन्ति। उपं (३७)

प्रागाच्छसंनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यांनः। अजः पुरो नीयते नाभिर्स्यानुं पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः। उप प्रागाँत्पर्मं यथ्स्थस्थमर्वार् अच्छां पितर्रम्मातरं च। अद्या देवां जुष्टंतमो हि गुम्या अथा शाँस्ते दाशुषे वार्याणि॥ (३८)

विपृंक्तो दिवा वीर्यमुपैकान्नचंत्वारि ५ शर्च॥ 🕳

मा नों मित्रो वर्रुणो अर्यमायुरिन्द्रं ऋभुक्षा मुरुतः परि ख्यत्र। यद्वाजिनों देवजांतस्य सप्तैः प्रवृक्ष्यामों विदर्थे वीर्याणि। यत्रिणिंजा रेक्णंसा प्रावृंतस्य रातिं गृंभीताम्मुंख्तो नयंन्ति। सुप्रांङ्जो मेम्यंद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पार्थः। एष च्छागः पुरो अश्वंन वाजिनां पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशुमर्वता त्वष्टेत् (३९)

पुन् सौश्रवसायं जिन्वति। यद्धविष्यंमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुंषाः पर्यश्वं नयंन्ति। अत्रां पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयंत्रजः। होतांष्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रांवग्राभ उत शङ्स्ता सुविप्रः। तेनं यज्ञेनं स्वंरं कृतेन स्विष्टेन वृक्षणा आ पृणध्वम्। यूप्व्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालुं ये अश्वयूपाय तक्षंति। ये चार्वते पर्चन सम्भरंन्त्युतो (४०)

तेषांमभिगूर्तिर्न इन्वतु। उप प्रागांथ्सुमन्में ऽधायि मन्मं देवानामाशा उपं वीतपृष्ठः। अन्वेंनं विप्रा ऋषंयो मदन्ति देवानां पुष्टे चंकृमा सुबन्धुम्। यद्वाजिनो दामं संदानमर्वतो या शीर्षण्यां रश्ना रञ्जंरस्य। यद्वां घास्य प्रभृतमास्यें तृण् सर्वा ता ते अपि देवेष्वंस्तु। यदर्श्वस्य कृविषः (४१)

मिश्वकाश् यद्वा स्वरौ स्विधितौ रिप्तमिस्ति। यद्धस्तियोः शिमृतुर्यत्रखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु। यद्वेष्यमुदर्रस्याप्वाति य आमस्यं ऋविषों गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छंमितारेः कृण्वन्तूत मेधर् शृतपार्कं पचन्तु। यत्ते गात्रांदग्निनां पुच्यमानादिभि शूलं निहंतस्यावधावंति। मा तद्भूम्यामा श्रिष्-मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशज्ञों रातमंस्तु॥ (४२)

इदुतो ऋविषंः श्रिषथ्सप्त चं॥——

-[८]

सप्तमः प्रश्नः (काण्डम् ४)

ये वाजिनं परिपश्यंन्ति पक्कं य ईमाहुः सुंर्भिर्निर्ह्रेतिं। ये चार्वतो मा स्मिभक्षामुपासंत उतो तेषांमुभिगूर्तिर्न इन्वतु। यत्रीक्षंणम्मा रस्पर्चन्या उखाया या पात्रांणि यूष्ण आसेचनानि। ऊष्मण्यांपिधानां चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम्। निक्रमंणं निषदेनं विवर्तनं यच् पङ्कीशमर्वतः। यचं पपौ यचं घासिम् (४३)

ज्ञ्घास् सर्वा ता ते अपिं देवेष्वंस्तु। मा त्वाग्निर्ध्वनियद्भूमगंन्धिर्मोखा भ्राजंन्त्यभि विक्त जिन्नेः। इष्टं वीतम्भिगूर्तं वर्षद्भृतं तं देवासः प्रतिं गृभ्णन्त्यश्वम्। यदश्वाय वासं उपस्तृणन्त्यंधीवासं या हिरंण्यान्यस्मै। संदान्मर्वन्तम्पङ्घीशिम्प्रिया देवेष्वा यांमयन्ति। यत्ते सादे महंसा शूकृंतस्य पार्ष्णिया वा कशंया (४४)

वा तुतोदं। सुचेव ता हिविषों अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मंणा सूदयामि। चतुंस्त्रि श्रद्धाजिनों देवबंन्धोर्वङ्कीरश्वंस्य स्विधितिः समेंति। अच्छिद्रा गात्रां वयुनां कृणोत् परुष्परुरचुष्या वि शंस्त। एक्स्त्वष्टुरश्वंस्या विश्वस्ता द्वा यन्तारां भवतस्तथर्तुः। या ते गात्रांणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डांनाम्प्र जुंहोम्युग्रौ। मा त्वां तपत् (४५)

प्रिय आत्मापियन्तं मा स्विधितिस्तुन्व आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृधुरंविश्स्तातिहायं छिद्रा गात्रांण्यसिना मिथूं कः। न वा उं वेतिन्ध्रियसे न रिष्यसि देवा इदेषि पृथिभिः सुगेभिः। हरीं ते युञ्जा पृषंती अभूतामुपांस्थाद्वाजी धुरि रासंभस्य। सुगर्व्यं नो वाजी स्विश्वयम्पुर्सः पुत्रार उत विश्वापुषरं र्यिम्। अनागास्त्वं नो अदिंतिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतार हिवष्मान् (४६)

घासिं कशंया तपद्रयिं नवं च॥-

[o]

॥ सप्तमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां चतुर्थकाण्डे सप्तमः प्रश्नः॥

अग्नांविष्णू स्जोषंसेमा वंधन्तु वां गिरंः। द्युम्नैर्वाजेंभिरागंतम्। वाजंश्च मे प्रस्वश्चं मे प्रयंतिश्च मे प्रसिंतिश्च मे धीतिश्चं मे ऋतुंश्च मे स्वरंश्च मे श्लोकंश्च मे श्रावर्श्च मे श्रुतिंश्च मे ज्योतिंश्च मे सुवंश्च मे प्राणश्चं मेऽपानः (१) च में व्यानश्च मेऽसुंश्व में चित्तं चं मु आधीतं च में वाक्रं में मनश्च में चक्षुंश्व में श्रोत्रं च में दक्षंश्व में बलं च मु ओजंश्व में सहंश्व मु आयुंश्व में जुरा चं म आत्मा चं में तुनूश्वं में शर्म च में वर्म च मेऽङ्गांनि च मेऽस्थानिं च में परूर्षि च में शरीराणि च मे॥ (२)

अपानस्तुनूर्श्व मेऽष्टादंश च॥______

ज्यैष्ठ्यं च म् आधिपत्यं च मे मृन्युश्चं मे भामश्च मेऽमंश्च मेऽम्भंश्च मे जेमा चं मे मिह्मा चं मे विर्मा चं मे प्रिथमा चं मे वृष्मा चं मे द्राघुया चं मे वृद्धं चं मे वृद्धिंश्च मे सत्यं चं मे श्रद्धा चं मे जगंच (३)

में धनं च में वशंश्च में त्विषिश्च में ऋीड़ा चं में मोदंश्च में जातं चं में जिन्ध्यमाणं च में सूक्तं चं में सुकृतं चं में वित्तं चं में वेद्यं च में भूतं चं में भिविष्यचं में सुगं चं में सुपर्थं च म ऋद्धं चं म ऋद्धिश्च में क्रुप्तं चं में क्रुप्तिश्च में मृतिश्चं में सुमृतिश्चं मे॥ (४)

जग्चर्द्धिश्चतुंर्दश च॥-----[२]

शं चं में मयंश्व में प्रियं चं मेऽनुकामश्चं में कामंश्व में सौमनुसर्श्व में भूद्रं चं में श्रेयंश्व में वस्यंश्व में यशंश्व में भगंश्व में द्रविणं च में युन्ता चं में धूर्ता चं में क्षेमंश्व में धृतिंश्व में विश्वं च (५)

में महंश्व में सुंविचं में ज्ञात्रं च में सूर्श्व में प्रसूर्श्व में सीरं च में लयर्श्व म ऋतं चं मेंऽमृतं च मेऽय्क्ष्मं च मेऽनामयच में जीवातुंश्व में दीर्घायुत्वं चं मेऽनिमृत्रं च मेऽभंयं च में सुगं चं में शयंनं च में सूषा चं में सुदिनं च मे॥ (६)

विश्वं च शयंनमुष्टौ चं॥-----[३]

ऊर्क मे सूनृतां च मे पर्यक्ष मे रसंश्व मे घृतं चं मे मधुं च मे सन्धिश्व मे सपीतिश्व मे कृषिश्वं मे वृष्टिश्व मे जैत्रं च म औद्भिंदां च मे रियश्वं मे रायश्व मे पुष्टं चं मे पुष्टिश्व मे वि्भु चं (७)

में प्रभु चं में बहु चं में भूयंश्व में पूर्णं चं में पूर्णतंरं च में उक्षिंतिश्व में कूयंवाश्व

मेऽन्नं च मेऽक्षुंच मे ब्रीह्यंश्च मे यवांश्च मे माषांश्च मे तिलांश्च मे मुद्राश्चं मे खुल्वांश्च मे गोधूमांश्च मे मसुरांश्च मे प्रियङ्गंवश्च मेऽणंवश्च मे श्यामाकांश्च मे नीवारांश्च मे॥ (८)

विभु चं मृसुराश्चतुंर्दश च॥-----[४]

अश्मां च में मृत्तिंका च में गि्रयंश्च में पर्वताश्च में सिकंताश्च में वनस्पतियश्च में हिरंण्यं च मेऽयंश्च में सीसंं च में त्रपृंश्च में श्यामं च में लोहं च मेऽग्निर्श्च म् आपंश्च में वी्रुपंश्च मु ओषंधयश्च में कृष्टपुच्यं च (९)

मेऽकृष्ट्रपच्यं चं मे ग्राम्याश्चं मे पृशवं आर्ण्याश्चं युज्ञेनं कल्पन्तां वित्तं चं मे वित्तिश्च मे भूतं चं मे भूतिश्च मे वस्तुं च मे वस्तिश्चं मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म् एमंश्च म् इतिश्च मे गितिश्च मे॥ (१०)

कृष्टपच्यश्राष्टाचंत्वारि १शच॥____

_____[(,]

अग्निश्चं म् इन्द्रंश्च में सोमंश्च म् इन्द्रंश्च मे सिवता चं म् इन्द्रंश्च में सरंस्वती च म् इन्द्रंश्च मे पूषा चं म् इन्द्रंश्च में बृह्स्पतिंश्च म् इन्द्रंश्च मे मित्रश्चं म् इन्द्रंश्च मे वरुणश्च म इन्द्रंश्च मे त्वष्टां च (११)

म् इन्द्रंश्च मे धाता चं म् इन्द्रंश्च मे विष्णृंश्च म् इन्द्रंश्च मेऽश्विनौं च म् इन्द्रंश्च मे म्रुरुतंश्च म् इन्द्रंश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रंश्च मे पृथिवी च म् इन्द्रंश्च मेऽन्तिरिक्षश्च म् इन्द्रंश्च मे द्यौश्चं म् इन्द्रंश्च मे दिशंश्च म् इन्द्रंश्च मे मूर्धा चं म् इन्द्रंश्च मे प्रजापंतिश्च म् इन्द्रंश्च मे॥ (१२)

त्वष्टां च द्यौश्चं म एकंवि शतिश्च॥ 🕳

-[ε]

अर्शुश्चं मे र्श्मिश्च मेऽदाँभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपार्शुश्चं मेऽन्तर्यामश्चं म ऐन्द्रवायवश्चं मे मैत्रावरुणश्चं म आश्विनश्चं मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्तश्चं मे मुन्थी चं म आग्रयणश्चं मे वैश्वदेवश्चं मे ध्रवश्चं मे वैश्वानुरश्चं म ऋतुग्रहाश्चं (१३)

मेऽतिग्राह्माँश्च म ऐन्द्राग्नश्चं मे वैश्वदेवश्चं मे मरुत्वतीयाँश्च मे माहेन्द्रश्चं म आदित्यश्चं मे सावित्रश्चं मे सारस्वतश्चं मे पौष्णश्चं मे पालीवृतश्चं मे हारियोजुनश्चं मे॥ (१४)

ऋतुग्रहाश्च चतुंस्नि १शच॥ 🗕

[v]

ड्ध्मश्चं मे ब्रहिश्चं में वेदिश्च में घिष्णियाश्च में सुचंश्च में चम्साश्चं में ग्रावांणश्च में स्वरंबश्च म उपर्वार्श्च मेंऽधिषवंणे च में द्रोणकलुशश्चं में वायव्यांनि च में पूत्भृचं म आधवनीयंश्च म् आग्नींप्रं च में हिव्धानं च में गृहाश्चं में सदंश्च में पुरोडाशांश्च में पचताश्चं मेंऽवभृथश्चं में स्वगाकारश्चं मे॥ (१५)

गृहाश्च षोडंश च॥______[८]

अग्निश्चं मे घुर्मश्चं मेऽर्कश्चं मे सूर्यश्च मे प्राणश्चं मेऽश्वमेधश्चं मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे चौश्चं मे शक्वंरीर्ङ्गुलंयो दिशंश्च मे यज्ञेनं कल्पन्तामृक्वं मे सामं च मे स्तोमश्च मे यज्ञंश्च मे दीक्षा चं मे तपश्च म ऋतुश्चं मे व्रतं चं मेऽहोरात्रयौंर्वृष्ट्या बृंहद्रथन्तरे चं मे यज्ञेनं कल्पेताम्॥ (१६)

दीक्षाऽष्टादंश च॥------[९]

गर्भांश्व मे वृथ्साश्चं में त्र्यविश्व में त्र्यवी चं में दित्यवाई में दित्यौही चं में पञ्चांविश्व में पञ्चावी चं में त्रिवृथ्सश्चं में त्रिवृथ्सा चं में तुर्यवाई में तुर्यौही चं में पष्टवाचं में पष्टौही चं म उक्षा चं में वृशा चं म ऋष्भश्चं (१७)

में वेहचमेऽनुङ्वां चे मे धेनुश्चे म् आयुर्यज्ञेनं कल्पतां प्राणो यज्ञेनं कल्पतामपानो यज्ञेनं कल्पताळ्याँनो यज्ञेनं कल्पतां चक्षुंर्यज्ञेनं कल्पताः श्रोत्रं यज्ञेनं कल्पताम्मनों यज्ञेनं कल्पतां वाग्यज्ञेनं कल्पतामात्मा यज्ञेनं कल्पतां यज्ञो यज्ञेनं कल्पताम्॥ (१८)

एको च मे तिस्रश्चं में पर्श्चं च में सप्त चं में नवं च में एकोदश च में त्रयोदश च में पर्श्वंदश च में सप्तदंश च में नवंदश च में एकेविश्शतिश्च में त्रयोविश्शतिश्च में पर्श्वविश्शतिश्च में सप्तिविश्शतिश्च में नवंविश्शतिश्च में एकेत्रिश्शच में त्रयंक्षिश्शच (१९)

में चतंस्रश्च में ऽष्टौ चं में द्वादंश च में षोडंश च में विरश्तिश्चं में चतुंर्विरशतिश्च में ऽष्टाविर्शितिश्च में द्वात्रिरंशच में पद्गिरंशच में चत्वारिर्शचं में चतुंश्चत्वारिर्शच में ऽष्टाचेत्वारिर्शच में वाजंश्च प्रस्वश्चांपिजश्च ऋतुंश्च सुवंश्च मूर्या च व्यक्षियश्चान्त्यायनश्चान्त्यंश्च भौवनश्च भुवनश्चाधिपतिश्च॥ (२०)

त्रयंस्त्रि×शच् व्यश्ञिय एकांदश च॥———[११]

वाजों नः सप्त प्रदिश्श्चतंस्रो वा परावतः। वाजों नो विश्वेंद्वैर्धनंसाताविहावंतु। विश्वें अद्य मुरुतो विश्वें ऊती विश्वें भवन्त्वग्नयः सिमंद्धाः। विश्वें नो देवा अवसा गंमन्तु विश्वंमस्तु द्रविणं वाजों अस्मे। वाजंस्य प्रस्वं देवा रथैंर्याता हिर्ण्ययैः। अग्निरिन्द्रो बृहस्पतिर्मरुतः सोमंपीतये। वाजेंवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु (२१)

विष्रा अमृता ऋत्जाः। अस्य मध्यः पिबत मादयध्यं तृप्ता यांत पृथिभिर्देवयानैः। वाजः पुरस्तांदुत मध्यतो नो वाजो देवा ऋतुभिः कल्पयाति। वाजंस्य हि प्रंसवो नन्नमीति विश्वा आशा वाजंपतिर्भवयम्। पयः पृथिव्याम्पय ओषंधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाम्। पर्यस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्मम्। सम्मां सृजामि पर्यसा घृतेन सम्मां सृजाम्यपः (२२)

ओषंधीभिः। सौंऽहं वाजरं सनेयमग्ने। नक्तोषासा समंनसा विरूपे धापर्येते शिशुमेकरं समीची। द्यावा क्षामां रुक्तो अन्तर्वि भांति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः। समुद्रोऽिस् नभंस्वानार्द्रदानुः शुम्भूर्मयोभूरिम मां वाहि स्वाहां मारुतोऽिस मुरुतां गुणः शुम्भूर्मयोभूरिम मां वाहि स्वाहां वाहि स्वाहां॥ (२३)

धर्नेष्वपो दुवंस्वाञ्छम्भूर्मयोभूर्भि मा द्वे चं॥-----[१२]

अग्निं युंनिजम् शवंसा घृतेनं दिव्यः सुंपूर्णं वयंसा बृहन्तम्। तेनं वयं पंतेम ब्रथ्नस्यं विष्टप्ः सुवो रुहांणा अधि नाकं उत्तमे। इमौ ते पक्षावजरौं पतित्रणो याभ्याः रक्षाः स्यपहः स्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतांमु लोकं यत्रर्षयः प्रथम्जा ये पुराणाः। चिदंसि समुद्रयोनिरिन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावां। हिरंण्यपक्षः शकुनो भुरण्युर्महान्थ्स्थस्थे ध्रुवः (२४)

आ निषंत्तः। नर्मस्ते अस्तु मा मां हिश्सीविश्वंस्य मूर्धन्निधं तिष्ठसि श्रितः। समुद्रे ते हृदंयम्नतरायुर्धावांपृथिवी भुवंनेष्विषिते। उद्गो दंत्तोद्धिम्भिन्त दिवः पूर्जन्यांदन्तिरक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्यांवत। दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नर्मस्पथे। येनर्षयस्तपंसा स्त्रम् (२५) आस्तेन्थांना अग्निश् सुवंराभरंन्तः। तस्मिन्नहं नि दंधे नाके अग्निमेतं यमाहुर्मनंवः स्तीर्णबंरहिषम्। तम्पत्नीभिरन् गच्छेम देवाः पुत्रैर्आर्तृभिरुत वा हिरंण्यैः। नाकं गृह्णानाः सुंकृतस्यं लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः। आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युर्यमृग्निः सत्पतिश्चेकितानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतद्धस्पदं कृणुते (२६)

ये पृत्न्यवंः। अयम्भिर्वीरतंमो वयोधाः संहुस्नियों दीप्यतामप्रयुच्छत्र्। विभ्राजंमानः सिर्रस्य मध्य उप प्र यांत दिव्यानि धामं। सम्प्र च्यंवध्वमनु सम्प्र याताग्ने पथो देवयानौन्कृणुध्वम्। अस्मिन्थ्स्धस्थे अध्युत्तंरस्मिन्विश्वं देवा यजंमानश्च सीदत। येनां सहस्रं वहंसि येनांग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं युज्ञं नौ वह देवयानो यः (२७)

उत्तमः। उद्बंध्यस्वाग्ने प्रतिं जागृह्येनिमष्टापूर्ते स॰स्ंजेथाम्यं चं। पुनः कृण्वङ्स्त्वां पितरं युवानम्न्वातार्श्सीत् त्विय् तन्तुंमेतम्। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नंग्न आ रोहाथां नो वर्धया रियम्॥ (२८)

भ्रुवः सत्रं कृंणुते यः सप्तत्रिर्शशच॥-

[83]

ममाँग्ने वर्चो विह्वेष्वंस्तु व्यं त्वेन्धांनास्तुनुवंम्पुषेम। मह्यं नमन्ताम्प्रदिश्श्वतंस्रस्त्वयाध्यंक्षेण् पृतंना जयेम। ममं देवा विह्वे संन्तु सर्व इन्द्रांवन्तो मुरुतो विष्णुंरुग्निः। ममान्तरिक्षमुरु गोपमंस्तु मह्यं वातः पवतां कामें अस्मिन्न्। मियं देवा द्रविणमा यंजन्ताम्मय्याशीरंस्तु मियं देवहृंतिः। दैव्या होतारा वनिषन्त (२९)

पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तुनुवां सुवीराः। मह्यं यजन्तु मम् यानिं हृव्याकूंतिः सुत्या मनंसो मे अस्तु। एनो मा नि गांं कत्मचनाहं विश्वें देवासो अधि वोचता मे। देवीः षडुर्वीरुरु णांः कृणोत् विश्वें देवास इह वीरयध्वम्। मा हास्मिहि प्रजया मा तुनूभिमां रंधाम द्विष्ते सोम राजत्र्। अग्निर्मन्युम्प्रंतिनुदन्युरस्तांत (३०)

अदंब्यो गोपाः परि पाहि न्स्त्वम्। प्रत्यश्चो यन्तु निगुतः पुन्स्तेऽमैषां चित्तम्प्रबुधा वि नेशत्। धाता धांतृणाम्भुवंनस्य यस्पतिंर्देव संवितारंमिभातिषाहम्। इमं यज्ञमिश्वनोभा बृह्स्पतिंर्देवाः पान्तु यज्ञमानं न्यर्थात्। उरुव्यचां नो महिषः शर्म यस्सदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु। स नंः प्रजाये हर्यश्व मृड्येन्द्र मा (३१)

नो रीरिषो मा परां दाः। ये नंः सपत्ना अप ते भंवन्त्वन्द्राग्निभ्यामवं बाधामहे तान्। वसंवो रुद्रा आंदित्या उंपरिस्पृशंम्मोग्नं चेत्तारमधिराजमंकत्र्। अर्वाश्चमिन्द्रंममुतो हवामहे यो गोजिद्धंनजिदंश्वजिद्यः। इमं नो यज्ञं विहुवे जुंषस्वास्य कुर्मो हरिवो मेदिने त्वा॥ (३२)

वृनिष्न्त पुरस्तान्मा त्रिचंत्वारि श्रच॥————[१४]

अ्ग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसो यम्पाश्चंजन्यम्ब्हवंः सिम्न्थतें। विश्वंस्यां विशि प्रविविशिवाश्संमीमहे स नो मुश्चत्वश्हंसः। यस्येदं प्राणित्रिमिषद्यदेजति यस्यं जातं जनमानं च केवंलम्। स्तौम्युग्निं नांथितो जोहवीमि स नो मुश्चत्वश्हंसः। इन्द्रंस्य मन्ये प्रथमस्य प्रचेतसो वृत्रघ्नः स्तोमा उप मामुपागुंः। यो दाशुषंः सुकृतो हव्मुप् गन्तां (३३)

स नों मुश्चत्व १ हंसः। यः संङ्गमं नयंति सं वृशी युधे यः पुष्टानिं स १ सृजतिं त्रयाणिं। स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नों मुश्चत्व १ हंसः। मृन्वे वाँम्मित्रावरुणा तस्यं वित्त १ सत्यौजसा द १ हणा यं नुदेथैं। या राजांन १ स्र १ याथ उंग्रा ता नों मुश्चत्मागंसः। यो वा १ रथं ऋजुरंश्मिः सत्यर्थमां मिथुश्चरंन्तमुप्यातिं दूषयत्रं। स्तौमिं (३४)

मित्रावरुणा नाथितो जोहवीमि तौ नौ मुश्चत्मागंसः। वायोः संवितुर्विदयानि मन्महे यावाँत्मन्विद्विभृतो यो च रक्षंतः। यो विश्वंस्य परिभू बंभूवतुस्तौ नौ मुश्चत्मागंसः। उप्रश्लेष्ठां न आशिषों देवयोर्धर्में अस्थिरत्र्। स्तौमिं वायु संवितारं नाथितो जोहवीमि तौ नों मुश्चत्मागंसः। रथीतमौ रथीनामंह्व ऊतये शुभुं गिमेष्ठौ सुयमेभिरश्वैः। ययौः (३५)

वां देवौ देवेष्विनिशित्मोज्ञस्तौ नी मुश्चत्मागंसः। यदयांतं वहृतु सूर्यायाँ स्रिच्क्रेणं स् स् सर्दिमिच्छमानो। स्तौमिं देवावृश्विनौं नाथितो जोहवीिम् तौ नीं मुश्चत्मागंसः। मुरुताँम्मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वांमवन्तु विश्वां। आृशून् हुंवे सुयमानृतये ते नो मुश्चन्त्वेनंसः। तिग्ममार्युधं वीडित सहंस्विद्दिच्य शर्धः (३६)

पृतंनासु जिप्णु। स्तौमिं देवान्मुरुतों नाथितो जोहवीमि ते नों मुश्चन्त्वेनंसः। देवानांम्मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वांमवन्तु विश्वं। आ्शून् हुवे सुयमांनूतये ते नों मुश्चन्त्वेनंसः। यदिदम्मांभिशोचंति पौरुषयेण दैव्येन। स्तौमि विश्वां देवान्नांथितो जोहवीमि ते नों मुश्चन्त्वेनंसः। अनुं नोऽद्यानुंमित्रिरनुं (३७)

इदंनुमते त्वं वैंश्वान्रो नं ऊत्या पृष्टो दिवि। ये अप्रथेताममितेभिरोजोंभिर्ये प्रतिष्ठे

अभवतां वसूनाम्। स्तौमि द्यावांपृथिवी नांथितो जोहवीमि ते नो मुश्चत्म १ हंसः। उर्वी रोदसी वरिवः कृणोतं क्षेत्रंस्य पत्नी अधि नो ब्रूयातम्। स्तौमि द्यावांपृथिवी नांथितो जोहवीमि ते नो मुश्चत्म १ हंसः। यत्ते वयं पुंरुषत्रा यंविष्ठाविद्वा १ सश्चकुमा कच्चन (३८)

आर्गः। कृधी स्वंस्मार अदिंतेरनांगा व्येनारंसि शिश्रथो विष्वंगग्ने। यथां ह् तद्वंसवो गौर्यं चित्पदि षितामम्ंश्रता यजत्राः। एवा त्वम्स्मत्प्र मृंश्रा व्यर्हः प्रातांर्यग्ने प्रत्रां न् आयुं: (३९)

| गन्तां | दूषयुन्थ्स्तौरि | मे ययोः | शर्धोऽनुमितिरनु | चुन | चर्तुस्त्रि १शच॥ | [१५] |
|--------------|-----------------|--------------|-----------------|-----|------------------|------|
| अग्निष्ट्वां | वाुमश्वो (| द्विचंत्वारि | श्च॥ | | | [१६] |

॥काण्डम् ५॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

सावित्राणिं जुहोति प्रसूँत्यै चतुर्गृहीतेनं जुहोति चतुंष्पादः पृशवः पृश्नेवावं रुन्द्वे चतंस्रो दिशों दिक्ष्वंव प्रतिं तिष्ठति छन्दार्शसे देवेभ्योऽपांकामृत्र वोऽभागानिं हृव्यं वंक्ष्याम् इति तेभ्यं पृतचंतुर्गृहीतमंधारयन् पुरोनुवाक्यांयै याज्यांयै देवतांयै वषद्वाराय् यचंतुर्गृहीतं जुहोति छन्दार्श्स्येव तत्प्रीणाति तान्यंस्य प्रीतानिं देवेभ्यों हृव्यं वंहन्ति यं कामयेत (१)

पापीयान्थस्यादित्येकैकं तस्यं जुहुयादाहुंतीभिरेवेन्मपं गृह्णाति पापीयान्भवित् यं कामयंत वसीयान्थस्यादिति सर्वाणि तस्यांनुद्रत्यं जुहुयादाहुंत्येवेनंमभि क्रंमयित वसीयान्भवृत्यथीं यज्ञस्यैवेषाभिक्रांन्तिरेति वा एष यंज्ञमुखादद्धा यौंऽग्नेर्देवताया एत्यष्टावेतानि सावित्राणि भवन्त्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रः (२)

अग्निस्तेनेव यंज्ञमुखादद्धां अग्नेर्देवतांये नैत्यृष्टो सांवित्राणि भवन्त्याहुंतिर्नवृमी त्रिवृतंमेव यंज्ञमुखे वि यांतयित यदि कामयेत छन्दारेसि यज्ञयश्सेनांपियेयमित्यृचंमन्तमां कुर्याच्छन्दार्थस्येव यंज्ञयश्सेनांपियित यदि कामयेत यजंमानं यज्ञयश्सेनांपियेयमिति यज्ञंपन्तमं कुर्याद्यजंमानमेव यंज्ञयश्सेनांपियत्यृचा स्तोम्र समेर्ध्येति (३)

आहु समृंद्धौ चृतुर्भिरिश्चमा देत्ते चृत्वारि छन्दांश्सि छन्दोंभिरेव देवस्यं त्वा सिवृतः प्रंस्व इत्यांह प्रसूँत्या अग्निर्देवेभ्यो निलायत् स वेणुम्प्राविशय्स एतामूितमनु समंचरद्यद्वेणौः सुष्टिर सुष्टिराश्चिभवित सयोनित्वाय् स यत्रयत्रावसत्तत्कृष्णमंभवत्कत्माषी भंवति रूपसंमृद्धा उभयतःक्ष्णूर्भवतीतश्चामृतंश्चार्कस्यावंश्रद्धौ व्याममात्री भंवत्येतावद्दै पुरुषे वीर्यं वीर्यसम्मृताऽपरिमिता भवत्यपरिमित्तस्यावंश्रद्धौ यो वनस्पतीनाम्फलग्रिहः स एषां वीर्यावान्फलग्रहिवेणुंवेण्वी भंवित वीर्यस्यावंश्रद्धौ (४)

कामयेत गायुत्रों ऽर्ध्येति च सप्तिविर्शितिश्च॥————[१]

व्यृंद्धं वा पृतद्यज्ञस्य यदंयजुष्केण क्रियतं इमामंगृभ्णत्रश्नामृतस्येत्यंश्वाभिधानीमा देत्ते

यर्जुष्कृत्यै य्ज्ञस्य समृंद्धै प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रवेत्यश्वंमभि दंधाति रूपमेवास्यैतन्मंहिमानं व्याचंष्टे युआथार् रासंभं युविमितिं गर्दभमसंत्येव गर्दभं प्रतिं ष्ठापयित तस्मादश्वांद्रर्दभो- उसंतरो योगेयोगे तुवस्तंर्मित्यांह (५)

योगेयोग पुवैनं युङ्के वाजेवाजे हवामह् इत्याहात्रुं वै वाजोऽन्नमेवावं रुन्द्धे सर्खाय् इन्द्रमूतय् इत्याहिन्द्रियमेवावं रुन्द्धेऽग्निर्देवेभ्यो निर्लायत् तं प्रजापंतिरन्वंविन्दत्प्राजापृत्यो- ऽश्वोऽश्वेन सम्भर्त्यन्वित्त्यै पापवस्यसं वा पृतित्नियते यच्छ्रेयसा च पापीयसा च समानं कर्म कुर्वन्ति पापीयान् (६)

ह्यश्वाँद्गर्दभोऽश्वम्पूर्वं नयन्ति पापवस्यसस्य व्यावृत्त्ये तस्माच्छ्रेया स्मम्पापीयान्यश्चादन्वेति बहुर्वे भवंतो भ्रातृंव्यो भवंतीव खलु वा एष यौंऽग्निं चिनुते वज्यर्थः प्रतूर्वृत्रेह्मंवृक्तामृत्रशंस्तीिरित्यांहु वज्रेणैव पाप्मानुम्भ्रातृंव्यमवं क्रामित रुद्रस्य गाणपत्यादित्यांह रौद्रा व पृशवों रुद्रादेव (७)

पुश्तियांच्यात्मने कर्म कुरुते पूष्णा सयुजां सहेत्यांह पूषा वा अध्वंना समेता समेष्ट्रो पुरीषायतनो वा एष यदग्निरङ्गिरसो वा एतमग्ने देवतांना समेभरन्पृथिव्याः सधस्थांदग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वदच्छेहीत्यांह सायंतनमेवैनं देवतांभिः सम्भरत्यग्निम्पुंरीष्यंमङ्गिर्स्वदच्छेम् इत्यांह येनं (८)

संगच्छंते वाजंमेवास्यं वृङ्के प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याग्निः सम्भृत्य इत्यांहुरियं वै प्रजापंतिस्तस्यां एतच्छ्रोत्रं यद्वल्मीकोऽग्निम्पुंरीष्यमङ्गिर्स्वद्वरिष्याम् इति वल्मीकव्पामुपं तिष्ठते साक्षादेव प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याग्निः सम्भरत्यग्निम्पुंरीष्यमङ्गिर्स्वद्वराम् इत्यांह् येनं संगच्छंते वाजंमेवास्यं वृङ्केऽन्वग्निरुषसामग्रम् (९)

अख्यदित्याहानुंख्यात्या आगत्यं बाज्यध्वंन आक्रम्यं बाजिन्पृथिवीमित्यांहेच्छत्येवैनम्पूर्वया विन्दत्युत्तंरया द्वाभ्यामा क्रंमयित प्रतिष्ठित्या अनुंरूपाभ्यान्तस्मादनुंरूपाः पृशवः प्र जांयन्ते द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमित्यांहैभ्यो वा एतं लोकेभ्यः प्रजापंतिः समैरयद्रूपमेवास्येतन्महिमानं व्याचेष्टे वृज्ञी वा एष यदश्वो दद्भिरन्यतोदद्यो भूयाङ्काँमभिरुभ्यादंद्यो यं द्विष्यात्तमधस्पदं ध्यांयेद्वज्ञेणैवैनई स्तृणुते॥10॥

आह् पापीयात्रुद्रादेव येनाग्रं वृज्री वै सप्तदंश च॥🗕

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

उत्क्रामोदंक्रमीदिति द्वाभ्यामुत्क्रंमयित प्रतिष्ठित्या अनुंरूपाभ्यान्तस्मादनुंरूपाः पृशवः प्र जांयन्तेऽप उपं सृजति यत्र वा आपं उपगच्छंन्ति तदोषंधयः प्रतिं तिष्ठन्त्योषंधीः प्रतितिष्ठंन्तीः पृशवोऽनु प्रतिं तिष्ठन्ति पृश्न् यृज्ञो यृज्ञं यजंमानो यजंमानं प्रजास्तस्माद्प उपं सृजति प्रतिष्ठित्ये यदंध्वर्युरंन्य्रावाहुंतिं जुहुयादुन्थौंऽध्वर्युः (११)

स्याद्रक्षा १सि यूज्ञ १ हंन्युर्हिरंण्यमुपास्यं जुहोत्यग्निवत्येव जुंहोति नान्भौंऽध्वर्युर्भवंति न युज्ञ १ रक्षा १सि प्रन्ति जिघंम्यंग्निम्मनंसा घृतेनेत्यांह् मनंसा हि पुर्रुषो युज्ञमंभिगच्छंति प्रतिक्ष्यन्तम्भुवंनानि विश्वेत्यांह् सर्व्षु ह्येष प्रत्यङ्केति पृथुं तिर्श्वा वयंसा बृहन्तिमित्याहाल्पो ह्येष जातो महान् (१२)

भवंति व्यचिष्ठमन्नर् रभुसं विदानिमित्याहान्नमेवास्मैं स्वदयित सर्वमस्मे स्वदते य एवं वेदा त्वां जिधिम् वर्चसा घृतेनेत्यांह् तस्माद्यत्पुरुषो मनसाभिगच्छंति तद्वाचा वंदत्यरक्षसेत्यांह् रक्षंसामपहत्यै मर्यश्रीः स्पृह्यद्वंणीं अग्निरित्याहापंचितिमेवास्मिन्दधात्यपंचितिमान्भवित य एवं (१३)

वेद मनंसा त्वै तामाप्तृंमर्हित् यामंध्वर्युरंनुग्नावाहुंतिं जुहोति मनंस्वतीभ्यां जुहोत्याहुंत्यो्ररास्यै द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै यज्ञमुखयंज्ञमुखं वै क्रियमाणे यज्ञश्र रक्षाश्रेसि जिघाश्सन्त्येतर्हि खलु वा एतद्यंज्ञमुखं यर्ह्येनदाहुंतिरश्जुते परि लिखित् रक्षंसामपंहत्यै तिसृभिः परि लिखिति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तरमाद्रक्षाश्रूस्यपं हन्ति (१४)

ग्यित्रिया परि लिखित तेजो वै गांयत्री तेजंसैवैनं परि गृह्णाति त्रिष्टुभा परि लिखतीन्द्रियं वै त्रिष्टुर्गिन्द्रियेणैवैन्म् परि गृह्णात्यनुष्टुभा परि लिखत्यनुष्टुफ्सर्वाणि छन्दा रेसि परिभूः पर्यांस्यै मध्यतोऽनुष्टुभा वाग्वा अनुष्टुप्तस्मांन्मध्यतो वाचा वंदामो गायित्रया प्रथमया परि लिखत्यथानुष्टुभाथं त्रिष्टुभा तेजो वै गांयत्री यज्ञोऽनुष्टुर्गिन्द्रियं त्रिष्टुप्तेजंसा चैवेन्द्रियेणं चोभयतो यज्ञं परि गृह्णाति॥ (१५)

अन्थौं ऽध्वर्युर्म्हान्भविति त्रिष्टुभा तेजो वै गांयत्री त्रयोदश च॥———[३]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्व इति खनित् प्रसूँत्या अथौ धूममेवैतेनं जनयित् ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतींकृमित्यांह् ज्योतिरेवैतेनं जनयित् सौंऽग्निर्जातः प्रजाः शुचार्पयत्तं देवा अर्धुर्चेनांशमयञ्छिवं प्रजाभ्योऽहिर्ससन्तमित्यांह प्रजाभ्यं एवैनर्स शमयित् द्वाभ्याः खनित् प्रतिष्ठित्या अपां पृष्ठमुसीति पुष्करपूर्णमा (१६)

हुर्त्यपां वा एतत्पृष्ठं यत्पृष्करपूर्णः रूपेणैवैन्दा हंरति पुष्करपूर्णेन् सम्भंरित योनिर्वा अग्नेः पृष्करपूर्णः सयोनिमेवाग्निः सम्भंरित कृष्णाजिनेन् सम्भंरित यज्ञो वै कृष्णाजिनं यज्ञेनैव यज्ञः सम्भंरित यद्ग्राम्याणां पश्नां चर्मणा सम्भरेद्ग्राम्यान्पश्र्ञ्ज्रुचार्पयेत्कृष्णाजिनेन् सम्भरत्यारुण्यानेव पृश्न् (१७)

शुचार्पयित् तस्मांथ्समावंत्पशूनां प्रजायंमानानामार्ण्याः पृशवः कनीया रसः शुचा ह्यंता लोमृतः सम्भेर्त्यतो ह्यंस्य मेध्यं कृष्णाजिनं चं पृष्करपृणं च् सङ् स्तृंणातीयं वे कृष्णाजिनम्सौ पृष्करपृणमाभ्यामेवेनंमुभ्यतः परि गृह्वात्यग्निर्देवेभ्यो निलायत् तमथुर्वान्वंपश्यदर्थवा त्वा प्रथुमो निरंमन्थदग्न इति (१८)

आह् य एवैनंमन्वपंश्यत्तेनैवैन् सम्भंरित त्वामंग्ने पुष्कंरादधीत्यांह पुष्करपूर्णे ह्येन्मुपंश्रित्मविन्दत्तम्ं त्वा दुध्यङ्कृषिरित्यांह दुध्यङ्का आंधर्वणस्तेजस्व्यांसीत्तेजं एवास्मिन्दधाति तम् त्वा पाथ्यो वृषेत्यांह पूर्वमेवोदितमुत्तरेणाभि गृंणाति (१९)

चृत्सृभिः सम्भंरित चृत्वारि छन्दां सि छन्दोंभिरेव गांयत्रीभिंब्राह्मणस्यं गायत्रो हि ब्राह्मणस्बिष्टुग्भी राजन्यंस्य त्रेष्ट्रंभो हि राजन्यों यं कामयेत् वसीयान्थ्स्यादित्युभयीभिस्तस्य सम्भरितेज्ञेश्चेवास्मां इन्द्रियं चं सुमीची दधात्यष्टाभिः सम्भरत्यृष्टाक्षरा गायत्री गांयत्री- ऽग्निर्यावांनेवाग्निस्त सम्भरिते सीदं होत्रित्यांह देवतां पुवास्मै स॰ सांदयित नि होतेतिं मनुष्यान्थ्स सीद्स्वेति वया सि जनिष्वा हि जन्यो अग्रे अहामित्यांह देवमनुष्यानेवास्मै स॰ संत्रान्य जनयित॥ (२०)

ऐव पुशूनितिं गृणाति होत्तिरितिं सप्तविर्श्शतिश्च॥

-[8]

क्रूरमिव वा अंस्या एतत्कंरोति यत्खनंत्युप उपं सृज्त्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्यै शुचर्र शमयति सं तें वायुर्मातिरिश्वां दधात्वित्यांह प्राणो वै वायुः प्राणेनैवास्यैं प्राणर सं दंधाति सं तें वायुरित्यांह तस्माँद्वायुप्रंच्युता दिवो वृष्टिरीर्ते तस्मैं च देवि वषंडस्तु (२१)

तुभ्यमित्यांह षड्वा ऋतवं ऋतुष्वेव वृष्टिं दधाति तस्माथ्सर्वांनृतून् वंर्षित् यद्वंषद्भुर्याद्रक्षार्रसि यज्ञर हंन्युर्वेडित्यांह प्रोक्षंमेव वर्षद्भरोति नास्यं यातयांमा वषद्भारो भवंति न यज्ञर रक्षार्रसि घ्रन्ति सुजांतो ज्योतिषा सहेत्यंनुष्टुभोपं नह्यत्यनुष्टुप् (२२) सर्वाणि छन्दार्स्सि छन्दार्स्सि खलु वा अग्नेः प्रिया तृन्ः प्रिययैवैनं तृनुवा परि दधाति वेर्दुको वासो भवति य एवं वेदं वारुणो वा अग्निरुपंनद्ध उद्ं तिष्ठ स्वध्वरोध्वं कु षु णं कृतय इति सावित्रीभ्यामुत्तिष्ठति सिवतृप्रंम्त एवास्योध्वां वंरुणमेनिम्थ्संजिति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै स जातो गर्भो असि (२३)

रोदंस्योरित्यांहेमे वै रोदंसी तयोरेष गर्भी यदग्निस्तस्मादेवमाहाग्ने चारुर्विभृंत ओषंधीष्वित्यांह यदा ह्येतं विभर्न्त्यथ् चारुंतरो भवंति प्र मातृभ्यो अधि कनिकदन्न इत्याहौषंधयो वा अस्य मातर्स्ताभ्यं एवैन्म्प्र च्यांवयित स्थिरो भव वीड्वंङ्ग इति गर्दभ आ सादयित (२४)

सं नंह्यत्येवैनंमेतयां स्थेम्ने गर्दभेन् सम्भरित् तस्मांद्गर्दभः पंशूनाम्भारभारितंमो गर्दभेन् सम्भरित् तस्मांद्गर्दभोऽप्यंनालेशेत्यन्यान्पशून्मेंद्यत्यत्र्र् ह्येनेनार्कर सम्भरित् गर्दभेन् सम्भरित् तस्मांद्गर्दभो द्विरेताः सन्किनेष्ठम्पशूनाम्प्र जायतेऽग्निर्ह्यस्य योनिं निर्दहिति प्रजासु वा एष एतरह्यारूढः (२५)

स ईंश्वरः प्रजाः शुचा प्रदहंः शिवो भंव प्रजाभ्य इत्यांह प्रजाभ्यं एवैनर् शमयित् मानुंषीभ्यस्त्वमंिङ्गर् इत्यांह मानव्यों हि प्रजा मा द्यावांपृथिवी अभि शूंशचो मान्तिरिक्षं मा वनस्पतीनित्यांहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयित प्रेतुं वाजी किनेकदित्यांह वाजी ह्रोंष नानंदद्रासंभः पत्वेतिं (२६)

आह् रासंभ् इति ह्येतमृष्योऽवंदन्भरंत्रिग्निप्पंरीष्यंमित्यांहाग्निः ह्येष भरंति मा पाद्यायुंषः पुरेत्याहायुंरेवास्मिन्दधाति तस्माँद्गर्दभः सर्वमायुंरेति तस्माँद्गर्दभे पुरायुंषः प्रमीते बिभ्यति वृषाग्निं वृषंणम्भर्त्रित्यांह वृषा ह्येष वृषाग्निर्पां गर्भम् (२७)

समुद्रियमित्यांहापा ह्यांष गर्भो यदग्निरग्न आ यांहि वीतय इति वा इमौ लोकौ व्यैतामग्न आ यांहि वीतय इति यदाहानयौंलीकयोवींत्यै प्रच्युतो वा एष आयर्तनादगेतः प्रतिष्ठा स एतर्ह्यांश्वर्युं च यजंमानं च ध्यायत्यृत सत्यमित्यांहेयं वा ऋतम्सौ (२८)

स्त्यम्नयोरिवेनं प्रति ष्ठापयित् नार्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो वर्रुणो वा एष यजमानम्भ्येति यद्ग्निरुपंनद्ध ओषंधयः प्रति गृह्णीताग्निमेतमित्यांह् शान्त्यै व्यस्यन्विश्वा अमंतीररातीरित्यांह् रक्षंसामपंहत्यै निषीदंत्रो अपं दुर्मति हंन्दित्याह् प्रतिष्ठित्या ओषंधयः प्रतिं मोदध्वम्॥ (२९)

अस्त्वनुष्टुवंसि सादयृत्यारूंढुः पत्वेति गर्भमुसौ मोदध्वं द्विचंत्वारि श्वच॥———[५]

वारुणो वा अग्निरुपंनद्धो वि पाज्सेति वि स्रर्श्सयित सिवतुप्रंसूत एवास्य विषूचीं वरुणमेनिं वि सृंजत्यप उपं सृज्त्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुचर् शमयित तिस्भिरुपं सृजति त्रिवृद्धा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुचर् शमयित मित्रः स्र्सुज्यं पृथिवीमित्यांह मित्रो वै शिवो देवानान्तेनैव (३१)

पृन् सर सृंजित् शान्त्यै यद्ग्राम्याणाम्पात्राणां कृपालैः सरसृजेद्ग्राम्याणि पात्राणि शुचापयेदर्मकपालैः सर सृंजत्येतानि वा अनुपजीवनीयानि तान्येव शुचापयिति शर्कराभिः सर सृंजिति धृत्या अथों शंत्वायांजलोमैः सर सृंजित्येषा वा अग्नेः प्रिया तुनूर्यद्जा प्रिययैवेनं तुनुवा सर सृंजित्यथो तेजंसा कृष्णाजिनस्य लोमंभिः सम् (३२)

सृज्ति युज्ञो वै कृष्णाजिनं युज्ञेनैव युज्ञ स् स र सृजिति रुद्राः सम्भृत्यं पृथिवीमित्यांहैता वा एतं देवता अग्रे समंभरं ताभिरेवेन सम्भरित मुखस्य शिरोऽसीत्याह युज्ञो वै मुखस्तस्यैतच्छिरो यदुखा तस्मादेवमाह युज्ञस्यं पुदे स्थ इत्याह युज्ञस्य ह्येते (३३)

पदे अथो प्रतिष्ठित्यै प्रान्याभिर्यच्छ्त्यन्व्न्यैर्मन्नयते मिथुन्त्वाय् त्र्यृंद्धिं करोति त्रयं इमे लोका एषां लोकानामास्यै छन्दोंभिः करोति वीर्यं वै छन्दार्श्स वीर्येणैवेनां करोति यर्जुषा बिलं करोति व्यावृंत्त्या इयंतीं करोति प्रजापंतिना यज्ञमुखेन सम्मितां द्विस्तृनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहांय चतुंः स्तनां करोति पश्नां दोहांयाष्टास्तनां करोति छन्दसां दोहांय नवाश्रिमभिचरंतः कुर्यात्रिवृतंमेव वज्रश्रे सम्भृत्य भ्रातृंव्याय् प्र हंरति स्तृत्ये कृत्वाय सा महीमुखामिति नि दंधाति देवतांस्वेवेनां प्रति ष्ठापयति॥ (३४)

तेनैव लोर्माभुः समेते अभिचरंत एकंवि श्वातिश्व॥_____[७]

सप्तिर्भिर्पयति सप्त वै शीर्षणयाः प्राणाः शिरं एतद्यज्ञस्य यदुखा शीर्षन्नेव यज्ञस्यं प्राणान्दंधाति तस्माध्सप्त शीर्षन्त्राणा अश्वश्वेनं धूपयति प्राजापत्यो वा अश्वः सयोनित्वायादितिस्त्वेत्यांहेयं वा अदितिरदित्यैवादित्यां खनत्यस्या अर्क्नूरङ्काराय न हि स्वः स्व॰ हिनस्तिं देवानां त्वा पत्नीरित्यांह देवानांम् (३५)

वा पुताम्पत्वयोऽग्रेंऽकुर्वन्ताभिरेवेनां दधाति धिषणास्त्वेत्यांह विद्या वै धिषणां विद्याभिरेवेनांम्भीन्द्धे ग्रास्त्वेत्यांहु छन्दार्शस् वै ग्राश्छन्दोभिरेवेनार्श् श्रपयित् वर्ष्णत्रयस्त्वेत्यांह होत्रा वै वर्ष्णत्रयो होत्रांभिरेवेनां पचित् जनयस्त्वेत्यांह देवानां वै पत्नीः (३६)

जनंयुस्ताभिरेवेनां पचित पृङ्गिः पंचित् षङ्गा ऋतवं ऋतुभिरेवेनां पचित् द्विः पचन्तित्यांह् तस्माद्विः संवथ्सरस्यं सस्यम्पंच्यते वारुण्युंखाभीद्धां मैत्रियोपैति शान्त्ये देवस्त्वां सिव्तोद्वंपत्वित्यांह सिव्तृप्रंसूत पृवेनां ब्रह्मणा देवतांभिरुद्वंपत्यपंद्यमाना पृथिव्याशा दिश आ पृण (३७)

इत्यांह् तस्मांद्ग्निः सर्वा दिशोऽनु वि भात्युत्तिष्ठ बृह्ती भंवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्विमत्यांह् प्रतिष्ठित्या असुर्यम्पात्रमनांच्छुण्णमा च्छूंणत्ति देवत्राकंरजक्षीरेणा च्छूंणत्ति पर्मं वा एतत्पयो यदंजक्षीरं पर्मेणैवेनाम्पयसा च्छूंणत्ति यज्ञंषा व्यावृंत्त्यै छन्दोंभिरा च्छूंणत्ति छन्दोंभिर्व छन्दोंभिर छन्दोंभिर्व छन्दोंभिर्व छ

आह देवानां वै पर्लीः पृणेषा षद्वं॥_____

=Γ∠1

एकंवि श्रात्या मार्षैः पुरुषशीर्षमच्छैत्यमेध्या वै मार्षा अमेध्यम्पुरुषशीर्षमंमेध्यैरेवास्यांमेध्ये निरवदाय मेध्यं कृत्वा हंर्त्येकंवि श्रातिर्भवन्त्येकवि शो वै पुरुषः पुरुषस्यास्यै व्यृद्धं वा एतत्प्राणैरंमेध्यं यत्पुरुषशीर्ष संप्तधा वितृंण्णां वल्मीकव्पां प्रति नि दंधाति सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणैरेवैन्थ्समंध्यति मेध्यत्वाय यावन्तः (३९)

वै मृत्युबंन्धव्स्तेषां यम आधिपत्यं परीयाय यमगाथाभिः परि गायित यमादेवैनंद्वङ्के तिसृभिः परि गायित त्रयं इमे लोका एभ्य एवैनंश्लोकेभ्यों वृङ्के तस्माद्रायंते न देयङ्गाथा हि तद्वृङ्केंऽग्निभ्यः पुशूना लंभते कामा वा अग्नयः कामानेवावं रुन्द्वे यत्पशून्नालभेतानंवरुद्धा अस्य (४०)

पृशवः स्युर्यत्पर्यम्भिकृतानुथ्मृजेद्यंज्ञवेश्वसं कुंर्याद्यथ्सः स्थापर्येद्यातयांमानि शीर्षाणि स्युर्यत्पशूनालभंते तेनैव पृशूनवं रुन्द्वे यत्पर्यम्भिकृतानुथ्मृजतिं शीष्णांमयांतयामत्वाय प्राजापृत्येन सङ् स्थापयित युज्ञो वै प्रजापितिर्युज्ञ एव युज्ञं प्रति ष्ठापयित प्रजापितः प्रजा अंसृजत स रिरिचानोऽमन्यत स एता आप्रीरंपश्यत्ताभिर्वै स मुंखतः (४१)

आत्मान्माप्रीणीत् यदेता आप्रियो भवन्ति यज्ञो वै प्रजापंतिर्यज्ञमेवैताभिर्मुख्त आ प्रीणात्यपंरिमितछन्दसो भवन्त्यपंरिमितः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यां ऊनातिरिक्ता मिथुनाः प्रजात्ये लोम्शं वै नामैतच्छन्दंः प्रजापंतेः पृशवों लोम्शाः पृशूनेवावं रुन्द्धे सर्वाणि वा पृता रूपाणि सर्वाण रूपाण्यग्नौ चित्ये क्रियन्ते तस्मादेता अग्नेश्चित्यंस्य (४२)

भ्वन्त्येकंविश्शतिश् सामिधेनीरन्वांह् रुग्वा एंकविश्शो रुचंमेव गंच्छुत्यथौ प्रतिष्ठामेव प्रितिष्ठा ह्येंकविश्शक्षतुंर्विश्शतिमन्वांह् चतुंर्विश्शतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरौऽग्निवैश्वानरः साक्षादेव वैश्वानरमवं रुन्छे परांचीरन्वांह् परांङिव् हि सुंवर्गो लोकः समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्त्वित्यांह् समाभिरेवाग्निं वर्धयित (४३)

ऋतुभिः संवथ्सरं विश्वा आ भांहि प्रदिशः पृथिव्या इत्यांह् तस्मांदग्निः सर्वा दिशोऽनु वि भांति प्रत्यौहताम्श्विनां मृत्युमंस्मादित्यांह मृत्युमेवास्मादपं नुदत्युद्वयं तमंस्स्परीत्यांह पाप्मा वै तमः पाप्मानंमेवास्मादपं हृन्त्यगंन्म ज्योतिंरुत्तमित्यांहासौ वा आंदित्यो ज्योतिंरुत्तममादित्यस्यैव सार्युज्यं गच्छति न संवथ्सरस्तिष्ठति नास्य श्रीस्तिष्ठति यस्यैताः क्रियन्ते ज्योतिंष्मतीमृत्तमामन्वांह् ज्योतिरेवास्मां उपरिष्टाद्दधाति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्यै॥ (४४)

यावंन्तोऽस्य मुख्तश्चित्यंस्य वर्धयत्यादित्यौंऽष्टाविश्रंशतिश्च॥-----[९]

षृद्धिर्दीक्षयित षङ्घा ऋतवं ऋतुभिरेवेनं दीक्षयित सप्तभिर्दीक्षयित स्प्त छन्दा रेस् छन्दोभिरेवेनं दीक्षयित् विश्वे देवस्यं नेतुरित्यंनुष्टभौत्तमयां जुहोति वाग्वा अंनुष्टुप्तस्मौत्प्राणानां वार्गुत्तमैकंस्माद्क्षरादनांप्तम्प्रथमम्पदम् तस्माद्यद्वाचोऽनांप्तं तन्मंनुष्यां उपं जीवन्ति पूर्णयां जुहोति पूर्ण इंव हि प्रजापंतिः (४५)

प्रजापंतरास्यै न्यूंनया जुहोति न्यूंनािद्ध प्रजापंतिः प्रजा असंजत प्रजाना् सृष्ट्यै यद्चिषि प्रवृश्याद्भूतमवं रुन्धोत् यदङ्गारेषु भविष्यदङ्गारेषु प्र वृंणक्ति भविष्यदेवावं रुन्द्धे भविष्यद्दि भूयों भूताद्वाभ्याम्प्र वृंणक्ति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्यै ब्रह्मणा वा एषा यज्ञंषा सम्भृंता यदुखा सा यद्भिद्येतार्तिमार्च्छेंत (४६)

यजंमानो हुन्येतांस्य युज्ञो मित्रैतामुखां तुपेत्यांहु ब्रह्म वै मित्रो ब्रह्मन्नेवैनां प्रतिं ष्ठापयित् नार्तिमार्च्छति यजंमानो नास्यं युज्ञो हंन्यते यिद् भिद्यंत तैरेव कृपाठैः स॰ सृंजेथ्सैव ततः प्रायंश्चित्तियों गृतश्रीः स्यान्मंथित्वा तस्यावं दध्याद्भूतो वा एष स स्वां (४७)

देवतामुपैति यो भूतिकामः स्याद्य उखायै सम्भवेथ्स एव तस्यं स्यादतो ह्येष सम्भवेत्येष वै स्वयम्भूर्नाम् भवंत्येव यं कामयेत् आतृंव्यमस्मै जनयेयमित्यन्यतस्तस्याहृत्यावं दध्याथ्साक्षादेवास्मै आतृंव्यं जनयत्यम्बरीषादन्नंकामस्यावं दध्यादम्बरीषे वा अन्निम्नियते सयौन्येवान्नम् (४८)

अवं रुन्द्धे मुञ्जानवं दधात्यूर्ग्वे मुञ्जा ऊर्जमेवास्मा अपि दधात्युग्निर्देवेभ्यो निलायत् स कुंमुकम्प्राविंशत् कुमुकमवं दधाति यदेवास्य तत्र न्यंक्तं तदेवावं रुन्द्ध आज्येन सं यौत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यदाज्यम् प्रियेणैवेनं धाम्ना समर्धयत्यथो तेजंसा (४९)

वैकंकतीमा दंधाति भा पुवावं रुन्छे शमीमयीमा दंधाति शान्त्यै सीद त्वं मातुरस्या उपस्थ इति तिसृभिंर्जातमुपं तिष्ठते त्रयं इमे लोका पृष्वेव लोकेष्वाविदं गच्छत्यथौं प्राणानेवात्मन्धंत्ते॥ (५०)

प्रजापंतिर्ऋच्छेथ्स्वामेवात्रं तेजंसा चतुंस्त्रि १ शच॥ __________ [१०]

न हं स्मृ वै पुराग्निरपंरशुवृक्णं दहित् तदंस्मै प्रयोग एवर्षिरस्वदयद्यदंशे यानि कानि चेतिं समिधमा दंधात्यपंरशुवृक्णमेवास्मैं स्वदयित सर्वमस्मै स्वदते य एवं वेदौदुंम्बरीमा दंधात्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवास्मा अपिं दधाति प्रजापंतिरृग्निमंसृजत् तर सृष्टर रक्षारंसि (५१)

अजि्घा १ स्वन्थ्य एतद्रौक्षोघ्रमंपश्यतेन् वै स रक्षा १ स्यपंहत् यद्रौक्षोघ्रम्भवंत्युग्नेरेव तेनं जाताद्रक्षा १ स्यपं हन्त्यार्थ्वत्थीमा दंधात्यश्वत्थो वै वनस्पतीना १ सपत्नसाहो विजित्यै वैकंङ्कतीमा दंधाति भा एवावं रुन्द्धे शमीमयीमा दंधाति शान्त्यै सर्शितम्मे ब्रह्मोदेंषाम्बाहू अंतिर्मित्युंत्तमे औदुंम्बरी (५२)

वाच्यति ब्रह्मणैव क्षत्र स इयिति क्षत्रेण ब्रह्म तस्माँद्वाह्मणो राजन्यंवानत्यन्यम्ब्राँह्मणं तस्माँद्राजन्यौ ब्राह्मणवानत्यन्य राजन्यंम्मृत्युर्वा एष यदन्निर्मृत् हिरंण्य रुक्समन्तरं प्रतिं मुञ्चतेऽमृतंमेव मृत्योर्न्तर्धत्त एकंवि श्वातिनिर्बाधो भवत्येकंवि श्वातिर्वे देवलोका द्वादंश मासाः पञ्चर्तवस्त्रयं इमे लोका असावांदित्यः (५३)

पृक् विष्श पृतावंन्तो वै देवलोकास्तेभ्यं पृव भ्रातृंव्यम्नतरेति निर्बाधेर्वे देवा असुरान्निर्बाधेऽकुर्वत् तन्निर्बाधानां निर्बाधत्वन्निर्बाधा भवति भ्रातृंव्यानेव निर्बाध कुरुते सावित्रिया प्रति मुश्चते प्रसूँत्ये नक्तोषासेत्युत्तरयाहोरात्राभ्यांमेवैन्मुद्यंच्छते देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदा इत्याह प्राणा वै देवा द्रविणोदा अहोरात्राभ्यांमेवैनंमुद्यत्यं (५४)

प्राणैर्दाधारासीनः प्रति मुञ्चते तस्मादासीनाः प्रजाः प्र जांयन्ते कृष्णाजिनमुत्तंर्न्तेजो वै हिरंण्यं ब्रह्मं कृष्णाजिनन्तेजंसा चैवेनं ब्रह्मंणा चोभयतः परि गृह्णाति षडुंद्यामर्श्वाक्यंम्भवित् षड्वा ऋतवं ऋतुभिरेवेनमुद्यंच्छते यद्वादंशोद्यामर संवथ्सरेणैव मौअम्भंवृत्यूर्ग्वे मुञ्जों कुर्ज्ञवेन् समर्धयति सुपर्णोऽसि गुरुत्मानित्यवेक्षते रूपमेवास्यैतन्मंहिमानं व्याचंष्टे दिवं गच्छ सुवं पतेत्यांह सुवर्गमेवेनं लोकं गंमयति॥ (५)

रक्षाड्स्यौद्रंम्बरी आदित्य उद्यत्य सञ्चतुंर्विश्शतिश्च॥————[११]

सिमद्धो अञ्चन्कृदंरम्मतीनां घृतमंग्ने मधुंमृत्पिन्वंमानः। वाजी वहंन्वाजिनं जातवेदो देवानां विक्षे प्रियमा सधस्थम्। घृतेनाञ्चन्थ्यसम्पथो देवयानां प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्। अनुं त्वा सप्ते प्रदिशंः सचन्ताङ् स्वधामस्मै यजंमानाय धेहि। ईड्यश्चासि वन्द्यंश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यंश्च सप्ते। अग्निष्ट्वां (५६)

देवैर्वसृंभिः स्जोषाः प्रीतं वहिं वहत् जातवेदाः। स्तीर्णम्बर्हः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्। देवेभिर्युक्तमदितिः स्जोषाः स्योनं कृण्वाना सृविते देधात्। एता उं वः सुभगां विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः। ऋष्वाः स्तीः कृवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्त्। अन्तरा मित्रावरुणा चर्रन्ती मुखं यज्ञानांमभि संविदाने। उषासां वाम् (५७)

सृहिर्ण्ये सृशिल्पे ऋतस्य योनांविह सांदयामि। प्रथमा वार्रं सर्थिनां सुवर्णां देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वां। अपिप्रयं चोदेना वाम्मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशां दिशन्तां। आदित्यैर्नो भारती वष्टु युज्ञर सरंस्वती सह रुद्रेर्न आवीत्। इडोपंहूता वसुंभिः स्जोषां युज्ञं नो देवीर्मृतेषु धत्त। त्वष्टां वीरं देवकांमं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आ्शुरर्श्वः। (५८) त्वष्टेदं विश्वम्भुवंनं जजान बहोः कुर्तारंमिह यक्षि होतः। अश्वों घृतेन् त्मन्या समंक्त् उपं देवा श्रेतुशः पाथं एतु। वनस्पतिर्देवलोकम्प्रंजानन्नग्निनां ह्व्या स्वदितानिं वक्षत्। प्रजापंतेस्तपंसा वावृधानः सद्यो जातो दंधिषे यज्ञमंग्ने। स्वाहांकृतेन ह्विषां पुरोगा याहि साध्या हविरंदन्तु देवाः॥ (५९)

अुग्निष्ट्वां वामश्वो द्विचंत्वारि १शच॥———[१२]

॥ द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पश्चमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

विष्णुंमुखा वै देवाश्छन्दोभिरिमाल्लाँकानंनपज्य्यम्भ्यंजयन् यद्विष्णुक्रमान्क्रमंते विष्णुरेव भूत्वा यजंमानुश्छन्दोभिरिमाल्लाँकानंनपज्य्यम्भि जंयित् विष्णोः क्रमौंऽस्यभिमातिहेत्यांह गायत्री वै पृथिवी त्रैष्ठुंभम्नन्तरिक्षम् जागंती द्यौरानुंष्ठभीर्दिश्रश्छन्दोभिरेवेमाल्लाँकान् यंथापूर्वम्भि जंयित प्रजापंतिरिग्नमंसृजत् सोंऽस्माथ्सृष्टः (१)

पर्राष्ट्रैत्तमेतयान्वैदर्भन्द्दिति तया वे सौँऽग्नेः प्रियं धामावांरुन्द्व यदेतामुन्वाहाग्नेरेवैतयाँ प्रियं धामावं रुन्द्व ईश्वरो वा एष पराँङ्कृदयो यो विष्णुऋमान्क्रमंते चतुसृभिरा वर्तते चुत्वारि छन्दार्रसि छन्दार्रसि खलु वा अग्नेः प्रिया तुन्ः प्रियामेवास्यं तुनुवंमुभि (२)

पूर्यावंतिते दक्षिणा पूर्यावंतिते स्वमेव वीर्यमन् पूर्यावंतिते तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनों वीर्यावत्तरोऽथों आदित्यस्यैवावृतमन् पूर्यावंतिते शुनःशेपमाजींगर्ति वर्रुणोऽगृह्णाथ्स एतां वांरुणोमंपश्यत्तया वै स आत्मानं वरुणपाशादंमुश्चद्वरुणो वा एतं गृह्णाति य उखाम्प्रतिमुश्चत उद्ग्तमं वरुण पार्शमस्मिदित्यांहात्मानंमेवैतयां (३)

वरुणपाशान्मुंश्चत्या त्वांहार्षिमत्याहा ह्येन् हरंति ध्रुवस्तिष्ठाविंचाचित्रिरित्यांह् प्रतिष्ठित्ये विशंस्त्वा सर्वा वाञ्छुन्त्वित्यांह विशेवेन् समर्धयत्यस्मित्राष्ट्रमिधं श्रयेत्यांह राष्ट्रमेवास्मिन्ध्रुवमंकर्यं कामयेत राष्ट्रं स्यादिति तम्मनंसा ध्यायेद्राष्ट्रमेव भंवति (४)

अग्रें बृहन्नुषसांमूर्ध्वों अंस्थादित्याहाग्रंमेवेन र समानानां करोति निर्जिग्मिवान्तमंस् इत्यांह् तमं एवास्मादपं हिन्ति ज्योतिषागादित्यांह् ज्योतिरेवास्मिन्दधाति चतुस्भिः सादयित चत्वारि छन्दारेसि छन्दोभिरेवातिछन्दसोत्तमया वर्ष्म वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा वर्ष्मैवेन र समानानां करोति सद्वंती (५)

भुवृति सुत्त्वमेवैनं गमयित वाथ्सप्रेणोपं तिष्ठत एतेन् वै वंथ्सप्रीर्भालन्दनौँऽग्नेः प्रियं धामावांरुन्द्वाग्नेरेवैतेनं प्रियं धामावं रुन्द्ध एकादशम्भवत्येक्धैव यजंमाने वीर्यं दधाति स्तोमेन् वे देवा अस्मिल्लाँक आँर्धुवृञ्छन्दोभिर्मुष्मिन्थ्स्तोमंस्येव खलु वा एतद्रूपं यद्वाँथ्सप्रम्यद्वाँथ्सप्रेणोप्तिष्ठंते (६)

ड्ममेव तेनं लोकम्भि जंयित यिद्वेष्णुक्रमान्क्रमंतेऽमुमेव तैर्लोकम्भि जंयित पूर्वेद्यः प्र क्रांमत्युत्तरेद्युरुपं तिष्ठते तस्माद्योगेऽन्यासां प्रजानाम्मनः क्षेमेऽन्यासान्तस्माद्यायावरः क्षेम्यस्येशे तस्माद्यायावरः क्षेम्यस्येशे तस्माद्यायावरः क्षेम्यस्येशे तस्माद्यायावरः क्षेम्यम्थ्यवस्यित मुष्टी करोति वाचं यच्छिति यज्ञस्य धृत्यै॥ (७)

मृष्टोड्रे ८२येतयां भवति सद्वेत्युपतिष्ठते द्विचेत्वारि १ शच॥

अन्नप्तेऽन्नंस्य नो देहीत्यांहाभिर्वा अन्नपितः स एवास्मा अन्नम्प्र यंच्छत्यनमीवस्यं शुष्मिण् इत्यांहायक्ष्मस्येति वावैतदांहु प्र प्रंदातारं तारिष् ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुंष्पद् इत्यांहाशिषंमेवेतामा शाँस्त उदं त्वा विश्वे देवा इत्यांह प्राणा वै विश्वे देवाः (८)

प्राणैरेवैनमुद्यंच्छ्तेऽग्ने भरंन्तु चित्तिंभिरित्यांहु यस्मां एवैनं चित्तायोद्यच्छंते तेनैवैन् समर्थयित चत्सभिरा सांदयित चत्वारि छन्दा स्मि छन्दोभिरेवातिंच्छन्दसोत्तमया वर्ष्म् वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा वर्ष्मेवैन समानानां करोति सद्वंती भवित सत्त्वमेवैन गमयित प्रेदंग्ने ज्योतिंष्मान् (९)

याहीत्यांह् ज्योतिरेवास्मिन्दधाति तुनुवा वा एष हिनस्ति य हिनस्ति मा हि सीस्तुन्वां प्रजा इत्यांह प्रजाभ्यं एवैन रेशमयित रक्षारेसि वा एतद्यज्ञर संचन्ते यदनं उथ्सर्जृत्यक्रेन्द्दित्यन्वांह् रक्षंसामपंहत्या अनंसा वहन्त्यपंचितिमेवास्मिन्दधाति तस्मादन्स्वी चं र्थी चार्तिथीनामपंचिततमौ (१०)

अपंचितिमान्भवति य एवं वेदं समिधाऽग्निं दुंवस्यतेतिं घृतानुषिक्तामवंसिते समिधमा

दंधाति यथातिंथय आगंताय सूर्पिष्वंदातिथ्यं क्रियते ताहगेव तद्गांयित्रया ब्राँह्मणस्यं गायत्रो हि ब्राँह्मणस्त्रिष्टुभां राज्नन्यंस्य त्रैष्टुंभो हि राजन्यौंऽफ्सु भस्म प्र वेशयत्यपस्योनिर्वा अग्निः स्वामेवेनं योनिं गमयति तिस्भिः प्र वेशयति त्रिवृद्धै (११)

अग्निर्यावांनेवाग्निस्तम्प्रंतिष्ठां गंमयित् परा वा एषोंऽग्निं वंपति योंऽपस् भस्मं प्रवेशयंति ज्योतिष्मतीभ्यामवं दधाति ज्योतिरेवास्मिन्दधाति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये परा वा एष प्रजां पृशून् वंपति योंऽपस् भस्मं प्रवेशयंति पुनंरूर्जा सह र्य्येति पुनंरुदैतिं प्रजामेव पृशूनात्मन्थंते पुनंस्त्वादित्याः (१२)

रुद्रा वसंवः सिनंन्धतामित्यांहैता वा एतं देवता अग्रे समैँन्धत् ताभिरेवैन् सिनंन्द्रे बोधा स बोधीत्युपं तिष्ठते बोधयंत्येवैनन्तस्माँथ्सुस्वा प्रजाः प्र बुंध्यन्ते यथास्थानमुपं तिष्ठते तस्माँद्यथास्थानम्पुशवः पुनुरेत्योपं तिष्ठन्ते॥ (१३)

वै विश्वें देवा ज्योतिंष्मानपंचिततमौ त्रिवृद्वा आंदित्या द्विचंत्वारि॰शच॥———[२]

यावंती वै पृथिवी तस्यै यम आधिपत्यं परीयाय यो वै यमं देवयर्जनम्स्या अनिर्याच्याग्निं चिनुते यमायैन् स चिनुतेऽपेतत्यध्यवंसाययित यममेव देवयर्जनम्स्ये निर्याच्यात्मनेऽग्निं चिनुत इष्वग्रेण् वा अस्या अनामृतिमेच्छन्तो नाविन्दन्ते देवा पृतद्यज्ञंत्रपश्यन्नपेतेति यदेतेनाध्यवसाययंति (१४)

अनांमृत एवाग्निं चिनुत् उद्धन्ति यदेवास्यां अमेध्यं तदपं हन्त्य्पोऽवौक्षिति शान्त्यै सिकंता नि वंपत्येतद्वा अग्नेवैक्षान्रस्यं रूप र रूपेणैव वैक्षान्रमवं रुन्द्व ऊषान्नि वंपति पृष्टि्वा एषा प्रजनेनं यद्षाः पृष्टामेव प्रजनेनेऽग्निं चिनुतेऽथौं संज्ञानं एव संज्ञान् इ ह्येतत् (१५)

पृश्नां यदूषा द्यावांपृथिवी सहास्तान्ते वियती अंब्रतामस्त्वेव नौं सह यज्ञियमिति यद्मुष्यां यज्ञियमासीत्तद्स्यामंदधात्त ऊषां अभवन् यद्स्या यज्ञियमासीत्तद्मुष्यांमदधात्तद्दश्चन्द्रमंसि कृष्णमूषांत्रिवपंत्रदो ध्यायेद्धावांपृथिव्योरेव यज्ञियेऽग्निं चिनुतेऽयर सो अग्निरितिं विश्वामित्रस्य (१६)

सूक्तम्भंवत्येतेन् वै विश्वामित्रोऽग्नेः प्रियं धामावांरुन्द्वाग्नेरेवैतेनं प्रियं धामावं रुन्द्रे छन्दोंभिर्वे देवाः सुवर्गं लोकमायश्चतंस्रः प्राचीरुपं दधाति चत्वारि छन्दार्शसे छन्दोंभिरेव तद्यजमानः सुवर्गं लोकमेति तेषार्थं सुवर्गं लोकं यतां दिशः समेन्नीयन्त् ते द्वे पुरस्तांथ्समीची उपांदधत द्वे (१७)

पृश्चाथ्समीची ताभिर्वे ते दिशोंऽह॰हुन् यह्ने पुरस्तांथ्समीचीं उपदर्धाति ह्ने पृश्चाथ्समीचीं दिशां विधृत्या अथों पृशवो वे छन्दांश्सि पशूनेवास्में समीचों दधात्यष्टाबुपं दधात्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रींऽग्निर्यावांनेवाग्निस्तं चिनुतेऽष्टाबुपं दधात्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्री सुंवर्गं लोकमञ्जंसा वेद सुवर्गस्यं लोकस्यं (१८)

प्रज्ञाँत्यै त्रयोंदश लोकं पृणा उपं दधात्येकंवि शितिः सम्पंद्यन्ते प्रतिष्ठा वा एंकि वि श्रेति गार्हंपत्य एकि वि श्रेति श्रेति गार्हंपत्य एकि वि श्रेति श्रेति गार्हंपत्यम्नु प्रति तिष्ठति प्रत्यप्रिं चिक्यानिस्तिष्ठति य एवं वेद पश्चेचितीकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः पाङ्कौ युज्ञः पाङ्कौः प्रश्चो यज्ञमेव प्रशूनवं रुन्द्धे त्रिचितीकं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रयं इमे लोका एष्वेव लोकेषुं (१९)

प्रति तिष्ठत्येकंचितीकं चिन्बीत तृतीयं चिन्बान एंक्धा वै सुंबुर्गो लोक एंक्वृतैव सुंबुर्गं लोकमेंति पुरीषेणाभ्यूंहति तस्मान्मा १ सेनास्थि छन्नन्न दुश्चर्मा भवति य एवं वेद पश्च चित्रंयो भवन्ति पश्चभिः पुरीषेर्भ्यूंहति दश् सम्पंचन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड्बिराज्येवान्नाचे प्रति तिष्ठति॥ (२०)

अद्धवसाययंति ह्यंतद्विश्वामित्रस्यादधत् द्वे लोकस्यं लोकेषुं सप्तचंत्वारि शच॥———[३]

वि वा पृतौ द्विषाते यश्चं पुराग्निर्यश्चोखाया समित्निर्मितिं चत्स्भिः सं नि वंपति चत्वारि छन्दा से छ छन्दा से खलु वा अग्नेः प्रिया तृनः प्रिययैवेनौं तृनुवा सर् शाँस्ति समित्नित्यां हु तस्माद्वह्मंणा क्षृत्र समेति यथ्संन्युप्यं विहरिति तस्माद्वह्मंणा क्षृत्रं व्यौत्यृत्भिः (२१)

वा पृतं दींक्षयन्ति स ऋतुभिरेव विमुच्यों मातेवं पुत्रं पृथिवी पुरीष्यंमित्यांहुर्तुभिरेवैनं दीक्षयित्वर्तुभिर्वि मुंश्रति वैश्वान्यां शिक्यंमा दंते स्वदयंत्येवैनंत्रैर्ऋतीः कृष्णास्तिस्रस्तुषंपका भवन्ति निर्ऋत्ये वा पृतद्भाग्धेयं यत्तुषा निर्ऋत्ये रूपं कृष्ण र रूपेणेव निर्ऋतिं निरवंदयत इमां दिशं यन्त्येषा (२२)

वै निर्ऋंत्यै दिख्स्वायांमेव दिशि निर्ऋंतिं निरवंदयते स्वकृत् इरिण उपं दधाति प्रदरे वैतद्वै निर्ऋंत्या आयतंन् स्व एवायतंने निर्ऋंतिं निरवंदयते शिक्यंम्भ्युपं दधाति

नैर्ऋतो वै पार्शः साक्षादेवैनं निर्ऋतिपाशान्मं अति तिस्र उपं दधाति त्रेधाविहितो वै पुरुषो यावानेव पुरुषस्तस्मान्निर्ऋतिमवं यजते परांचीरुपं (२३)

द्धाति परांचीमेवास्मान्निर्ऋतिम्प्र णुंदतेऽप्रंतीक्षमा यंन्ति निर्ऋत्या अन्तर्हित्ये मार्जियत्वोपं तिष्ठन्ते मेध्यत्वाय गार्हंपत्यमुपं तिष्ठन्ते निर्ऋतिलोक एव चंरित्वा पूता देंवलोकमुपावर्तन्त एक्योपं तिष्ठन्त एक्धेव यजंमाने वीर्यं दधित निवेशंनः संगमनो वसूनामित्यांह प्रजा वै पृशवो वसुं प्रजयैवैनंम्पृशुभिः समर्धयन्ति॥ (२४)

ऋतुभिरेषा परांचीरुपाष्टाचंत्वारि शच॥

[8]

पुरुषमात्रेण वि मिमीते यज्ञेन वै पुरुषः सम्मितो यज्ञपुरुषैवैनं वि मिमीते यावान्पुरुष ऊर्ध्वबांहुस्तावान्भवत्येतावद्वै पुरुषे वीर्यं वीर्येणैवैनं वि मिमीते पक्षी भवित न ह्यंपुक्षः पतिंतुमर्हंत्यपृत्तिनां पृक्षौ द्राघीया स्मौ भवतस्तस्मात्पक्षप्रवया स्मि वया सि व्याममात्रौ पृक्षौ च भवत्येतावद्वै पुरुषे वीर्यम् (२५)

वीर्यंसम्मितो वेणुंना वि मिंमीत आग्नेयो वै वेणुंः सयोनित्वाय यजुंषा युनिक्त यजुंषा कृषिति व्यावृत्त्ये पङ्गवेनं कृषिति पङ्घा ऋतवं ऋतुभिरेवैनं कृषिति यद्घांदशग्वेनं संवथ्सरेणै्वेयं वा अग्नेरंतिदाहादंबिभे्थ्सैतिद्द्वंगुणमंपश्यत्कृष्टं चार्कृष्टं च ततो वा इमां नात्यंदहद्यत्कृष्टं चार्कृष्टं च (२६)

भवंत्यस्या अनंतिदाहाय द्विगुणं त्वा अग्निमुद्यंन्तुमर्ह्तीत्यांहुर्यत्कृष्टं चाकृष्टं च् भवंत्यग्नेरुद्यंत्या एतावंन्तो वै पृशवौ द्विपादंश्च चतुष्पादश्च तान् यत्प्राचं उथ्सृजेद्रुद्रायापि दथ्याद्यद्वंक्षिणा पितृभ्यो नि धुंवेद्यत्प्रतीचो रक्षा रेसि हन्युरुदींच उथ्सृंजत्येषा वै देवमनुष्याणा रेशान्ता दिक् (२७)

तामेवैनानन्थ्सृंजत्यथो खिल्वमां दिश्मुथ्सृंजत्यसौ वा अदित्यः प्राणः प्राणमेवैनानन्थ्सृंजित दक्षिणा पूर्यावंर्तन्ते स्वमेव वीर्यमन् पूर्यावंर्तन्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्घ आत्मनो वीर्यावत्तरेऽथो आदित्यस्यैवावृत्मन् पूर्यावंर्तन्ते तस्मात्पराश्चः पृशवो वि तिष्ठन्ते प्रत्यं च आ वंर्तन्ते तिस्रस्तिसः सीताः (२८)

कृषति त्रिवृतंमेव यंज्ञमुखे वि यांतयत्योषंधीर्वपति ब्रह्मणात्रमवं रुन्द्धेऽर्केऽर्कश्चीयते चतुर्देशभिर्वपति सप्त ग्राम्या ओषंधयः सप्तार्ण्या उभयीषामवंरुद्धा अत्रंस्यात्रस्य वपत्यन्नंस्यान्नस्यावंरुद्धे कृष्टे वंपति कृष्टे ह्योषंधयः प्रतितिष्ठंन्त्यनुसीतं वंपित् प्रजाँत्ये द्वादशस् सीतांसु वपित् द्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सरेणैवास्मा अन्नंम्पचित् यदंग्निचित् (२९)

अनंवरुद्धस्याश्जीयादवंरुद्धेन् व्यृंद्धोत् ये वनस्पतींनाम्फलुग्रहंयस्तानि्ध्मेऽपि प्रोक्षेदनंवरुद्धस्यावंरुद्धौ दिग्भ्यो लोष्टान्थ्समंस्यति दिशामेव वीर्यमवरुध्यं दिशां वीर्येऽग्निं चिनुते यं द्विष्याद्यत्र स स्यात्तस्यैं दिशो लोष्टमा हंरेदिषमूर्जमहिमत आ दंद इतीषंमेवोर्जं तस्यै दिशोऽवं रुन्द्धे क्षोधुंको भवति यस्तस्यां दिशि भवंत्युत्तरवेदिमुपं वपत्युत्तरवेद्याः ह्यंग्निश्चीयतेऽथों पृशवो वा उत्तरवेदिः पृशूनेवावं रुन्द्धेऽथों यज्ञपुरुषोऽनंन्तरित्यै॥ (३०)

च भुवृत्येतावृद्धे पुरुषे वीर्यं यत्कृष्टश्चाकृष्टं च दिख्सीतां अग्निचिदव पश्चवि शतिश्च॥ [५]

अग्ने तव श्रवो वय इति सिकंता नि वंपत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वान्रस्यं सूक्त स्रूक्तेनेव वैश्वान्रमवं रुन्द्धे षङ्किर्नि वंपति षङ्घा ऋतवंः संवथ्सरः संवथ्सरौऽग्निर्वैश्वान्रः साक्षादेव वैश्वान्रमवं रुन्द्धे समुद्रं वै नामैतच्छन्दंः समुद्रमन् प्रजाः प्र जांयन्ते यदेतेन सिकंता निवपंति प्रजानां प्रजननायेन्द्रः (३१)

वृत्राय वज्रम्प्राहंर्थ्स त्रेधा व्यंभव्थस्प्यस्तृतीयः रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयं येंऽन्तःश्र्रा अशीर्यन्त ताः शर्करा अभवन्तच्छर्कराणाः शर्कर्त्वं वज्रो वै शर्कराः पश्रुरिप्रयंच्छर्कराभिर्प्निं परिमिनोति वज्रेणेवास्मै पृश्रून्परि गृह्णाति तस्माद्वज्रेण पृशवः परिगृहीतास्तस्माथ्स्थेयानस्थेयसो नोपं हरते त्रिसप्ताभिः (३२)

पृशुकांमस्य परि मिनुयाथ्सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणाः पृशवः प्राणैरेवास्मैं पृशूनवं रुन्द्धे त्रिणवाभिर्भातृंव्यवतिश्चवृतंमेव वज्र सम्भृत्य भ्रातृंव्याय प्र हंरति स्तृत्या अपेरिमिताभिः परि मिनुयादपेरिमितस्यावंरुद्धौ यं कामयेतापृशः स्यादित्यपेरिमित्य तस्य शर्कराः सिकंता व्यृंहेदपेरिगृहीत एवास्यं विषूचीन् रेरेतः परा सिश्चत्यपृशुरेव भवति (३३)

यं कामयेत पशुमान्थस्यादिति परिमित्य तस्य शर्कराः सिकंता व्यूंहेत्परिगृहीत एवास्मैं समीचीन् रेतंः सिश्चति पशुमानेव भवति सौम्या व्यूंहति सोमो वै रेतोधा रेतं एव तद्दंधाति गायित्रया ब्राह्मणस्यं गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टभां राजन्यंस्य त्रैष्टुंभो हि राजन्यः शुं युम्बांर्हस्पत्यम्मेधो नोपांनम्थसौंऽग्निम्प्राविंशत (३४)

सौंऽग्नेः कृष्णों रूपं कृत्वोदांयत् सोऽश्वम्प्राविश्वथ्सोऽश्वंस्यावान्तरश्यां-ऽभव्द्यदश्वंमाक्रमयंति य एव मेधोऽश्वम्प्राविश्वत्तमेवावं रुन्द्धे प्रजापंतिनाग्निश्चेंत्व्यं इत्याहुः प्राजापत्योऽश्वो यदश्वंमाक्रमयंति प्रजापंतिनैवाग्निं चिंनुते पुष्करपूर्णमुपं दधाति योनिर्वा अग्नेः पुष्करपूर्णं सयोनिमेवाग्निं चिंनुतेऽपां पृष्ठमुसीत्युपं दधात्यपां वा एतत्पृष्ठं यत्पुष्करपूर्णं रूपेणैवैनुदुपं दधाति॥ (३५)

इन्द्रंः पृशुकांमस्य भवत्यविश्रथ्सयोंनिं विश्शृतिश्चं॥_____[६]

ब्रह्मं जज्ञानिमितिं क्कामुपं दथाति ब्रह्मंमुखा वै प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ब्रह्मंमुखा एव तत्प्रजा यजंमानः सृजते ब्रह्मं जज्ञानिमत्यांहु तस्माँद्वाह्मणो मुख्यो मुख्यो भवति य एवं वेदं ब्रह्मवादिनो वदन्ति न पृंधिव्यां नान्तिरक्षे न दिव्यंग्निश्चेत्व्यं इति यत्पृंधिव्यां चिन्वीत पृंधिवी श्रुचापंयेन्नौषंधयो न वनस्पतंयः (३६)

प्र जांयेर्न् यद्न्तरिक्षे चिन्वीतान्तरिक्षः शुचार्पयेन्न वयाः सि प्र जांयेर्न् यिद्वि चिन्वीत दिवः शुचार्पयेन्न पर्जन्यो वर्षेद्रुकामुपं दधात्यमृतं वे हिरंण्यममृतं एवाग्निं चिनुते प्रजांत्ये हिर्ण्मयं पुरुषमुपं दधाति यजमानलोकस्य विधृत्ये यदिष्टंकाया आतृण्णमनूपद्ध्यात्पंशूनां च यजमानस्य च प्राणमपि दध्यादक्षिणतः (३७)

प्राश्चमुपं दधाति दाधारं यजमानलोकन्न पंशूनां च यजंमानस्य च प्राणमपिं दधात्यथो खिल्वष्टंकाया आतृंण्णमनूपं दधाति प्राणानामुथ्सृष्टमे द्रफ्सश्चंस्कुन्देत्यभि मृंशति होन्नास्वेवैनं प्रतिं ष्ठापयति स्रुचावुपं दधात्याज्यंस्य पूर्णां कार्ष्मर्यमर्थीं द्र्प्तः पूर्णामौदुंम्बरीमियं वै कार्ष्मर्यमय्यसावौदुंम्बरीमे एवोपं धत्ते (३८)

तूष्णीमुपं दधाति न हीमे यजुषासुमर्हिति दक्षिणां कार्ष्मर्यमयीमुत्तंरामौदुंम्बरीन्तस्मांदस्या असावृत्तराज्यंस्य पूर्णां काँष्मर्यमयीं वज्रो वा आज्यं वज्रंः कार्ष्मर्यो वज्रेणैव यज्ञस्यं दक्षिणतो रक्षाङ्स्यपं हन्ति दुधः पूर्णामौदुंम्बरीम्प्शवो वै दध्यूर्गुंदुम्बरंः पृशुष्वेवोर्जं दधाति पूर्णे उपं दधाति पूर्णे एवैनम् (३९)

अमुष्मिंश्लोंक उपं तिष्ठेते विराज्यग्निश्चेंतव्यं इत्यांहुः स्नुग्वे विराड्यथ्सुचांवुप्दधांति विराज्येवाग्निं चिंनुते यज्ञमुखयंज्ञमुखे वै क्रियमांणे युज्ञ रक्षार्रसि जिघारसन्ति यज्ञमुखर रुक्मो यद्रुक्मं व्यांघारयंति यज्ञमुखादेव रक्षा्ड्स्यपं हन्ति पश्चभिर्व्याघारयति पाङ्कों युज्ञो यावांनेव यज्ञस्तस्माद्रक्षाङ्कस्यपं हन्त्यक्ष्णया व्याघांरयति तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये॥ (४०)

वनस्पतंयो दक्षिणतो धंत्त एन्न्तस्मांदक्ष्णया पश्चं च॥————[७]

स्वयमातृष्णामुपं दधातीयं वै स्वयमातृष्णेमामेवोपं धृत्तेऽश्वमुपं घ्रापयित प्राणमेवास्याँ दधात्यथौँ प्राजापत्यो वा अर्श्वः प्रजापितिनैवाग्निं चिनुते प्रथमेष्टंकोपधीयमाना पशूनां च्यर्जमानस्य च प्राणमिपं दधाति स्वयमातृष्णा भविति प्राणानामुथ्सृष्ट्या अथौं सुवर्गस्य लोकस्यानुंख्यात्या अग्नावग्निश्चेतव्यं इत्याहरेष वै (४१)

अग्निर्वैश्वान्रो यद्ग्राँह्मणस्तस्मैं प्रथमामिष्टंकां यज्ञंष्कृताम्प्र यंच्छेत्ताम्ब्राँह्मणश्चोपं दध्यातामृग्नावेव तद्ग्निं चिनुत ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोयोऽविद्वानिष्टंकामृपदधांति त्रीन् वराँन्दद्यात्रयो वे प्राणाः प्राणाना स्पृत्ये द्वावेव देयो द्वी हि प्राणावेकं एव देय एको हि प्राणः पशुः (४२)

वा एष यद्ग्निर्न खलु वै पृशव आयंवसे रमन्ते दूर्वेष्ट्रकामुपं दधाति पशूनां धृत्ये द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्ये काण्डांत्काण्डात्प्ररोह्न्तीत्यांह काण्डेनकाण्डेन् ह्यंषा प्रतितिष्ठंत्येवा नो दूर्वे प्र तंनु सहस्रेण शतेन् चेत्यांह साह्स्रः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्ये देवलुक्ष्मं वै त्र्यांलिखिता तामुत्तंरलक्ष्माणं देवा उपांदधताधंरलक्ष्माण्मसुंगु यम् (४३)

कामयेत् वसीयान्थस्यादित्युत्तंरलक्ष्माण् तस्योपं दध्याद्वसीयानेव भवित् यं कामयेत् पापीयान्थस्यादित्यधंरलक्ष्माण् तस्योपं दध्यादसुरयोनिमेवैनमनु परां भावयित् पापीयान्भविति त्र्यालिखिता भवितीमे वै लोकास्त्र्यालिखितैभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृंव्यम्नतरेत्यिङ्गिरसः सुवृगं लोकं यतः पुरोडाशः कूर्मो भूत्वानु प्रासंपत् (४४)

यत्कूर्मम्ंपदर्धाति यथाँ क्षेत्रविदर्श्वसा नयंत्येवमेवैनं कूर्मः सुंवर्गं लोकमश्रसा नयति मेधो वा एष पंशूनां यत्कूर्मो यत्कूर्मम्ंपदर्धाति स्वमेव मेधम्पश्यंन्तः पृशव उपं तिष्ठन्ते श्मशानं वा एतिक्रियते यन्मृतानां पशूना शीर्षाण्यंपधीयन्ते यञ्जीवंन्तं कूर्ममुंपदर्धाति तेनाश्मशानिवद्वास्त्वयो वा एष यत् (४५)

कूर्मी मधु वार्ता ऋतायत इति द्रप्ता मधुमिश्रेणा्भ्यंनक्ति स्वदयंत्येवैनं ग्राम्यं वा एतदत्रं यद्दथ्यार्ण्यम्मधु यद्द्रप्ता मधुमिश्रेणांभ्यनक्त्युभयस्यावंरुद्धौ मही द्योः पृथिवी चं न इत्यांहाभ्यामेवैनंमुभ्यतः परिं गृह्णाति प्राश्चमुपं दधाति सुवर्गस्यं लोकस्य समिष्ठी पुरस्तांत्प्रत्यश्चमुपं दधाति तस्मांत् (४६)

पुरस्तांत्प्रत्यश्चंः पृशवो मेध्मुपं तिष्ठन्ते यो वा अपंनाभिमृग्निं चिंनुते यजंमानस्य नाभिमनु प्र विंशति स एनमीश्वरो हिश्सितोरुलूखंलुमुपं दधात्येषा वा अग्नेनिंभिः सन्निभिमेवाग्निं चिंनुतेऽहिश्साया औदुम्बरम्भवृत्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवावं रुन्द्धे मध्यत उपं दधाति मध्यत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मांन्मध्यत ऊर्जा भुंश्चत इयंद्भवति प्रजापंतिना यज्ञमुखेन सम्मित्मवं हन्त्यन्नमेवाकंवेष्ण्व्यर्चोपं दधाति विष्णुर्वे युज्ञो वैंष्ण्वा वनस्पतंयो युज्ञ एव युज्ञं प्रति ष्ठापयति॥ (४७)

एष वै पुशुर्यमंसर्पदेष यत्तस्मात्तस्मांथ्यप्तवि १ शतिश्च॥--

=[/]

पृषां वा पृतल्लोकानां ज्योतिः सम्भृतं यदुखा यदुखामुंप्दधाँत्येभ्य एव लोकभ्यो ज्योतिरवं रुन्द्धे मध्यत उपं दधाति मध्यत पृवास्मै ज्योतिर्दधाति तस्माँनमध्यतो ज्योतिरुपाँस्महे सिकंताभिः पूरयत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वान्रस्यं रूपः रूपेणैव वैश्वान्रमवं रुन्द्धे यं कामयेत् क्षोधुंकः स्यादित्यूनां तस्योपं (४८)

द्ध्यात्क्षोधुंक एव भंवति यं कामयेतानुंपदस्यदन्नंमद्यादितिं पूर्णां तस्योपं दध्यादनुंपदस्यदेवान्नंमत्ति सहस्रं वै प्रति पुरुषः पशूनां यंच्छति सहस्रंमन्ये पृशवो मध्ये पुरुषशीर्षमुपं दधाति सवीर्यत्वायोखायामपिं दधाति प्रतिष्ठामेवैनंद्रमयित व्यृंद्धं वा एतत्प्राणैरंमेध्यं यत्पुंरुषशीर्षम्मृतं खलु वै प्राणाः (४९)

अमृत् हरंण्यं प्राणेषुं हिरण्यश्लकान्प्रत्यंस्यित प्रतिष्ठामेवैनंद्रमियत्वा प्राणेः समंध्यिति द्व्रा मंधुमिश्रेणं पूरयति मध्व्योऽसानीति शृतात्ङ्क्ष्येन मेध्यत्वायं ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्दध्यांर्ण्यम्मधु यद्द्र्या मंधुमिश्रेणं पूरयंत्युभयस्यावंरुख्ये पशुशीर्षाण्युपं दधाति पृशवो वै पंशुशीर्षाणि पृश्नेवावं रुन्द्वे यं कामयेतापृशुः स्यादितिं (५०)

विष्णीनांनि तस्योपं दथ्याद्विषूंच एवास्माँत्पशून्दंधात्यपृशुरेव भंवित यं कामयेत पशुमान्थ्रस्यादितिं समीचीनांनि तस्योपं दथ्याथ्यमीचं एवास्मैं पृशून्दंधाति पशुमानेव भंवित पुरस्तांत्प्रतीचीनमश्वस्योपं दधाति पृश्चात्प्राचीनंमृष्भस्यापंशवो वा अन्ये गोंअश्वभ्यः पृशवों गोअश्वानेवास्मैं सुमीचों दधात्येतावंन्तो वै पृशवंः (५१)

द्विपादंश्च चतुंष्पादश्च तान् वा एतदुग्नौ प्र दंधाति यत्पंशुशीर्षाण्युंपदधाँत्यमुमांरण्यमनुं ते दिशामीत्यांह ग्राम्येभ्यं एव पुशुभ्यं आरुण्यान्पुशूञ्छुचमनूथ्मृंजति तस्माँथ्समावंत्पशूनां प्रजायंमानानामार्ण्याः पृशवः कनीया १ स्यावा ह्यंताः संपंशीर्षमुपं दधाति यैव सुर्पे त्विषिस्तामेवावं रुन्द्धे (५२)

यथ्संमीचीनंम्पशुशीर्षैरुंपद्ध्याद्भाम्यान्पशून्द १ शुंकाः स्युर्यद्विष्चीनंमार्ण्यान् यजुंरेव वंदेदव् तां त्विषि १ रुन्द्वे या सर्पे न ग्राम्यान्पशून् हिनस्ति नार्ण्यानथो खलूप्धेयंमेव यदुंपदधांति तेन तां त्विषिमवं रुन्द्वे या सर्पे यद्यजुर्वदंति तेनं शान्तम्॥ (५३)

ऊनान्तस्योपं प्राणाः स्यादिति वै पृशवीं रुन्धे चतुंश्चत्वारि शच॥————[९]

पृशुर्वा एष यद्ग्नियोंनिः खलु वा एषा पृशोर्वि क्रियते यत्प्राचीनंमैष्टकाद्यज्ञंः क्रियते रेतोंऽपृस्यां अपृस्यां उपं दधाति योनांवेव रेतों दधाति पञ्चोपं दधाति पाङ्गाः पृशवः पृशूनेवास्मै प्र जनयति पञ्चं दक्षिणतो वज्रो वा अपृस्यां वज्रेणैव यज्ञस्यं दक्षिणतो रक्षाः स्मर्थं हन्ति पञ्चं पृश्चात् (५४)

प्राची्रुपं दधाति पृश्चाद्वै प्राचीन् रेतों धीयते पृश्चादेवास्मैं प्राचीन् रेतों दधाति पश्चं पुरस्तांत्प्रतीची्रुपं दधाति पश्चं पृश्चात्प्राची्र्स्तस्मांत्प्राचीन् रेतों धीयते प्रतीचींः पृजा जांयन्ते पश्चौत्तर्त्तरु दस्याः पृश्चवे वे छंन्द्स्याः पृश्चेव प्रजातान्थ्स्वमायतंनम्भि पर्यूहत इयं वा अग्नेरंतिदाहादंबिभे्थ्सैताः (५)

अपुस्यां अपश्यत्ता उपाधत्त् ततो वा इमां नात्यंदह्द्यदंपुस्यां उपुदधाँत्यस्या अनंतिदाहायोवाचं हेयमद्दिथ्स ब्रह्मणात्रुं यस्यैता उपधीयान्तै य उं चैना एवं वेद्दितिं प्राणभृत उपं दधाति रेतंस्येव प्राणान्दंधाति तस्माद्वदंन्प्राणन्पश्यंञ्छॄण्वन्पशुर्जायते-ऽयम्पुरः (५६)

भुव इति पुरस्तादुपं दधाति प्राणमेवैताभिर्दाधारायं देक्षिणा विश्वकर्मेति दक्षिणतो मनं एवैताभिर्दाधारायम्पश्चाद्विश्वव्यंचा इति पश्चाचक्षुरेवैताभिर्दाधारेदमुंत्तराथ्सुविरित्युंत्तरतः श्रोत्रमेवैताभिर्दाधारेयमुपरि मृतिरित्युपरिष्टाद्वाचंमेवैताभिर्दाधार् दशंदुशोपं दधाति सवीर्युत्वायांक्ष्णया (५७)

उपं दथाति तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्यै याः प्राचीस्ताभिर्वसिष्ठ आर्ग्नोद्या दक्षिणा ताभिर्भरद्वांजो याः प्रतीचीस्ताभिर्विश्वामित्रो या उदींचीस्ताभिर्जुमदिग्नियां कुर्ध्वास्ताभिर्विश्वकंर्मा य पुवमेतासामृद्धिं वेद्र्ज्ञीत्येव य आसामेवम्बन्धतां वेद् बन्धंमान्भवित् य आसामेवं क्रृप्तिं वेद् कल्पंते (५८)

अस्मै य आंसामेवमायतंनं वेदायतंनवान्भवति य आंसामेवम्प्रंतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति प्राण्भृतं उप्धायं संयत् उपं दधाति प्राणानेवास्मिन्धित्वा संयद्भिः सं यंच्छति तथ्संयता संयत्त्वमर्थौ प्राण पुवापानं दंधाति तस्मौत्प्राणापानौ सं चंरतो विषूचीरुपं दधाति तस्माद्विष्वंश्चौ प्राणापानौ यद्वा अग्नेरसं यतम् (५९)

असुंवर्ग्यमस्य तथ्सुंवर्ग्योंऽग्निर्यथ्सं यतं उपदर्धाति समेवैनं यच्छति सुवर्ग्यमेवाकुरूयविर्वयः कृतमयानामित्यांह् वर्योभिरेवायानवं रुन्द्धेऽयैर्वयारेसि सुर्वती वायुमतीर्भवन्ति तस्माद्यर सुर्वतः पवते॥ (६०)

पृश्चादेताः पुरौंऽक्ष्ण्या कल्पतेऽसं यतं पश्चंत्रि शच॥————[१०]

गायत्री त्रिष्टु अगंत्यनुष्टु क्पूङ्गां सह। बृह्त्यं िष्णहां कुकुथ्सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। द्विपदा या चतुंष्पदा त्रिपदा या च षद्वंदा। सछंन्दा या च विच्छंन्दाः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। महानां मी रेवतंयो विश्वा आशाः प्रसूवंरीः। मेघ्यां विद्युतो वाचः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। रज्ता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वंस्य वाजिनंस्त्वचि सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। नारीः (६१)

ते पत्नयो लोम् वि चिन्वन्तु मनीषयाँ। देवानाम्पत्नीर्दिशः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा। कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं। इहेहैंषां कृणुत् भोजनानि ये ब्रहिषो नमीवृक्तिं न जग्मुः॥ (६२)

कस्त्वां छाति कस्त्वा वि शांस्ति कस्ते गात्रांणि शिम्यति। क उं ते शमिता किवः। ऋतवंस्त ऋतुधा पर्रुः शमितारो वि शांसत्। संवथ्सरस्य धायंसा शिमींभिः शिम्यन्तु त्वा। दैव्यां अध्वर्यवंस्त्वा छान्तु वि चं शासत्। गात्रांणि पर्वशस्ते शिमाः कृण्वन्तु शिम्यंन्तः। अर्धुमासाः परूर्षेषि ते मासांश्छान्तु शिम्यंन्तः। अर्होरात्राणि मुरुतो विलिष्टं (६३)

सूद्यन्तु ते। पृथिवी तेऽन्तरिक्षेण वायुश्छिद्रिम्पिषज्यत्। द्यौस्ते नक्षेत्रैः सह रूपं कृणोतु साधुया। शं ते परेभ्यो गात्रैभ्यः शम्स्त्ववरिभ्यः। शम्स्थभ्यो मुज्जभ्यः शम् ते तुन्वे भुवत् (६४)

उथ्सन्नयुज्ञ इन्द्रांश्री देवा वा अंक्षणयास्तोमीयां अग्नेर्भागौंऽस्यग्ने जातान्नश्मिरितिं नाक्सद्भिश्छन्दार्शस् सर्वाभ्यो वृष्टिसनींदिंवासुराः कनीयारसः प्रजापेतेरिक्षे द्वादेश॥[१३]उथ्सन्नयुज्ञो देवा वै यस्य मुख्यंवतीर्नाक्सद्भिरेवैताभिर्ष्टाचंत्वारिरशत्॥48॥ उथ्सन्नयुज्ञः संवृत्वायं॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पश्चमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

उथ्सन्नयुज्ञो वा एष यद्ग्निः किं वाहैतस्यं क्रियते किं वा न यद्वै यज्ञस्यं क्रियमाणस्यान्तर्यन्ति पूर्यति वा अस्य तदांश्विनीरुपं दधात्यश्विनौ वै देवानां भिषजौ ताभ्यामेवास्में भेषजं कंरोति पञ्चोपं दधाति पाङ्को यज्ञो यावांनेव यज्ञस्तस्में भेषजं कंरोत्यृत्वयां उपं दधात्यृतूनां क्रस्यैं (१)

पश्चोपं दधाति पश्च वा ऋतवो यावंन्त एवर्तव्स्तान्कंल्पयित समानप्रंभृतयो भवन्ति समानोदंक्त्रंस्तस्मांध्समाना ऋतव एकेन पदेन व्यावंर्तन्ते तस्मांदृतवो व्यावंर्तन्ते प्राण्भृत उपं दधात्यृतुष्वेव प्राणान्दंधाति तस्मांध्समानाः सन्तं ऋतवो न जीर्यन्त्यथो प्र जनयत्येवैनांनेष व वायुर्यत्प्राणो यदंत्वयां उपधायं प्राण्भृतः (२)

उपदर्धाति तस्माथ्सर्वानृतूनन् वायुरा वंरीवर्त्ति वृष्टिसनीरुपं दधाति वृष्टिमेवावं रुन्द्धे यदेक्धोपंद्ध्यादेकंमृतुं वंर्षेदनुपरिहार्रं सादयित तस्माथ्सर्वानृतून् वंर्षिति यत्प्राणभृतं उपधायं वृष्टिसनीरुपदधांति तस्माद्वायुप्रंच्युता दिवो वृष्टिरीर्ते पृशवो वै वयस्यां नानांमनसः खलु वै पृशवो नानांव्रतास्तेऽप एवाभि समंनसः (३)

यं कामयेतापृशः स्यादितिं वयस्याँस्तस्योपृधायांपृस्यां उपं दथ्यादसँज्ञानमेवास्मैं पृशुभिः करोत्यपृशुरेव भविति यं कामयेत पृशुमान्थस्यादित्यंपृस्याँस्तस्योपृधायं वयस्यां उपं दथ्याथ्संज्ञानमेवास्मै पृशुभिः करोति पृशुमानेव भविति चतसः पुरस्तादुपं दधिति तस्माँचत्वारि चक्षुंषो रूपाणि द्वे शुक्के द्वे कृष्णे (४)

मूर्धन्वतींर्भवन्ति तस्मांत्पुरस्तांन्मूर्धा पश्च दक्षिणायाः श्रोण्यामुपं दधाति पश्चोत्तंरस्यां तस्मांत्पश्चाद्वर्षीयान् पुरस्तांत्प्रवणः पृशुर्ब्स्तो वय इति दक्षिणेऽरस् उपं दधाति वृष्णिर्वय् इत्युत्तरेऽरसांवेव प्रति दधाति व्याघ्रो वय इति दक्षिणे पृक्ष उपं दधाति सिर्हो वय् इत्युत्तरे पृक्षयोरेव वीर्यं दधाति पुरुषो वयु इति मध्ये तस्मात्पुरुषः पश्चामधिपतिः॥ (५)

क्रुस्यां उपुधार्य प्राणुभृतः समनसः कृष्णे पुरुषो वय इति पश्चं च॥———[१]

इन्द्रौंग्री अव्यंथमानामिति स्वयमातृण्णामुपं दधातीन्द्राग्निभ्यां वा हुमौ लोकौ विधृंतावनयौलींकयोर्विधृंत्या अधृंतेव वा एषा यन्मध्यमा चितिर्न्तिरक्षिमिव वा एषेन्द्रौंग्री इत्याहेन्द्राग्नी वै देवानामोजोभृताबोजंसैवेनाम्नतिरक्षे चिनुते धृत्यै स्वयमातृण्णामुपं दधात्यन्तिरक्षे वै स्वयमातृण्णान्तिरिक्षमेवोपं धृत्तेऽश्वमुपं (६)

प्राप्यति प्राणमेवास्यां दधात्यथां प्राजापत्यो वा अर्थः प्रजापंतिनैवाग्निं चिनुते स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुथ्सृष्ट्या अथां सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये देवानां वै सुंवर्गं लोकं यतां दिशः सम्ब्रीयन्त त एता दिश्यां अपश्यन्ता उपांदधत् ताभिर्वे ते दिशोंऽदृश्हन्यिद्दश्यां उपदर्धाति दिशां विधृत्ये दशं प्राण्भृतः पुरस्तादुपं (७)

द्धाति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दश्मी प्राणानेव पुरस्ताँ छत्ते तस्माँतपुरस्ताँत्प्राणा ज्योतिष्मतीमृत्तमामुपं दधाति तस्माँत्प्राणानां वाग्ज्योतिष्मतामुत्तमामुपं दधाति तस्माँत्प्राणानां वाग्ज्योतिष्कत्तमा दशोपं दधाति दशाँक्षरा विराङ्किराद्वन्दंसां ज्योतिज्योतिरेव पुरस्ताँ छत्ते तस्माँतपुरस्ताङ्योतिष्ठपाँस्महे छन्दार्श्सि पुशुष्वाजिमंयुस्तान्बृहृत्युदंजयत्तस्माद्वार्हताः (८)

पृशवं उच्यन्ते मा छन्द् इतिं दक्षिणत उपं दधाति तस्माँदक्षिणावृंतो मासाः पृथिवी छन्द् इतिं पृश्चात्प्रतिष्ठित्या अग्निर्देवतेत्युंत्तर्त ओजो वा अग्निरोजं एवोत्तर्तो धंते तस्मांदुत्तरतोभिप्रयायी जंयित षिट्गर्रश्चाथ्यम्पंद्यन्ते षिट्गर्रशदक्षरा बृह्ती बार्ह्ताः पृशवो बृह्त्यैवास्मै पृश्चनवं रुन्द्वे बृह्ती छन्दंसा् इं स्वारांज्यं परीयाय यस्यैताः (९)

उप्धीयन्ते गच्छंति स्वाराँज्य स्मप्त वालंखिल्याः पुरस्तादुपं दधाति सप्त पश्चाथ्सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाश्चो प्राणानार्स् सवीर्यत्वायं मूर्धासि राडितिं पुरस्तादुपं दधाति यत्री राडितिं पृश्चात्प्राणानेवास्मैं सुमीचों दधाति॥ (१०)

अश्वमुपं पुरस्तादुप् बार्ह्ता एताश्चर्तम्बि १ शच॥———[२]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत् तदस्रंरा अकुर्वत् ते देवा एता अंक्ष्णयास्तोमीयां अपश्यन्ता

अन्यथानूच्यान्यथोपांदधत् तदस्ंग् नान्ववांयन्ततो देवा अभंवन्परासुंग् यदंक्ष्णयास्तोमीयां अन्यथानूच्यान्यथोपदधांति भ्रातृंव्याभिभूत्ये भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंव्यो भवत्याशुिस्रवृदितिं पुरस्तादुपं दधाति युज्ञमुखं वै त्रिवृत् (११)

यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित व्योम सप्तदश इतिं दक्षिणतोऽत्तृं वै व्योमान्नर्थं सप्तदशोऽत्रंमेव दक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नंमद्यते धुरुणं एकविर्श इतिं पृक्षात्प्रतिष्ठा वा एकविर्शः प्रतिष्ठित्ये भान्तः पंश्चदश इत्यंत्तरत ओजो वै भान्त ओजेः पश्चदश ओजे एवोत्तरतो धंत्ते तस्माद्तरतोभिप्रयायी जयिते प्रतूर्तिरष्टादश इतिं पुरस्तात् (१२)

उपं दधाति द्वौ त्रिवृतांविभपूर्वं यंज्ञमुखे वि यांतयत्यभिवृतः संविष्श इतिं दक्षिण्तोऽत्रं वा अभिवृत्तीऽत्रर्थं सिव्ष्शोऽत्रंमेव देक्षिण्तो धेत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नंमद्यते वर्चौ द्वाविष्श इतिं पृश्चाद्यद्विष्शृतिर्द्वे तेनं विराजौ यद्वे प्रतिष्ठा तेनं विराजौरेवाभिपूर्वमृन्नाद्ये प्रतिं तिष्ठति तपो नवद्श इत्युंत्तर्तस्तस्माध्युव्यः (१३)

हस्तंयोस्तप्स्वितंरो योनिश्चतुर्विष्ट्षा इति पुरस्तादुपं दधाति चतुर्विष्णत्यक्षरा गायत्री गायत्री यंज्ञमुखम् यंज्ञमुखम्व पुरस्ताद्वि यांतयति गर्भाः पञ्चविष्ट्षा इति दक्षिणतोऽत्रं वै गर्भा अत्रं पञ्चविष्ट्षाऽत्रंमेव दक्षिणतो धंते तस्माद्दक्षिणेनात्रंमद्यत् ओर्जस्त्रिणव इति पश्चादिमे वै लोकास्त्रिणव एष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठति सम्भरणस्रयोविष्ट्षा इति (१४)

उत्तर्तस्तस्मांथ्सव्यो हस्तंयोः सम्भायंतरः ऋतुंरेकत्रिष्ट्श इति पुरस्तादुपं दधाति वाग्वे ऋतुंर्यज्ञमुखं वाग्यंज्ञमुखम्व पुरस्ताद्वि यांतयित ब्रध्नस्यं विष्टपं चतुः स्त्रिष्ट्श इति दिक्षणृतोऽसौ वा आदित्यो ब्रध्नस्यं विष्टपंम् ब्रह्मवर्चसम्व दिक्षण्तो धंत्ते तस्माद्दक्षिणोऽधौ ब्रह्मवर्चसितंरः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिष्ट्र इति पृश्चात्प्रतिष्ठित्यै नाकः पद्विष्ट्श इत्यंत्तर्तः सुवर्गो वै लोको नाकः सुवर्गस्यं लोकस्य समध्ये॥ (१५)

वै त्रिवृदितिं पुरस्तांथ्सव्यस्त्रंयोविष्श इतिं सुवर्गो वै पश्चं च॥————[३]

अग्नेर्भागिंऽसीतिं पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वा अग्निर्यंज्ञमुखं दीक्षा यंज्ञमुखं ब्रह्मं यज्ञमुखं त्रिवृद्यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित नृचक्षंसाम्भागोंऽसीतिं दक्षिणतः शुंश्रुवारसो वै नृचक्षसोऽत्रं धाता जातायैवास्मा अत्रमिं दधाति तस्मांज्ञातोऽत्रंमित्त जनित्रई स्पृतर संप्तदशः स्तोम् इत्याहात्रुं वै जनित्रम् (१६) अन्नर्थं सप्तद्शोऽन्नमेव देक्षिणतो धेत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यते मित्रस्यं भागोऽसीतिं पश्चात्प्राणो वै मित्रोऽपानो वर्षणः प्राणापानावेवास्मिन्दधाति दिवो वृष्टिर्वाताः स्यृता एकिविश्षः स्तोम् इत्याह प्रतिष्ठा वा एकिविश्षः प्रतिष्ठित्या इन्द्रस्य भागोऽसीत्युंत्तर्त ओजो वा इन्द्र ओजो विष्णुरोजः क्षत्रमोजः पश्चदशः (१७)

ओजं एवोत्तंरतो धंत्ते तस्मांदुत्तरतोभिप्रयायी जंयित वसूंनाम्भागोंऽसीतिं पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वै वसंवो ंयज्ञमुखर रुद्रा यंज्ञमुखं चंतुर्विर्शो यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयत्यादित्यानां भागोंऽसीतिं दक्षिणतोऽत्रृं वा आंदित्या अत्रम्मरुतोऽत्रृं गर्भा अत्रं पश्चिव्रशोऽत्रमेव दक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणेनात्रमद्यतेऽदिंत्ये भागः (१८)

असीतिं पृश्चात्प्रंतिष्ठा वा अदिंतिः प्रतिष्ठा पूषा प्रंतिष्ठा त्रिणवः प्रतिष्ठित्ये देवस्यं सिवृतुर्भागोंऽसीत्युंत्तर्तो ब्रह्म वै देवः संविता ब्रह्म बृह्स्पित्र्ब्रह्मं चतुष्टोमो ब्रह्मवर्च्समेवोत्तंरतो धेत्ते तस्मादुत्त्तरोऽधौं ब्रह्मवर्च्सितंरः सावित्रवंती भवति प्रसूत्ये तस्माद्वाह्मणानामुदींची सिनः प्रसूता धर्त्रश्चंतुष्टोम इति पुरस्तादुपं दधाति यज्ञमुखं वै धर्तः (१९)

यज्ञमुखं चंतुष्टोमो यंज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यांतयित यावांनाम्भागोंऽसीतिं दक्षिणतो मासा वै यावां अर्थमासा अयांवास्तस्माँदक्षिणावृंतो मासा अत्रं वै यावा अत्रं प्रजा अन्नमेव दक्षिणतो धंते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यत ऋभूणाम्भागोंऽसीतिं पृश्चात् प्रतिष्ठित्ये विवर्तौ- ऽष्टाचत्वारिश्श इत्युंतरतोंऽनयौंलींकयौः सवीर्यत्वाय तस्मांदिमौ लोकौ समावद्वीर्यौ (२०)

यस्य मुख्यंवतीः पुरस्तांदुपधीयन्ते मुख्यं एव भंवत्यास्य मुख्यं जायते यस्यान्नंवतीर्दक्षिणतोऽत्त्यन्नमास्यान्नादो जायते यस्यान्नंवतीर्दक्षिणतोऽत्त्यन्नमास्यान्नादो जायते यस्य प्रतिष्ठावेतीः पृश्चात्प्रत्येव तिष्ठति यस्यौजंस्वतीरुत्तर्त ओंजुस्ब्येव भंवत्यास्यौंजुस्वी जायतेऽर्को वा एष यद्ग्निस्तस्यैतदेव स्तोत्रमेतच्छस्रं यदेषा विधा (२१)

विधीयतेऽर्क एव तद्क्यंमनु वि धीयतेऽत्त्यन्नमास्यान्नादो जायते यस्यैषा विधा विधीयते य उं चैनामेवं वेद सृष्टीरुपं दधाति यथासृष्टमेवावं रुन्द्धे न वा इदं दिवा न नक्तंमासीदव्यांवृत्तन्ते देवा एता व्यंष्टीरपश्यन्ता उपादधत् ततो वा इदं व्यौंच्छ्द्यस्यैता उपधीयन्ते व्येवास्मां उच्छ्त्यथो तमं एवापं हते॥ (२२)

वै जुनित्रं पश्चदुशोऽदित्यै भागो वै धृर्त्रः सुमावद्वीर्यौ विधा ततो वा इदं चतुर्दश च॥[४]

अग्नें जातान्त्र णुंदा नः स्पलानितिं पुरस्तादुपं दधाति जातानेव भ्रातृंव्यान्त्र णुंदते सहंसा जातानितिं पृश्वाञ्चंनिष्यमांणानेव प्रतिं नुदते चतुश्चत्वारिष्ट्शः स्तोम् इतिं दक्षिणतो ब्रंह्मवर्च्सं वै चंतुश्चत्वारिष्ट्शो ब्रंह्मवर्च्समेव दंक्षिणतो धंत्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्धौ ब्रह्मवर्च्सितंरः षोडशः स्तोम् इत्युंत्तरत ओजो वै षोडश ओजं एवोत्तंरतो धंते तस्मात् (२३)

उत्तर्तोभिप्रयायी जंयित वज्रो वे चंतुश्चत्वारिष्शो वर्ज्ञः षोड्शो यदेते इष्टंके उपदर्धाति जाता इश्चेव जिन्छ्यमाणा इश्च भ्रातृं व्यान्प्रण्द्य वज्रमनु प्र हंरित स्तृत्ये पुरीषवती म्मध्य उपं दधाति पुरीषं वे मध्यमात्मनः सात्मानमेवाग्निं चिनुते सात्मामुष्मिं ह्यों के भविति य एवं वेदैता वा असप्रता नामेष्टंका यस्येता उपधीयन्ते (२४)

नास्यं स्पत्नों भवति पृशुर्वा एष यद्ग्निर्वि्राजं उत्तमायां चित्यामुपं दधाति विराजंमेवोत्तमाम्पृशुषुं दधाति तस्मांत्पशुमानुंत्तमां वाचं वदति दशंदशोपं दधाति सवीर्यृत्वायांक्ष्णयोपं दधाति तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्यै यानि वै छन्दार्शसे सुवर्ग्याण्यासुनतेर्देवाः सुवर्गं लोकमायुन्तेनर्षयः (२५)

अश्राम्यन्ते तपौऽतप्यन्त् तानि तपंसापश्यन्तेभ्यं पृता इष्टंका निरंमिम्तेवश्छन्दो वरिंवश्छन्द इति ता उपांदधत् ताभिर्वे ते सुंवर्गं लोकमायन् यदेता इष्टंका उपदधाति यान्येव छन्दार्श्स सुवर्ग्याणि तैरेव यजंमानः सुवर्गं लोकमेति यज्ञेन वै प्रजापंतिः प्रजा अंसुजत् ताः स्तोमंभागैरेवासृंजत् यत् (२६)

स्तोमंभागा उप्दर्धाति प्रजा एव तद्यजंमानः सृजते बृह्स्पित्वा एतद्यज्ञस्य तेजः समंभरद्यथ्रतोमंभागा यथ्रतोमंभागा उपदर्धाति सतेजसमेवाग्नि चिनुते बृह्स्पित्वा एता यज्ञस्य प्रतिष्ठामंपश्यद्यथ्रतोमंभागा यथ्रतोमंभागा उपदर्धाति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै स्प्तस्प्तापं दर्धाति सवीर्युत्वायं तिस्रो मध्ये प्रतिष्ठित्यै॥ (२७)

उत्तर्तो धंत्ते तस्मांदुपधीयन्त ऋषयोऽसृजत् यत्रिचंत्वारि शच॥———[५]

र्श्मिरित्येवाऽऽदित्यमंसृजत् प्रेतिरिति धर्ममन्वितिरिति दिवर् संधिरित्यन्तरिक्षं प्रितिधिरिति पृथिवीं विष्टम्भ इति वृष्टिंम्प्रवेत्यहंरनुवेति रात्रिंमुशिगिति वस्न्मुकेत इति रुद्रान्थ्सुंदीतिरित्यांदित्यानोज् इति पितृ इस्तन्तुरिति प्रजाः पृतनाषाडिति प्रशूत्रेवदित्योषंधीरिमेजिदंसि युक्तग्रांवा (२८)

इन्द्रांय त्वेन्द्रं जिन्वेत्येव देक्षिणतो वज्रं पर्यौहद्भिजित्ये ताः प्रजा अपंप्राणा असृजत् तास्विधंपितिर्सीत्येव प्राणमंदधाद्यन्तेत्यंपानः स्र्सर्प इति चक्षुंवयोधा इति श्रोत्रन्ताः प्रजाः प्राणतीरंपानतोः पश्यंन्तीः शृण्वतीर्न मिथुनी अभवन्तास् त्रिवृद्सीत्येव मिथुनमंदधाताः प्रजा मिथुनी (२९)

भवंन्तीर्न प्राजांयन्त् ताः सर्शेहोंऽसि नीरोहोंऽसीत्येव प्राजंनयृत्ताः प्रजाः प्रजांता न प्रत्यंतिष्ठन्ता वंसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिर्सीत्येवेषु लोकेषु प्रत्यंस्थापयद्यदाहं वसुकोंऽसि वेषंश्रिरसि वस्यंष्टिर्सीतिं प्रजा एव प्रजांता एषु लोकेषु प्रतिं ष्ठापयित् सात्मान्तरिक्षः रोहित् सप्रांणोऽमुष्मिं ह्योंके प्रतिं तिष्ठत्यव्यंर्धुकः प्राणापानाभ्यां भवित् य एवं वेदं॥ (३०)

युक्तग्रांवा प्रजा मिथुन्यंन्तरिक्षुं द्वादंश च॥------[६]

नाकसिद्धिवें देवाः सुंवर्गं लोकमायन्तन्नांकसदां नाकसत्त्वं यन्नांकसदं उपदर्धाति नाकसिद्धिरेव तद्यजीमानः सुवर्गं लोकमेति सुवर्गो वै लोको नाको यस्यैता उपधीयन्ते नास्मा अकम्भवित यजमानायत्नं वै नांकसदो यन्नांकसदे उपदर्धांत्यायतंनमेव तद्यजीमानः कुरुते पृष्ठानां वा एतत्तेजः सम्भृतं यन्नांकसदो यन्नांकसदे (३१)

उपदर्धाति पृष्ठानांमेव तेजोऽवं रुन्द्धे पश्चचोडा उपं दधात्यप्स्तरसं एवैनंमेता भूता अमुिष्मिं ह्याँक उपं शेरेऽथों तनूपानींरेवैता यजमानस्य यं द्विष्यात्तमुंपदर्धस्त्रायेदेताभ्यं एवैनं देवतांभ्य आ वृंश्वति ताजगार्तिमार्च्छ्वत्युत्तरा नाक्सन्द्य उपं दधाति यथां जायामानीयं गृहेषुं निषादयंति तादृगेव तत् (३२)

पृश्चात्प्राचीमृत्त्मामुपं दधाति तस्मौत्पृश्चात्प्राची पत्यन्वौस्ते स्वयमातृण्णां चं विकृणीं चौत्तमे उपं दधाति प्राणो वे स्वयमातृण्णायुंविकृणीं प्राणं चैवायुंश्च प्राणानांमृत्तमौ धंते तस्मौत्प्राणश्चायुंश्च प्राणानांमृत्तमौ नान्यामृत्तंरामिष्टंकामुपं दध्याद्यदन्यामुत्तंरामिष्टंकामुपदध्यात्पंशूनाम् (३३)

च् यजंमानस्य च प्राणं चायुश्चापि दथ्यात्तस्मान्नान्योत्तरेष्टंकोप्धेयां स्वयमातृण्णामुपं दधात्यसा वे स्वयमातृण्णामूमेवोपं धृत्तेऽश्वमुपं घ्रापयित प्राणमेवास्यां दधात्यथां प्राजापत्यो वा अर्श्वः प्रजापंतिनैवाग्निं चिंनुते स्वयमातृण्णा भवित प्राणानामुथ्सृष्ट्या अथां सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या पृषा वे देवानां विक्रान्तिर्यद्विंकुर्णी यद्विंकुर्णीमुपदधांति देवानांमेव

विक्रौन्तिमनु वि क्रंमत उत्तर्त उपं दधाति तस्मांदुत्तर्तउपचारोऽग्निर्वायुमतीं भवति समिंद्धौ॥ (३४)

सम्भृतं यन्नांकसदो यन्नांकसद्स्तत्पंशूनामेषां वै द्वाविर्शतिश्च॥———[७]

छन्दार्ड्स्युपं दधाति पृशवो वै छन्दार्स्स पृश्नेवावं रुन्द्धे छन्दार्स्सि वै देवानां वामम्पृशवो वाममेव पृश्नवं रुन्द्ध एतार हु वै यज्ञसेनश्चेत्रियायणश्चितिं विदां चंकार तया वै स पृश्नवांरुन्द्ध यदेतामुंपृदधांति पृश्नेवावं रुन्द्धे गायत्रीः पुरस्तादुपं दधाति तेजो वै गांयत्री तेजं एव (३५)

मुख्तो धंत्ते मूर्ध्-वर्तीर्भवन्ति मूर्धानंमेवैन र समानानां करोति त्रिष्टुम् उपं दधातीन्द्रियं वै त्रिष्टुगिन्द्रियमेव मध्यतो धंत्ते जगंती्रुर्ण दधाति जागंता वै पुशवंः पुश्नेवावं रुन्द्धे- उनुष्टुम् उपं दधाति प्राणा वा अनुष्टुप्प्राणानामुथ्सृष्ट्ये बृह्तीरुष्णिहाः पुङ्कीरुक्षरंपङ्कीरिति विषुंरूपाणि छन्दार्स्स्यूपं दधाति विषुंरूपा वै पृशवंः पृशवंः (३६)

छन्दा ५ सि विष्र पानेव पृश्नवं रुन्छे विष्र पमस्य गृहे दृश्यते यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेदातिंच्छन्दसमुपं दधात्यतिंच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दा ५ सि सर्वेभिरेवैनं छन्दोभिश्चिन्ते वर्ष्म वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा यदितंच्छन्दसमुप्दधाति वर्ष्मवैन ५ समानानां करोति द्विपदा उपं दधाति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्यै॥ (३७)

तेर्ज एव प्शवं: प्शवो यर्जमान् एकेश्च॥-----[८]

सर्वाभ्यो वै देवताभयोऽग्निश्चीयते यथ्सयुजो नोपंद्ध्याद्देवतां अस्याग्निं वृंश्चीर्न् यथ्सयुजं उपदधाँत्यात्मनैवैनर्ं स्युजं चिनुते नाग्निना व्यृध्यतेऽथो यथा पुरुषः स्नावंभिः सन्तंत एवमेवैताभिर्ग्निः सन्तंतोऽग्निना वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्ता अमूः कृंत्तिका अभवन् यस्यैता उपधीयन्ते सुवर्गमेव (३८)

लोकमेति गर्च्छिति प्रकाशं चित्रमेव भेवित मण्डलेष्ट्रका उपं दधातीमे वै लोका मण्डलेष्ट्रका इमे खलु वै लोका देवपुरा देवपुरा एव प्र विंशिति नार्तिमार्च्छित्यग्निं चिक्यानो विश्वज्योतिष उपं दधातीमानेवैताभिर्लोकां ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथौं प्राणानेवैता यर्जमानस्य दाप्रत्येता वै देवतौं: सुवर्ग्यास्ता एवान्वारभ्यं सुवर्गं लोकमेति॥ (३९)

सुवर्गमेव ता एव चत्वारि च॥-----[९]

वृष्टिसनीरुपं दधाति वृष्टिमेवावं रुन्द्धे यदेक्धोपंदध्यादेकंमृतुं वंर्षेदनुपरिहार र् सादयति तस्माथ्सर्वानृतून् वंर्षति पुरोवातुसनिरुसीत्यांहैतद्वै वृष्ट्यै रूप र रूपेणैव वृष्टिमवं रुन्द्वे संयानींभिर्वे देवा इमाल्लौंकान्थ्समयुस्तथ्संयानीना संयानित्वं यथ्संयानीरुपदर्धाति यथापसु नावा संयात्येवम् (४०)

एवैताभिर्यजंमान इमाल्लाँकान्थ्सं यांति प्रवो वा एषों उग्नेर्यथ्संयानीर्यथ्संयानीरूपदधांति प्रुवमेवैतम् ग्रयं उपं दधात्युत यस्यैतासूपंहितास्वापोऽग्नि १ हर्न्त्यह्रंत एवास्याग्निरांदित्येष्टका उपं दधात्यादित्या वा एतम्भूत्यै प्रतिं नुदन्ते योऽलम्भूत्यै सन्भूतिं न प्राप्नोत्यांदित्याः (४१)

एवैनम्भूतिं गमयन्त्यसौ वा एतस्यांदित्यो रुचमा दंत्ते योंऽग्निं चित्वा न रोचंते यदांदित्येष्टका उंपदर्धांत्यसावेवास्मिन्नादित्यो रुचं दधाति यथासौ देवाना रोचंत एवमेवैष मंनुष्याणाः रोचते घृतेष्ट्रका उपं दधात्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम् यद्भृतिम्प्रियेणैवैनं धाम्रा समर्धयति (४२)

अथो तेर्ज्ञंसानुपरिहार र् सादयत्यपंरिवर्गमेवास्मिन्तेर्जो दधाति प्रजापंतिरग्निमंचिनुत स यशंसा व्यार्ध्यत स एता यंशोदा अंपश्यत्ता उपांधत्त ताभिर्वे स यशं आत्मन्नंधत्त यद्यंशोदा उपदर्थाति यशं एव ताभिर्यजमान आत्मन्धंते पश्चोपं दधाति पाङ्कः पुरुषो यावांनेव पुरुषस्तस्मिन् यशों दधाति॥ (४३)

पुवं प्राप्नोत्यांदित्या अर्धयत्येकान्नपंश्चाशचं॥———[१०]

देवासुराः संयंत्ता आसुन्कनीया सो देवा आसुन्भूया १ सोऽसुं रास्ते देवा एता इष्टंका अपश्यन्ता उपांदधत भूयस्कृदसीत्येव भूया १ सो-ऽभवन्वनुस्पतिंभिरोषंधीभिर्वरिवस्कृद्सीतीमामंजयुन्प्राच्यसीति प्राचीं दिशंमजयत्रूर्ध्वासीत्यमूमंजय सीदेत्यन्तरिक्षमजयन्ततो देवा अभवन्न (४४)

परासुंरा यस्यैता उंपधीयन्ते भूयांनेव भंवत्यभीमाल्लौंकाञ्जंयति भवंत्यात्मना पराँस्य भार्तृंव्यो भवत्यप्रसुषदंसि श्येनसद्सीत्यांहैतद्वा अग्ने रूप रूपेणैवाग्निमवं रुन्द्वे पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयामीत्याहिमानेवैताभिर्लोकान् द्रविणावतः कुरुत आयुष्यां उपं दधात्यायुंरेव (४५)

अस्मिन्द्धात्यग्ने यत्ते पर् हन्नामेत्यांहैतद्वा अग्नेः प्रियं धामं प्रियमेवास्य धामोपांप्रोति तावेहि स॰ रंभावहा इत्यांह व्येवैनेन परि धत्ते पार्श्वजन्येष्वप्येष्यग्र इत्यांहैष वा अग्निः पार्श्वजन्यो यः पश्चेचितीकुस्तस्मादेवमाहर्त्वयां उपं दधात्येतद्वा ऋतूनाम्प्रियं धाम् यदंत्वयां ऋतूनामेव प्रियं धामावं रुन्धे सुमेक इत्याह संवथ्सरो वै सुमेकः संवथ्सरस्यैव प्रियं धामोपापापोपोति॥ (४६)

अभंवन्नायुरेवर्त्व्यां उप षड्विर्श्यातिश्च॥————[११]

प्रजापंतेरक्ष्यंश्वयत्तत्परांपत्तदश्वोऽभवद्यदश्वंयत्तदश्वंस्याश्वत्वन्तद्देवा अंश्वमेधेनैव प्रत्यंदधुरेष वै प्रजापंति सर्वं करोति यौंऽश्वमेधेन यजंते सर्व एव भंवति सर्वंस्य वा एषा प्रायंश्वित्तिः सर्वंस्य भेषज्ञ सर्वं वा एतेनं पाप्मानं देवा अंतर्त्रपि वा एतेनं ब्रह्महत्यामंतरन्थ्सर्वम्पाप्मानम् (४७)

त्रित् तरंति ब्रह्महृत्यां योंऽश्वमेधेन् यजंते य उं चैनमेवं वेदोत्तंरं वे तत्प्रजापंतेरक्ष्यंश्वयत्तस्मादश्वंस्योत्तर्तोऽवं द्यन्ति दक्षिणतौंऽन्येषां पशूनाम्वैत्सः कटों भवत्यपस्योनिर्वा अश्वौंऽपसुजो वेत्सः स्व एवैनं योनौ प्रति ष्ठापयित चतुष्टोमः स्तोमों भवित स्रह् वा अश्वंस्य सक्थ्यावृंहृत्तद्देवाश्चंतुष्टोमेनैव प्रत्यंदध्र्यंचंतुष्टोमः स्तोमो भवत्यश्वंस्य सर्वत्वायं॥ (४८)

सर्वं पाप्मानंमवृह्द्वादंश च॥------[१२]

देवासुराः तेनर्तृव्यां रुद्रोऽश्मंत्रृषदे वडुदेनं प्राचीमिति वसोधीरांमुग्निदेवेभ्यः सुवर्गायं यत्राकृतायं छन्दश्चितं पर्वस्व द्वादंश॥———[१३]देवासुरा अजायां वै ग्रुंमुष्टिः प्रथमो देवयतामेतद्वै छन्दंसामृग्नोत्युष्टौ पंश्वाशचत्॥58॥ देवयुसुराः सर्वं जयति॥

॥ चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

देवासुराः संयंत्ता आस्-ते न व्यंजयन्त् स एता इन्द्रंस्तुनूरंपश्यत्ता उपांधत्त् ताभिर्वे स तुनुविमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नंधत्त् तती देवा अर्भवन्परासुरा यदिन्द्रतुनूरुंपदधाति तुनुविमेव ताभिरिन्द्रियं वीर्यं यर्जमान आत्मन्धत्तेऽथो सेन्द्रंमेवाग्नि सतेनुं चिनुते भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंच्यः (१)

भ्वति यज्ञो देवेभ्योऽपाँकामृत्तमंवरुधं नाशंक्कवन्त एता यंज्ञत्नूरंपश्यन्ता उपांदधत् ताभिवें ते यज्ञमवारुम्यत् यद्यंज्ञत्नूरुंपदधांति यज्ञमेव ताभिर्यजंमानोऽवं रुन्द्धे त्रयंश्चिश्शत्मुपं दधाति त्रयंश्चिश्शद्धे देवतां देवतां एवावं रुन्द्धेऽथो सात्मानमेवाग्निश्स् सर्तनुं चिनुते सात्मामुष्मिंझौंके (२)

भ्वति य एवं वेद ज्योतिष्मतीरुपं दधाति ज्योतिरेवास्मिन्दधात्येताभिर्वा अग्निश्चितो ज्वंलित ताभिरेवेन् समिन्द्ध उभयोरस्मै लोकयोज्योतिर्भवित नक्षत्रेष्टका उपं दधात्येतानि वै दिवो ज्योतीर्भषि तान्येवावं रुन्द्धे सुकृतां वा एतानि ज्योतीर्भषि यन्नक्षेत्राणि तान्येवाग्रोत्यथौं अनूका्शमेवेतानिं (३)

ज्योती १षि कुरुते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये यथ्सइस्पृंष्टा उपद्ध्याद्वृष्ट्यं लोकमिषं दध्यादवंर्षुकः पूर्जन्यः स्यादसईस्पृष्टा उपं दधाति वृष्ट्यां एव लोकं करोति वर्षुकः पूर्जन्यो भवति पुरस्तांदुन्याः प्रतीचीरुपं दधाति पृश्चादुन्याः प्राचीस्तस्मांत्र्याचीनांनि च प्रतीचीनांनि च नक्षंत्राण्या वर्तन्ते॥ (४)

भ्रातृंव्यो लोक पुवैतान्येकंचत्वारि श्राच॥

ऋत्व्यां उपं दधात्यृतूनां क्र्स्यें द्वंद्वमुपं दधाति तस्मांद्वंद्वमृतवोऽधृंतेव वा पृषा यन्मध्यमा चितिंर्न्तरिक्षमिव वा पृषा द्वंद्वम्न्यासु चिती्षूपं दधाति चतंस्रो मध्ये धृत्यां अन्तःश्लेषणं वा पृताश्चितींनां यदंत्व्यां यदंत्व्यां उपदर्धाति चितीनां विधृंत्या अवंकामनूपं दधात्येषा वा अग्नेर्योनिः सयोनिम् (५)

एवाग्निं चिंनुत उवाचं ह विश्वामित्रोऽद्दिथ्स ब्रह्मणात्रुं यस्यैता उंपधीयान्तै य उं चैना एवं वेद्दितिं संवथ्सरो वा एतम्प्रतिष्ठायैं नुदते यौंऽग्निं चित्वा न प्रतितिष्ठिति पश्च पूर्वाश्चितयो भवन्त्यथं षष्ठीं चितिं चिनुते षङ्गा ऋतवंः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठत्येता वै (६)

अधिपत्नीर्नामेष्टंका यस्यैता उपधीयन्तेऽधिपतिरेव संमानानां भवित् यं द्विष्यात्तम्पदर्धद्धायेदेताभ्यं पुवैनं देवतांभ्य आ वृश्चिति ताजगार्तिमार्च्छ्वत्यिङ्गंरसः सुवृगं लोकं यन्तो या यज्ञस्य निष्कृंतिरासीत्तामृषिभ्यः प्रत्यौहृन् तद्धिरण्यमभवद्यद्धिरण्यश्वल्कैः प्रोक्षिति यज्ञस्य निष्कृत्या अर्थो भेषजमेवास्मै करोति (७)

अथों रूपेणैवैन् समर्धयत्यथो हिरंण्यज्योतिषैव सुंवर्गं लोकमेति साह्स्रवंता प्रोक्षंति

साह्स्रः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यां इमा में अग्न इष्टंका धेनवंः सन्त्वत्यांह धेनूरेवैनाः कुरुते ता एनं कामृदुघां अमुत्रामुष्मिं ह्याँक उपं तिष्ठन्ते॥ (८)

सर्योनिमेता वै कंरोत्येकान्नचंत्वारि १ शर्च॥ ———[२]

रुद्रो वा एष यद्ग्निः स एतर्हिं जातो यर्हि सर्विश्चितः स यथां वृथ्सो जातः स्तनंम्प्रेप्सत्येवं वा एष एतर्हि भाग्धेयम्प्रेप्सिति तस्मै यदाहितिं न जुंहुयादेध्वर्युं च यजमानं च ध्यायेच्छतरुद्रीयं जुहोति भाग्धेयेनैवैन शमयित नार्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो यद्ग्राम्याणां पश्नाम् (९)

पर्यसा जुहुयाद्ग्राम्यान्पशूञ्छुचार्पयेद्यदांर्ण्यानांमार्ण्याञ्जेतिलयवाग्वां वा जुहुयाद्गेवीधुकयवाग्वां वा न ग्राम्यान्पशून् हिनस्ति नार्ण्यानथो खल्वांहुरनांहुतिवैं जितिलाश्च ग्वीधंकाश्चेत्यंजक्षीरेणं जुहोत्याग्चेयी वा एषा यद्जाहुंत्यैव जुहोति न ग्राम्यान्पशून् हिनस्ति नार्ण्यानिङ्गंरसः सुवृगं लोकं यन्तः (१०)

अजायां घुर्मम्प्रासिंश्चन्थ्सा शोचन्ती पूर्णं पराजिहीत् सो ईऽर्को-ऽभवत्तद्रकस्यांकृत्वमकपूर्णेनं जुहोति सयोनित्वायोदङ्किष्ठश्चहोत्येषा वै रुद्रस्य दिख्स्वायांमेव दिशि रुद्रं निरवंदयते चर्मायामिष्टंकायां जुहोत्यन्तत एव रुद्रं निरवंदयते त्रेधाविभक्तं जुंहोति त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्थ्समावंद्वीर्यान्करोतीयृत्यग्रें जुहोति (११)

अथेयृत्यथेयंति त्रयं इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति तिस्र उत्तर्ग् आहुंतीर्जुहोति षद्थ्सम्पंद्यन्ते षड्वा ऋतवं ऋतुभिरेवैन शमयति यदंनुपरिकामं जुहुयादंन्तरवचारिण र्र रुद्रं कुंर्यादयो खल्बांहुः कस्यां वाहं दिशि रुद्रः कस्यां वेत्यंनुपरिकाममेव होत्व्यंमपंरिवर्गमेवैन र्र शमयति (१२)

पुता वै देवताः सुव्गर्या या उत्तमास्ता यजमानं वाचयित् ताभिरेवैन र् सुवृगं लोकं गमयित् यं द्विष्यात्तस्यं सञ्चरे पंशूनां न्यस्येद्यः प्रथमः पृशुरिभितिष्ठति स आर्तिमार्च्छंति॥ (१३)

पृश्नां यन्तोऽग्रें जुहोत्यपंरिवर्गमेवैन र शमयति त्रिर्शर्च॥———[3]

अश्मन्नूर्जिमिति परि षिश्चिति मार्जियंत्येवैन्मथों तुर्पयंत्येव स एनं तृप्तो-ऽक्षुंध्यन्नशोंचन्नुमुष्मिल्लौंक उपं तिष्ठते तृप्यंति प्रजयां पृशुभिर्य एवं वेद तां न इष्मूर्जं धत्त मरुतः स॰रराणा इत्याहान्नं वा ऊर्गन्नेम्मुरुतोऽन्नमेवावं रुन्द्धेऽश्म ईस्ते क्षुदुमुं ते शुक् (१४)

ऋच्छुत् यं द्विष्म इत्यांहु यमेव द्वेष्टि तमंस्य क्षुधा चं शुचा चाँर्पयिति त्रिः पंरिषि अन्पर्येति त्रिवृद्धा अग्नियावांनेवाग्निस्तस्य शुच श्रमयित त्रिः पुनः पर्येति पद्थ्सम्पद्यन्ते षड्वा ऋतवं ऋतुभिरेवास्य शुच श्रमयत्यपां वा एतत्पुष्पं यद्वेत्सों- ऽपाम् (१५)

शरोऽवंका वेतसशाखया चावंकाभिश्च वि कंर्ष्त्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुचर् शमयित यो वा अग्निं चितम्प्रंथमः पृशुरंधिकामंतीश्वरो वै तर शुचा प्रदहो मण्डूकेंन वि कंर्षत्येष वै पंशूनामंनुपजीवनीयो न वा एष ग्राम्येषुं पृशुषुं हितो नार्ण्येषु तमेव शुचार्पयत्यष्टाभिर्वि कंर्षति (१६)

अष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रौंऽग्निर्यावांनेवाग्निस्तस्य शुचरं शमयति पावकवंतीभिरत्रं वै पांवकोऽत्रेंनैवास्य शुचरं शमयति मृत्युर्वा एष यद्ग्निर्ब्रह्मंण एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनम् कार्णीं उपानहावुपं मुञ्चते ब्रह्मंणैव मृत्योर्न्तर्धत्तेऽन्तर्मृत्योर्धत्तेऽन्तर्न्नाद्यादित्यांहुर्न्याम्पम्ञ्चतेऽन्यां नान्तः (१७)

पुव मृत्योर्धत्तेऽवान्नाद्य र् रुन्द्धे नर्मस्ते हरेसे शोचिष इत्यांह नम्स्कृत्य हि वसीया रसमुप्चरंन्त्यन्यं ते अस्मत्तंपन्तु हेतय इत्यांह् यमेव द्वेष्टि तर्मस्य शुचार्पयित पावको अस्मभ्य र् शिवो भवेत्याहान्नं वै पांवकोऽन्नमेवार्व रुन्द्धे द्वाभ्यामिष्ठं क्रामित् प्रतिष्ठित्या अपस्यंवतीभ्या शान्त्यै॥ (१८)

शुग्वेत्सोऽपामष्टाभिर्विकर्षति नान्तरेकान्नपंश्चाशचं॥————[४]

नृषदे विडिति व्याघारयित पुङ्ग्याहुंत्या यज्ञमुखमा रंभतेऽक्ष्ण्या व्याघारयित तस्मांदक्ष्ण्या प्रश्वोऽङ्गानि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये यद्वंषद्भुर्याद्यातयांमास्य वषद्भारः स्याद्यन्न वषद्भुर्याद्रक्षारंसि यज्ञ हंन्युर्विडित्यांह प्रोक्षंमेव वषंद्भरोति नास्यं यातयांमा वषद्भारो भवंति न यज्ञ रक्षारंसि प्रन्ति हुतादो वा अन्ये देवाः (१९)

अहुतादोऽन्ये तानंभ्रिचिदेवोभयाँन्प्रीणाति ये देवा देवानामिति दुप्रा मंधुमिश्रेणावौँक्षति हुतादंश्चेव देवानंहुतादंश्च यजंमानः प्रीणाति ते यजंमानम्प्रीणन्ति दुप्रेव हुतादंः प्रीणाति मधुंषाहुतादौँ ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्दध्यांर्ण्यम्मधु यद्द्र्प्रा मंधुमिश्रेणावोक्षंत्युभयस्यावंरुख्ये ग्रुमुष्टिनावौँक्षति प्राजापत्यः (२०)

वै ग्रुंमुष्टिः संयोनित्वाय द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या अनुपरिचार्मवौक्षत्यपरिवर्गमेवैनाँन्प्रीणाति वि वा एष प्राणैः प्रजयां पृशुभिर्ऋध्यते यौँऽग्निं चिन्वन्नंधिकामंति प्राणदा अंपानदा इत्यांह प्राणानेवात्मन्थंत्ते वर्चोदा वंरिवोदा इत्यांह प्रजा वै वर्चः पृशवो वरिवः प्रजामेव पृश्नात्मन्थंत् इन्द्रों वृत्रमंहन्तं वृतः (२१)

हुतः षोंड्रशिर्मिर्गेगैरसिनाथ्स एताम्ग्रयेऽनींकवत् आहुंतिमपश्यत्तामंजुहोत्तस्याग्निरनींकवान्थस् भाग्धेयेन प्रीतः षोंडश्रधा वृत्रस्य भोगानप्यंदहद्वैश्वकर्मणेनं पाप्पनो निरंमुच्यत् यद्ग्रये-ऽनींकवत् आहुंतिं जुहोत्यग्निरेवास्यानींकवान्थ्यवेनं भाग्धेयेन प्रीतः पाप्पान्मिपं दहति वैश्वकर्मणेनं पाप्पनो निर्मुच्यते यं कामयेत चिरम्पाप्पनः (२२)

निर्मुच्येतेत्येकैकं तस्यं जुहुयाचिरमेव पाप्मनो निर्मुच्यते यं कामयेत ताजक्पाप्मनो निर्मुच्येतेति सर्वाणि तस्यानुद्रुत्यं जुहुयात्ताजगेव पाप्मनो निर्मुच्यतेऽथो खलु नानैव सूक्ताभ्यां जुहोति नानैव सूक्तयोंर्वीर्यं दधात्यथो प्रतिष्ठित्ये॥ (२३)

देवाः प्रांजापृत्यो वृत्रश्चिरं पाप्मनेश्चत्वारिष्ट्शर्च॥------[५]

उदेनमुत्तरां न्येतिं स्मिध् आ देधाति यथा जर्नं यतेंऽवसं करोतिं ताहगेव तित्तस्र आ देधाति त्रिवृद्धा अग्निर्यावांनेवाग्निस्तस्मैं भाग्धेयं करोत्योदुंम्बरीर्भवृन्त्यूग्वा उदुम्बर् ऊर्जमेवास्मा अपिं दधात्युद्ं त्वा विश्वं देवा इत्यांह प्राणा वै विश्वं देवाः प्राणैः (२४)

एवैन्मुद्यंच्छ्तेऽग्ने भरंन्तु चित्तिंभि्रित्यांह् यस्मां एवैनं चित्तायोद्यच्छंते तेनैवैन् समर्थयित् पश्च दिशो देवींर्य्ज्ञमंवन्तु देवीरित्यांह् दिशो ह्यंपोऽनुं प्रच्यवतेऽपामंतिं दुर्मृतिम्बार्थमाना इत्यांह् रक्षंसामपंहत्यै रायस्पोषं युज्ञपंतिमाभजन्तीरित्यांह पृशवो वै रायस्पोषं (२५)

प्रशूनेवावं रुन्द्धे षङ्किर्हरित् षङ्घा ऋतवं ऋतुभिरेवैन र हरित द्वे परिगृद्यंवती

भवतो रक्षंसामपंहत्यै सूर्यरिशम्रहरिकेशः पुरस्तादित्यांहु प्रसूँत्यै ततः पावका आशिषों नो जुषन्तामित्याहात्रं वै पावकोऽत्रंमेवावं रुन्द्वे देवासुराः संयंत्ता आसन्ते देवा पृतदप्रंतिरथमपश्यन्तेन् वै तैंऽप्रति (२६)

असुंरानजयन्तदप्रंतिरथस्याप्रतिरथ्त्वं यदप्रंतिरथं द्वितीयो होतान्वाहाँप्रत्येव तेन् यर्जमानो भ्रातृंव्याञ्जयत्यथो अनंभिजितमेवाभि जंयित दश्चर्यम्भवित दशाँक्षरा विराड्विराजेमौ लोकौ विधृंतावनयोंलींकयोर्विधृंत्या अथो दशाँक्षरा विराडक्नं विराड्विराज्येवान्नाद्ये प्रतिं तिष्ठत्यसंदिव वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षमिवाग्नींप्रमाग्नींप्रे (२७)

अश्मांनं नि दंधाति स्त्त्वाय द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै विमानं एष दिवो मध्यं आस्त इत्यांह् व्यंवैतयां मिमीते मध्ये दिवो निहिंतः पृश्चिरश्मेत्याहान्नं वै पृश्चन्नमेवावं रुन्द्धे चत्रसृभिरा पुच्छांदेति चत्वारि छन्दार्शसे छन्दोंभिरेवेन्द्रं विश्वां अवीवृधन्नित्यांह् वृद्धिंमेवोपावर्तते वाजांना्र् सत्यंतिम्पतिम् (२८)

इत्याहान्नं वै वाजोऽन्नंमेवावं रुन्द्धे सुमृहूर्य्ज्ञो देवार आ चं वक्षदित्यांह प्रजा वै पृशवंः सुम्नं प्रजामेव पृश्नात्मन्थेत्ते यक्षंद्गिर्देवो देवार आ चं वक्षदित्यांह स्वृगाकृत्ये वाजंस्य मा प्रस्वनौद्धाभेणोदंग्रभीदित्यांहासौ वा आदित्य उद्यन्नंद्वाभ एष निम्नोचन्निग्राभो ब्रह्मणैवात्मानंमुद्गह्णाति ब्रह्मणा भ्रातृंव्यं नि गृंह्णाति॥ (२९)

प्राणैः पोषौंऽप्रत्याग्नींध्रे पतिंमेष दर्श च॥———[६]

प्राचीमन् प्रदिशम्प्रेहिं विद्वानित्यांह देवलोकमेवैतयोपावर्तते ऋमेध्वमग्निना नाकमित्यांहेमानेवैतयां लोकान्क्रंमते पृथिव्या अहमुद्दन्तरिक्षमारुहमित्यांहेमानेवैतयां लोकान्थ्समारोहिति सुवर्यन्तो नापेक्षन्त इत्याह सुवर्गमेवैतयां लोकमेत्यग्ने प्रेहिं (३०)

प्रथमो देवयतामित्यांहोभर्येष्वेवैतयां देवमनुष्येषु चक्षुंर्दधाति पृश्चभि्रधिं क्रामित् पाङ्कों युज्ञो यावांनेव युज्ञस्तेनं सह सुंवर्गं लोकमेति नक्तोषासेतिं पुरोनुवाक्यांमन्वांहु प्रत्या अग्नें सहस्राक्षेत्यांह साहुस्रः प्रजापंतिः प्रजापंतेराह्यै तस्मै ते विधेम वाजांय स्वाहेत्याहान्नं वै वाजोऽन्नंमेवावं (३१)

रुन्द्धे दुभ्रः पूर्णामौदुंम्बरी स्वयमातृण्णायां जुहोत्यूर्ग्वे दध्यूर्गुदुम्बरोऽसौ स्वयमातृण्णामुष्यांमेवोर्जं दधाति तस्मादमुतोऽर्वाचीमूर्जुमुपं जीवामस्तिसृभिः सादयति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तम्प्रंतिष्ठां गंमयति प्रेद्धों अग्ने दीदिहि पुरो न इत्यौदुम्बंरीमा दंधात्येषा वै सूर्मी कर्णकावत्येतयां ह स्म (३२)

वै देवा असुंराणाः शतत्र्हाः स्तृ हिन्तं यदेतयां स्मिधंमादधाति वर्जमेवैतच्छंत्रधीं यर्जमानो भ्रातृंच्याय प्र हंरति स्तृत्या अछंम्बद्गारं विधेमं ते पर्मे जन्मंत्रम् इति वैकंङ्कतीमा दंधाति भा पुवावं रुन्द्धे ताः संवितुर्वरेण्यस्य चित्रामिति शमीमयीः शान्त्यां अग्निर्वा ह वा अग्निचितं दुहैंऽग्निचिद्वाग्निं दुहे ताम् (३३)

स्वितुर्वरेंण्यस्य चित्रामित्यांहैष वा अग्नेर्दोह्स्तमंस्य कण्वं एव श्रांयसोंऽवेत्तेनं ह स्मैन् स दुंहे यदेतयां समिधंमादधांत्यग्निचिदेव तद्ग्निं दुंहे सप्त ते अग्ने समिधंः सप्त जिह्वा इत्यांह सप्तैवास्य साप्तांनि प्रीणाति पूर्णयां जुहोति पूर्ण इंव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेः (३४)

आस्यै न्यूंनया जुहोति न्यूंनािख प्रजापंतिः प्रजा असृंजत प्रजानाि सृष्टां अग्निर्देवेभ्यो निलायत् स दिशोऽनु प्राविशञ्जह्वन्मनंसा दिशों ध्यायेद्दिग्भ्य एवेन्मवं रुन्दे द्वा पुरस्तां ज्ञहोत्याज्येनोपरिष्टात्तेजंश्चेवास्मां इन्द्रियं चं समीची दधाति द्वादंशकपालो वैश्वानरो भवति द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरौऽग्निर्वेश्वानरः साक्षात् (३५)

पुव वैश्वान्रमवं रुन्द्धे यत्प्रंयाजान्याजान्कुर्याद्विकंस्तिः सा यज्ञस्यं दर्विहोमं कंरोति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्ये राष्ट्रं वे वैश्वान्रो विण्मरुतो वैश्वान्र हृत्वा मांरुताञ्चंहोति राष्ट्रं पुव विश्वमन् ब्रात्युचैर्वैश्वान्रस्या श्रांवयत्युपार्श्य मांरुताञ्चंहोति तस्माँद्राष्ट्रं विश्वमितं वदित मारुता भंवन्ति मुरुतो वे देवानां विशो देवविशेनैवास्मै मनुष्यविशमवं रुन्द्धे सप्त भंवन्ति स्प्तगंणा वे मुरुतो गण्श पुव विश्वमवं रुन्द्धे गुणेनं गुणमनुद्रुत्यं जुहोति विशेमेवास्मा अनुवर्त्मानं करोति॥ (३६)

अग्रे प्रेह्मवं स्म दुह् तां प्रजापंतेः साक्षान्मंनुष्यविशमेकंवि शतिश्च॥———[७]

वसोधीराँ जुहोति वसौँमें धारांसिदिति वा एषा हूंयते घृतस्य वा एंनमेषा धारामुष्मिश्लौंके पिन्वंमानोपं तिष्ठत आज्येंन जुहोति तेजो वा आज्यें तेजो वसोधीरा तेजंसैवास्मै तेजोऽवं रुन्द्धेऽथो कामा वै वसोधीरा कामांनेवावं रुन्द्धे यं कामयेंत प्राणानंस्यान्नाद्यं वि (३७)

छिन्द्यामिति विग्राह्ं तस्यं जुहुयात्र्राणानेवास्यान्नाद्यं विच्छिनत्ति यं कामयेत

प्राणानंस्यात्राद्यक्ष्यं सं तंनुयामिति सन्तंतां तस्यं जुहुयात्प्राणानेवास्यात्राद्यक्ष्यं सं तंनोति द्वादंश द्वादंश द्वादंश द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरेणैवास्मा अन्नमवं रुन्द्धेऽन्नं च मेऽक्षुंच मु इत्याहितद्वै (३८)

अन्नस्य रूप॰ रूपेणैवान्नमवं रुन्द्धेऽग्निश्चं म् आपश्च म् इत्यांहैषा वा अन्नस्य योनिः सयोंन्येवान्नमवं रुन्द्धेऽर्धेन्द्राणिं जुहोति देवतां एवावं रुन्द्धे यथ्सर्वेषाम्धिमिन्द्रः प्रति तस्मादिन्द्रों देवतांनाम्भूयिष्ठभाक्तंम् इन्द्रमुत्तंरमाहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्टाद्दधाति यज्ञायुधानि जुहोति यज्ञः (३९)

वै यंज्ञायुधानिं यज्ञमेवावं रुन्द्धेऽथों पृतद्वे यज्ञस्यं रूप र रूपेणेव यज्ञमवं रुन्द्धे-ऽवभृथश्चं मे स्वगाकारश्चं म् इत्यांह स्वगाकृत्या अग्निश्चं मे घर्मश्चं म् इत्यांहैतद्वै ब्रह्मवर्चसस्यं रूप र रूपेणेव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्द्व ऋकं मे सामं च म् इत्यांह (४०)

एतद्वै छन्दंसार रूपर रूपेणैव छन्दार्श्स्यवं रुन्द्वे गर्भाश्च मे वृथ्साश्चं मृ इत्यांहैतद्वे पंशूनार रूपर रूपेणैव पृशूनवं रुन्द्वे कल्पांश्चहोत्यक्लंप्तस्य क्रुप्त्ये युग्मदयुजे जुंहोति मिथुन्त्वायोत्त्तरावंती भवतोऽभिक्रांन्त्या एकां च मे तिस्रश्चं मृ इत्यांह देवछन्द्सं वा एकां च तिस्रश्चं (४१)

म्नुष्यछुन्द्सं चर्तस्रश्चाष्टौ चं देवछन्द्सं चैव मंनुष्यछन्द्सं चावं रुन्द्ध् आ त्रयंस्त्रिश्शतो जुहोति त्रयंस्त्रिश्शद्वे देवतां देवतां एवावं रुन्द्ध् आष्टाचंत्वारिश्शतो जुहोत्यष्टाचंत्वारिश्शदक्षरा जगंती जागंताः पृशवो जगंत्यैवास्मै पृशूनवं रुन्द्धे वाजंश्च प्रस्वश्चेतिं द्वादशं जुंहोति द्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठति॥ (४२)

वि वै युज्ञः सामं च म् इत्यांह च ति्स्रश्चैकाुन्नपंश्चाशचं॥————[८]

अग्निर्देवेभ्योऽपाँकामद्भाग्धेर्यमिच्छमांनस्तं देवा अंब्रुवृत्तुपं न आ वंर्तस्व हृव्यं नों वृहेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यंमेव वांजप्रस्वीयं जुहवृत्तिति तस्मांद्ग्नये वाजप्रस्वीयं जुह्विति यद्वांजप्रस्वीयं जुहोत्यग्निमेव तद्भाग्धेयेन समर्धयत्यथों अभिषेक एवास्य स चंतुर्द्शभिर्जुहोति स्प्त ग्राम्या ओषंधयः स्पत (४३)

आर्ण्या उभयीषामवंरुद्धा अन्नंस्यान्नस्य जुहोत्यन्नंस्यान्नस्यावंरुद्धा औदुंम्बरेण स्रुवेणं जुहोत्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्गन्नंमूर्जैवास्मा ऊर्जमन्नमवं रुन्द्धेऽग्निर्वे देवानांम्भिषिंक्तो- ऽग्निचिन्मंनुष्यांणान्तस्मांदग्निचिद्वर्षति न धांवेदवंरुद्ध् ह्यंस्यान्नमन्नमिव खलु वै वर्षं यद्धावेदन्नाद्यांद्धावेदुपावंर्तेतान्नाद्यंमेवाभि (४४)

उपावंतिते नक्तोषासेति कृष्णायै श्वेतवंथ्सायै पर्यसा जुहोत्यहैवास्मै रात्रिम्प्र दांपयित रात्रियाहंरहोरात्रे एवास्मै प्रते कामंमन्नाद्यं दुहाते राष्ट्रभृतों जुहोति राष्ट्रमेवावं रुन्द्धे पङ्किर्जुहोति षङ्गा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति भुवंनस्य पत् इतिं रथमुखे पश्चाहुंतीर्जुहोति वज्रो वै रथो वर्जेणैव दिशः (४५)

अभि जंयत्यग्निचितर् हु वा अमुष्मिं ह्रोंके वातोऽभि पंवते वातनामानिं ज्ञहोत्यभ्येंवैनंम् मुष्मिं ह्रोंके वातंः पवते त्रीणिं ज्ञहोति त्रयं इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो वात्मवं रुन्द्धे समुद्रोऽसि नभंस्वानित्यां हैतद्धे वातंस्य रूपर रूपेणैव वात्मवं रुन्द्धेऽञ्जलिनां जुहोति न ह्रोतेषां मन्यथा हुंतिरवकल्पते॥ (४६)

ओषंधयः सप्ताभि दिशोऽन्यथा द्वे चं॥______[९]

सुवर्गाय वै लोकार्य देवर्थो युंज्यते यत्राकृतार्यं मनुष्यर्थ एष खलु वै देवर्थो यद्ग्रिर्गित्रं युंनज्मि शवंसा घृतेनेत्यांह युनक्त्येवैन् स एनं युक्तः सुंवर्गं लोकम्भि वहिति यथ्सर्वाभिः पश्चभिर्युक्ष्याद्युक्तौंऽस्याग्निः प्रच्युंतः स्यादप्रतिष्ठिता आहुंतयः स्युरप्रतिष्ठिताः स्तोमा अप्रतिष्ठितान्युक्थानिं तिस्भिः प्रातःसवनेऽभि मृंशति त्रिवृत् (४७)

वा अग्निर्यावांनेवाग्निस्तं युंनिक्त् यथानंसि युक्त आंधीयतं एवमेव तत्प्रत्याहुंतयस्तिष्ठन्ति प्रित् स्तोमाः प्रत्युक्थानि यज्ञायज्ञियंस्य स्तोत्रे द्वाभ्यांम्भि मृंशत्येतावान् वै यज्ञो यावांनिग्निष्टोमो भूमा त्वा अस्यातं ऊर्ध्वः क्रियते यावांनेव यज्ञस्तमंन्ततौऽन्वारोहित् द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या एक्याप्रंस्तुतम्भवत्यथं (४८)

अभि मृंशत्युपैन्मुत्तरो यज्ञो नंमृत्यथो सन्तंत्यै प्र वा एषौंऽस्माक्षोकाच्यंवते यौंऽग्निं चिनुते न वा एतस्यांनिष्ट्रक आहुंतिरवं कल्पते यां वा एषौंऽनिष्ट्रक आहुंतिं जुहोति स्रवंति वै सा ताः स्रवंन्तीं यज्ञोऽनु परां भवति यज्ञं यजंमानो यत्पुंनश्चितिं चिनुत आहुंतीनां प्रतिष्ठित्यै प्रत्याहुंतयुस्तिष्ठंन्ति (४९)

न युज्ञः पंराभवंति न यजंमानोऽष्टावुपं दधात्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्रेणैवेनं छन्दंसा चिनुते यदेकांदश त्रेष्टुंभेन यद्वादंश जागंतेन छन्दोंभिरेवेनं चिनुते नपात्को वै नामैषौं-ऽग्निर्यत्पुंनश्चितिर्य एवं विद्वान्पुंनश्चितिं चिनुत आ तृतीयात्पुरुंषादन्नंमत्ति यथा वै पुंनराधेयं पुवर्म्पुनश्चितिर्यौऽग्र्याधेर्येन न (५०)

ऋभ्रोति स पुंनराधेयमा धंते योंऽग्निं चित्वा नर्भोति स पुंनश्चितिं चिन्ते यत्पुंनश्चितिं चिन्ते यत्पुंनश्चितिं चिन्ते यत्पुंनश्चितिं चिन्ते यत्पुंनश्चितिं चिन्ते अथो खल्बांहुर्न चेत्व्येति रुद्रो वा एष यद्ग्निर्यथां व्याघ्रश्च सुप्तम्बोधयंति ताहगेव तदथो खल्बांहुश्चेत्व्येति यथा वसींयाश्सम्भाग्धेयेन बोधयंति ताहगेव तन्मनुंरग्निमंचिन्त् तेन नार्भोध्स एताम्पुंनश्चितिमंपश्यत्तामंचिन्त तया वै स आंर्म्रोद्यत्पुंनश्चितिं चिन्त ऋद्ये॥ (५१)

त्रिवृदथ् तिष्ठंन्त्यग्र्याधेयेंन् नाचिंनुत सप्तदंश च॥———[

छुन्दश्चितंं चिन्वीत पृशुकांमः पृशवो वै छन्दार्श्स पशुमानेव भंवति श्येन्चितं चिन्वीत सुवर्गकांमः श्येनो वै वर्यसाम्पतिष्ठः श्येन एव भूत्वा सुंवर्गं लोकम्पंति कङ्कचितंं चिन्वीत् यः कामयेत शीर्षण्वानमुष्मिं ह्याँके स्यामितिं शीर्षण्वानेवामुष्मिं ह्याँके भंवत्यलज्चितं चिन्वीत् चतुंःसीतं प्रतिष्ठाकांमश्चतंस्रो दिशों दिश्वेव प्रतिं तिष्ठति प्रउग्चितं चिन्वीत भातृंव्यवान्प्र (५२)

एव भ्रातृंव्यान्नुदत उभ्यतं:प्रउगं चिन्वीत् यः कामयेत् प्र जातान्भ्रातृंव्यान्नुदेय् प्रतिंजनिष्यमाणानिति प्रैव जातान्भ्रातृंव्यान्नुदते प्रतिं जनिष्यमाणान्नथचक्रचितं चिन्वीत् भ्रातृंव्यवान् वज्रो वै रथो वज्रमेव भ्रातृंव्येभ्यः प्र हंरति द्रोणचितं चिन्वीतान्नंकामो द्रोणे वा अन्नंम्भ्रियते सयौन्येवान्नमवं रुन्द्धे समूह्यं चिन्वीत पृशुकामः पशुमानेव भवति (५३)

परिचार्य्यं चिन्वीत् ग्रामंकामो ग्राम्येव भंवति श्मशान्चितं चिन्वीत् यः कामयेत पितृलोक ऋंध्रुयामिति पितृलोक एवर्ग्नोति विश्वामित्रजमद्ग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेता ए स एता जमदंग्निर्विह्य्यां अपश्यत्ता उपांधत्त् ताभिर्वे स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्कः यद्विह्य्यां उपदर्धातीन्द्रियमेव ताभिर्वीर्यं यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्के होतुर्धिणिय् उपं दधाति यजमानायतनं वै (५४)

होता स्व एवास्मां आयतंन इन्द्रियं वीर्यमवं रुन्द्वे द्वाद्शोपं दधाति द्वादंशाक्षरा जगंती जागंताः पृशवो जगंत्यैवास्में पृश्नवं रुन्द्वेऽष्टावंष्टावन्येषु धिष्णियेषूपं दधात्यष्टाशंफाः पृशवंः पृश्ननेवावं रुन्द्वे षण्मौर्जालीये षड्वा ऋतवं ऋतवः खलु वै देवाः पितरं ऋतूनेव देवान्पितृन्त्रींणाति॥ (५)

प्र भविति यजमानायत्नं वा अष्टाचेत्वारि शच॥ [११]

पर्वस्व वाजंसातय इत्यंनुष्टुक्प्रंतिपद्भंवित तिस्रोऽनुष्टुभ्श्वतंस्रो गाय्त्रियो यत्तिस्रो-ऽनुष्टुभ्स्तस्मादः श्रंस्त्रिभिस्तिष्टर्श् स्तिष्ठित् यचतंस्रो गाय्त्रियस्तस्माथ्सर्वार्श्श्वतुर्रः पदः प्रतिद्धत्पलायते पर्मा वा एषा छन्दंसां यदंनुष्टुक्पर्मश्चंतुष्टोमः स्तोमानां पर्मिस्रेरात्रो युज्ञानां पर्मोऽश्वंः पशूनां पर्मेणैवैनं पर्मतां गमयत्येकविर्शमहंभविति (५६)

यस्मिन्नश्वं आलुभ्यते द्वादंश् मासाः पश्चर्तवस्त्रयं इमे लोका असावांदित्य एंकवि १श एष प्रजापितः प्राजापत्योऽश्वस्तमेव साक्षादंश्रोति शक्नरयः पृष्ठम्भवन्त्यन्यदंन्यच्छन्दोऽन्यैन्ये वा एते पृशव आ लंभ्यन्त उतेवं ग्राम्या उतेवांरण्या यच्छक्नरयः पृष्ठम्भवन्त्यश्वंस्य सर्वृत्वायं पार्थुर्श्मम्ब्रह्मसामम्भवति रुश्मिना वा अश्वः (५७)

यत ईश्वरो वा अश्वोऽयतोऽप्रतिष्ठितः पर्रां परावतं गन्तोत्पीर्थुर्श्मम्ब्रंह्मसामम्भवत्यश्वंस्य यत्यै धृत्यै सङ्कृत्यच्छावाकसामम्भवत्यथ्यस्त्रयज्ञो वा एष यदंश्वमेधः कस्तद्वेदेत्यांहुर्यदि सर्वो वा क्रियते न वा सर्व इति यथ्सङ्कृत्यच्छावाकसामम्भवत्यश्वंस्य सर्वत्वाय पर्याप्त्या अनंन्तरायाय सर्वंस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहंभविति सर्वस्यात्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेव तेनांऽऽप्नोति सर्वं जयति॥ (५८)

अहंर्भवित वा अश्वोऽहंर्भवित दशं च॥-----[१२]

यदेकेन प्रजापंतिः प्रेणानु यजुषापों विश्वकर्माग्र आ यांहि सुवर्गाय वज्रों गायत्रेणाग्नं उदधे समीचीन्द्रांय मुयुर्पां बलाय पुरुषमृगः सौरी पृष्तः शका रुरुरल्जः सुंपूर्ण आग्नेयो-ऽश्वोऽग्नयेऽनींकवते चतुंर्विश्शतिः॥ [१३]यदेकेन् स पापीयान्तद्वा अग्नेर्धनुस्तद्देवास्त्वेन्द्रंज्येष्ठा अपां नप्रेऽश्वेस्तूप्रो द्विषष्टिः॥62॥ यदेकेनैकंशितिपात्पेत्वंः॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

यदेकेन सङ्स्थापयंति यज्ञस्य सन्तंत्या अविंच्छेदायैन्द्राः पृशवो ये मुंष्करा यदैन्द्राः सन्तोऽग्निभ्यं आलुभ्यन्तें देवताभ्यः समदं दधात्याग्नेयीस्त्रिष्टभो याज्यानुवाकाः कुर्याद्यदांग्नेयीस्तेनांग्नेया यिष्ठिष्टुभस्तेनैन्द्राः समृद्धौ न देवताभ्यः समदं दधाति वायवें नियुत्वंते तूप्रमा लंभते तेजोऽग्नेर्वायुस्तेजंस एष आ लंभ्यते तस्माद्यद्वियंङ्वायुः (१)

वार्ति तृद्रियंङ्क्षग्निर्देहिति स्वमेव तत्तेजोऽन्वेति यन्न नियुत्वेते स्यादुन्माँ द्येद्यजंमानो नियुत्वेते भवित् यर्जमानस्यानुन्मादाय वायुमतीँ श्वेतवेती याज्यानुवाक्ये भवतः सतेज्ञस्त्वायं हिरण्यगर्भः समेवर्तताम्र इत्यांघारमा घारयित प्रजापंतिर्वे हिरण्यगर्भः प्रजापंतरनुरूपत्वाय् सर्वाणि वा एष रूपाणि पशूनाम्प्रत्या लभ्यते यन्त्रंश्रुणस्तत् (२)

पुरुषाणाः रूपं यत्त्र्प्रस्तदश्वांनां यद्न्यतोद्नतद्भवां यदव्यां इव शृफास्तदवींनां यद्जस्तद्जानां वायुर्वे पंशूनाम्प्रियं धाम् यद्वांयव्यो भवंत्येतमेवेनंम्भि संजानानाः पृशव उपं तिष्ठन्ते वाय्व्यः कार्या(३)ः प्रांजापृत्या(३) इत्यांहुर्यद्वांयव्यं कुर्यात्र्रजापंतिरियाद्यत्प्रांजापृत्यं कुर्याद्वायोः (३)

ड्याद्यद्वांयव्यः पृशुर्भविति तेनं वायोर्नेति यत्प्रांजापृत्यः पुरोडाशो भविति तेनं प्राजापतेर्नेति यद्वादंशकपाल्स्तेनं वैश्वान्रान्नैत्यामावैष्ण्वमेकादशकपालुं निर्वपति दीक्षिष्यमाणोऽग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवतांश्चैव यज्ञं चा रंभतेऽग्निरंवमो देवतांनां विष्णुः परमो यदांमावैष्ण्वमेकादशकपालं निर्वपति देवताः (४)

एवोभ्यतः परिगृह्य यर्जमानोऽवं रुन्द्धे पुरोडाशेन वै देवा अमुष्मिश्लाँक आधुवं चरुणास्मिन् यः कामयेतामुष्मिश्लाँक ऋधुयामिति स पुरोडाशं कुर्वीतामुष्मिन्नेव लोक ऋधोति यद्ष्टाकपालस्तेनांग्रेयो यत्रिकपालस्तेनं वैष्णवः समृद्धौ यः कामयेतास्मिश्लाँक ऋधुयामिति स चरुं कुर्वीताग्रेर्घृतं विष्णांस्तण्डुलास्तस्मांत् (५)

चुरुः कार्यौऽस्मिन्नेव लोक ऋष्नोत्यादित्यो भवतीयं वा अदितिर्स्यामेव प्रति तिष्ठत्यथीं अस्यामेवाधि युज्ञं तेनुते यो वै संवथ्सरमुख्यमभृत्वाभ्रिं चिनुते यथां सामि गर्भोऽवपद्यंते ताहगेव तदार्तिमार्च्छेंद्वैश्वान्रं द्वादंशकपालम् पुरस्तान्निर्वपेथ्संवथ्सरो वा अग्निर्वैश्वान्रो यथां संवथ्सरमाम्वा (६)

काल आगंते विजायंत पुवमेव संवथ्सरमास्वा काल आगंतेऽग्निं चिनुते नार्तिमार्च्छंत्येषा वा अग्नेः प्रिया तुनूर्यद्वैश्वानुरः प्रियामेवास्यं तुनुवमवं रुन्द्वे त्रीण्येतानिं हुवीर्श्वे भवन्ति त्रयं इमे लोका पुषां लोकानार् रोहाय॥ (७)

यद्रियंङ्वायुर्यच्नंश्रुणस्तद्वायोर्निर्वपंति देवतास्तस्मादाः स्वाष्टात्रिर्शत्रच॥———[१]

प्रजापंतिः प्रजाः सृष्ट्वा प्रेणानु प्राविंशत्ताभ्यः पुनः सम्भवितुं नाशंक्रोथ्सौंऽब्रवीद्ध्यव्यये मेतः पुनः सश्चिनवृदिति तं देवाः समिचिन्वन्ततो वै त और्ध्रुवन् यथ्समिचिन्वन्तिचित्यंस्य चित्यत्वम् य पुवं विद्वानृग्निं चिनुत ऋभोत्येव कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुरग्निवान् (८)

असानीति वा अग्निश्चीयतेऽग्निवानेव भेवति कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुर्देवा मां वेदन्निति वा अग्निश्चीयते विदुरेंनं देवाः कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुर्गृह्यंसानीति वा अग्निश्चीयते गृह्यंव भेवति कस्मै कम्ग्निश्चीयत् इत्यांहुः पशुमानंसानीति वा अग्निः (९)

चीयते प्रशुमानेव भंवति कस्मै कम्प्रिश्चीयत् इत्यांहुः सप्त मा पुरुषा उपं जीवानिति वा अग्निश्चीयते त्रयः प्राश्चस्त्रयः प्रत्यं चं आत्मा संप्तम एतावंन्त एवैनम्मुष्मिंश्लौंक उपं जीवन्ति प्रजापंतिर्ग्निमंचिकीषत् तं पृथिव्यंब्रवीत्र मय्यग्निं चेष्यसेतिं मा धक्ष्यति सा त्वांतिद्ह्यमाना वि धंविष्ये (१०)

स पापीया-भविष्यसीति सौंऽब्रवीत्तथा वा अहं किरिष्यामि यथाँ त्वा नार्तिधृक्ष्यतीति स इमाम्भ्यंमृशत् प्रजापंतिस्त्वा सादयतु तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सीदेतीमामेवेष्टंकां कृत्वोपांधृत्तानंतिदाहाय् यत्प्रत्यृग्निं चिन्वीत तद्भि मृंशेत्प्रजापंतिस्त्वा सादयतु तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सीद (११)

इतीमामेवेष्टंकां कृत्वोपं धृत्तेऽनंतिदाहाय प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स एतमुख्यंमपश्यत्तर संवथ्सरमंबिभुस्ततो वै स प्राजायत् तस्मांथ्संवथ्सरम्भार्यः प्रैव जायते तं वसंवोऽब्रुवन्प्र त्वमंजिनष्ठा वयं प्र जांयामहा इति तं वसुभ्यः प्रायंच्छुत्तं त्रीण्यहाँन्यविभर्षस्तेनं (१२)

त्रीणिं च श्वान्यसृंजन्त त्रयंस्त्रि १ शतं च तस्मान्त्र्यहम्भार्यः प्रैव जायते तानुद्रा अंब्रुवन्प्र

यूयमंजिनिद्वं व्यं प्र जांयामहा इति तर रुद्रेभ्यः प्रायंच्छ्न्तर षडहाँन्यिबभरुस्तेन त्रीणिं च शतान्यसृंजन्त त्रयंस्त्रिरशतं च तस्मांत्षड्हम्भार्यः प्रैव जांयते तानांदित्या अंब्रुवन्प्र यूयमंजिनिद्वं व्यं (१३)

प्र जांयामहा इति तमांदित्येभ्यः प्रायंच्छुन्तं द्वाद्शाहाँन्यबिभरुस्तेन् त्रीणिं च श्तान्यसृंजन्त त्रयंस्त्रिश्शतं च तस्मांद्वादशाहम्भार्यः प्रैव जांयते तेनै्व ते सहस्रंमसृजन्तोखाः संहस्रत्नमीं य पुवमुख्यः साहस्रं वेद प्र सहस्रं पुशूनांप्रोति॥ (१४)

अग्निवान्पंशुमानंसानीति वा अग्निर्धविष्ये मृशेत्प्रजापंतिस्त्वा सादयतु तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सींद् तेन् तानांदित्या अंब्रुवन्त्र यूयमंजनिङ्गं वयश्चंत्वारिश्शचं॥—————[२]

यजुंषा वा एषा कियते यजुंषा पच्यते यजुंषा वि मुंच्यते यदुखा सा वा एषैतर्हिं यातयाँमी सा न पुनंः प्रयुज्येत्यांहुरग्नें युक्ष्वा हि ये तवं युक्ष्वा हि देवहूतंमा ह द्वयुखायाँ जुहोति तेनैवेनाम्पुनः प्र युंक्कें तेनायांतयामी यो वा अग्निं योग् आगंते युनिक्तं युक्कें युंक्कानेष्वग्नें (१५)

युक्ष्वा हि ये तवं युक्ष्वा हि देवहूतंमा इत्यंहैष वा अग्नेर्योग्स्तेनैवैनं युनिक्त युङ्के युंआनेषुं ब्रह्मवादिनों वदन्ति न्यंङ्कान्निश्चेत्व्या(३) उत्ताना(३) इति वयंसां वा एष प्रतिमयां चीयते यद्ग्निर्यन्त्रंश्चं चिनुयात्पृष्टित एनमाहृतय ऋच्छेयुर्यद्त्तानं न पतिंतु शक्नुयादसुंवर्ग्योऽस्य स्यात्प्राचीनंमृतानम् (१६)

पुरुषशीर्षम्पं दधाति मुख्त एवेन्माहुंतय ऋच्छन्ति नोत्तानं चिन्ते सुवर्ग्यांऽस्य भवित सौर्या जुंहोति चक्षुंरेवास्मिन्प्रतिं दधाति द्विर्जुहोति द्वे हि चक्षुंषी समान्या जुंहोति समानः हि चक्षुः समृद्धौ देवासुराः संयंता आस्नते वामं वसु सं न्यंदधत् तद्देवा वाम्भृतांवृञ्जत् तद्वांम्भृतां वामभृत्वं यद्वांम्भृतंमुप्दधांति वाममेव तया वसु यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्को हिरंण्यमूर्धी भवित ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिर्वामं ज्योतिर्वेवास्य ज्योतिर्वामं वृङ्को द्वियुजुर्भवित प्रतिष्ठित्य॥ (१७)

युआनेष्वग्रे प्राचीनम्तानं वामभृत्अतुर्वि १ शतिश्च॥—————[३]

आपो वरुंणस्य पत्नंय आसुन्ता अग्निर्भ्यंध्यायत्ताः सर्मभवृत्तस्य रेतः परापतृत्तद्यमभवद्यद्वितीयंम्पुरापंतृत्तद्सावभवद्ययं वै विराड्सौ स्वराद्यद्विराजांवुपद्धांतीमे एवोपं धत्ते यद्वा असौ रेतःं सिञ्चित् तदस्यां प्रतिं तिष्ठति तत्प्र जांयते ता ओषंधयः (१८)

वीरुधों भवन्ति ता अग्निरंति य एवं वेद प्रैव जांयतेऽन्नादो भंवति यो रेतस्वी स्यात्प्रंथमायां तस्य चित्यांमुभे उपं दध्यादिमे एवास्में सुमीची रेतः सिश्चतो यः सिक्तरेताः स्यात्प्रंथमायां तस्य चित्यांमृन्यामुपं दध्यादुत्तमायांमृन्याः रेतं एवास्यं सिक्तमाभ्यामुंभ्यतः परिं गृह्णाति संवथ्सुरं न कम् (१९)

चन प्रत्यवंरोहेन्न हीमे कं चन प्रत्यव्रोहंत्स्तदेनयोर्व्रतं यो वा अपंशीर्षाणमृग्निं चिनुतेऽपंशीर्षामुष्मिं ह्याँके भविति यः सशीर्षाणं चिनुते सशीर्षामुष्मिं ह्याँके भविति चित्तिं ज्ञहोमि मनसा घृतेन यथां देवा इहागमंन्वीतिहाँना ऋतावृधेः समुद्रस्यं वयुनस्य पत्मं अहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहामर्त्यं हिविरितिं स्वयमातृण्णाम्पुधायं जुहोति (२०)

पृतद्वा अग्नेः शिरः सशीर्षाणमेवाग्निं चिनुते सशीर्षामुष्मिं ह्यों के भेवित य एवं वेदं सुवर्गाय वा एष लोकायं चीयते यदग्निस्तस्य यदयंथापूर्वं क्रियतेऽस्वर्ग्यमस्य तथ्सुंवर्ग्याऽग्निश्चितिंमुप्धायाभि मृंशेचितिमचित्तिं चिनवृद्धि विद्वान्पृष्ठेवं वीता वृंजिना च मर्तात्राये चं नः स्वपृत्यायं देव दितिं च रास्वादितिमुरुप्येतिं यथापूर्वमेवैनामुपं धत्ते प्राश्चंमेनं चिनुते सुवर्ग्यांऽस्य भवित॥ (२१)

ओषंधयः कञ्जुंहोति स्वपृत्यायाृष्टादंश च॥————[४]

विश्वकंमां दिशाम्पतिः स नंः पृशून्पांतु सौंऽस्मान्पांतु तस्मै नमंः प्रजापंती रुद्रो वर्रुणोऽग्निर्दिशाम्पतिः स नंः पृशून्पांतु सौंऽस्मान्पांतु तस्मै नमं एता वै देवतां एतेषां पशूनामधिपतयस्ताभ्यो वा एष आ वृंश्च्यते यः पशुशीर्षाण्युंपदधांति हिरण्येष्ट्रका उपं दधात्येताभ्यं एव देवतांभ्यो नमंस्करोति ब्रह्मवादिनः (२२)

वृद्नत्युग्नौ ग्राम्यान्पुशून्प्र दंधाति शुचारुण्यानंपंयित् किं तत् उच्छि १ षतीत् यिद्धिरण्येष्टका उपदर्धांत्यमृतं वै हिरंण्यम्मृतंनैव ग्राम्येभ्यः पृशुभ्यो भेषजं कंरोति नैनानं हिनस्ति प्राणो वै प्रथमा स्वयमातृण्णा व्यानो द्वितीयांपानस्तृतीयानु प्राण्यांत्प्रथमाः स्वयमातृण्णामुंप्धायं प्राणेनैव प्राण्ण समर्धयति व्यन्यात् (२३)

द्वितीयांमुप्धायं व्यानेनैव व्यानः समर्धयत्यपाँन्यात्तृतीयांमुप्धायांपानेनैवापानः

समंध्यत्यथौँ प्राणैरेवैन् समिन्द्धे भूर्भुवः सुवृरितिं स्वयमातृण्णा उपं दधातीमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा पृताभिः खलु वै व्याहृंतीभिः प्रजापितः प्राजायत् यदेताभिव्याहृंतीभिः स्वयमातृण्णा उपद्धातीमानेव लोकानुंपुधायैषु (२४)

लोकेष्विध् प्र जांयते प्राणायं व्यानायांपानायं वाचे त्वा चक्षुंषे त्वा तयां देवतंयाङ्गिर्म्बद्भुवा सींदाग्निना वै देवाः सुंवृगं लोकमंजिगा स्मन्तेन पतिंतुं नाशंक्कवन्त एताश्चतंस्रः स्वयमातृण्णा अपश्यन्ता दिक्षूपांदधत् तेनं सुर्वतंश्चक्षुषा सुवृगं लोकमायन्यचतंस्रः स्वयमातृण्णा दिक्षूंपदधांति सुर्वतंश्चक्षुष्व तद्ग्निना यजंमानः सुवृगं लोकमंति॥ (२५)

ब्रह्मवादिनो व्यंन्यादेषु यजंमानुस्रीणिं च॥_____[५]

अग्र आ यांहि बीतय इत्याहाह्वंतैवेनंमुग्निं दूतं वृंणीमह् इत्यांह हूत्वेवेनं वृणीते-ऽग्निनाग्निः समिध्यत् इत्यांह् समिन्द्ध एवेनंमुग्निर्वृत्राणि जङ्घनदित्यांह् समिद्ध एवास्मिन्निन्द्रयं दंधात्यग्नेः स्तोमंम्मनामह इत्यांह मनुत एवेनंमुतानि वा अह्वारं रूपाणि (२६)

अन्वहमेवैनं चिनुतेऽवाह्नार् रूपाणि रुन्द्वे ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्मांथ्यत्याद्यातयांम्रीर्न्या इष्टंका अयांतयाम्री लोकं पृणेत्यांन्द्राग्नी हि बांर्हस्पत्येतिं ब्रूयादिन्द्राग्नी च हि देवानाम्बृह्स्पतिश्चायांतयामानोऽनुच्रवंती भवत्यजांमित्वायानुष्टुभानुं चरत्यात्मा वै लोकं पृणा प्राणोंऽनुष्टुप्तस्मांत्प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनुं चरित ता अस्य सूदंदोहसः (२७)

इत्यांह् तस्मात्पर्रुषिपरुषि रसः सोमई श्रीणन्ति पृश्वयं इत्याहात्रं वै पृश्चत्रंमेवावं रुन्द्धेऽर्को वा अग्निर्कोऽत्रमन्नेमेवावं रुन्द्धे जन्मं देवानां विशिक्षिष्वा रोचने दिव इत्याहिमानेवास्में लोकां ज्योतिष्मतः करोति यो वा इष्टंकानां प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति तयां देवतंयाङ्गिर्स्वद्भुवा सीदेत्यांहैषा वा इष्टंकानां प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति॥ (२८)

रूपाणि सूर्ददोहस्स्तया षोडंश च॥-----[६]

सुवर्गाय वा एष लोकायं चीयते यद्ग्निर्वर्ज्ञं एकाद्शिनी यद्ग्नावेकाद्शिनीं िम्मनुयाद्वज्रेणैन र सुवर्गाल्लोकादन्तर्दध्याद्यन्न मिनुयाथ्स्वरुंभिः पुशून्व्यंधयेदेकयूपिम्मंनोति नैनं वर्ज्जेण पश्चमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

सुवर्गाल्लोकादंन्तर्दधांति न स्वर्रुभः पृशून्त्र्यर्धयित वि वा एष इंन्द्रियेणं वीर्येणर्ध्यते योऽग्निं चिन्वन्नंधिकामंत्यैन्द्रिया (२९)

ऋचाक्रमण्म्प्रतीष्टंकामुपं दध्यान्नेन्द्रियेणं वीर्येण् व्यृध्यते रुद्रो वा एष यद्ग्निस्तस्यं तिस्रः शंर्व्याः प्रतीचीं तिरश्यन्ची ताभ्यो वा एष आ वृश्यते यौंऽग्निं चिंनुतैंऽग्निं चित्वा तिसृधन्वमयांचितम्ब्राह्मणायं दद्यात्ताभ्यं एव नमस्करोत्यथो ताभ्यं एवात्मानं निष्क्रीणीते यत्ते रुद्र पुरः (३०)

धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्र संवथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्र दक्षिणा धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मै ते रुद्र परिवथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्र पृश्चाद्धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्रेदावथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्रोत्तराद्धनुस्तत् (३१)

वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्रेदुवथ्सरेण नमंस्करोमि यत्ते रुद्रोपिर् धनुस्तद्वातो अनुं वातु ते तस्मैं ते रुद्र वथ्सरेण नमंस्करोमि रुद्रो वा एष यद्ग्निः स यथाँ व्याघः कुद्धस्तिष्ठंत्येवं वा एष एतर्हि सर्श्वितमेतैरुपं तिष्ठते नमस्कारैरेवैन शमयित यैंऽग्नर्यः (३२)

पुरीष्याः प्रविष्टाः पृथिवीमन्। तेषां त्वमंस्युत्तमः प्र णों जीवातंवे सुव। आपं त्वाऽग्रे मन्सापं त्वाऽग्रे तपसापं त्वाग्ने दीक्षयापं त्वाग्न उपसद्धिरापं त्वाग्ने सुत्ययापं त्वाऽग्रे दिक्षिणाभिरापं त्वाग्नेऽवभृथेनापं त्वाग्ने वृशयापं त्वाग्ने स्वगाकारेणेत्यांहैषा वा अग्नेराप्तिस्तयैवैनंमाप्नोति॥ (३३)

पुेन्द्रिया पुर उंत्तराद्धनुस्तद्ग्रयं आह्ाष्टौ चं॥_________[७]

गायत्रेणं पुरस्तादुपं तिष्ठते प्राणमेवास्मिन्दधाति बृहद्रथन्तराभ्यां पृक्षावोजं पृवास्मिन्दधात्यृतुस्थायंज्ञाय्ज्ञियंन पुच्छंमृतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति पृष्ठेरुपं तिष्ठते तेज्ञो वै पृष्ठानि तेजं पृवास्मिन्दधाति प्रजापंतिर्ग्निमंसृजत् सौंऽस्माथ्सृष्टः परांङ्केत्तं वांरवन्तीयंनावारयत् तद्वांरवन्तीयंस्य वारवन्तीयृत्वः श्यैतेनं श्येती अंकुरुत् तच्छ्यैतस्यं श्यैतत्वम् (३४)

यद्वांरवन्तीयेनोप्तिष्ठंते वारयंत एवैनई श्यैतेनं श्येती कुंरुते प्रजापंतेर्हृदंयेनापिपुक्षम्प्रत्युपं तिष्ठते प्रेमाणंमेवास्यं गच्छति प्राच्यां त्वा दिशा सांदयामि गायुत्रेण छन्दंसाग्निनां देवतंयाग्नेः शीष्णाग्नेः शिर् उपं दधामि दक्षिणया त्वा दिशा सांदयामि त्रेष्टुंभेन पश्चमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

छन्द्सेन्द्रेण देवतंयाुग्नेः पुक्षेणाुग्नेः पुक्षमुपं दधामि प्रतीच्यां त्वा दिशा सांदयामि (३५)

जागंतेन छन्दंसा सिवृत्रा देवतंयाग्नेः पुच्छेनाग्नेः पुच्छमुपं दधाम्युदींच्या त्वा दिशा सांदयाम्यानुष्टुभेन छन्दंसा मित्रावरुणाभ्यां देवतंयाग्नेः पक्षेणाग्नेः पक्षमुपं दधाम्यूर्ध्वयां त्वा दिशा सांदयामि पाङ्केन छन्दंसा बृह्स्पतिना देवतंयाग्नेः पृष्ठेनाग्नेः पृष्ठमुपं दधामि यो वा अपात्मानमित्रें चिनुतेऽपात्मामुष्मिल्लांके भविति यः सात्मानं चिनुते सात्मामुष्मिल्लांके भवत्यात्मेष्टका उपं दधात्येष वा अग्नेरात्मा सात्मानमेवाग्निं चिनुते सात्मामुष्मिल्लांके भविति य पृवं वेदं॥ (३६)

श्यैतृत्वं प्रतीच्यां त्वा दिशा सांदयामि यः सात्मांनश्चिनुते द्वावि^५शतिश्च॥———[८]

अग्नं उद्ये या तृ इषुंर्युवा नाम् तयां नो मृड् तस्यांस्ते नमस्तस्यांस्तृ उप् जीवंन्तो भूयास्माग्नं दुध्र गह्य किश्शिल वन्य या तृ इषुंर्युवा नाम् तयां नो मृड् तस्यांस्ते नमस्तस्यांस्त् उप् जीवंन्तो भूयास्म पश्च वा एतेंऽग्नयो यिचतंय उद्धिरेव नामं प्रथमो दुधः (३७)

द्वितीयो गह्यंस्तृतीयः कि श्रीलश्चंतुर्थो वन्यः पश्चमस्तेभ्यो यदाहुंतीर्न जुंहुयादंध्वर्युं च यजमानं च प्र दंहेयुर्यदेता आहुंतीर्जुहोतिं भाग्धेयेनैवैनौञ्छमयित नार्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो वाङ्गं आसन्नसोः प्राणौऽक्ष्योश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रंम्बाहुवोर्बलंमूरुवोरोजोऽरिष्टा विश्वान्यङ्गांनि तुन्ः (३८)

त्नुवां मे सह नमंस्ते अस्तु मा मां हिश्सीरप् वा एतस्मांतप्राणाः क्रांमन्ति यौंऽग्निं चिन्वन्नंधिकामंति वाङ्गं आसन्नसोः प्राण इत्यांह प्राणानेवात्मन्थत्ते यो रुद्रो अग्नौ यो अपस् य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमीं अस्त्वाहुंतिभागा वा अन्ये रुद्रा हिवर्भागाः (३९)

अन्ये शंतरुद्रीयर् हुत्वा गांवीधुकं चरुमेतेन यर्जुषा चर्मायामिष्टंकायां नि दंध्याद्भागुधेयेंनैवैनर् शमयित तस्य त्वे शंतरुद्रीयर् हुतिमित्यांहुर्यस्यैतदुग्रौ क्रियत् इति वसंवस्त्वा रुद्रैः पुरस्तौत्पान्तु पितरंस्त्वा यमरांजानः पितृभिदिक्षिणतः पान्त्वादित्यास्त्वा विश्वेदिवैः पश्चात्पान्तु द्युतानस्त्वां मारुतो मुरुद्धिरुत्तरुतः पातु (४०)

देवास्त्वेन्द्रं ज्येष्ठा वर्रुणराजानो ऽधस्ताँ चोपरिष्ठाच पान्तु न वा पृतेनं पूतो न मेध्यो

न प्रोक्षितो यदेनमतः प्राचीनं प्रोक्षति यथ्सश्चितमाज्येन प्रोक्षति तेनं पूतस्तेन मेध्यस्तेन प्रोक्षितः॥ (४१)

दुध्रस्तुनूर्ह्विर्भागाः पातु द्वात्रिर्शय॥———[९]

समीची नामांसि प्राची दिक्तस्याँस्तेऽग्निरिधंपतिरसितो रंक्षिता यश्चािधंपितिर्यश्चं गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नो मृडयतान्ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधाम्योजस्विनी नामांसि दक्षिणा दिक्तस्याँस्त इन्द्रोऽधिंपितुः पृदांकुः प्राची नामांसि प्रतीची दिक्तस्याँस्ते (४२)

सोमोऽधिपतिः स्वृजोंऽवस्थावा नामास्युदींची दिक्तस्याँस्ते वरुणो-ऽधिपतिस्तिरश्चराजिरधिपत्नी नामांसि बृह्ती दिक्तस्याँस्ते बृह्स्पतिरधिपतिः श्वित्रो वृशिनी नामांसीयं दिक्तस्याँस्ते यमोऽधिपतिः कल्माषंग्रीवो रक्षिता यश्चाधिपतिर्यश्चं गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नों मृडयतान्ते यं द्विष्मो यश्चं (४३)

नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधाम्येता वै देवतां अग्निं चितर रेक्षन्ति ताभ्यो यदाहुंतीर्न जुंहुयादंध्वर्युं च यजंमानं च ध्यायेयुर्यदेता आहुंतीर्जुहोतिं भागधेयेंनैवैनां ञ्छमयित् नार्तिमार्च्छंत्यध्वर्युर्न यजंमानो हेतयो नामं स्थ तेषां वः पुरो गृहा अग्निर्व इषंवः सिलुलो निलिम्पा नामं (४४)

स्थ तेषां वो दक्षिणा गृहाः पितरों व इषंवः सगरो विज्ञिणो नामं स्थ तेषां वः पश्चाद्गृहाः स्वप्नों व इषंवो गह्वंरोऽवस्थावानो नामं स्थ तेषां व उत्तराद्गृहा आपों व इषंवः समुद्रोऽधिपतयो नामं स्थ तेषां व उपिरं गृहा वर्षं व इष्वोऽवंस्वान्क्रव्या नामं स्थ पार्थिवास्तेषां व इह गृहाः (४५)

अर्न्न व इपंबो निमिषो बांतनामन्तेभ्यों वो नमस्ते नी मृडयत् ते यं द्विष्मो यश्चं नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दथामि हुतादो वा अन्ये देवा अंहुतादोऽन्ये तानिम्चिचेदेवोभयाँन्प्रीणाति द्र्या मंधुमिश्रेणैता आहुंतीर्जुहोति भाग्धेयेंनैवैनाँन्प्रीणात्यथो खल्बांहुरिष्टंका वै देवा अंहुताद् इतिं (४६)

अनुपरिकामं जुहोत्यपेरिवर्गमेवैनांन्प्रीणातीमः स्तन्मूर्जस्वन्तं धयापाम्प्रप्यांतमभ्रे सरिरस्य मध्यैं। उथ्सं जुषस्व मधुंमन्तमूर्व समुद्रियः सदंन्मा विशस्व। यो वा अभिम्प्रयुज्य न विमुश्चति यथाश्वों युक्तोऽविमुच्यमानः क्षुध्यंन्पराभवंत्येवमंस्याभिः परां भवति तं पंराभवंन्तं यर्जमानोऽनु परां भवति सौंऽग्निं चित्वा लूक्षः (४७)

भृवतीम इस्तन्मूर्जस्वन्तं धयापामित्याज्यंस्य पूर्णा इसुर्चं जुहोत्येष वा अग्नेविंमोको विमुच्येवास्मा अन्नमिपं दधाति तस्मांदाहुर्यश्चैवं वेद यश्च न सुधाय है वै वाजी सुहिंतो दधातीत्यग्निर्वाव वाजी तमेव तत्प्रींणाति स एनम्प्रीतः प्रींणाति वसींया-भवति॥ (४८)

प्रतीची दिक्तस्याँस्ते द्विष्मो यश्चं निलिम्पा नामेह गृहा इतिं लूक्षो वसीयान्भवति॥[१०]

इन्द्रांय राज्ञें सूक्रो वर्रुणाय राज्ञे कृष्णों यमाय राज्ञ् ऋश्यं ऋष्भाय राज्ञें गवयः शाँदूलाय राज्ञें गौरः पुरुषराजायं मुर्कटः क्षिप्रश्येनस्य वर्तिका नीलंगोः क्रिमिः सोमस्य राज्ञः कुलुङ्गः सिन्धौः शिश्शुमारों हिमवंतो हस्ती॥ (४९)

मृयुः प्रांजापृत्य ऊलो हलींक्ष्णो वृषद् १ शस्ते धातुः सरंस्वत्यै शारिः श्येता पुंरुष्वाख्सरंस्वते शुकंः श्येतः पुंरुष्वागांरुण्योंऽजो नंकुलः शका ते पौष्णा वाचे क्रौञ्चः॥ (५०)

मृयुम्नयोवि २ शतिः॥——[१२]

अपां नम्नें जुषो नाुक्रो मक्तरः कुलीकयुस्तेऽकूपारस्य वाचे पैँङ्गराजो भगाय कुषीतंक आती बाहसो दर्विदा ते वायव्यां दिग्भ्यश्चेकवाकः॥ (५१)

अ्पामेकाृत्रवि १ शतिः॥______[१३]

बलायाजगुर आखुः सृजया श्वयण्डंकस्ते मैत्रा मृत्यवेऽसितो मृन्यवे स्वजः कुंम्भीनसः पुष्करसादो लोहिताहिस्ते त्वाष्ट्राः प्रतिश्रुत्काये वाहसः॥ (५२)

[88]

पुरुषमृगश्चन्द्रमंसे गोधा कालंका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनामेण्यह्रे कृष्णो रात्रियै पिकः क्ष्विङ्का नीलंशीर्णी तैंऽर्यम्णे धातुः केत्कटः॥ (५३)

सौरी बुलाकश्यों मुयूरेः श्येनस्ते गंन्धुर्वाणां वसूनां कृपिञ्जंलो रुद्राणां तित्तिरी

| रोहित्कुंण्ड्रुणाचीं गोलत्तिंका ता अंफ्सरसामरंण्याय सृम्रः॥ (५४) |
|--|
| [१६] |
| पृष्तो वैश्वदेवः पित्वो न्यङ्कः कशुस्तेऽनुंमत्या अन्यवापौऽर्धमासानौम्मासां कृश्यपः |
| क्वियं: कुटर्रुद्रात्यौहस्ते सिनीवाल्यै बृहस्पतंये शित्पुटः॥ (५) |
| [80] |
| १९७१ शर्का भौमी पात्रः कशों मान्थीलवस्ते पिंतृणामृंतूनां जहंका संवथ्स्राय लोपां |
| कपोत उर्लूकः शशस्ते नैर्ंऋताः कृंकवाकुंः सावित्रः॥ (५६) |
| बलांय पुरुषमृगः सौरी पृंषतः शकाष्टादंशाष्टादंश॥———[१८] |
| |
| रुर्फ रौद्रः कृंकलासः शकुनिः पिप्पंका ते शर्ययायै हरिणो मांरुतो ब्रह्मणे शार्गस्तरक्षुंः कृष्णः श्वा चंतुरक्षो गर्दभस्त इंतरजनानामग्रये धृङ्काँ॥ (५७) |
| |
| रुर्फर्वि ४ शृतिः॥———[१९] |
| अ्कुज आँन्तरिक्ष उद्भो मृद्धः प्रुवस्तेऽपामदित्ये हश्स्माचिरिन्द्राण्ये कीर्शा गृधेः |
| शितिकृक्षी वौर्प्राण्सस्ते दिव्या द्यांवापृथिव्यां श्वावित्॥ (५८) |
| [२०] |
| सुपूर्णः पार्जुन्यो हुर्सो वृकों वृषदुर्शस्त ऐन्द्रा अपामुद्रौंऽर्यम्णे लोपाशः सिर्हो |
| नंकुलो व्याघ्रस्ते मंहेन्द्राय कामाय परंस्वान्॥ (५९) |
| अ्लुजः सुंपुर्गौंऽष्टादंशाष्ट्रादंश॥————[२१] |
| आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बांर्हस्पत्यः |
| शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कुल्माषं ऐन्द्राग्रः सर्हितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः |
| पेत्वंः॥ (६०) |
| आुग्नेयो द्वाविर्श्यतिः॥————[२२] |
| अर्श्वस्तुपरो गोंमृगस्ते प्रांजापत्या आंग्नेयौ कृष्णग्रींवौ त्वाष्ट्रौ लोंमशसक्थौ शिंतिपृष्ठौ |

षष्ठमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

बांर्हस्पत्यौ धात्रे पृंषोद्रः सौर्यो बुलक्षः पेर्त्वः॥ (६१)

अश्वः षोडंश॥————[२३]

अग्नयेऽनींकवते रोहिताञ्जिरनङ्गान्धोरांमौ सावित्रौ पौष्णौ रंजतनांभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कुल्माषं आग्नेयः कृष्णोंऽजः सारस्वती मेषी वांरुणः कृष्ण एकंशितिपात्पेत्वंः (६२)

अ्ग्नयोऽनींकवते द्वावि १ शतिः॥——[२४]

हिरंण्यवर्णा अपां ग्रहाँ-भूतेष्ट्रकाः स्जूः संवथ्सरं प्रजापंतिः स क्षुरपंविर्ग्नेर्वे दीक्षयां सुवृगीय् तं यन्न सूयते प्रजापंतिर्ऋतुभी रोहितः पृश्चिः शितिबाहुरुंन्नतः कृणाः शुण्ठा इन्द्रायादित्यै सौम्या वांकृणाः सोमायैकांदश पिशङ्गास्त्रयोविश्शतिः॥——[२५] हिरंण्यवर्णा भूतेष्ट्रकाश्छन्दो यत्कनीयाश्सत्रिवृद्धंग्निर्वाकृणाश्चतुंःपश्चाशत्॥54॥ हिरंण्यवर्णा निवंक्षसः॥

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

हिरंण्यवर्णाः शुचंयः पावका यासुं जातः कृश्यपो यास्विन्द्रः। अग्निं या गर्भं दिधेरे विरूपास्ता न आपः शङ् स्योना भेवन्तु। यासाङ् राजा वर्रुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्। मधुश्चतः शुचंयो याः पावकास्ता न आपः शङ् स्योना भवन्तु। यासाँ देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति। याः पृथिवीम्पयंसोन्दन्ति (१)

शुक्रास्ता न आपः शङ् स्योना भंवन्तु। शिवेनं मा चक्षुंषा पश्यतापः शिवयां तुनुवोपं स्पृशत् त्वचंम्मे। सर्वारं अग्नीर रंप्सुषदों हुवे वो मिय वर्चो बलुमोजो नि धंत्त। यददः संम्प्रयतीरहावनंदता हुते। तस्मादा नद्यों नामं स्थ ता वो नामानि सिन्धवः। यत्प्रेषिता वर्रुणेन ताः शीभरं सुमवंत्यत। (२)

तदाँप्रोदिन्द्रों वो युतीस्तस्मादापो अनुं स्थन। अपुकाम स्यन्दंमाना अवींवरत वो हिकम्ं। इन्द्रों वः शक्तिंभिर्देवीस्तस्माद्वाणांमं वो हितम्। एकों देवो अप्यंतिष्ठथ्स्यन्दंमाना यथावृशम्। उदानिषुर्मृहीरिति तस्मादुद्कमुंच्यते। आपों भुद्रा घृतमिदापं आसुरुग्नीषोमौं बिभ्रत्याप् इत्ताः। तीुव्रो रसौ मधुपृचाँम् (३)

अर्ग्म आ माँ प्राणेनं सह वर्चसा गन्न। आदित्पंश्याम्युत वां शृणोम्या मा घोषों गच्छिति वाङ्गं आसाम्। मन्ये भेजानो अमृतंस्य तर्रिह हिरंण्यवर्णा अतृपं यदा वंः। आपो हि ष्ठा मंयोभुवस्ता नं ऊर्जे दंधातन। महे रणाय चक्षंसे। यो वंः शिवतंमो रसस्तस्य भाजयतेह नंः। उश्तीरिंव मातरंः। तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वंथ। आपो जनयंथा च नः। दिवि श्रंयस्वान्तरिंक्षे यतस्व पृथिव्या सम्भंव ब्रह्मवर्च्समंसि ब्रह्मवर्चसार्यं त्वा॥ (४)

उन्दन्ति समवंल्गत मधुपृचाँम्मातरो द्वाविर्शतिश्च॥————[१]

अपां ग्रहाँ-गृह्णात्येतद्वाव राज्यसूयं यदेते ग्रहाँः स्वौँऽग्निर्वंरुणस्वो राज्यसूर्यमग्निस्वश्चित्यस्ताभ्यांमेव सूयतेऽथों उभावेव लोकाविभ जंयित यश्चं राज्यसूर्येनेजानस्य यश्चाँग्निचित आपों भवन्त्यापो वा अग्नेर्भ्रातृंच्या यद्पौँऽग्नेर्धस्तांदुपदधांति भ्रातृंच्याभिभृत्यै भवंत्यात्मना पराँस्य भ्रातृंच्यो भवत्यमृतम् (५)

वा आपुस्तस्मांदुद्भिरवंतान्तम्भि विश्वन्ति नार्तिमार्च्छति सर्वमायुरिति यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेदान्नं वा आपः पृशव आपोऽन्नम्पृशवौऽन्नादः पंशुमान्भविति यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेद द्वादंश भवन्ति द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरेणैवास्मै (६)

अन्नमवं रुन्द्धे पात्राणि भवन्ति पात्रे वा अन्नमद्यते सयौँन्येवान्नमवं रुन्द्ध आ द्वांदशात्पुरुंषादन्नमृत्त्यथो पात्रान्न छिद्यते यस्यैता उपधीयन्ते य उं चैना एवं वेदं कुम्भाश्चं कुम्भीश्चं मिथुनानिं भवन्ति मिथुनस्य प्रजाँत्यै प्र प्रजयां पृशुभिर्मिथुनैर्जायते यस्यैता उपधीयन्ते य उं (७)

चैना एवं वेद शुग्वा अग्निः सौंऽध्वर्युं यजंमानं प्रजाः शुचार्पयित् यद्प उंप्दधांति शुचंमेवास्यं शमयित् नार्तिमार्च्छंत्यध्वर्युर्न यजंमानः शाम्यन्ति प्रजा यत्रैता उंपधीयन्तेऽपां वा एतानि हृदंयानि यदेता आपो यदेता अप उंपदधांति दिव्याभिरेवैनाः स॰ सृंजिति वर्षुकः पुर्जन्यः (८)

भ्वति यो वा पुतासामायतेनं क्लिप्तिं वेदायतेनवान्भवित कल्पेतेऽस्मा अनुसीतमुपे दधात्येतद्वा आसामायतेनमेषा क्लिप्तिं एवं वेदायतेनवान्भवित कल्पेतेऽस्मै द्वन्द्वमृन्या उपे षष्ठमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

दधाति चर्तस्रो मध्ये धृत्या अन्नं वा इष्टंका एतत्खलु वै साक्षादन्नं यदेष चरुर्यदेतं चरुर्मुपदधांति साक्षात् (९)

एवास्मा अन्नमवं रुन्धे मध्यत उपं दधाति मध्यत एवास्मा अन्नं दधाति तस्मान्मध्यतोऽन्नंमद्यते बार्हस्यत्यो भंवित ब्रह्म वे देवानाम्बृह्स्पितिर्ब्रह्मणेवास्मा अन्नमवं रुन्धे ब्रह्मवर्चसमंसि ब्रह्मवर्चसाय त्वेत्याह तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भंवित यस्यैष उपधीयते य उं चैनमेवं वेदं॥ (१०)

अमृतंमस्मे जायते यस्यैता उंपधीयन्ते य उं पूर्जन्यं उपदर्धाति साक्षाथ्सप्तचंत्वारि श्रच॥[२]

भूतेष्ट्रका उपं दधात्यत्रात्र् वै मृत्युर्जायते यत्रयत्रेव मृत्युर्जायते ततं एवैन्मवं यजते तस्मादिग्निचिथ्सर्वमायुरेति सर्वे ह्यस्य मृत्यवोऽवेष्टास्तस्मादिग्निचित्राभिचेरितवे प्रत्यगेनमभिचारः स्तृंणुते सूयते वा एष योऽग्निं चिनुते देवसुवामेतानिं ह्वी १षिं भवन्त्येतावंन्तो वै देवाना ५ स्वास्त एव (११)

मुख्त एवास्मां अन्नाद्यं दधात्यग्नेस्त्वा साम्राँज्येनाभि षिश्चामीत्यांहैष वा अग्नेः स्वस्तेनैवैनंम्भि षिश्चित्ति बृह्स्पतेंस्त्वा साम्राँज्येनाभि षिश्चामीत्यांह् ब्रह्म वे देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मणैवैनंम्भि षिश्चतीन्द्रंस्य त्वा साम्राँज्येनाभि षिश्चामीत्यांहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्टाद्दधात्येतत् (१३)

वै राज्सूयंस्य रूपं य एवं विद्वान्त्रिं चिनुत उभावेव लोकाव्भि जंयित यश्चं राज्सूयेनेजानस्य यश्चाँग्निचित् इन्द्रंस्य सुषुवाणस्यं दश्घेन्द्रियं वीर्यं परांपतृत्तद्देवाः सौँत्रामृण्या समंभरन्थ्सूयते वा एष यौंऽग्निं चिनुतेंऽग्निं चित्वा सौँत्रामृण्या यंजेतेन्द्रियमेव वीर्यर्थं सुम्भृत्यात्मन्यंत्ते॥ (१४)

त एवान्ववंस्रावयत्येतदष्टाचंत्वारि १शच॥

-[३]

सुजूरब्दोऽयाविभः सुजूरुषा अरुणीभिः सुजूः सूर्य एतंशेन सुजोषांवृश्विना द॰सोभिः

षष्ठमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

स्जूरग्निर्वैश्वान्र इडांभिर्घृतेन् स्वाहां संवथ्सरो वा अब्दो मासा अयांवा उषा अर्रुणी सूर्य् एतंश इमे अश्विनां संवथ्सरौंऽग्निर्वैश्वान्रः पृशव् इडां पृशवों घृत संवथ्सरम्पृशवोऽनु प्र जायन्ते संवथ्सरेणैवास्मै पश्न्म्र जनयित दर्भस्तम्बे जुहोति यत् (१५)

वा अस्या अमृतं यद्वीर्यं तद्दुर्भास्तस्मिञ्जहोति प्रैव जायतेऽन्नादो भवित यस्यैवं जुह्वंत्येता वै देवतां अग्नेः पुरस्ताद्भागास्ता एव प्रीणात्यथो चक्षुरेवाग्नेः पुरस्ताद्भातिं दधात्यनंन्थो भवित य एवं वेदापो वा इदमग्नें सिल्लमासीथ्स प्रजापंतिः पुष्करपूर्णे वार्तो भूतोऽलेलायथ्सः (१६)

प्रतिष्ठां नार्विन्दत स एतद्पां कुलायंमपश्यत्तस्मिन्नग्निमेचिनुत् तद्यमंभवृत्ततो वै स प्रत्यंतिष्ठद्याम्पुरस्तांदुपादंधात्तच्छिरोंऽभवृथ्सा प्राची दिग्यां दंक्षिण्त उपादंधाथ्स दक्षिणः पृक्षोंऽभवृथ्सा दंक्षिणा दिग्याम्पश्चादुपादंधात्तत्पुच्छंमभवृथ्सा प्रतीची दिग्यामुंत्तर्त उपादंधात् (१७)

स उत्तरः पृक्षोऽभवृथ्सोदींची दिग्यामुपरिष्टादुपादेधात्तत्पृष्टमंभवृथ्सोध्वा दिगियं वा अग्निः पश्चौष्टकस्तस्माद्यद्स्यां खनंन्त्यभीष्टंकां तृन्दन्त्यभि शर्कराष्ट्रं सर्वा वा इयं वयौभ्यो नक्तं दृशे दीप्यते तस्मादिमां वयार्रसि नक्तं नाध्यांसते य एवं विद्वानृग्निं चिनुते प्रत्येव (१८)

तिष्ठत्यभि दिशों जयत्याग्नेयो वै ब्राँह्मणस्तस्माँद्वाह्मणाय सर्वासु दिक्ष्वर्धुक्ड् स्वामेव तिद्दशमन्वेंत्यपां वा अग्निः कुलायन्तस्मादापोऽग्नि॰ हार्रुकाः स्वामेव तद्योनिम्प्र विंशन्ति॥ (१९)

यदंलेलायुथ्स उत्तर्त उपादंधादेव द्वात्रिर्श्शच॥———[४]

संव्थ्यरमुख्यंम्भृत्वा द्वितीयें संवथ्यर आँग्नेयमृष्टाकंपालं निर्वपेदैन्द्रमेकांदशकपालं वैश्वदेवं द्वादंशकपालम् बार्हस्पृत्यं चुरुं वैष्णुवं त्रिंकपालं तृतीयें संवथ्यरेऽभिजितां यजेत् यदृष्टाकंपालों भवंत्यृष्टाक्षरा गायृत्र्यांग्नेयं गायृत्रम्प्रातःसवनम् प्रातःसवनमेव तेनं दाधार गायृत्रं छन्दों यदेकांदशकपालों भवत्येकांदशाक्षरा त्रिष्टुगैन्द्रं त्रैष्टुंभम्माध्यंदिन्ष् सर्वन्ममाध्यंदिनमेव सर्वनं तेनं दाधार त्रिष्टुभम् (२०)

छन्दो यद्वादेशकपालो भवंति द्वादेशाक्षरा जर्गती वैश्वदेवं जार्गतं

तृतीयसवनन्तृंतीयसवनमेव तेनं दाधार् जगंतीं छन्दो यद्वांर्हस्पृत्यश्चरुभवंति ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मेव तेनं दाधार् यद्वैण्णविश्लेकपालो भवंति यज्ञो वै विष्णुंर्यज्ञमेव तेनं दाधार् यत्तृतीये संवथ्स्रेऽभिजिता यजंतेऽभिजित्यै यथ्संवथ्स्रमुख्यंम्ब्रिभर्तीममेव (२१)

तेनं लोक स्पृणोति यद्वितीयं संवथ्सरें ऽग्निं चिनुतें उन्तरिक्षमेव तेनं स्पृणोति यत्तृतीयं संवथ्सरे यजंतेऽमुमेव तेनं लोक स्पृणोत्येतं वै परं आद्वारः कक्षीवारं औशिजो वीतहंच्यः श्रायसस्रसदंस्यः पौरुकुथ्स्यः प्रजाकांमा अचिन्वत् ततो वै ते सहस्रश्यसहस्रम्पुत्रानंविन्दन्त प्रथंते प्रजयां पृशुभि्स्ताम्मात्रांमाप्नोति यां तेऽगंच्छुन् य एवं विद्वानेतमृग्निं चिनुते॥ (२२)

दाधार् त्रिष्टभमिममेवैवं चत्वारिं च॥------[५]

प्रजापंतिर्ग्निमंचिन्त् स क्षुरपंविर्भूत्वातिष्ठत्तं देवा बिभ्यंतो नोपायन्ते छन्दोभिरात्मानं छादियत्वोपायन्तच्छन्दंसां छन्दस्त्वं ब्रह्म वै छन्दार्शस् ब्रह्मण एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनङ्कार्ष्णी उपानहावुपं मुश्चते छन्दोभिरेवात्मानं छादियत्वाग्निमुपं चरत्यात्मनोऽहिर्श्सायै देविनिधिर्वा एष नि धीयते यद्ग्निः (२३)

अन्ये वा वै निधिमगुप्तं विन्दन्ति न वा प्रति प्र जांनात्युखामा क्रांमत्यात्मानंमेवाधिपां कुंरुते गुप्त्या अथो खल्वांहुर्नाक्रम्येति नैर्ऋत्युंखा यदाक्रामेक्रिर्ऋत्या आत्मान्मिषं दध्यात्तस्मान्नाक्रम्यां पुरुषशीर्षमुपं दधाति गुप्त्या अथो यथां ब्रूयादेतन्में गोपायेतिं तादृगेव तत् (२४)

प्रजापंतिर्वा अर्थर्वाग्निरेव दृध्यङ्कांथर्वणस्तस्येष्टंका अस्थान्येतः ह् वाव तद्दषिर्भ्यनूंवाचेन्द्रों दधीचो अस्थिभिरिति यदिष्टंकाभिर्ग्निं चिनोति सात्मानमेवाग्निं चिनते सात्मामुष्मिं ह्याँके भवति य एवं वेद् शरीरं वा एतद्ग्नेयंचित्यं आत्मा वैश्वानरो यचिते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सङ्स्कृत्यं (२५)

अभ्यारोहिति शरीरं वा एतद्यजंमानः सङ्स्कुंरुते यद्ग्निं चिनुते यिनेते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सङ्स्कृत्यात्मनाभ्यारोहिति तस्मात्तस्य नावं द्यन्ति जीवंत्रेव देवानप्येति वैश्वानयर्चा पुरीष्मुपं दधातीयं वा अग्निवैश्वानरस्तस्येषा चितिर्यत्पुरीषम्ग्निमेव वैश्वान्रं चिनुत एषा वा अग्नेः प्रिया तुनूर्यद्वैश्वानुरः प्रियामेवास्यं तुनुव्मवं रुन्द्वे॥ (२६)

अ्ग्निस्तथ्स् ड्रस्कृत्याग्नेर्दर्शं च॥————[६]

अग्नेर्वे दीक्षयां देवा विराजंमाप्नविन्त्स्रो रात्रींदीक्षितः स्यांत्रिपदां विराड्विराजंमाप्नोति षड्रात्रींदीक्षितः स्यात् षड्वा ऋतवंः संवथ्सरः संवथ्सरो विराड्विराजंमाप्नोति दश रात्रींदीक्षितः स्याद्दशांक्षरा विराड्विराजंमाप्नोति द्वादंश रात्रींदीक्षितः स्याद्दशांक्षरा विराड्विराजंमाप्नोति त्रयोंदश रात्रींदीक्षितः स्यात्रयोंदश (२७)

मासाः संवथ्सरः संवथ्सरो विराङ्किराजंमाप्नोति पश्चंदश् रात्रींदींक्षितः स्यात्पश्चंदश् वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमास्यशः संवथ्सर आण्यते संवथ्सरो विराङ्किराजंमाप्नोति सप्तदंश् रात्रींदींक्षितः स्याद्वादंश् मासाः पश्चर्तवः स संवथ्सरः संवथ्सरो विराङ्किराजंमाप्नोति चर्तुर्विरशतिर्ध रात्रींदींक्षितः स्याचर्तुर्विरशतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरो विराङ्किराजंमाप्नोति विरुशतुर् रात्रींदींक्षितः स्याचर्तुर्विरशतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरो विराङ्किराजंमाप्नोति विरुशतुर् रात्रींदींक्षितः स्यांत् (२८)

त्रिष्शदंक्षरा विराि्ट्टराजंमाप्रोति मासं दीक्षितः स्याद्यो मासः स संवथ्सरः संवथ्सरो विरािट्टराजंमाप्रोति चतुरों मासो दीक्षितः स्याँचतुरो वा एतम्मासो वसंवोऽविभक्स्ते पृथिवीमाजंयन्गायत्रीं छन्दोऽष्टौ क्द्रास्तें उन्तरिक्षमाजंयत्रिष्टभं छन्दो द्वादंशािदत्यास्ते दिवमाजंयअर्गतीं छन्दस्ततो वे ते व्यावृतंमगच्छुञ्छ्रैष्ठमं देवानाम् तस्माद्वादंश मासो भृत्वािग्नं चिन्वीत् द्वादंश् मासौः संवथ्सरः संवथ्सरोंऽग्निश्चित्यस्तस्यांहोरात्राणीष्टंका आप्तेष्टंकमेनं चिनुतेऽथौं व्यावृतंमेव गंच्छति श्रैष्ठमं समानानांम्॥ (२९)

स्यात्रयोदश त्रिर्शत्र रात्रींर्दीक्षितः स्याद्वै तेंऽष्टाविर्शतिश्च॥————[७]

सुवर्गाय वा एष लोकायं चीयते यद्ग्निस्तं यन्नान्वारोहें ध्सुवर्गाक्षोकाद्यजंमानो हीयेत पृथिवीमार्क्रमिषं प्राणो मा मा हांसीदन्तिरिक्षमार्क्रमिषं प्रजा मा मा हांसीदिवमार्क्रमिष् स्वंरगन्मेत्यांहैष वा अग्नेरंन्वारोहस्ते नैवेनम्न्वारोहित सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्ये यत्पक्षसंम्मिताम्मिनुयात् (३०)

कनीया स्याद्वेदिसम्मिताम्मिनोति ज्याया समेव यंज्ञकृतुमुपैति नास्यात्मनः पापीयसी प्रजा भवति साहुस्रं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः सहस्रंसम्मितो वा अयं लोक इममेव लोकम्भि जंयति द्विषांहस्रं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानो द्विषांहस्रुं वा अन्तरिक्षम्नतिरिक्षमेवाभि जंयित त्रिषांहस्रं चिन्वीत तृतीयं चिन्वानः (३१)

त्रिषांहस्रो वा असौ लोकोंऽमुमेव लोकम्भि जंयित जानुद्धं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानो गांयत्रियैवेमं लोकम्भ्यारोहित नाभिद्धं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रिष्टभैवान्तरिक्षम्भ्यारोहित ग्रीवद्धं चिन्वीत तृतीयं चिन्वानो जगंत्यैवामुं लोकम्भ्यारोहित नाग्निं चित्वा रामामुपेयादयोनौ रेतों धास्यामीति न द्वितीयं चित्वान्यस्य स्त्रियम् (३२)

उपेयान्न तृतीर्यं चित्वा कां चनोपेयाद्रेतो वा एतन्नि धंत्ते यद्ग्निं चिनुते यद्ंपेयाद्रेतंसा व्यृध्येताथो खल्वांहुरप्रजस्यं तद्यन्नोपेयादिति यद्रेतःसिचांवुपदधाति ते एव यजंमानस्य रेतों बिभृतस्तस्मादुपेयाद्रेतसोऽस्कंन्दाय त्रीणि वाव रेतार्श्स पिता पुत्रः पौत्रंः (३३)

यद्वे रेतःसिचांबुपद्ध्याद्रेतौंऽस्य विच्छिंन्द्यातिस्र उपं दधाति रेतंसः सन्तंत्या इयं वाव प्रथमा रेतःसिग्वाग्वा इयं तस्मात्पश्यंन्तीमाम्पश्यंन्ति वाचं वदंन्तीमृन्तरिक्षं द्वितीयाँ प्राणो वा अन्तरिक्षं तस्मान्नान्तरिक्षम्पश्यंन्ति न प्राणम्सौ तृतीया चक्षुर्वा असौ तस्मात्पश्यंन्त्यमूम्पश्यंन्ति चक्षुर्यज्ञंषेमां चं (३४)

अमूं चोपं दधाति मनंसा मध्यमामेषां लोकानां क्रस्या अथौं प्राणानांमिष्टो यज्ञो भृगुंभिराशीर्दा वसुंभिस्तस्यं त इष्टस्यं बीतस्य द्रविणेह भंक्षीयेत्यांह स्तुतशुस्त्रे एवैतेनं दुहे पिता मांतिरश्वाच्छिंद्रा पदा धा अच्छिंद्रा उशिजः पदानुं तक्षुः सोमों विश्वविन्नेता नेषद्वहस्पतिरुक्थामदानिं शश्सिषदित्यांहैतद्वा अग्नेरुक्थन्तेनैवैन्मनुं शश्सित॥ (३५)

मिनुयात्तृतीयं चिन्वानस्त्रियं पौत्रेश्च वै सप्तदंश च॥————[८]

सूयते वा एषौँ ऽग्नीनां य उखायाँ भ्रियते यद्धः सादयेद्गर्भाः प्रपाद्काः स्युरथो यथां स्वात्प्रत्यवरोहंति तादगेव तदांसन्दी सादयित गर्भाणां धृत्या अप्रपादायाथों स्वमेवैन करोति गर्भो वा एष यदुख्यो योनिः शिक्यं यच्छिक्यांदुखां निरूहेद्योनेर्गर्भं निर्हण्याथ्यडुंद्यामः शिक्यंम्भवति षोढाविहितो वै (३६)

पुरुष आत्मा च शिरंश्च चृत्वार्यङ्गांन्यात्मन्नेवैनंम्बिभर्ति प्रजापंतिर्वा एष यद्ग्निस्तस्योखा चोलूखंलं च स्तनौ तावंस्य प्रजा उपं जीवन्ति यदुखां चोलूखंलं चोपदर्धाति ताभ्यामेव यर्जमानोऽमुष्मिं ह्योँकैंऽग्निं दुंहे संवथ्सरो वा एष यद्ग्निस्तस्यं त्रेधाविहिता इंष्टकाः प्राजापुत्या वैष्णुवीः (३७)

वैश्वकर्मणीरंहोरात्राण्येवास्यं प्राजापृत्या यदुख्यंम्बिभितं प्राजापृत्या एव तदुपं धत्ते यथ्समिधं आदधांति वैष्णवा वै वनस्पतंयो वैष्णवीरेव तदुपं धत्ते यदिष्टंकाभिर्गितं चिनोतीयं वै विश्वकर्मा वैश्वकर्मणीरेव तदुपं धत्ते तस्मांदाहुस्त्रिवृद्ग्निरिति तं वा एतं यजमान एव चिन्वीत् यदंस्यान्यश्चिनुयाद्यत्तं दक्षिणाभिर्न राध्येद्ग्निमंस्य वृञ्जीत् यौंऽस्याग्निं चिनुयात्तं दक्षिणाभी राध्येदग्निमंव तथ्स्पृंणोति॥ (३८)

षोढाविहितो वै वैष्ण्वीर्न्यो विर्ष्मतिश्चं॥———[१]

प्रजापंतिर्ग्निमंचिनुतर्तुभिः संवथ्सरं वंसन्तेनैवास्यं पूर्वार्धमंचिनुत ग्रीष्मेण् दक्षिणम्पक्षं वर्षाभिः पुच्छरं श्ररदोत्तंरम्पक्षर हेमन्तेन मध्यं ब्रह्मणा वा अस्य तत्पूर्वार्धमंचिनुत क्षेत्रण् दक्षिणम्पक्षम्पश्चभिः पुच्छं विशोत्तंरम्पक्षमाशया मध्यं य एवं विद्वानृग्निं चिनुत ऋतुभिरवेनं चिनुतेऽथों एतदेव सर्वमवं (३९)

रुन्द्धे शृण्वन्त्येनमृग्निं चिंक्यानमत्त्यन्न् रोचंत इयं वाव प्रंथमा चितिरोषंधयो वनस्पतंयः पुरीषम्न्तरिक्षं द्वितीया वयारंसि पुरीषम्सौ तृतीया नक्षंत्राणि पुरीषं यज्ञश्चंतुर्थी दक्षिणा पुरीषं यज्ञमानः पश्चमी प्रजा पुरीषं यत्रिचितीकं चिन्वीत यज्ञं दक्षिणामात्मानं प्रजाम्न्तरियात्तस्मात्पश्चंचितीकश्चेत्व्यं एतदेव सर्वर्धं स्पृणोति यत्तिस्रश्चितंयः (४०)

त्रिवृद्धीग्नर्यद्वे द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्ये पश्च चितंयो भवन्ति पाङ्कः पुरुष आत्मानंमेव स्पृणोति पश्च चितंयो भवन्ति पश्चभिः पुरीषेरभ्यूहिति दश् सम्पद्यन्ते दशाँक्षरो वै पुरुषो यावांनेव पुरुषस्त स्पृणोत्यथो दशाँक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति संवथ्सरो वै षष्ठी चितिर्ऋतवः पुरीष् पद्घतेयो भवन्ति षद्वरीषाणि द्वादंश् सम्पद्यन्ते द्वादंश् मासाँः संवथ्सरः संवथ्सर एव प्रति तिष्ठति॥ (४१)

अव् चितंयः पुरीषं पश्चंदश च॥-----[१०]

रोहिंतो धूम्ररोहितः कुर्कन्धुरोहित्स्ते प्रांजापृत्या बुभुरंरुणबंभुः शुकंबभुस्ते रौद्राः श्येतंः श्येताक्षः श्येतंग्रीवस्ते पिंतृदेवृत्यांस्तिम्नः कृष्णा वृशा वांरुण्यंस्तिम्नः श्वेता वृशाः सौर्यो मैत्राबार्हस्पत्या धूम्रलंलामास्तूपराः॥ (४२)

-[88]

पृश्चिंस्तिर्श्वीनंपृश्चिरूर्ध्वपृंश्चिस्ते मांठ्ताः फुल्गूर्लोहितोणीं बंलुक्षी ताः सांरस्वत्यंः पृषंती स्थूलपृंषती क्षुद्रपृंषती ता वैश्वदेव्यंस्तिस्रः श्यामा वृशाः पौष्णियंस्तिस्रो रोहिंणीर्वशा मैत्रियं ऐन्द्राबार्हस्पत्या अरुणलंलामास्तूपराः॥ (४३)

शितिबाहुरन्यतंःशितिबाहुः सम्नतिशितिबाहुस्त ऐन्द्रवायवाः शितिरन्ध्रोऽन्यतंःशितिरन्ध्रः सम्नतिशितिरन्ध्रस्ते मैन्त्रावरुणाः शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मृणिवालस्त आश्विनास्तिस्रः शिल्पा वृशा वैश्वदेव्यस्तिस्रः श्येनीः परमेष्ठिने सोमापौष्णाः श्यामलेलामास्तूप्राः॥ (४४)

-[१३]

उन्नत ऋषभो वांमनस्त ऐँन्द्रावरुणाः शितिंककुच्छितिपृष्ठः शितिंभस्त ऐँन्द्राबार्हस्पत्याः शितिपाच्छित्योष्ठः शितिभ्रुस्त ऐँन्द्रावैष्णवास्तिस्रः सि्ध्मा वृशा वैश्वकर्मृण्यंस्तिस्रो धात्रे पृषोदरा ऐँन्द्रापौष्णाः श्येतंललामास्तूपराः॥ (४५)

शितिबाहुरुं त्रतः पश्चंवि श्यातिः पश्चंवि श्यातिः॥______

[88]

कुर्णास्रयों यामाः सौम्यास्रयः श्वितिङ्गा अग्नये यविष्ठाय त्रयो नकुलास्तिस्रो रोहिणी्रस्यव्यस्ता वसूनान्तिस्रोऽरुणा दित्यौद्यस्ता रुद्राणार्थ सोमैन्द्रा बुभुलेलामास्तूपराः॥ (४६)

कुर्णास्त्रयोवि १ शतिः॥______[१५]

शुण्ठास्रयों वैष्णवा अंधीलोधकर्णास्रयो विष्णंव उरुक्रमायं लफ्सुदिनस्रयो विष्णंव उरुगायाय पश्चांवीस्तिस्र आंदित्यानांत्रिवथ्सास्तिस्रोऽङ्गिरसामैन्द्रावैष्णवा गौरलंलामास्तूपराः॥ (४७)

शुण्ठा विर्रश्वतिः॥-----[१६]

इन्द्रांय राज्ञे त्रयंः शितिपृष्ठा इन्द्रांयाधिराजाय त्रयः शितिंककुद् इन्द्रांय स्वराज्ञे त्रयः शितिंभसदस्तिस्रस्तुंयींहाः साध्यानांन्तिस्रः पष्ठौह्यों विश्वेषां देवानांमाग्नेन्द्राः

| · · · · · · · · · · · · · · · · · · · | |
|---|---------------|
| कृष्णलेलामास्तूप्राः॥ (४८) | |
| इन्द्रांय राज्ञे द्वाविर्श्शतिः॥ | - [१७] |
| अदित्यै त्रयों रोहितैता इंन्द्राण्यै त्रयंः कृष्णैताः कुह्वै त्रयोंऽरुणैतास्तिस्रो राकायै त्रयोंऽनुङ्गाहंः सिनीवाल्या आंग्नावैष्णवा रोहिंतललामास्तूप्राः॥ (४९) | धेनवे |
| अदिंत्या अृष्टादंश॥ | - [१८] |
| सौम्यास्रयः पि्शङ्गाः सोमाय राज्ञे त्रयः सारङ्गाः पार्जुन्या नभींरूपास्ति मुलुहा इन्द्राण्ये तिस्रो मेुष्यं आदित्या द्यांवापृथिव्यां मालङ्गांस्तूपराः॥ (५०) | स्रोंऽज |
| सौम्या एकान्नवि र्शितः॥ | - [१९] |
| वा्रुणास्त्रयंः कृष्णलेलामा वर्रुणाय राज्ञे त्रयो रोहिंतोललामा व रिशादंसे त्रयोऽरुणलेलामाः शिल्पास्त्रयो वैश्वदेवास्त्रयः पृश्जेयः सर्वदेवत्या ऐन् | |
| श्येतंललामास्तूप्राः॥ (५१) | |
| वा्रुणा विर्रेश्वतिः॥ | - [२०] |
| सोमाय स्वराज्ञेंऽनोवा्हावंनुङ्घाहांविन्द्राग्निभ्यांमोजोदाभ्यामुष्टांराविन्द्राग्निभ्यां बल् सीरवा्हाववी द्वे धेनू भौमी दिग्भ्यो वर्डबे द्वे धेनू भौमी वैराजी पुरुषी द्वे धेन् | |
| | |

वायवं आरोहणवाहावंनुङ्गाहौं वारुणी कृष्णे वृशे अंराुड्यौं दिव्यावृष्भौ पंरिमुरौ॥ (५२)

सोमाय स्वराज्ञे चतुंस्त्रि १शत्॥ 🗕

एकांदश प्रातर्ग्व्याः पुशव आ लेभ्यन्ते छगुलः कुल्मार्षः किकिदीविर्विदीगयस्ते त्वाष्ट्राः सौरीर्नवं श्वेता वृशा अनूबन्ध्यां भवन्त्याग्नेय ऐन्द्राग्न आश्विनस्ते विशालयूप आ र्लभ्यन्ते॥ (५३)

एकांदश पश्चंवि श्शतिः॥ **『**[२२]

पिशङ्गास्त्रयो वासन्ताः सारङ्गास्त्रयो ग्रैष्माः पृषंन्तस्त्रयो वार्षिकाः पृष्ठनंयस्त्रयंः शारदाः

पृंश्विम् कथास्त्रयो हैर्मन्तिका अवलिप्तास्त्रयः शैशिराः संवथ्सराय निवंक्षसः (५४)

यो वा अयंथादेवत्न्त्वामंग्र् इन्द्रंस्य चित्तिं यथा वै वयो वै यदाकूंता्द्यास्तें अग्र्रे मियं गृह्णामि प्रजापंतिः सौंऽस्माध्स्तेगान् वार्जं कूर्मान् योक्रं मित्रावरुंणा्विन्द्रंस्य पूष्ण ओजं आन्न्दमहंर्ग्नेर्वायोः पन्थाङ्कमैद्यौंस्तेऽग्निः पृश्र्रांसीध्यद्विर्श्वतिः॥—————[२४]यो वा एवाह्ंतिमभवन्पथिभिरवरुध्यांनन्दमष्टौपंश्चाशत्॥58॥ यो वा अयंथादेवतं यद्यंवजिद्यंसि॥

॥सप्तमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां पञ्चमकाण्डे सप्तमः प्रश्नः॥

यो वा अयंथादेवतम्भिं चिनुत आ देवताँभ्यो वृथ्यते पापीयान्भवित यो यंथादेवतं न देवताँभ्य आ वृंथ्यते वसीयान्भवत्याभ्रेय्या गांयत्रिया प्रंथमां चितिम्भि मृंशेत्रिष्टभाँ द्वितीयां जगत्या तृतीयांमनुष्टभां चतुर्थीम्पङ्क्ष्या पंश्वमीं यंथादेवतमेवाभ्रिं चिनुते न देवताँभ्य आ वृंथ्यते वसीयान्भवृतीडांये वा एषा विभक्तिः पृशव इडां पृश्भिरेनम् (१)

चिनुते यो वै प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याग्निं चिनोति नार्तिमार्च्छ्रत्यश्वांव्भितंस्तिष्ठतां कृष्ण उत्तर्तः श्वेतो दक्षिण्स्तावालभ्येष्टंका उपं दथ्यादेतद्वै प्रजापंत रूपम्प्रांजापृत्योऽश्वंः साक्षादेव प्रजापंतये प्रतिप्रोच्याग्निं चिनोति नार्तिमार्च्छंत्येतद्वा अह्रों रूपं यच्च्वेतोऽश्वो रात्रियै कृष्ण एतदह्नंः (२)

रूपं यदिष्टंका रात्रिये पुरीष्मिष्टंका उपधास्यञ्खेतमश्चंम्भि मृंशेत्पुरीषमुपधास्यन्कृष्णमंहोराः चिनुते हिरण्यपात्रम्मधौः पूर्णं दंदाति मध्व्योऽसानीतिं सौर्या चित्रवत्यावेंक्षते चित्रमेव भंवित मध्यन्दिनेऽश्वमवं घ्रापयत्यसौ वा आंदित्य इन्द्रं एष प्रजापंतिः प्राजापत्योऽश्वस्तमेव साक्षादंभोति॥ (३)

पुनमेतदह्योऽष्टाचेत्वारि १ शच॥-----[१]

त्वामंग्ने वृष्मं चेकितान्म्पुन्युंवानञ्जनयंत्रुपागाँम्। अस्थूरि णो गार्हंपत्यानि सन्तु तिग्मेनं नो ब्रह्मणा स॰ शिंशाधि। पृशवो वा एते यदिष्टंकाश्चित्यांचित्यामृष्ममुपं दधाति मिथुनमेवास्य तद्यज्ञे केरोति प्रजनेनाय तस्मौद्यूथेयूंथ ऋष्भः। संवथ्स्रस्यं प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपासंते। प्रजार सुवीरांं कृत्वा विश्वमायुर्व्याश्ववत्। प्राजापत्याम् (४)

पुतामुपं दधातीयं वावैषैकाँष्ट्रका यदेवैकाँष्ट्रकायामन्नं क्रियते तदेवैतयावं रुन्द्व एषा वै प्रजापतेः कामदुघा तयैव यजमानोऽमुष्मिश्लाँकैंऽग्निं दुंहे येनं देवा ज्योतिषोध्वा उदायन् येनांदित्या वसंवो येनं रुद्राः। येनाङ्गिरसो महिमानमानृशुस्तेनैतु यजमानः स्वस्ति। सुवर्गाय वा एष लोकायं (५)

चीयते यद्ग्निर्येनं देवा ज्योतिषोध्वा उदायन्नित्युख्युष् सिमन्द्व इष्टंका एवैता उपं धत्ते वानस्पत्याः सुंवर्गस्यं लोकस्य समष्टेमे शतायुंधाय शतवींर्याय शतोतंयेऽभिमातिषाहैं। शतं यो नः शरदो अजीतानिन्द्रों नेषदितं दुरितानि विश्वां। ये चत्वारः पथयों देवयानां अन्तरा द्यावांपृथिवी वियन्ति। तेषां यो अज्यांनिमजीतिमा वहात्तस्मैं नो देवाः (६)

परिं दत्तेह सर्वे। ग्रीष्मो हेम्न्त उत नो वस्न्तः श्ररह्वर्षाः सुंवितं नो अस्त्। तेषांमृत्ना श्रतशांरदानां निवात एषामभये स्याम। इदुव्ध्सरायं परिवध्सरायं संवध्सरायं कृण्ता बृहन्नमः। तेषां व्यथ सुंमतौ युज्ञियांनां ज्योगजीता अहंताः स्याम। भृद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयांवसेन् समंशीमहि त्वा। स नो मयोभूः पितो (७)

आ विशस्त शं तोकायं तनुवें स्योनः। अज्यांनीरेता उपं दधात्येता वे देवता अपंराजितास्ता एव प्र विशति नैव जीयते ब्रह्मवादिनों वदन्ति यदर्धमासा मासां ऋतवंः संवथ्सर ओषंधीः पचन्त्यथ् कस्मांदन्याभ्यों देवताभ्य आग्रयणं निरुप्यत् इत्येता हि तद्देवतां उदजंयन् यदृतुभ्यों निर्वपेद्देवताभ्यः समदं दध्यादाग्रयणं निरुप्येता आहुंतीर्जुहोत्यर्धमासानेव मासांनृत्नथ्संवथ्सरम्प्रीणाति न देवताभ्यः समदंन्दधाति भृद्रान्नः श्रेयः समनेष्ट देवा इत्यांह हुताद्यांय यजमानस्यापंराभावाय॥ (८)

प्राजापुत्याल्लाँकार्य देवाः पितो दध्यादाग्रयणं पश्चेवि २ शतिश्च॥————[२]

इन्द्रंस्य वज्रोऽिस वार्त्रघ्नस्तनूपा नः प्रतिस्पृशः। यो नः पुरस्तौदक्षिणृतः पृश्चादुंत्तर्तौ-ऽघायुरंभिदासंत्येत सोऽश्मानमृच्छतु। देवासुराः संयंत्ता आसन्तेऽसुरा दिग्भ्य आबाधन्त् तां देवा इष्वां च वज्रेण चापानुदन्त यद्वज्रिणीरुपृदधातीष्वां चैव तद्वज्रेण च यजंमानो भ्रातृंच्यानपं नुदते दिक्षूपं (९) सप्तमः प्रश्नः (काण्डम् ५)

द्धाति देवपुरा एवैतास्तंनूपानीः पर्यृहतेऽग्नांविष्णू स्जोषंसेमा वंर्धन्तु वां गिरं। द्युम्नैर्वाजेभिरा गंतम्। ब्रह्मवादिनों वदन्ति यन्न देवतायै जुह्बत्यथं किन्देवत्यां वसोधरित्यग्निर्वसुस्तस्यैषा धारा विष्णुर्वसुस्तस्यैषा धारांग्नावैष्णव्यर्चा वसोधर्रां जुहोति भागधेर्येनैवैनौ समर्धयत्यथों एताम् (१०)

पुवाहुंतिमायतंनवतीं करोति यत्कांम एनां जुहोति तदेवावं रुन्धे रुद्रो वा एष यद्ग्निस्तस्यैते तुनुवौं घोरान्या शिवान्या यच्छंतरुद्रीयं जुहोति यैवास्यं घोरा तुनूस्तां तेनं शमयति यद्वसोर्धारां जुहोति यैवास्यं शिवा तुनूस्तां तेनं प्रीणाति यो वै वसोर्धारांये (११)

प्रतिष्ठां वेद् प्रत्येव तिष्ठति यदाज्यंमुच्छिष्यंत तस्मिन्ब्रह्मौद्नम्पंचेत्तम्ब्रांह्मणाश्चत्वारः प्राश्त्रीयरेष वा अग्निर्वेश्वान्रो यद्वाँह्मण एषा खलु वा अग्नेः प्रिया तन्त्रयद्वैश्वान्रः प्रियायांमेवेनां तनुवां प्रति ष्ठापयति चतंस्रो धेनूर्दंद्यात्ताभिरेव यजमानोऽमुष्मिं ह्याँकैंऽग्निं दुंहै॥ (१२)

उपैतान्धारांयै षद्धंत्वारि श्रच॥-----

■[>]

चित्तिं आहोम् मनंसा घृतेनेत्याहादाँभ्या वै नामैषाहुंतिर्वेश्वकर्मणी नैनं चिक्यानम्आतृंव्यो दभ्रोत्यथों देवतां एवावं रुन्द्धेऽग्रे तम्द्येतिं पङ्ग्या जुंहोति पङ्ग्याहुंत्या यज्ञमुखमारंभते सप्त ते अग्रे समिधः सप्त जिह्वा इत्याह् होत्रां एवावं रुन्द्धेऽग्निर्देवेभ्योऽपाँकामद्भाग्धेयम् (१३)

ड्रच्छमानस्तस्मा एतद्भांगधेयम्प्रायंच्छन्नेतद्वा अग्नेरिग्निहोत्रमेतर्हि खलु वा एष जातो यर्हि सर्विश्वेतो जातायैवास्मा अन्नमिपं दधाति स एनम्प्रीतः प्रींणाति वसीयान्भवित ब्रह्मवादिनों वदन्ति यदेष गार्हंपत्यश्चीयतेऽथ क्रांस्याहवनीय इत्यसावादित्य इतिं ब्रूयादेतस्मिन् हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वंति (१४)

य एवं विद्वान्त्रिं चिनुते साक्षादेव देवतां ऋभ्रोत्यग्नें यशस्विन् यशसेममप्येन्द्रांवतीमपंचितीमिहा वह। अयम्मूर्धा पंरमेष्ठी सुवर्चाः समानानांमुत्तमश्लोको अस्तु। भृद्रम्पश्यंन्त उपं सेदुरग्ने तपौ दीक्षामृषयः सुवर्विदः। ततः क्षुत्रम्बलुमोर्जश्च जातं तद्समै देवा अभि सं नमन्तु। धाता विधाता पंरमा (१५)

उत सुन्दक्य्रजापंतिः परमेष्ठी विराजां। स्तोमाश्छन्दारंसि निविदों म आहुरेतस्मैं राष्ट्रमुभि सं नेमाम। अभ्यावंर्तध्वमुप् मेतं साकमयर शास्ताधिपतिर्वो अस्तु। अस्य विज्ञानमनु स॰ रंभध्विममम्पश्चादनुं जीवाथ् सर्वै। राष्ट्रभृतं एता उपं दधात्येषा वा अग्नेश्चितीं राष्ट्रभृत्तयैवास्मित्राष्ट्रं दंधाति राष्ट्रमेव भविति नास्मान्नाष्ट्रम्भ्रंशते॥ (१६)

भागधेय अहंति परमा राष्ट्रं दंधाति सप्त चं॥_____[४]

यथा वै पुत्रो जातो भ्रियतं एवं वा एष भ्रियते यस्याभ्रिरुख्यं उद्वायंति यन्निर्म्न्थ्यं कुर्याद्विच्छिंन्द्याद्भातृंव्यमस्मै जनयेथ्स एव पुनः प्रीध्यः स्वादेवैनं योनैंर्जनयित नास्मै भ्रातृंव्यं जनयित तमो वा एतं गृंह्णाति यस्याभ्रिरुख्यं उद्वायंति मृत्युस्तमः कृष्णं वासः कृष्णा धेनुर्दक्षिणा तमंसा (१७)

पुव तमों मृत्युमपं हते हिरंण्यं ददाति ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिषेव तमोऽपं ह्तेऽथो तेजो वै हिरंण्यन्तेजं पुवात्मन्धंते सुवर्न घुर्मः स्वाहा सुवर्नार्कः स्वाहा सुवर्न शुकः स्वाहा सुवर्न ज्योतिः स्वाहा सुवर्न सूर्यः स्वाहार्को वा एष यद्ग्रिर्सावादित्यः (१८)

अश्वमेधो यदेता आहुंतीर्जुहोत्यंर्काश्वमेधयोरेव ज्योती १पि सं दंधात्येष ह् त्वा अंर्काश्वमेधी यस्यैतद्ग्रौ क्रियत् आपो वा इदमग्रे सिल्लमांसीय्स एतां प्रजापंतिः प्रथमां चितिमपश्यत्तामुपांधत्त् तदियमंभवृत्तं विश्वकंमांब्रवीदुप् त्वायानीति नेह लोकौंऽस्तीतिं (१९)

अब्रबीथ्स एतां द्वितीयां चितिमपश्यत्तामुपांधत्त तद्न्तरिक्षमभव्थ्स यज्ञः प्रजापंतिमब्रबीदुप् त्वायानीति नेह लोकौंऽस्तीत्यंब्रबीथ्स विश्वकंर्माणमब्रबीदुप् त्वायानीति केनं मोपैष्यसीति दिश्यांभिरित्यंब्रबीत्तन्दिश्यांभिरुपैत्ता उपांधत्त ता दिशः (२०)

अभवन्थ्स पंरमेष्ठी प्रजापंतिमब्रवीदुप त्वायानीति नेह लोकोंऽस्तीत्यंब्रवीथ्स विश्वकंर्माणं च यज्ञं चाँब्रवीदुपं वामायानीति नेह लोकोंऽस्तीत्यंब्र्ताष्ट्र स एतां तृतीयां चितिंमपश्यत्तामुपांधत्त तदुसावंभवथ्स आंदित्यः प्रजापंतिमब्रवीदुपं त्वा (२१)

आयानीति नेह लोकों ऽस्तीत्यंब्रवीथ्स विश्वकंर्माणं च यज्ञं चाँब्रवीदुपं वामायानीति नेह लोकों ऽस्तीत्यंब्र्ता र्स्य पंरमेष्ठिनंमब्रवीदुप् त्वायानीति केनं मोपेष्यसीतिं लोकं पृणयेत्यंब्रवीत्तं लोकं पृणयोपेत्तस्मादयांतयाम्री लोकं पृणाऽयांतयामा ह्यसौ (२२)

आदित्यस्तानृषंयोऽब्रुवन्नुपं व आयामेति केनं न उपैष्यथेति भूम्नेत्यंब्रुवन्तां द्वाभ्यां चितींभ्यामुपायन्थ्स पश्चंचितीकः समंपद्यत् य एवं विद्वानृप्तिं चिनुते भूयानेव भंवत्यभीमाश्लाँकाञ्जयति विदुरेंनं देवा अथो एतासामेव देवतांना ससायुंज्यं गच्छति॥ (२३)

तमंसाऽऽदित्यौंऽस्तीति दिशं आदित्यः प्रजापंतिमब्रवीदुपं त्वाऽसौ पश्चंचत्वारि श्रच॥ 🗕 [५]

वयो वा अग्निर्यदंग्निचित्पक्षिणौं ऽश्जीयात्तमेवाग्निमंद्यादार्तिमार्च्छेंथ्संवथ्स्रं व्रतं चेरथ्संवथ्स्रः हि व्रतं नाति पृश्चवं एष यद्ग्निर्हिनस्ति खलु वै तम्पृश्चर्य एंनम्पुरस्तौत्प्रत्यश्चम्पुचरंति तस्मौत्पृक्षात्प्राङ्गंपूचर्यं आत्मनोऽहि ५सायै तेजोंऽसि तेजों मे यच्छ पृथिवीं यंच्छ (२४)

पृथिब्यै मां पाहि ज्योतिरसि ज्योतिर्मे यच्छान्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षान्मा पाहि सुवंरसि सुवंर्मे यच्छ दिवे यच्छ दिवो मां पाहीत्यांहैताभिर्वा इमे लोका विधृंता यदेता उपदर्धांत्येषां लोकानां विधृंत्ये स्वयमातृण्णा उपधार्य हिरण्येष्टका उपं दधातीमे वै लोका स्वयमातृण्णा ज्योतिरहिरण्यं यथ्स्वयमातृण्णा उपधार्य (२५)

हिर्ण्येष्ट्रका उंप्दर्धातीमानेवैताभिर्लोकां ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथी एताभिरेवास्मां इमे लोकाः प्र भाँन्ति यास्ते अग्ने सूर्ये रुचं उद्यतो दिवंमातन्वन्तिं रिष्मिभिः। ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि। या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचंः। इन्द्रांग्री ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते। रुचं नो धेहि (२६)

ब्राह्मणेषु रुच् राजंसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु श्रूद्रेषु मियं धेहि रुचा रुचम्। द्वेधा वा अग्निं चिक्यानस्य यशं इन्द्रियं गंच्छत्यग्निं वां चितमीजानं वा यदेता आहंतीर्जुहोत्यात्मन्नेव यशं इन्द्रियं धंत्त ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोर्योऽग्निं चिन्वन्नधिक्रामंति तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दमान इति वारुण्यर्चा (२७)

जुहुयाच्छान्तिरेवेषाभ्रेर्ग्तिरात्मनों ह्विष्कृंतो वा एष यौंऽभ्रिं चिनुते यथा वे ह्विः स्कन्दंत्येवं वा एष स्कन्दति यौंऽभ्रिं चित्वा स्नियंमुपैतिं मैत्रावरुण्यामिक्षया यजेत मैत्रावरुणतांमेवोपैत्यात्मनोऽस्कन्दाय यो वा अभ्रिमृतुस्थां वेदुर्तुर्ऋतुरस्मै कल्पमान एति प्रत्येव तिष्ठति संवथ्सरो वा अभ्रिः (२८)

ऋतुस्थास्तस्यं वसंन्तः शिरौं ग्रीष्मो दक्षिणः पृक्षो वृर्षाः पुच्छरं शुरदुत्तंरः पृक्षो हेमन्तो मध्यम्पूर्वपृक्षाश्चित्तयोऽपरपृक्षाः पुरीषमहोरात्राणीष्टंका एष वा अग्निर्ऋतुस्था य एवं वेदुर्तुर्ऋतुरस्मे कर्त्पमान एति प्रत्येव तिष्ठति प्रजापंतिर्वा एतं ज्येष्ठ्यंकामो न्यंधत्त् ततो वै स ज्यैष्ठांमगच्छ्दा एवं विद्वानुग्निं चिन्ते ज्यैष्ठांमेव गंच्छति॥ (२९)

पृथिवीं यंच्छ् यथ्स्वंयमातृण्णा उंप्धायं धेह्यूचाग्निश्चिनुते त्रीणिं च॥———[६]

यदार्कूताथ्समसुंस्रोद्ध्दो वा मनंसो वा सम्भृंतं चक्षुंषो वा। तमनु प्रेहिं सुकृतस्यं लोकं यत्रर्षयः प्रथम्जा ये पुंराणाः। एतः संधस्थ परिं ते ददामि यमावहाँच्छेवधिं जातवेदाः। अन्वागन्ता युज्ञपंतिर्वो अत्र तः समं जानीत पर्मे व्योमन्न्। जानीतादेनं पर्मे व्योमन्देवाः सधस्था विद रूपमंस्य। यदागच्छांत् (३०)

पृथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृंणुतादाविरंस्मै। सम्प्र च्यंवध्वमनु सम्प्र याताग्नें पृथो देवयानौन्कृणुध्वम्। अस्मिन्थस्थस्थे अध्युत्तंरस्मिन्विश्वं देवा यर्जमानश्च सीदत। प्रस्त्रेणं परि्धिनौ स्रुचा वेद्यां च बुर्हिषौ। ऋचेमं युज्ञं नौ वह् सुवंदेवेषु गन्तंवे। यदिष्टं यत्पंरादानं यद्दतं या च दक्षिणा। तत् (३१)

अग्निवैश्वकर्मणः सुर्वेद्वेषेषु नो दधत्। येनां सहस्रं वहंसि येनांग्ने सर्ववेद्सम्। तेनेमं यज्ञं नों वह् सुर्वेद्वेषेषु गन्तेव। येनांग्ने दिक्षणा युक्ता यज्ञं वहंन्त्यृत्विजः। तेनेमं यज्ञं नों वह् सुर्वेद्वेषु गन्तेव। येनांग्ने सुकृतः पथा मधोर्धारां व्यान्शः। तेनेमं यज्ञं नों वह् सुर्वेद्वेषु गन्तेव। यत्र धारा अनंपेता मधौर्धृतस्यं च याः। तद्ग्निवैश्वकर्मणः सुर्वेद्वेषेषु नो दधत्॥ (३२)

आगच्छात्तद्यांन्शुस्तेनेमं युज्ञं नों वहु सुवर्देवेषु गन्तेवे चतुर्दश च॥————[७]

यास्तें अग्ने स्मिधो यानि धाम् या जिह्ना जांतवेदो यो अर्चिः। ये तें अग्ने मेडयो य इन्दंवस्तेभिंरात्मानं चिनुहि प्रजानन्न। उथ्सन्नयुक्तो वा एष यद्ग्निः किं वाहैतस्यं क्रियते किं वा न यद्वा अध्वर्युर्ग्नेश्चिन्वन्नंन्त्रेत्यात्मनो वै तद्न्तरेति यास्तें अग्ने समिधो यानिं (३३)

धामेत्यांहैषा वा अग्नेः स्वयश्चितिर्ग्निरेव तद्ग्निं चिनोति नाष्वर्युरात्मनोऽन्तरेति चर्तस्र आशाः प्र चेरन्त्वग्नयं इमं नों यज्ञं नयतु प्रजानत्र। घृतम्पिन्वंत्रजररे सुवीरं ब्रह्मं समिद्भंवत्याहुंतीनाम्। सुवर्गाय वा एष लोकायोपं धीयते यत्कूर्मश्चतंस्र आशाः प्र चेरन्त्वग्नय इत्याह (३४)

दिशं पुवैतेन प्र जानातीमं नो युज्ञं नयतु प्रजानिन्नत्याह सुवर्गस्यं लोकस्याभैनीत्यै

ब्रह्मं स्मिद्धंवत्याहुंतीनामित्यांह् ब्रह्मंणा वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन् यद्वह्मंण्वत्योप्दधांति ब्रह्मंणैव तद्यजंमानः सुवर्गं लोकमेंति प्रजापंतिर्वा एष यद्ग्रिस्तस्यं प्रजाः पृशवृश्छन्दा रेसि रूपः सर्वान् वर्णानिष्टंकानां कुर्याद्रूपेणैव प्रजां पृश्वञ्छन्दा रूस्यवं रुन्द्धेऽथौं प्रजाभ्यं एवैनंम्पश्भ्यश्छन्दौंभ्योऽवरुद्धं चिनुते॥ (३५)

यान्यग्नय् इत्याहेष्टंकाना् षोडंश च॥———[८]

मियं गृह्णाम्यग्रं अग्नि॰ रायस्पोषांय सुप्रजास्त्वायं सुवीर्याय। मियं प्रजाम्मिय् वर्चो दधाम्यिरिष्टाः स्याम तुनुवां सुवीराः। यो नी अग्निः पितरो हृथ्स्वंन्तरमंत्यीं मर्त्यार्थं आविवेशं। तमात्मन्यिरं गृह्णीमहे वयं मा सो अस्मा॰ अंवहाय परां गात्। यदेध्वर्युरात्मन्नग्निमगृहीत्वाग्निं चिनुयाद्यौंऽस्य स्वौंऽग्निस्तमिपं (३६)

यजंमानाय चिनुयाद्ग्रिं खलु वै पृशवोऽनूपं तिष्ठन्तेऽपृक्तामुंका अस्मात्पृशवंः स्युर्मियं गृह्णाम्यग्रे अग्निमित्यांहात्मन्नेव स्वमृग्निं दांधार् नास्मात्पृशवोऽपं क्रामन्ति ब्रह्मवादिनों वदन्ति यन्मृचापंश्चाग्नेरंनाद्यमथ् कस्मान्मृदा चाद्भिश्चाग्निश्चीयत् इति यदद्भिः संयौति (३७)

आपो वै सर्वा देवतां देवतांभिरेवेन् सर संजित् यन्मृदा चिनोतीयं वा अग्निर्वेश्वान्रौं-ऽग्निनेव तद्ग्निं चिनोति ब्रह्मवादिनो वदन्ति यन्मृदा चाद्भिश्चाम्रिश्चीयतेऽथ् कस्मांद्ग्निरुंच्यत् इति यच्छन्दोभिश्चिनोत्यग्नयो वै छन्दार्सस् तस्मांद्ग्निरुंच्यतेऽथो इयं वा अग्निर्वेश्वान्रो यत् (३८)

मृदा चिनोति तस्मांदिग्निरुंच्यते हिरण्येष्टका उपं दधाति ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिरेवास्मिन्दधात्यथो तेजो वै हिरंण्यं तेजं पृवात्मन्थत्ते यो वा अग्निर सर्वतोमुखं चिनुते सर्वासु प्रजास्वन्नमत्ति सर्वा दिशोऽभि जंयति गायत्रीम्पुरस्तादुपं दधाति त्रिष्टभं दिक्षिणतो जगंतीम्पुश्चादंनुष्टुभंमुत्तर्तः पृङ्किम्मध्यं पृष वा अग्निः सर्वतोमुख्सतं य एवं विद्वाङ्श्चिनुते सर्वासु प्रजास्वन्नमत्ति सर्वा दिशोऽभि जंयत्यथों दिश्येव दिश्मप्र वंयति तस्माँदिशि दिक्ग्रोतां॥ (३९)

अपिं सुं यौतिं वैश्वानुरो यदेष वै पश्चंवि शतिश्च॥———[९]

प्रजापंतिर्ग्निमंस्जत् सौंऽस्माथ्सृष्टः प्राङ्गाद्रंवत्तस्मा अश्वम्प्रत्यौस्यथ्स देक्षिणावंर्तत् तस्मै वृष्णिम्प्रत्यौस्यथ्स प्रत्यङ्कावंर्तत् तस्मां ऋष्भम्प्रत्यौस्यथ्स उद्ङ्कावंर्तत् तस्मै बस्तम्प्रत्यौस्यथ्स ऊर्ध्वो ऽद्रवत्तस्मै पुरुषम्प्रत्यांस्यत् यत्पंशुशीर्षाण्युंपदधांति सर्वतं पुवेनम् (४०)

अवरुष्यं चिनुत एता वै प्राणभृतश्चक्षुंष्मतीरिष्टंका यत्पंशुशीर्षाणि यत्पंशुशीर्षाण्यंपदर्थाति ताभिरेव यजंमानोऽमुष्मिं ह्याँके प्राणित्यथो ताभिरेवास्मां हुमे लोकाः प्र भाँन्ति मृदाभिलिप्योपं दधाति मेध्यत्वायं पृशुर्वा एष यद्ग्निरन्नंम्पृशवं एष खलु वा अग्निर्यत्पंशुशीर्षाणि यं कामयेत् कनीयोऽस्यान्नम् (४१)

स्यादितिं सन्तरां तस्यं पशुशीर्षाण्युपं दध्यात्कनीय पुवास्यान्नम्भवित् यं कामयेत समावंदस्यान्नई स्यादितिं मध्यतस्तस्योपं दध्याध्समावंदेवास्यान्नम्भवित् यं कामयेत् भूयो-ऽस्यान्नई स्यादित्यन्तेषु तस्यं व्युद्ह्योपं दध्यादन्तत पुवास्मा अन्नमवं रुन्द्धे भूयो-ऽस्यान्नम्भवित॥ (४२)

पुनम्स्यात्रुम्भूयोस्यात्रंम्भवति॥———[१०]

स्तेगान्दश्र्मंभ्याम्मण्डूकाञ्चम्भ्यंभिरादंकां खादेनोर्जरं सश्सूदेनारण्यं जाम्बीलेन् मृदंम्बर्स्वेभिः शर्कराभिरवंकामवंकाभिः शर्करामुथ्सादेनं जिह्वामंवऋन्देन् तालुश् सरंस्वतीं जिह्वाग्रेणं॥ (४३)

वाज् १ हनूँ भ्याम्प आस्येनादित्याञ्चश्रुंभिरुपयाममधरेणोष्ठेन सदुत्तरेणान्तरेणानूका्शम्प्रंकाश् बाह्य १ स्तनियृत्तं निर्वाधेनं सूर्याग्री चक्षुंभ्यां विद्युतौं कुनानंकाभ्याम्शनिंम्मस्तिष्केण बर्लम्मज्ञभिंः॥ (४४)

वाजुं पश्चवि १ शतिः॥-----[१२]

कूर्माञ्छुफैर्च्छलांभिः कृपिञ्जलान्थ्साम् कुष्ठिकाभिर्जुवं जङ्घांभिरगृदं जानुंभ्यां वीर्यं कुहाभ्यां भ्यम्प्रंचालाभ्याम् गुहोपपक्षाभ्यामश्चिनाव १ साभ्यामिदिति १ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जाल्मकेन शीर्ष्णा॥ (४५)

कूर्मात्रयोवि १शतिः॥----[१३]

योक्रुं गृध्रांभिर्युगमानंतेन चित्तम्मन्यांभिः सङ्ग्रोशान्प्राणैः प्रंकाुशेन् त्वचें पराकाुशेनान्तराम्मुशकाुन्केशैरिन्द्रड् स्वपंसा वहेन् बृहुस्पतिर् शकुनिसादेन्

| सप्तमः | प्रश्नः | (काण्डम् | ५) | | | 404 |
|--------|---------|----------|----|--|--|-----|
| | | | | | | |

रथंमुण्णिहांभिः॥ (४६)
योक्रमेकंवि॰शतिः॥——[१४]

मित्रावरुणौ श्रोणौभ्यामिन्द्राग्नी शिख्ण्डाभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यामिन्द्राविष्णू

मित्रावरुणो श्रोणीभ्यामिन्द्राग्नी शिखण्डाभ्यामिन्द्राबृहुस्पती ऊरुभ्यामिन्द्राविष्णू अष्ठीवन्द्यार्थं सिवतारुम्पुच्छेन गन्धविञ्छेपेनाफ्सरसी मुष्काभ्याम्पवमानम्पायुनां पवित्रम्पोत्राभ्यामाक्रमण इस्थूराभ्यां प्रतिक्रमणं कुष्ठाभ्याम्॥ (४७)

[१५] इन्द्रंस्य ऋोडोऽदिंत्यै पाजुस्यन्दिशां जुत्रवीं जीमूतान्हृदयौप्शाभ्यांमन्तरिक्षं पुरितता नर्भ उद्र्येणेन्द्राणीम्श्रीहा वुल्मीकान्क्षोम्ना गिरीन्स्नाशिभिः समुद्रमुद्रेण वैश्वानुरम्भस्मना॥ (४८)

मित्रावर्रुणाविन्द्रंस्य द्वाविर्श्रमित्रद्वाविर्श्रमितः॥______[१६]

पूष्णो वंनिष्ठरंन्याहेः स्थूंरगुदा सूर्पान्गुदांभिरऋतून्पृष्टीभिर्दिवं पृष्ठेन वसूंनाम्प्रथमा कीकंसा रुद्राणां द्वितीयांदित्यानां तृतीयाङ्गिरसां चतुर्थी साध्यानां पश्चमी विश्वेषां देवाना रंष्ठी॥ (४९)

ओजौँ ग्रीवाभिर्निर्ऋतिम्स्थभिरिन्द्रङ् स्वपंसा वहेन रुद्रस्यं विच्लः स्कुन्थों-ऽहोरात्रयौद्धितीयौऽर्धमासानाँ तृतीयों मासां चंतुर्थ ऋतूनाम्पंश्चमः संवथ्सरस्यं षष्ठः॥ (५०)

ओजों विश्यृतिः॥______[१८]

आनुन्दं नुन्दर्थुना कामंम्प्रत्यासाभ्यां भयः शितीमभ्यां प्रशिषंम्प्रशासाभ्याः सूर्याचन्द्रमसौ वृक्यांभ्याः श्यामशब्लौ मतंस्राभ्यार्व्यंष्टिः रूपेण निम्नुंक्तिमरूपेण॥ (५१)

आनन्दर षोडंश॥———[१९] अहंर्मार्सेन रात्रिम्पीवंसापो यूषेणं घृतर रसेन् श्यां वसंया दूषीकांभिर्ह्रादुनिमश्रुंभिः

पृष्वान्दिवर्थं रूपेण नक्षेत्राणि प्रतिरूपेण पृथिवीं चर्मणा छुवीं छुव्योपाकृताय स्वाहालेब्धाय स्वाहां हुताय स्वाहां॥ (५२)

अहंरुष्टाविर्श्वातिः॥_____[२०]

अग्नेः पंक्षतिः सरंस्वत्यै निपंक्षतिः सोमंस्य तृतीयापां चंतुर्थ्योषंधीनां पश्चमी संवथ्सरस्यं पृष्ठी मुरुतार् सप्तमी बृह्स्पतेरष्टमी मित्रस्यं नवमी वर्रुणस्य दश्मीन्द्रंस्यैकाद्शी विश्वेषां देवानां द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं युमस्यं पाटूरः॥ (५३)

अुग्रेरेकाृत्रत्रि र्शत्॥______[२१]

वायोः पंक्षतिः सरंस्वतो निपंक्षतिश्चन्द्रमंसस्तृतीया नक्षंत्राणां चतुर्थी संवितुः पंश्चमी रुद्रस्यं पृष्ठी सुर्पाणार्थं सप्तम्यंर्यमणौऽष्ट्रमी त्वष्टंर्नवमी धातुर्दश्मीन्द्राण्या एंकाद्श्यदित्यै द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं यस्ये पाटूरः॥ (५४)

वायोर्ष्टावि र्शितिः॥_____[२२]

पन्थांमनूवृग्भ्याः सन्तंतिः स्नावन्यांभ्याः शुकांन्यित्तेनं हरिमाणं युक्रा हलींक्ष्णान्यापवातेनं कूश्माञ्छकंभिः शवर्तानूबंध्येन शुनों विशसंनेन सूर्पाल्लौंहितगुन्थेन् वयाःसि पक्कगन्थेनं पिपीलिकाः प्रशादेनं॥ (५)

पन्था-द्वावि १ शतिः॥_____[२३]

क्रमैरत्यंक्रमीद्वाजी विश्वैंदेवैर्य्जियैंः संविदानः। स नों नय सुकृतस्यं लोकं तस्यं ते वयः स्वधयां मदेम॥ (५६)

क्रमेंर्ष्टादंश॥——[२४]

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी स्थर्स्थमात्मान्तरिक्षर समुद्रो योनिः सूर्यस्ते चक्षुर्वातेः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रम्मासाश्चार्थमासाश्च पर्वाण्यृतवोङ्गानि संवथ्सरो महिमा॥ (५७)

द्यौः पश्चविश्शतिः॥———[२५]

अग्निः पृशुर्रासीत्तेनायजन्त स पृतं लोकमंजयद्यस्मिन्नग्निः स तें लोकस्तं जैष्यस्यथावं जिघ्र वायुः पृशुर्रासीत्तेनायजन्त स पृतं लोकमंजयद्यस्मिन्वायुः स तें लोकस्तस्मौत्त्वान्तरेष्यामि यदि नाव्जिप्नस्यादित्यः पृशुर्रासीत्तेनायजन्त स पृतं ब्रह्मवादिनों विचित्यो यत्कुलयां ते वारुणो वै ऋीतः सोम् एकांदश॥————[२७]

॥काण्डम् ६॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

प्राचीनंबरशं करोति देवमनुष्या दिशों व्यंभजन्त प्राचीं देवा देखिणा पितरंः प्रतीचींम्मनुष्यां उदींचीर रुद्रा यत्प्राचीनंबरशं करोतिं देवलोकमेव तद्यजमान उपावंतित परि श्रयत्यन्तर्हितों हि देवलोको मंनुष्यलोकान्नास्मालोकाथ्स्वेतव्यमिवेत्यांहुः को हि तद्वेद यद्यमुष्मिं ह्योंकेऽस्तिं वा न वेतिं दिक्ष्वतींकाशान्करोति (१)

उभयौं र्लोकयोर्भि जित्यै केशश्मृश्रु वंपते नुखानि नि कृंन्तते मृता वा एषा त्वर्गमेध्या यत्केशश्मृश्रु मृतामेव त्वचंममेध्यामंपहत्यं युज्ञियों भूत्वा मेधुमुपैत्यिङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तोऽफ्सु दीं क्षात्पसी प्रावेशयन्नुफ्सु स्नांति साक्षादेव दीं क्षात्पसी अवं रुन्द्धे तीर्थे स्नांति तीर्थे हि ते ताम्प्रावेशयन्तीर्थे स्नांति (२)

तीर्थमेव संमानानां भवत्यपौं ऽष्रञात्यन्तर्त एव मेध्यों भवित वासंसा दीक्षयित सौम्यं वै क्षौमं देवतंया सोमंमेष देवतामुपैति यो दीक्षते सोमंस्य तुनूरंसि तुन्वं मे पाहीत्यांह् स्वामेव देवतामुपैत्यथों आिष्ठां मेवेतामा शांस्ते ऽग्नेस्तूंषाधानं वायोर्वात्पानं मिपतृणान्नीविरोषंधीनाम्प्रघातः (३)

आदित्यानां प्राचीनतानो विश्वेषां देवानामोतुर्नक्षंत्राणामतीकाशास्तद्वा एतथ्संविदेवृत्यं यद्वासो यद्वासंसा दीक्षयंति सर्वाभिरेवैनं देवतांभिर्दीक्षयति बृहिःप्रांणो वै मंनुष्यंस्तस्याशंनं प्राणौऽश्ञाति सप्रांण एव दीक्षत् आशितो भवति यावांनेवास्यं प्राणस्तेनं सह मेधुमुपैति घृतं देवानाम्मस्तुं पितृणान्निष्यंकम्मनुष्यांणान्तद्वे (४)

पुतर्थ्सवदेवत्यं यन्नवंनीतं यन्नवंनीतेनाभ्यक्के सर्वा पुव देवताः प्रीणाति प्रच्युंतो वा पृषौं-ऽस्माल्लोकादगंतो देवलोकं यो दीक्षितौंऽन्तरेव नवंनीतन्तस्मान्नवंनीतेनाभ्येक्केऽनुलोमं यर्जुषा व्यावृत्त्या इन्द्रो वृत्रमंहन्तस्यं कृनीनिका परापत्त्तदाञ्जनमभवद्यदाक्के चक्षुरेव भ्रातृंव्यस्य वृक्के दक्षिणम्पूर्वमाङ्के (५) प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ६)

स्व्यः हि पूर्वम्मनुष्यां आञ्चते न नि धांवते नीव हि मंनुष्यां धावंन्ते पञ्च कृत्व आङ्के पञ्चांक्षरा पङ्किः पाङ्कों यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्द्धे परिमित्माङ्केऽपरिमित् हि मंनुष्यां आञ्चते सत्तृंलयाङ्केऽपंतृलया हि मंनुष्यां आञ्चते व्यावृत्त्यै यदपंतृलयाञ्चीत वर्ज्ञ इव स्याथ्सतृंलयाङ्के मित्रत्वायं (६)

इन्द्रों वृत्रमंहुन्थ्सोऽ ३ पोऽ ३ भ्यंम्रियत् तासां यन्मेध्यं यज्ञिय् १ सर्देवमासीत्तदपोर्दक्रामृत्ते दर्भा अभवन् यद्दर्भपुञ्जीलैः प्वयंति या एव मेध्यां यज्ञियाः सर्देवा आपुस्ताभिरेवैनंम्पवयित् द्वाभ्यां पवयत्यहोरात्राभ्यांमेवैनंम्पवयित त्रिभिः पंवयित् त्रयं इमे लोका एभिरेवैनं लोकैः पंवयित पुश्चभिः (७)

प्वयति पश्चाक्षरा पङ्काः पाङ्कां यज्ञा यज्ञायैवैनंम्पवयति षङ्काः पंवयति षङ्घा ऋतवं ऋतुभिरेवैनंम्पवयति सप्तभिः पवयति सप्त छन्दांभिरेवैनंम्पवयति नवभिः पवयति नव वै पुरुषे प्राणाः सप्राणमेवैनंम्पवयत्येकंविश्शत्या पवयति दश् हस्त्यां अङ्गुलयो दश् पद्यां आत्मैकंविश्शो यावांनेव पुरुष्पस्तमपंरिवर्गम् (८)

प्<u>वयति</u> चित्पतिंस्त्वा पुनात्वित्यांह् मनो वै चित्पतिर्मनंसैवैनंम्पवयति वाक्पतिंस्त्वा पुनात्वित्यांह वाचैवैनंम्पवयति देवस्त्वां सिवता पुनात्वित्यांह सिवतृप्रंसूत पृवैनंम्पवयति तस्यं ते पवित्रपते पवित्रेण यस्मै कम्पुने तच्छंकेयमित्यांहाशिषंमेवैतामा शांस्ते॥ (९)

यावंन्तो वै देवा युज्ञायापुंनत् त एवाभंवन् य एवं विद्वान् युज्ञायं पुनीते भवंत्येव बहिः पंवियत्वान्तः प्र पांदयित मनुष्यलोक एवैनम्पवियत्वा पूतन्देवलोकम्प्र णयत्यदीक्षित् एक्याहुत्येत्यांहुः स्रुवेण् चतंस्रो जुहोति दीक्षित्त्वायं स्रुचा पश्चमीं पश्चाक्षरा पङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्ध आकूँत्यै प्रयुज्जेऽग्नये (१०)

स्वाहेत्याहाकूँत्या हि पुरुषो यज्ञम्भि प्रंयुङ्के यज्ञेयेति मेधायै मनंसेऽग्नये स्वाहेत्यांह मेधया हि मनंसा पुरुषो यज्ञमंभिगच्छंति सरंस्वत्यै पूष्णेंऽग्नये स्वाहेत्यांह् वाग्वै सरंस्वती पृथिवी पूषा वाचैव पृंथिव्या यज्ञम्प्र युंङ्क आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इत्यांह् या वै वर्ष्यास्ताः (११) आपों देवीर्बृह्तीर्विश्वशंम्भुवो यदेतद्यजुर्न ब्रूयाद्दिव्या आपोऽशाँन्ता इमल्लौंकमा गंच्छेयुरापों देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इत्यांहास्मा एवैनां लोकायं शमयति तस्माँच्छान्ता इमल्लौंकमा गंच्छन्ति द्यावांपृथिवी इत्यांह् द्यावांपृथिव्योर्हि यज्ञ उर्वन्तिरिक्षिमित्यांहान्तिरिक्षे हि यज्ञो बृहस्पतिनों हविषां वृधातु (१२)

इत्यांह् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मणैवास्मै यज्ञमवं रुन्द्वे यद्भूयाद्विधेरितिं यज्ञस्थाणुमृंच्छेद्वृधात्वित्यांह यज्ञस्थाणुमेव पिरं वृणक्ति प्रजापंतिर्यज्ञमंसृजत् सौंऽस्माथ्सृष्टः परांङ्केथ्स प्र यजुरद्वीनात्प्र साम् तमृगुदंयच्छुद्यदगुदयंच्छुत्तदौंद्वहणस्यौंद्वहण्त्वमृचा (१३)

जुहोति यज्ञस्योद्यंत्या अनुष्टुप्छन्दंसामुदंयच्छुदित्यांहुस्तस्मांदनुष्टुभां जुहोति यज्ञस्योद्यत्ये द्वादंश वाथ्सबन्धान्युदंयच्छुन्नित्यांहुस्तस्माद्वाद्शभिवाध्सबन्धविदों दीक्षयन्ति सा वा पृषर्गनुष्टुग्वागंनुष्टुग्यदेतय्चां दीक्षयंति वाचैवेन् सर्वया दीक्षयित विश्वे देवस्यं नेतुरित्यांह सावित्र्येतेन् मर्तो वृणीत सख्यम् (१४)

इत्यांह पितृदेवत्यैतेन् विश्वे राय इंषुध्यसीत्यांह वैश्वदेव्येतेनं द्युम्नं वृंणीत पुष्यस् इत्यांह पौष्ण्येतेन् सा वा पुषर्ज्सवदेवत्यां यदेतय्चां दीक्षयंति सर्वाभिरेवैनं देवतांभिदीक्षयित सप्ताक्षरम्प्रथमम्पदमृष्टाक्षराणि त्रीणि यानि त्रीणि तान्यष्टावुपं यन्ति यानि चत्वारि तान्यष्टी यद्ष्टाक्षरा तेनं (१५)

गायत्री यदेकांदशाक्षरा तेनं त्रिष्ठुग्यद्वादंशाक्षरा तेन् जर्गती सा वा एषर्व्सर्वाणि छन्दारंसि यदेतयर्चा दीक्षयंति सर्विभिरेवैनं छन्दोंभिर्दीक्षयित स्प्ताक्षरम्प्रथमम्पद स्प्तपंदा शक्तरी पृशवः शक्तरी पृश्नवेवावं रुन्द्ध एकंस्माद्क्षरादनांप्तम्प्रथमम्पदन्तस्माद्यद्वाचो- उनांप्तन्तन्मंनुष्यां उपं जीवन्ति पूर्णयां जुहोति पूर्ण इंव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यै न्यूनया जुहोति न्यूनाद्धि प्रजापंतिः प्रजा असृंजत प्रजाना सुष्टिं॥ (१६)

अग्नये ता वृंधात्वृचा सख्यन्तेनं जुहोति पश्चंदश च॥-----[२]

ऋख्सामे वै देवेभ्यों युज्ञायातिष्ठमाने कृष्णों रूपं कृत्वापुक्रम्यातिष्ठतान्तेऽमन्यन्त यं वा इमे उपाव्थर्स्यतः स इदं भविष्यतीति ते उपामन्नयन्त ते अहोरात्रयौर्मिहिमानमपिनधायं देवानुपावर्तेतामेष वा ऋचो वर्णो यच्छुक्ं कृष्णाजिनस्यैष साम्रो यत्कृष्णमृंख्सामयोः शिल्पे स्थ इत्याहरूर्सामे एवावं रुन्ध एषः (१७) वा अह्रो वर्णो यच्छुक्तं कृष्णाजिनस्यैष रात्रिया यत्कृष्णं यदेवैनयोस्तत्र न्यंक्तं तदेवावं रुन्द्धे कृष्णाजिनेनं दीक्षयित ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनं ब्रह्मणैवैनं दीक्षयतीमान्धिय् शिक्षंमाणस्य देवेत्यांह यथायुजुरेवैतद्गर्भो वा एष यद्दीक्षित उल्बं वासः प्रोण्ते तस्मौत् (१८)

गर्भाः प्रावृंता जायन्ते न पुरा सोमंस्य क्रयादपोंण्वीत् यत्पुरा सोमंस्य क्रयादंपोण्वीत गर्भाः प्रजानां परापातुंकाः स्युः क्रीते सोमेऽपोंण्ति जायंत एव तदथो यथा वसीया सम्प्रत्यपोण्ति ताद्दगेव तदिङ्गिरसः सुवृगं लोकं यन्त ऊर्ज् व्यंभजन्त ततो यदत्यशिष्यत ते शरा अभवन्नूग्वे शरा यच्छंरमयीं (१९)

मेखंला भवत्यूर्जम्वावं रुन्द्धे मध्यतः सन्नंद्धति मध्यत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्मध्यत ऊर्जा भुंञ्जत ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्ये मेध्यंमवाचीनंममेध्यं यन्मध्यतः संनद्धिति मेध्यं चैवास्यामेध्यं च व्यावंतयतीन्द्रों वृत्राय वज्रम्प्राहंर्थ्स त्रेधा व्यंभव्थस्फास्तृतीय् रथ्स्तृतीयं यूप्स्तृतीयम् (२०)

यैंऽन्तःश्वरा अशींर्यन्त ते श्वरा अंभवन्तच्छराणार् शर्त्वं वज्रो वै श्वराः क्षुत्खलु वै मंनुष्यंस्य भ्रातृंब्यो यच्छंर्मयी मेखंला भवंति वज्रेंणैव साक्षात्क्षुधम्भ्रातृंब्यम्मध्यतोऽपं हते त्रिवृद्धंवित त्रिवृद्धं प्राणिभ्रवृतंमेव प्राणम्मध्यतो यजमाने दधाति पृथ्वी भविति रज्जूंनाव्व्यावृत्त्ये मेखंलया यजमानन्दीक्षयित योक्रंण पत्नीम्मिथुनत्वायं (२१)

युज्ञो दक्षिणामुभ्यंथ्यायृत्ता समंभवृत्तदिन्द्रों ऽचायथ्सों ऽमन्यत् यो वा इतो जंनिष्यते स इदम्भविष्यतीति ताम्प्राविंशृत्तस्या इन्द्रं एवाजायत् सों ऽमन्यत् यो वै मदितोऽपंरो जिन्ष्यते स इदम्भविष्यतीति तस्यां अनुमृश्य योनिमाच्छिन्थ्या सूतवंशाभवृत्तथ्सूतवंशायै जन्मं (२२)

ता १ हस्ते न्यंबेष्टयत् ताम्मृगेषु न्यंदधाथ्सा कृष्णविषाणाभेवदिन्द्रंस्य योनिरिस् मा मां हि १ सीरितिं कृष्णविषाणाम्प्र यंच्छति सयोनिमेव यज्ञं कंरोति सयोनिन्दक्षिणा १ सयोनिमिन्द्र १ सयोनित्वायं कृष्ये त्वां सुसस्याया इत्यांह् तस्मादकृष्टप्च्या ओषंधयः पच्यन्ते सुपिप्पुलाभ्युस्त्वौषंधीभ्य इत्यांह् तस्मादोषंधयः फलं गृह्णन्ति यद्धस्तेन (२३)

कुण्ड्येतं पामनुम्भावुंकाः प्रजाः स्युर्यथ्स्मयेत नम्रुम्भावुंकाः कृष्णविषाणयां कण्ड्यते-

ऽपिगृह्यं स्मयते प्रजानां गोपीथाय न पुरा दक्षिणाभ्यो नेतों कृष्णविषाणामवं चृतेद्यत्पुरा दिक्षिणाभ्यो नेतों कृष्णविषाणामवंचृतेद्योनिं प्रजानां परापातुंका स्यान्नीतासु दिक्षिणासु चात्वांले कृष्णविषाणाम्प्रास्यंति योनिर्वे यज्ञस्य चात्वांलं योनिः कृष्णविषाणा योनांवेव योनिन्दधाति यज्ञस्यं सयोनित्वायं॥ (२४)

रुन्य एष तस्माँच्छर्मयी यूप्स्तृतीयिम्मिथुनृत्वाय जन्म हस्तेनाष्टाचेत्वारि १शच॥——[३]

वाग्वे देवेभ्योऽपाँकामद्यज्ञायातिष्ठमाना सा वनस्पतीन्प्राविश्वथ्सेषा वाग्वनस्पतिषु वदित् या दुंन्दुभौ या तूणवे या वीणायां यद्दीक्षितदण्डम्प्रयच्छिति वाचंमेवावं रुन्द् औदुंम्बरो भवृत्यूग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवावं रुन्द्वे मुखेन सिम्मितो भवित मुख्त एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मांनमुखत ऊर्जा भुंक्षते (२५)

क्रीते सोमें मैत्रावरुणायं दण्डम्प्र यंच्छति मैत्रावरुणो हि पुरस्तांदृत्विग्भ्यो वाचं विभजंति तामृत्विजो यजंमाने प्रतिं ष्ठापयन्ति स्वाहां यज्ञम्मन्सेत्यांह मनंसा हि पुरुषो यज्ञमंभिगच्छंति स्वाहा द्यावांपृथिवीभ्यामित्यांह द्यावांपृथिव्योर्हि यज्ञः स्वाहोरोर्न्तरिक्षादित्यांहान्तरिक्षे हि यज्ञः स्वाहो युज्ञं वातादार्रभ् इत्यांहायम् (२६)

वाव यः पर्वते स यज्ञस्तमेव साक्षादा रंभते मुष्टी करोति वार्चं यच्छति यज्ञस्य धृत्या अदीक्षिष्टायम्ब्राह्मण इति त्रिरुंपार्श्वांह देवेभ्यं एवेन्म्प्राह् त्रिरुंचेरुभयेंभ्य एवेनं देवमनुष्येभ्यः प्राह् न पुरा नक्षंत्रेभ्यो वार्चं वि सृंजेद्यत्पुरा नक्षंत्रेभ्यो वार्चं विसृजेद्यज्ञं विच्छिन्द्यात् (२७)

उदितेषु नक्षेत्रेषु व्रतं कृणुतेति वाचं वि सृंजित युज्ञव्रंतो वै दींक्षितो युज्ञमेवाभि वाचं वि सृंजित यदि विसृजेद्वैष्णवीमृचमन् ब्रूयाद्यज्ञो वै विष्णुंर्य्ज्ञेनैव युज्ञ सं तंनोति दैवीन्धियंम्मनामह् इत्यांह युज्ञमेव तन्म्रंदयित सुपारा नो अस्द्वश् इत्यांह व्युंष्टिमेवावं रुन्द्वे (२८)

ब्रह्मवादिनों वदन्ति होत्व्यं दीक्षितस्यं गृहा(३)इ न होत्व्या(३)मितिं हिवर्वे दीक्षितो यज्ञंहुयाद्यजमानस्यावदायं जुहुयाद्यन्न जुंहुयाद्यं प्रमाना वे देवा मनोजाता मनोयुज् इत्यांह प्राणा वे देवा मनोजाता मनोयुज्स्तेष्वेव प्रोक्षं जुहोत् तन्नेवं हुतं नेवाहुंतः स्वपन्तं वे दीक्षितः रक्षाः सि जिघाः सन्त्यग्निः (२९)

खलु वै रेक्ष्रोहाग्रे त्वर सु जांगृहि वयर सु मंन्दिषीमहीत्यांहाग्निमेवाधिपां कृत्वा स्वंपिति रक्षंसामपंहत्या अब्रत्यमिंव वा एष कंरोति यो दींक्षितः स्वपिंति त्वमंग्ने ब्रत्पा असीत्यांहाग्निर्वे देवानां ब्रतपंतिः स एवैनं ब्रतमालंम्भयति देव आ मर्त्येष्वेत्यांह देवः (३०)

ह्यंष सन्मत्येषु त्वं यज्ञेष्वीड्य इत्यांहैत र हि यज्ञेष्वीड्तेऽप् वै दींक्षिताथ्संषुपुषं इन्द्रियं देवताः क्रामन्ति विश्वें देवा अभि मामावंवृत्रन्नित्यांहेन्द्रियेणैवैनं देवतांभिः सं नयित यदेतद्यजुर्न ब्रूयाद्यावंत एव पुशून्भि दीक्षेत् तावंन्तोऽस्य पुशवंः स्यू रास्वेयंत् (३१)

सोमा भूयों भ्रेत्याहापंरिमितानेव पृश्नवं रुन्छे चन्द्रमंसि मम् भोगांय भ्वेत्यांह यथादेवतमेवेनाः प्रतिं गृह्णाति वायवे त्वा वरुणाय त्वेति यदेवमेता नानुंदिशेदयंथादेवतं दक्षिणा गमयेदा देवतांभ्यो वृथ्येत् यदेवमेता अनुदिशति यथादेवतमेव दक्षिणा गमयित् न देवतांभ्य आ (३२)

वृथ्यते देवीरापो अपां नपादित्यांह यद्वो मेध्यं युज्ञिय् सदेवं तद्वो मार्व क्रिमिष्मिति वावैतदाहाच्छिन्नं तन्तुं पृथिच्या अनुं गेषमित्यांह सेतुंमेव कृत्वात्येंति॥ (३३)

भुञ्जतेऽयञ्छिंन्द्याद्रुन्धेऽग्निरांह देव इयंद्देवतांन्य आ त्रयंस्त्रि॰शच॥———[४]

देवा वै देवयर्जनमध्यवसाय दिशो न प्राजानन्तेऽ चे न्योन्यमुपाधावन्त्वया प्र जानाम् त्वयेति तेऽदित्या समंध्रियन्त त्वया प्र जानामेति साब्रंवीद्वरं वृणे मत्प्रांयणा एव वो यज्ञा मदुंदयना अस्त्रिति तस्मांदादित्यः प्रांयणीयो यज्ञानांमादित्य उंदयनीयः पश्चं देवतां यजिति पश्च दिशों दिशाम्प्रज्ञांत्ये (३४)

अथो पश्चौक्षरा पुङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे पथ्याई स्वस्तिमंयज्ञन्प्राचीमेव तया दिशम्प्राजांनत्रुग्निनां दक्षिणा सोमेन प्रतीचीई सिवृत्रोदीचीमिदित्योध्वाम्पथ्याई स्वस्ति यंजित प्राचीमेव तया दिशम्प्र जांनाति पथ्याई स्वस्तिमिष्ट्वाग्नीषोमौ यजित चक्षुंषी वा पृते युज्ञस्य यदुग्नीषोमौ ताभ्यामेवानुं पश्यित (३५)

अग्रीषोमांविष्ट्वा संवितारं यजित सिवतृप्रंसूत एवानुं पश्यित सिवतारंमिष्ट्वादितिं यजितीयं वा अदितिर्स्यामेव प्रतिष्ठायानुं पश्यत्यदितिमिष्ट्वा मांरुतीमृचमन्वांह मुरुतो वै देवानां विशों देवविशं खलु वै कल्पंमानम्मनुष्यविशमनुं कल्पते यन्मांरुतीमृचंमन्वाहं

विशां क्रुस्यैं ब्रह्मवादिनों वदन्ति प्रयाजवंदननूयाजम्प्रांयणीयंं कार्यमनूयाजवंत (३६)

अप्रयाजमंदयनीयमितीमे वै प्रयाजा अमी अनूयाजाः सैव सा यज्ञस्य सन्तंतिस्तत्तथा न कार्यमात्मा वै प्रयाजाः प्रजानूयाजा यत्प्रयाजानंन्तिरयादात्मानंमन्तिरियाद्यदंनूयाजानंन्तिरियात् खलु वै यज्ञस्य वितंतस्य न क्रियते तदनं यज्ञः परां भवति यज्ञं पंराभवन्तं यजमानोऽनं (३७)

परां भवति प्रयाजवंदेवानूंयाजवंदप्रायणीयं कार्यम्प्रयाजवंदन्याजवंदुदयनीयं नात्मानंमन्तरेति न प्रजां न यज्ञः पराभवंति न यजमानः प्रायणीयंस्य निष्कास उंदयनीयंम्भि निर्वपति सैव सा यज्ञस्य सन्तंतिर्याः प्रायणीयंस्य याज्यां यत्ता उंदयनीयंस्य याज्याः कुर्यात्परांडुम् लोकमा रोहेत्प्रमायुंकः स्याद्याः प्रायणीयंस्य पुरोनुवाक्यांस्ता उंदयनीयंस्य याज्याः करोत्यस्मिन्नेव लोक प्रति तिष्ठति॥ (३८)

प्रज्ञांत्ये पश्यत्यनूयाजवृद्यजंमानोऽनुं पुरोनुवाक्यांस्ता अष्टौ चं॥-----[५]

कृद्रश्च वे सुंपूर्णी चाँत्मरूपयोरस्पर्धेता र् सा कृद्रः सुंपूर्णी मंजयथ्सा ब्रंबी तृती यंस्यामितो दिवि सोम्स्तमा हुंर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्वेतीयं वे कृद्र्रसौ सुंपूर्णी छन्दा रेसि सौपर्णेयाः साब्रंबी दस्मै वे पितरौं पुत्रान्बिंभृतस्तृती यंस्यामितो दिवि सोम्स्तमा हुंर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्व (३९)

इति मा कृद्रूरंबोच्दिति जगृत्युदंपत्चतुंर्दशाक्षरा स्ती साप्रांप्य न्यंवर्तत् तस्यै हे अक्षरें अमीयेता साप्रांप्य सा पृश्विश्व दीक्षया चार्गच्छत्तस्माञ्जगंती छन्दंसाम्पश्चव्यंतमा तस्मांत्पशुमन्तं दीक्षोपं नमित त्रिष्टुगुदंपत्त्रयोदशाक्षरा स्ती साप्रांप्य न्यंवर्तत् तस्यै हे अक्षरें अमीयेता साप्रांप्य सा दिक्षंणाभिश्च (४०)

तपंसा चार्गच्छ्तस्मांत्रिष्टभों लोके मार्ध्यंदिने सर्वने दक्षिणा नीयन्त एतत्खलु वाव तप इत्यांहुर्यः स्वं ददातीतिं गायुत्र्युदंपत्चतुंरक्षरा सृत्यंजया ज्योतिंषा तमंस्या अजाभ्यंरुन्द्व तद्जायां अज्ञत्व सा सोमं चाहंरच्वत्वारिं चाक्षरांणि साष्टाक्षंग् समंपद्यत ब्रह्मवादिनों वदन्ति (४१)

कस्माँथ्यत्याद्गांयत्री किनेष्ठा छन्दंसा॰ सृती यंज्ञमुखं परीयायेति यदेवादः सोमुमाहंर्त्तस्माँद्यज्ञमुखं पर्येत् तस्माँतेज्स्विनीतमा पुद्धां द्वे सर्वने सुमगृह्णान्मुखेनैकं यन्मुखेन समगृह्णात्तदेधयृत्तस्माद्वे सर्वने शुक्रवंती प्रातःसवनं च मार्ध्यंदिनं च तस्मांतृतीयसवन ऋजीषमभि षुंण्वन्ति धीतमिव हि मन्यंन्ते (४२)

आशिर्मवं नयति सशुकृत्वायाथो सम्भंरत्येवैन्तर सोमंमाह्वियमाणं गन्धर्वो विश्वावंसुः पर्यमुष्णाथ्स तिस्रो रात्रीः परिमुषितोऽवस्त्तस्मांतिस्रो रात्रीः कीतः सोमो वसित् ते देवा अंब्रुवन्थ्बीकांमा वै गन्धर्वाः स्त्रिया निष्क्रीणामेति ते वाच् हिस्यमेकंहायनीं कृत्वा तया निरंक्रीणन्थ्सा रोहिद्रूपं कृत्वा गन्धर्वेभ्यः (४३)

अपुक्रम्यातिष्ठत्तद्रोहितो जन्म ते देवा अंब्रुवृन्नपं युष्मदक्रमीन्नास्मानुपावंर्तते वि ह्वंयामहा इति ब्रह्मं गन्धवा अवंदन्नगायं देवाः सा देवान्गायंत उपावंर्तत तस्माद्रायंन्तु इ स्नियंः कामयन्ते कामुंका एन् इस्त्रियों भवन्ति य एवं वेदाथो य एवं विद्वानिप जन्येषु भवंति तेभ्यं एव दंदत्युत यद्वहुतंयाः (४४)

भवन्त्येकंहायन्या क्रीणाति वाचैवैन् सर्वया क्रीणाति तस्मादेकंहायना मनुष्यां वाचं वदन्त्यकूंट्याऽकंण्याऽ कांण्याऽश्लोंण्याऽसंप्तशफ्या क्रीणाति सर्वयैवैनं क्रीणाति यच्छ्वेतयां क्रीणीयादुश्चर्मा यजंमानः स्याद्यत्कृष्णयांनुस्तरंणी स्यात्प्रमायुंको यजंमानः स्याद्यद्विरूपया वात्रंघ्री स्याथ्स वान्यं जिनीयात्तं वान्यो जिनीयादरुणयां पिङ्गाक्ष्या क्रीणात्येतद्वै सोमंस्य रूप स्वयैवैनं देवतंया क्रीणाति॥ (४५)

निष्क्रीणीष्व दक्षिणाभिश्च वदन्ति मन्यन्ते गन्धर्वेभ्यों बहुतयाः पिङ्गाक्ष्या दशं च॥ \longrightarrow [६]

तिष्करंण्यमभवृत्तस्मांदुन्द्यो हिरंण्यम्पुनिन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मांध्सत्यादंनस्थिकेन प्रजाः प्रवीयन्तेऽस्थन्वतींर्जायन्त इति यिष्करंण्यं घृतेंऽवधायं जुहोति तस्मांदनस्थिकेन प्रजाः प्र वीयन्तेऽस्थन्वतींर्जायन्त एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम् यद्भृतं तेजो हिरंण्यमियं ते शुक्र तुनूरिदं वर्च इत्यांह् सर्तेजसमेवेन् सत्तंनुम् (४६)

क्रोत्यथो सम्भंरत्येवेनं यदबंद्धमवद्ध्याद्गर्भाः प्रजानां परापातुंकाः स्युर्बृद्धमवं दधाति गर्भाणां धृत्ये निष्टक्यम्बधाति प्रजानां प्रजननाय वाग्वा एषा यथ्सोम्कयंणी जूरसीत्यांह् यद्धि मनसा जवते तद्वाचा वदंति धृता मन्सेत्यांह् मनसा हि वाग्धृता जुष्टा विष्णंव इत्यांह (४७)

युज्ञो वै विष्णुंर्युज्ञायैवैनां जुष्टां करोति तस्यांस्ते सृत्यसंवसः प्रस्व इत्यांह

सिवृतृप्रंसूतामेव वाचमवं रुन्द्धे काण्डेकाण्डे वै क्रियमांणे यज्ञर रक्षारंसि जिघारसन्त्येष खलु वा अरंक्षोहतः पन्था योंऽग्नेश्च सूर्यस्य च सूर्यस्य चक्षुरारुहमुग्नेर्क्ष्णः कृनीनिकामित्यांह् य पुवारंक्षोहतः पन्थास्तर सुमारोहति (४८)

वाग्वा एषा यथ्सोम्ऋयंणी चिदंसि म्नासीत्यांहु शास्त्येवैनांमेतत्तस्माँच्छिष्टाः प्रजा जायन्ते चिद्सीत्यांह् यद्धि मनंसा चेतयंते तद्घाचा वदंति म्नासीत्यांह् यद्धि मनंसाभिगच्छंति तत्कुरोति धीर्सीत्यांह् यद्धि मनंसा ध्यायंति तद्घाचा (४९)

वदंति दक्षिणासीत्यांह् दक्षिणा ह्यंषा युज्ञियासीत्यांह् युज्ञियांमेवैनां करोति क्षित्रियासीत्यांह् क्षित्रिया ह्यंषादिंतिरस्युभ्यतंःशीर्ष्णीत्यांह् यदेवाऽऽदित्यः प्रांयणीयो यज्ञानांमादित्य उंदयनीयस्तस्मादेवमांह् यदबंद्धा स्यादयंता स्याद्यत्पंदिबद्धानुस्तरंणी स्यात्प्रमायुंको यज्ञंमानः स्यात् (५०)

यत्केर्णगृहीता वार्त्रघ्नी स्याथ्स वान्यं जिनीयात्तं वान्यो जिनीयान्मित्रस्त्वां पदि बंध्रात्वित्यांह मित्रो वै शिवो देवानान्तेनैवैनां पदि बंध्राति पूषाध्वंनः पात्वित्यांहेयं वै पूषेमामेवास्यां अधिपामंकः समष्ट्या इन्द्रायाध्यंक्षायेत्याहेन्द्रमेवास्या अध्यंक्षं करोति (५१)

अनुं त्वा माता मन्यतामनुं पितेत्याहानुंमतयैवैनया क्रीणाति सा देवि देवमच्छेहीत्यांह देवी ह्रोषा देवः सोम् इन्द्रांय सोम्मित्याहेन्द्रांय हि सोमं आह्रियते यदेतद्यजुर्न ब्रूयात्परांच्येव सोमुक्रयंणीयाद्रुद्रस्त्वा वंर्तयत्वित्यांह रुद्रो वै क्रूरः (५२)

देवाना-तमेवास्ये प्रस्तांद्वधात्यावृत्त्ये क्रूरमिव वा एतत्करोति यद्रुद्रस्यं कीर्तयंति मित्रस्यं पृथेत्यांहु शान्त्ये वाचा वा एव वि कीणीते यः सोम्कयंण्या स्वस्ति सोमंसखा पुनरेहिं सह र्य्येत्यांह वाचैव विक्रीय पुनरात्मन्वाचं धत्तेऽनुंपदासुकास्य वाग्भंवित य एवं वेदं॥ (५३)

सर्तनुं विष्णंव इत्याह समारोहित् ध्यायंति तद्वाचा यजंमानः स्यात्करोति ऋूरो वेदं॥[७]

षद्वान्यनु नि क्रांमित षड्हं वाङ्गातिं वदत्युत संवथ्स्रस्यायंने यावंत्येव वाक्तामवं रुन्द्धे सप्तमे पृदे जुंहोति सप्तपंदा शक्वंरी पृशवः शक्वंरी पृश्नृवावं रुन्द्धे सप्त ग्राम्याः पृशवः सप्तारण्याः सप्त छन्दाईस्युभयस्यावंरुद्धे वस्व्यंसि रुद्रासीत्यांह रूपमेवास्यां पृतन्महिमानम् (५४)

व्याचंष्टे बृह्स्पतिंस्त्वा सुम्ने रंण्वत्वित्यांह् ब्रह्म वे देवानाम्बृह्स्पति्र्ब्रह्मंणैवास्मैं पृश्नवं रुन्द्धे रुद्रो वसुंभिरा चिंकेत्वित्याहावृत्त्ये पृथिव्यास्त्वां मूर्धन्ना जिंधिमें देवयजंन इत्यांह पृथिव्या ह्येष मूर्धा यद्देवयजंनमिडांयाः पद इत्याहेडांये ह्येतत्पदं यथ्सोंमुक्रयंण्ये घृतवंति स्वाहाँ (५)

इत्यांह् यदेवास्यै प्दाब्धृतमपींड्यत् तस्मांदेवमांह् यदेध्वर्युरंन्ग्नावाहुंतिं जुहुयाद्-थौं-ऽध्वर्युः स्याद्रक्षार्थसे यज्ञश् हंन्युर्हिरंण्यमुपास्यं जुहोत्यग्निवत्येव जुहोति नान्थौंऽध्वर्युर्भवंति न यज्ञश् रक्षार्थसे प्रन्ति काण्डेकाण्डे वै क्रियमाणे यज्ञश् रक्षार्थसे जिघाश्सन्ति परिलिखित्श् रक्षः परिलिखिता अरांतय इत्यांह रक्षंसामपंहत्ये (५६)

ड्दम्ह १ रक्षंसो ग्रीवा अपि कृन्तामि यौंऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इत्यांह् द्वौ वाव पुर्रुषौ यं चैव द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तयोरेवानंन्तरायं ग्रीवाः कृन्तित पृशवो वै सोमुऋयंण्यै पुदं यावत्मूत १ सं वपित पृश्नेवावं रुन्द्वेऽस्मे रायु इति सं वपत्यात्मानमेवाध्वर्युः (५७)

पृशुभ्यों नान्तरेति त्वे राय इति यजंमानाय प्र यंच्छति यजंमान एव र्यिं दंधाति तोते राय इति पत्निया अर्थो वा एष आत्मनो यत्पत्नी यथां गृहेषुं निध्ते ताहगेव तत्त्वष्टींमती ते सपेयेत्यांह त्वष्टा वै पंशूनाम्मिथुनाना र् रूपकृद्रूपमेव पृशुषुं दधात्यस्मै वै लोकाय गार्हंपत्य आ धीयतेऽमुष्मां आहव्नीयो यद्गार्हंपत्य उपवपेदस्मि हाँके पंशुमान्थस्याद्वतंहव्नीयेऽमुष्मिं हाँके पंशुमान्थस्याद्वभयोर्वे वपत्युभयोरेवैनं हाँकयोः पशुमन्तं करोति॥ (५८)

मृहिमान् इं स्वाहापंहत्या अध्वर्युर्धीयते चतुंर्विH १ शतिश्च॥ ————[८]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति विचित्यः सोमा (३) न विचित्या (३) इति सोमो वा ओषंधीनाः राजा तस्मिन् यदापंत्रं ग्रसितमेवास्य तद्यद्विचनुयाद्यथास्याँद्वसितं निष्किदति ताद्दगेव तद्यन्न विचिनुयाद्यथाक्षन्नापंत्रं विधावंति ताद्दगेव तत्क्षोधंकोऽध्वर्यः स्यात्क्षोधंको यर्जमानः सोमंविकयिन्थ्सोमर् शोध्येत्येव ब्रूयाद्यदीतंरम् (५९)

यदीतंरमुभयेनैव सोमिविकृयिणंमर्पयित् तस्माँथ्सोमिविकृयी क्षोधुंकोऽरुणो हं स्माहौपंवेशिः सोमुक्रयंण एवाहं तृंतीयसवनमवं रुन्ध् इति पशूनां चर्मिन्मिमीते पृशूनेवावं रुन्द्धे पृशवो हि तृतीय् सवनं यङ्कामयेतापृशुः स्यादित्यृक्षतस्तस्यं मिमीतुर्क्षं वा अपश्चयमंपृशुरेव भवित् यं कामयेत पशुमान्थ्स्यात (६०)

इति लोमृतस्तस्यं मिमीतैतद्वे पंशूनाः रूपः रूपेणैवास्मैं पृशूनवं रुन्द्वे पशुमानेव भंवत्यपामन्तें कीणाति सर्रसमेवैनं कीणात्यमात्योऽसीत्यांहामैवैनं कुरुते शुक्रस्ते ग्रह् इत्यांह शुक्रो ह्यंस्य ग्रहोऽनुसाच्छं याति महिमानमेवास्याच्छं यात्यनंसा (६१)

अच्छं याति तस्मांदनोवाह्य समे जीवंनं यत्र खलु वा एत शीर्णा हरेन्ति तस्मांच्छीर्षहार्यं गिरौ जीवंनम्भि त्यं देव संवितार्मित्यतिंछन्दस्चां मिमीतेऽतिंच्छन्दा वे सर्वाणि छन्दा स्विभिरेवेनं छन्दोभिर्मिमीते वर्ष्म वा एषा छन्दंसां यदितंच्छन्दा यदितंच्छन्दस्चां मिमीते वर्ष्मेवेन समानानां करोत्येकयोध्सर्गम् (६२)

मिमीतेऽयांतयाम्नियायातयाम्नियैवैनंग्मिमीते तस्मान्नानांवीर्या अङ्गुलंयः सर्वांस्वङ्गुष्ठमुप् नि गृह्णाति तस्मांथ्समावंद्वीर्योऽन्याभिर्ङ्गुलिभिस्तस्माथ्सर्वा अनु सं चंरति यथ्सह सर्वाभिर्मिमीत सङ्श्लिष्टा अङ्गुलंयो जायेर्न्नेकंयैकयोथ्सर्गम्मिमीते तस्माद्विभंक्ता जायन्ते पश्च कृत्वो यजुंषा मिमीते पश्चाक्षरा पङ्काः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे पश्च कृत्वंस्तूष्णीम् (६३)

दश् सम्पंद्यन्ते दशाँक्षरा विराडन्नं विराि्चराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्धे यद्यजुंषा मिमीते भूतमेवावं रुन्द्धे यत्तूष्णीम्भंविष्यद्यद्वे तावांनेव सोमः स्याद्यावंन्त्मिमीते यजंमानस्यैव स्यान्नापि सदस्यांनां प्रजाभ्यस्त्वेत्युप समूहिति सदस्यांनेवान्वाभंजित वाससोपं नह्यति सर्वदेवत्यं वै (६४)

वासः सर्वाभिरेवेनं देवतांभिः समंधयित पृशवो वै सोमः प्राणाय त्वेत्युपं नह्यति प्राणमेव पृशुषुं दधाति व्यानाय त्वेत्यनुं श्वन्थति व्यानमेव पृशुषुं दधाति तस्मांथ्स्वपन्तं प्राणा न जहिति॥ (६५)

इतंरम्पशुमान्थस्याँद्यात्यनंसोथसर्गन्तूष्णी ४ संविदेवृत्यं वै त्रयंस्त्रि ४ शच॥ ______[9]

यत्कुलयां ते शुफेनं ते कीणानीति पणेतागों अर्घ् सोमं कुर्यादगों अर्घ् यजमानमगों अर्घमध्वर्युक्वोस्तु महिमानं नावं तिरेद्रवां ते कीणानीत्येव ब्रूयाद्रो अर्घमेव सोमं करोतिं गो अर्घं यजमानं गो अर्घमध्वर्युन्न गोर्महिमानमवं तिरत्य जयां कीणाति सर्तपसमेवैनं कीणाति हिरंण्येन कीणाति सर्शुक्रमेव (६६)

पुनं क्रीणाति धेन्वा क्रीणाति साशिरमेवेनं क्रीणात्यृष्भेणं क्रीणाति सेन्द्रंमेवेनं

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ६)

क्रीणात्यनुडुहाँ क्रीणाति विहुर्वा अंनुङ्वान् विहुर्नेव विहुं यज्ञस्यं क्रीणाति मिथुनाभ्याँ क्रीणाति मिथुनस्यावंरुद्धे वासंसा क्रीणाति सर्वदेवृत्यं वै वासः सर्वाभ्य एवेनं देवताभ्यः क्रीणाति दश् सम्पंद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्धे (६७)

तपंसस्तनूरंसि प्रजापंतेर्वर्ण् इत्यांह पृशुभ्यं एव तदंध्वर्युर्नि ह्रुंत आत्मनोऽनांव्रस्काय् गच्छंति श्रियं प्र पृश्नांप्रोति य एवं वेदं शुक्रं ते शुक्रेणं कीणामीत्यांह यथायजुरे्वैतद्देवा वै येन हिरंण्येन सोम्मक्रीणन्तदंभीषहा पुन्रादंदत् को हि तेजंसा विक्रेष्यत् इति येन हिरंण्येन (६८)

सोमं क्रीणीयात्तदंभीषहा पुन्रा दंदीत तेजं पुवात्मन्धंतेऽस्मे ज्योतिः सोमविक्वियिण् तम् इत्यांह् ज्योतिरेव यजमाने दधाति तमंसा सोमविक्वियणंमर्पयति यदन्पग्रथ्य हुन्याद्दंन्द्रशूकास्ता समार् स्पाः स्युरिदम्ह स्पर्पणां दन्द्रशूकांनां ग्रीवा उप ग्रथ्रामीत्याहादंन्दशूकास्ता समार् स्पा भवन्ति तमंसा सोमविक्वियणं विध्यति स्वानं (६९)

भ्राजेत्यांहैते वा अमुष्मिं ह्याँके सोमंमरक्षन्तेभ्योऽिष् सोममाहं र्न् यदेतेभ्यंः सोम्कर्यणात्रानुं दिशेदकीं तोऽस्य सोमंः स्यान्नास्यैतें ऽमुष्मिं ह्याँके सोम र्रं रक्षेयुर्यदेतेभ्यंः सोम्कर्यणाननु दिशतिं कीतौं ऽस्य सोमों भवत्येतें ऽस्यामुष्मिं ह्याँके सोमर्रं रक्षन्त॥ (७०)

सशुंक्रमेव रुन्य इति येन हिरंण्येन स्वान चतुंश्चत्वारि शच॥———[१०]

वारुणो वै क्रीतः सोम् उपनद्धो मित्रो न् एहि सुमित्रधा इत्यांहु शान्त्या इन्द्रंस्योरुमा विश् दक्षिणमित्यांह देवा वै य॰ सोममक्रीणन्तमिन्द्रंस्योरौ दक्षिण आसांदयन्नेष खलु वा एतर्हीन्द्रो यो यजते तस्मादेवमाहोदायुंषा स्वायुषेत्यांह देवतां एवान्वारभ्योत (७१)

तिष्ठत्युर्वन्तिरिक्षमिन्बिहीत्यांहान्तिरिक्षदेवत्यो ई ह्यंतरिह् सोमोऽदित्याः सदोऽस्यिदित्याः सद् आ सीदेत्यांह यथायुजुरेवेतिद्ध वा एनमेतदर्धयित् यद्वांरुण सन्तम्मैत्रं करोतिं वारुण्यर्चा सादयित् स्वयैवेनं देवतंया समर्थयित् वासंसा पूर्यानंह्यित सर्वदेवत्यं व वासः सर्वाभिरेव (७२)

एनं देवतांभिः समर्धयत्यथो रक्षंसामपंहत्ये वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेत्यांह् वनेषु हि व्यन्तरिक्षं ततान् वाजमर्विभ्वित्यांह् वाज् इ ह्यर्वेथ्सु पयो अघ्नियास्वित्यांह् पयो ह्यंघ्नियास् हृथ्सु ऋतुमित्यांह हृथ्सु हि ऋतुं वरुणो विक्ष्विग्निमित्यांह् वरुणो हि विक्ष्विग्निन्दिवि सूर्यम् (७३)

इत्यांह दिवि हि सूर्ये सोम्मद्रावित्यांह ग्रावांणो वा अद्रयस्तेषु वा एष सोमं दधाति यो यजंते तस्मदिवमाहोदु त्यं जातवेदसमिति सौर्यर्चा कृष्णाजिनम्प्रत्यानंह्यति रक्षंसामपंहत्या उस्रावेतं धूर्षाहावित्यांह यथायजुरेवैतत्प्र च्यंवस्व भुवस्पत् इत्यांह भूताना १ हि (७४)

पुष पित्विश्वांन्यभि धामानीत्यांह् विश्वांनि ह्ये ई षोंऽभि धामांनि प्रच्यवंते मा त्वां पिरप्री विंद्दित्यांह् यदेवादः सोमंमाह्वियमाणं गन्धर्वो विश्वावंसुः पूर्यमुंष्णात्तस्मांदेवमाहापंरिमोषाय यजंमानस्य स्वस्त्ययंन्यसीत्यांह् यजंमानस्यैवैष यज्ञस्यांन्वारुम्भोऽनंविछित्त्ये वरुणो वा पुष यजंमानम्भ्यैति यत् (७५)

क्रीतः सोम् उपंनद्धो नमों मित्रस्य वर्रुणस्य चक्षंस इत्यांह् शान्त्या आ सोम्ं वहंन्त्यग्निना प्रति तिष्ठते तौ सम्भवंन्तौ यजंमानम्भि सम्भवंतः पुरा खलु वावेष मेधांयात्मानंमारभ्यं चरित यो दींक्षितो यदंग्नीषोमीयंम्पशुमालभंत आत्मिनिष्क्रयंण एवास्य स तस्मात्तस्य नाश्यं पुरुषिनिष्क्रयंण इव ह्यथो खल्वांहुरग्नीषोमांभ्यां वा इन्द्रों वृत्रमंहन्निति यदंग्नीषोमीयंम्पशुमालभंते वार्त्रघ्न एवास्य स तस्माद्वाश्यं वारुण्यर्चा परि चरित स्वयैवैनं देवतंया परि चरित॥ (७६)

अन्वारभ्योथ्सर्वाभिरेव सूर्यं भूताना् होति यदांहः सप्तवि शितश्च॥———[११]

यदुभौ देवासुरा मिथस्तेषार् सुवर्गं यद्वा अनींशानः पुरोहंविषि तेभ्यः सोत्तंरवेदिर्बुद्धं देवस्याभ्रिर् शिरो वा एकांदश॥———[१२]यदुभावित्यांह देवानां यज्ञो देवेभ्यो न रथांय यजंमानाय पुरस्तांदुर्वाचीन्नवंपश्चाशत्॥59॥ यदुभौ दुह एवैनांम्॥

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

यदुभौ विमुच्यांतिथ्यं गृंह्णीयाद्यज्ञं विच्छिन्द्याद्यदुभावविमुच्य् यथानांगतायातिथ्यं क्रियते तादृगेव तद्विमुंक्तोऽन्योऽनुङ्वान्भवृत्यविमुक्तोऽन्योऽथांतिथ्यं गृह्णति यज्ञस्य सन्तंत्यै पल्यन्वारंभते पत्नी हि पारींणह्यस्येशे पत्नियैवानुंमतं निर्वपति यद्वै पत्नी यज्ञस्यं करोतिं मिथुनं तदथो पत्निया एव (१)

पुष यज्ञस्याँन्वार्म्भोऽनंबच्छित्त्यै यावंद्भिर्वे राजांनुच्रैरागच्छंति सर्वेभ्यो वै तेभ्यं आतिथ्यं क्रियते छन्दा स्मि खलु वै सोमंस्य राज्ञोंऽनुचराण्यग्नेरांतिथ्यमंसि विष्णंवे त्वेत्यांह गायित्रया एवैतेनं करोति सोमंस्यातिथ्यमंसि विष्णंवे त्वेत्यांह त्रिष्टुमं एवैतेनं करोत्यितिथर्यासि विष्णंवे त्वेत्यांह जगेत्ये (२)

पृवैतेनं करोत्युग्नयें त्वा रायस्पोषदाब्ने विष्णंवे त्वेत्यांहानुष्टभं पृवैतेनं करोति श्येनायं त्वा सोम्भृते विष्णंवे त्वेत्यांह गायित्रया पृवैतेनं करोति पश्च कृत्वों गृह्णाति पश्चांक्षरा पृक्षिः पाङ्कों युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्मांथ्सत्याद्गांयित्रिया उंभयतं आतिथ्यस्यं क्रियत् इति यदेवादः सोमुमा (३)

अहंर्त्तस्माँद्रायित्रया उंभयतं आतिथ्यस्यं क्रियते पुरस्ताँचोपरिष्टाच् शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदांतिथ्यं नवंकपालः पुरोडाशों भवित तस्माँत्रवधा शिरो विष्यूंतत्रवंकपालः पुरोडाशों भवित ते त्रयंस्त्रिकपालास्त्रिवृता स्तोमेन सिम्मितास्तेजंस्त्रिवृत्तेजं एव यज्ञस्यं शीर्षं दंधाित नवंकपालः पुरोडाशों भवित ते त्रयंस्त्रिकपालास्त्रिवृतां प्राणेन सिम्मितास्त्रिवृद्धे (४)

प्राणिस्त्रिवृतंमेव प्राणमंभिपूर्वं यज्ञस्यं शीर्षं दंधाति प्रजापंतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदंश्ववाला ऐक्षिवी तिरश्ची यदाश्वंवालः प्रस्तरो भवंत्येक्षवी तिरश्ची प्रजापंतेरेव तचक्षुः सम्भरित देवा वै या आहंतीरजुंहवुस्ता असुरा निष्कावंमादन्ते देवाः कौर्ष्म्यंमपश्यन्कर्मृण्यों वै कर्मेनेन कुर्वीतिति ते कौर्ष्मर्यमयौन्परिधीन् (५)

अकुर्वत् तैर्वे ते रक्षा्र्ंस्यपाँघ्रत् यत्काँर्ष्मर्यमयाँः परि्धयो भवन्ति रक्षंसामपेहत्ये सङ्स्पंशयित् रक्षंसामनंन्ववचाराय न पुरस्तात्परिं दधात्यादित्यो ह्यंवोद्यन्पुरस्ताव्रक्षाः स्यपहन्त्यूर्ध्वे स्मिधावा दंधात्युपरिष्टादेव रक्षाः स्यपंहन्ति यजुंषान्यां तूष्णीमन्याम्मिथुन्त्वाय द्वे आ दंधाति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्ये ब्रह्मवादिनो वदन्ति (६)

अग्निश्च वा एतौ सोमश्च कथा सोमायातिथ्यं क्रियते नाग्नय् इति यदुग्नावृग्निम्मथित्वा प्रहरिते तेनैवाग्नयं आतिथ्यं क्रियतेऽथो खल्वांहुरग्निः सर्वा देवता इति यद्धविरासाद्याग्निम्मन्थंति हव्यायैवासंन्नाय सर्वा देवतां जनयति॥ (७)

पिनंया एव जर्गत्या आ त्रिवृद्धै पंरिधीन् वंदन्त्येकंचत्वारि ४शच॥_____

देवासुराः संयंत्ता आस्नन्ते देवा मिथो विप्रिया आस्नन्तेऽ ई न्योन्यस्मै ज्यैष्ठग्रायातिष्ठमानाः पञ्चधा व्यंक्रामन्नृग्निर्वसुंभिः सोमों रुद्रैरिन्द्रों मुरुद्धिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैस्तेऽमन्यन्तासुरिभ्यो वा इदम्भातृंव्येभ्यो रध्यामो यन्मिथो विप्रियाः

स्मो या नं इमाः प्रियास्तनुबस्ताः समर्वद्यामहे ताभ्यः स निर्ऋष्णुद्यः (८)

नः प्रथमोऽ ३ न्यौन्यस्मै द्रुह्मादिति तस्माद्यः सतानूनित्रणाम्प्रथमो द्रुह्मिति स आर्तिमार्च्छिति यत्तानूनप्र॰ संमवद्यति भ्रातृंव्याभिभूत्यै भवंत्यात्मना पराँस्य भ्रातृंव्यो भवित पश्च कृत्वोऽवं द्यति पश्चधा हि ते तथ्संम्वाद्यन्ताथो पश्चांक्षरा पङ्किः पाङ्को यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्द्व आपंतये त्वा गृह्णामीत्यांह प्राणो वै (९)

आपंतिः प्राणमेव प्रीणाति परिपतय इत्यांह मनो वै परिपतिर्मनं एव प्रीणाति तनूनम्र इत्यांह तनुवो हि ते ताः संम्वाद्यन्त शाक्करायेत्यांह शक्त्ये हि ते ताः संम्वाद्यन्त शाक्करायेत्यांह शक्त्ये हि ते ताः संम्वाद्यन्त शाक्करायेत्यांह शक्त्ये हि ते ताः संम्वाद्यन्त शक्त्यन्नोजिष्ठायेत्याहौजिष्ठ हो ते तदात्मनः सम्वाद्यन्तानाधृष्टमस्यनाधृष्यमित्याहानाधृष्ट होतदीनाधृष्यं देवानामोजेः (१०)

इत्यांह देवाना १ ह्यंतदोजों ऽभिशस्तिपा अंनभिशस्तेन्यमित्यां हाभिशस्तिपा ह्यंतदंनभिशस्तेन्यमन् मे दीक्षां दीक्षापंतिर्मन्यतामित्यांह यथायजुरेवैतद्भृतं वै देवा वर्ज्यं कृत्वा सोमंमप्रन्नन्तिकमिंव खलु वा अंस्यैतचंरन्ति यत्तांनून्न्रेणं प्रचरंन्त्य १ शुरुरेशुस्ते देव सोमा प्यांयतामित्यांह यत् (११)

पुवास्यापुवायते यन्मीयंते तदेवास्यैतेना प्याययत्या तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्रांय प्यायस्वेत्याहोभावेवेन्द्रं च सोमं चा प्याययत्या प्यायय सर्खीन्थ्यन्या मेधयेत्याहिर्त्विजो वा अस्य सर्खायस्तानेवा प्याययित स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामंशीय (१२)

इत्यांहाशिषंमेवैतामा शाँस्ते प्र वा पुतेँ उस्माल्लोकाच्यंवन्ते ये सोमंमाप्याययंन्त्यन्तिरक्षदेवत्यों हि सोम् आप्यांयित एष्टा रायः प्रेषे भगायेत्यांह द्यावांपृथिवीभ्यांमेव नंमस्कृत्यास्मिल्लाँके प्रिति तिष्ठन्ति देवासुराः संयंत्ता आसन्ते देवा बिभ्यंतोऽग्निम्प्राविंशन्तस्मांदाहुर्ग्निः सर्वां देवता इति ते (१३)

अग्निमेव वर्रूथं कृत्वासुंरानुभ्यंभवत्रुग्निमिव खलु वा एष प्र विंशति यों-ऽवान्तरदीक्षामुपैति भ्रातृंव्याभिभूत्यै भवंत्यात्मना परांस्य भ्रातृंव्यो भवत्यात्मानंमेव दीक्षयां पाति प्रजामंबान्तरदीक्षयां सन्तुराम्मेखंला॰ सुमायंच्छते प्रजा ह्यांत्मनोऽन्तंरतरा तुप्तव्रंतो भवति मदंन्तीभिर्मार्जयते निर्ह्मंग्निः शीतेन वायंति समिंद्धै या ते अग्ने रुद्रिया तुनूरित्यांह स्वयैवैनद्देवतया व्रतयति सयोनित्वाय शान्त्यै॥ (१४)

यो वा ओर्ज आह् यदंशीयेति तैंऽग्र एकांदश च॥_____[२]

तेषामसुराणान्तिस्रः पुरं आसन्नयसमय्यंवमाऽथं रज्ञताऽथ् हरिणी ता देवा जेतुन्नाशंक्रुवन्ता उपसदैवाजिंगीषुन्तस्मांदाहुर्यश्चैवं वेद् यश्च नोपुसदा वै मंहापुरं जंयन्तीति त इषुर् समंस्कुर्वताग्निमनींकुर् सोमर् शृल्यं विष्णुन्तेजंनुन्तैंऽब्रुवृन्क इमामंसिष्यतीति (१५)

रुद्र इत्यंब्रुवनुद्रो वै क्रूरः सौंऽस्युत्विति सौंऽब्रवीद्वरं वृणा अहमेव पंशूनामधिपतिरसानीति तस्माँद्रुद्रः पंशूनामधिपतिस्ताः रुद्रोऽवांसृज्थस तिस्रः पुरो भित्त्वैभ्यो लोकेभ्योऽसुरान्प्राणुंदत् यदुंपसदं उपसद्यन्ते भ्रातृंव्यपराणुत्त्यै नान्यामाहुंतिम्पुरस्तौज्जहुयाद्यद्न्यामाहुंतिम्पुरस्तौज्जहुयात् (१६)

अन्यन्मुखं कुर्याध्स्रुवेणांघारमा घारयति यज्ञस्य प्रज्ञात्यै पराङतिक्रम्यं जुहोति परांच पुवैभ्यो लोकेभ्यो यर्जमानो भ्रातृंव्यान्प्र णुंदते पुनंरत्याक्रम्योपसदं जुहोति प्रणुद्यैवैभ्यो लोकेभ्यो भातृंव्याञ्चित्वा भांतृव्यलोकम्भ्यारोहित देवा वै याः प्रातरुप्सदं उपासीदन्नह्रस्ताभिरसुंरान्प्राणुंदन्त याः साय॰ रात्रियै ताभिर्यथ्सायम्प्रांतरुपसर्दः (१७)

उपसुद्यन्तेऽहोरात्राभ्यामेव तद्यजेमानो भ्रातृंब्यान्प्र णुंदते याः प्रातर्याज्याः स्युस्ताः सायम्पुरोनुवाक्याः कुर्यादयातयामत्वाय तिस्र उपसद उपैति त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्प्रीणाति षट्थ्सम्पंद्यन्ते षड्वा ऋतवं ऋतूनेव प्रीणाति द्वादंशाहीने सोम् उपैति द्वादंशु मासाः संवथ्सरः संवथ्सरमेव प्रीणाति चतुर्वि शतिः सम् (१८)

पद्यन्ते चतुर्वि शतिरर्धमासा अर्धमासानेव प्रीणात्याराँग्रामवान्तरदीक्षामुपेयाद्यः कामर्येतास्मिन्में लोकेऽर्धुक स्यादित्येक्मग्रेऽथे द्वावथ त्रीनर्थ चुतुरं एषा वा आराँग्रावान्तरदीक्षास्मित्रेवास्मैं लोकेऽर्धुकम्भवति पुरोवंरीयसीमवान्तरदीक्षामुपेयाद्यः कामयेतामुष्मिन्मे लोकेऽर्धुकः स्यादिति चतुरोऽग्रेऽथ त्रीनथ द्वावथैकंमेषा पुरोवंरीयस्यवान्तरदीक्षामुष्मिन्नेवासमै लोकेऽर्धुकम्भवति॥ (१९)

असिष्यतीति जुहुयाथ्सायम्प्रांतरुप्सद्श्चतुर्वि शतिः सश्चतुरोऽग्रे षोर्डश च॥———[३]

सुवर्गं वा एते लोकं यन्ति य उपसदं उपयन्ति तेषां य उन्नयंते हीयंत एव स नोदंनेषीति सूँन्नीयमिव यो वै स्वार्थेता यता अगन्तो हीयंत उत स निष्ट्यायं सह वंसति तस्मांथ्सकृदुत्रीय नापरमुन्नयेत दुध्नोन्नयेतैतद्वै पंशूना र रूप र रूपेणैव पुशूनवं रुन्द्धे (२०)

युज्ञो देवेभ्यो निर्लायत विष्णूं रूपं कृत्वा स पृथिवीम्प्राविंशृत्तं देवा हस्तौ-थ्स् रभ्यैच्छुन्तमिन्द्रं उपर्युप्यत्यंक्राम्थ्सौऽब्रवीत्को मायमुपर्युप्यत्यंक्रमीदित्यहं दुर्गे हन्तेत्यथ् कस्त्वमित्यहं दुर्गादाहुर्तेति सोंऽब्रवीद्दुर्गे वै हन्तांवोचथा वराहोंऽयं वाममोषः (२१)

सप्तानां गिरीणाम्परस्तांद्वित्तं वेद्यमसुराणाम्बिभर्ति तं जीह यदि दुर्गे हन्तासीति स दंर्भपुञ्जीलमुद्दृह्यं सप्त गिरीन्भित्त्वा तमंहन्थ्सौं ऽब्रवीदुर्गाद्वा आहंर्तावोचथा एतमा हरेति तमें भ्यो यज्ञ एव यज्ञमाहंरुद्यत्तद्वित्तं वेद्यमसुंराणामविन्दन्त तदेकं वेद्यै वेदित्वमसुंराणाम् (२२)

वा इयमग्रं आसीद्यावदासीनः परापश्यंति तावद्देवानान्ते देवा अंब्रुवन्नस्त्वेव नी-ऽस्यामपीति कियंद्वो दास्याम इति यावंदिय संलावृकी त्रिः पंरिकामंति तावंन्नो दत्तेति स इन्द्रंः सलावृकी रूपं कृत्वेमां त्रिः सुर्वतुः पर्यकामृत्तदिमामंविन्दन्तु यदिमामविन्दन्तु तद्वेद्यैं वेदित्वम् (२३)

सा वा इयर सर्वेव वेदिरियंति शक्ष्यामीति त्वा अंवमायं यजन्ते त्रिरशत्पदानि पृश्चात्तिरश्ची भवति षद्गिर्श्यात्प्राची चतुर्विरश्चितः पुरस्तातिरश्ची दशंदश् सम्पंद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्व उद्धन्ति यदेवास्यां अमेध्यं तदपं हन्त्युद्धन्ति तस्मादोषंधयः परां भवन्ति बुर्हिः स्तृंणाति तस्मादोषंधयः पुनरा भंवन्त्युत्तरम्बर्हिषं उत्तरबुर्हिः स्तृंणाति प्रजा वै बुर्हिर्यजंमान उत्तरबुर्हिर्यजंमानमेवायंजमानादुत्तंरं करोति तस्माद्यजंमानोऽयंजमानादुत्तंरः॥ (२४)

रुन्धे वामुमोषो वैदित्वमस्रीराणां वेदित्वं भवन्ति पश्चवि शतिश्च॥ [8] यद्वा अनींशानो भारमांदत्ते वि वै स लिंशते यद्वादंश साह्रस्योपसदः स्युस्तिस्रीं-ऽहीनंस्य यज्ञस्य विलोम क्रियेत तिस्र एव साह्रस्योपसदो द्वादंशाहीनंस्य यज्ञस्यं सवीर्यत्वायाथो सलोम क्रियते वृथ्सस्यैकः स्तनी भागी हि सोऽथैक्ड् स्तने वृतमुपैत्यथ् द्वावथ् त्रीनथं चृतुरं एतद्वै (२५)

क्षुरपंवि नामं व्रतं येन् प्र जातान्त्रातृंव्यात्रुदते प्रति जिन्घ्यमाणानथो कनीयसैव भूय उपैति चतुरोऽग्रे स्तनान्व्रतमुपैत्यथ् त्रीनथ् द्वावथैकंमेतद्वे सुंजघनं नामं व्रतं तपस्यर्थ सुवर्ग्यमथो प्रैव जायते प्रजयां पृशुभिर्यवाग् राजन्यस्य व्रतं कूरेव वै यंवागः कूर इंव (२६)

राज्ञन्यों वर्ज्ञस्य रूप॰ समृद्धा आमिक्षा वैश्यंस्य पाकय्ज्ञस्यं रूपम्पुष्ट्ये पयौं ब्राह्मणस्य तेजो वै ब्राह्मणस्तेजः पयस्तेजंसैव तेजः पयं आत्मन्यत्तेऽथो पयंसा वै गर्भा वर्धन्ते गर्भ इव खलु वा एष यद्दीक्षितो यदंस्य पयौं व्रतम्भवंत्यात्मानंमेव तद्वंर्धयिति त्रिवंतो वै मनुंरासीद्विवंता असुंरा एकंब्रताः (२७)

देवाः प्रातर्मध्यन्दिने सायं तन्मनौंर्वृतमांसीत्पाकयुज्ञस्यं रूपम्पुष्टौँ प्रातश्चं सायं चासुंराणां निर्मध्यं क्षुधो रूपं तत्सते परांभवन्मध्यन्दिने मध्यरात्रे देवानां तत्स्ते- ऽभवन्थ्सुव्गं लोकमायन् यदस्य मध्यन्दिने मध्यरात्रे व्रतम्भवंति मध्यतो वा अन्नेन भुञ्जते मध्यत एव तद्जीं धत्ते भ्रातृंव्यामिभूत्यै भवंत्यात्मनां (२८)

पराँऽस्य भ्रातृंच्यो भवित् गर्भो वा एष यद्दीक्षितो योनिर्दीक्षितिविम्ति यद्दीक्षितो दीक्षितिविम्ति यद्दीक्षितो दीक्षितिविम्तित्रप्रवसेद्यथा योनेर्गर्भः स्कन्दिति तादृगेव तन्न प्रवस्तव्यंमात्मनो गोपीथायैष वै व्याघ्रः कुलगोपो यद्ग्रिस्तस्माद्यद्दीक्षितः प्रवसेथ्स एनमीश्वरोऽन्त्थाय हन्तोर्न प्रवस्तव्यंमात्मनो गुप्त्यै दक्षिणतः शंय एतद्वै यजंमानस्यायतंन् स्व एवायतंने शयेऽग्निमभ्यावृत्यं शये देवतां एव यज्ञमंभ्यावृत्यं शये॥ (२९)

पुतद्वै क्रूर इवैकंब्रता आत्मना यजंमानस्य त्रयोदश च॥————[५]

पुरोहंविषि देवयजंने याजयेद्यं कामयेतोपैनमुत्तरो युज्ञो नंमेद्भि सुंवर्गं लोकं जंयेदित्येतद्वै पुरोहंविर्देवयजंनं यस्य होतां प्रातरनुवाकमंनुब्रुवन्नग्निम्प आंदित्यम्भि विपश्यत्यपैनमुत्तरो युज्ञो नंमत्यभि सुंवर्गं लोकं जंयत्याप्ते देवयजंने याजयेद्भातृंव्यवन्तम्पन्थां वाधिस्पुर्शयेत्कर्तं वा यावन्नानंसे यात्वै (३०)

न रथायैतद्वा आप्तं देवयजंनमाप्नोत्येव भ्रातृंच्यं नैन्म्भ्रातृंच्य आप्नोत्येकोंन्नते देवयजंने याजयेत्पशुकांमुमेकोंन्नताद्वे देवयजंनादिङ्गिरसः पृशूनंमृजन्तान्तरा संदोहिविर्धाने उन्नतः स्यादेतद्वा एकोन्नतं देवयजंनम्पशुमानेव भविति त्र्यंन्नते देवयजंने याजयेथ्सुवर्गकांमृत्र्यंन्नताद्वे देवयजंनादिङ्गिरसः सुवर्गं लोकमायन्नन्तराहंवनीयं च हिवर्धानं च (३१)

उन्नतः स्यादन्तरा हंविधानं च सदेश्चान्तरा सदेश्च गार्हपत्यं चैतद्वे त्र्युन्नतं देवयर्जनः सुवर्गमेव लोकमेति प्रतिष्ठितं देवयर्जनः याजयेत्प्रतिष्ठाकांममेतद्वे प्रतिष्ठितं देवयर्जनं याजयेत्प्रतिष्ठाकांममेतद्वे प्रतिष्ठितं देवयर्जनं यथ्सर्वतः स्मम्प्रत्येव तिष्ठति यत्रान्याअन्या ओषंधयो व्यतिषक्ताः स्युस्तद्यांजयेत्पृशुकांममेतद्वे पंशूनाः रूपः रूपेणैवास्मै पृशून (३२)

अवं रुन्द्वे पशुमानेव भेवति निर्ऋंतिगृहीते देवयजंने याजयेद्यं कामयेत् निर्ऋंत्यास्य यज्ञं ग्रांहयेयमित्येतद्वे निर्ऋंतिगृहीतं देवयजंनं यथ्सदृश्यें सृत्यां ऋक्षन्निर्ऋंत्यैवास्यं यज्ञं ग्रांहयति व्यावृंत्ते देवयजंने याजयेद्यावृत्कांमं यम्पात्रं वा तत्त्पं वा मीमार्श्सरन्प्राचीनंमाहवनीयात्प्रवृणः स्यात्प्रतीचीनं गार्हंपत्यादेतद्वे व्यावृंत्तं देवयजंनं वि पाप्मना भ्रातृंव्येणा वंतिते नैनम्पात्रे न तत्त्पं मीमार्श्सन्ते कार्ये देवयजंने याजयेद्भृतिकामं कार्यो वे पुरुषो भवंत्येव॥ (३३)

यात्वै हंवि्र्धानंश्च पुशून्पाप्मनाऽष्टादंश च॥------

<u> [ξ]</u>

तेभ्यं उत्तरवेदिः सि्र्ही रूपं कृत्वोभयानन्त्रापुक्रम्यांतिष्ठत्ते देवा अमन्यन्त यत्रान् वा इयमुपाव्थस्यति त इदम्भविष्यन्तीति तामुपामन्त्रयन्त साम्नविद्धरं वृणे सर्वान्मया कामान्व्यंश्ववथ् पूर्वां तु माऽग्नेराहुंतिरश्ववता इति तस्मादुत्तरवेदिम्पूर्वामुग्नेर्व्याघारयन्ति वारंवृत्र् ह्यंस्ये शम्यया परि मिमीते (३४)

मात्रैवास्यै साऽथीं युक्तेनैव युक्तमवं रुन्द्धे वित्तायंनी मेऽसीत्याह वित्ता ह्येनानावित्तिक्तायंनी मेऽसीत्याह तिकान् ह्येनानावदवंतान्मा नाथितमित्याह नाथितान् ह्येनानावदवंतान्मा व्यथितमित्याह व्यथितान् ह्येनानाविद्विदेरग्निर्नभो नामं (३५)

अग्नें अङ्गिर् इति त्रिर्हंरित य एवैषु लोकेष्व्ययस्तानेवावं रुन्द्धे तूष्णीं चंतुर्थे १ हंर्त्यनिरुक्तमेवावं रुन्द्धे सिर्हीरंसि महिषीर्सीत्यांह सिर्हीर्ह्मेषा रूपं कृत्वोभयानन्तराप्त्रम्यातिष्ठदुरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपंतिः प्रथतामित्यांह् यजमानमेव प्रजयां पृशुभिः प्रथयति ध्रुवा (३६) असीति स॰ हंन्ति धृत्यै देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्वेत्यवं चोक्षति प्र चं किरति शुद्धां इन्द्रघोषस्त्वा वसुंभिः पुरस्तांत्पात्वित्यांह दिग्भ्य एवेनां प्रोक्षंति देवाङ्श्चेद्रंत्तरवेदिरुपावंवर्तीहैव वि जंयामहा इत्यसुंरा वर्ज्रमुद्यत्यं देवानुभ्यायन्त तानिन्द्रघोषो वसुंभिः पुरस्तादपं (३७)

अनुद्त मनोजवाः पितृभिर्दक्षिणृतः प्रचेता रुद्रैः पृश्चाद्विश्वकंमीदित्यैरुंत्तर्तो यदेवम्तत्तरेवेदिं प्रोक्षितिं दिग्भ्य एव तद्यजंमानो भ्रातृंव्यान्प्रणुंदत् इन्द्रो यतींन्थ्सालावृकेभ्यः प्रायंच्छ्तान्दिक्षणृत उत्तरवेद्या आंद्न् यत्प्रोक्षंणीनामुच्छिष्यंत् तद्देक्षिणृत उत्तरवेद्ये निनयेद्यदेव तत्रं कूरं तत्तेनं शमयित् यं द्विष्यात्तं ध्यायेच्छुचैवैनमर्पयिति॥ (३८)

मिमीते नामं ध्रुवाऽपं शुचा त्रीणिं च॥————[७

सोत्तंरवेदिरंब्रवीथ्सर्वान्मया कामान्व्यंश्ववथेति ते देवा अंकामयन्तासुंगुन्आतृंव्यान्भि भंवेमेति तेंऽज्ञहतुः सिर्होरंसि सपत्नसाही स्वाहेति तेऽसुंगुन्आतृंव्यान्भ्यंभवन्ते-ऽसुंगुन्आतृंव्यानभिभूयांकामयन्त प्रजां विन्देमहीति तेंऽज्ञहतुः सिर्होरंसि सुप्रजाविनः स्वाहेति ते प्रजामंविन्दन्त ते प्रजां वित्त्वा (३९)

अकाम्यन्त पृशून् विन्देम्हीति तेंऽजुहवुः सि्र्हीरंसि रायस्पोष्विनः स्वाहेति ते पृशूनंविन्दन्त ते पृशून् वित्त्वाऽ कामयन्त प्रतिष्ठां विन्देम्हीति तेंऽजुहवुः सि्र्हीरंस्यादित्यविनः स्वाहेति त इमाम्प्रंतिष्ठामंविन्दन्त त इमाम्प्रंतिष्ठां वित्त्वाकांमयन्त देवतां आशिष उपयामेति तेंऽजुहवुः सिर्रहीरस्या वह देवान्देवयते (४०)

यजंमानाय स्वाहेति ते देवतां आशिष् उपांयन्पश्च कृत्वो व्याघांरयित पश्चांक्षरा पृक्किः पाङ्की यज्ञो यज्ञमेवावं रुन्द्धेऽक्ष्णया व्याघांरयित तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये भूतेभ्यस्त्वेति स्रुचमुद्गृह्णाति य एव देवा भूतास्तेषान्तद्भांगुधेयन्तानेव तेनं प्रीणाति पौतुंद्रवान्परिधीन्परिं दधात्येषाम् (४१)

लोकानां विधृत्या अग्नेस्नयो ज्यायार्श्सो भ्रातंर आसन्ते देवेभ्यों हृव्यं वहंन्तः प्रामीयन्त सौंऽग्निरंबिभेदित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स निलायत स यां वनस्पतिष्ववंसत्ताम्पूतुंद्रौ यामोषंधीषु तार सुंगन्धितेजंने याम्पृशुषु ताम्पेत्वंस्यान्तरा शृङ्गे तं देवताः प्रैषंमैच्छुन्तमन्वंविन्दन्तमंत्रुवन्न (४२)

उपं न आ वर्तस्व ह्व्यं नों वहेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणै यदेव गृहीतस्याहुंतस्य

बिहःपिरिधि स्कन्दात्तन्मे भ्रातृंणाम्भागुधेयंमस्दिति तस्माद्यद्गृंहीतस्याहुंतस्य बिहःपिरिधि स्कन्दिति तेषान्तद्भांगुधेयं तानेव तेनं प्रीणाति सोंऽमन्यतास्थन्वन्तों मे पूर्वे भ्रातंरः प्रामेषतास्थानि शातया इति स यानि (४३)

अस्थान्यशांतयत् तत्पूतुंद्वभवद्यन्मार्सममुपंमृतं तद्गुल्गुंलु यदेतान्थ्संम्भारान्थ्सम्भरंत्यग्निमेव तथ्सम्भरत्यग्नेः पुरीषम्सीत्यांहाग्नेर्ह्यंतत्पुरीषं यथ्संभारा अथो खल्वांहुरेते वावैनं ते भ्रातंरः परि शेरे यत्पौतुंद्रवाः परिधय इति॥ (४४)

वित्त्वा देवयुत एषामंब्रुवृन् यानि चतुंश्चत्वारि १ शच॥

-[2]

बुद्धमवं स्यित वरुणपाशादेवैनें मुश्चित् प्र णेंनेक्ति मेध्यें एवैनें करोति सावित्रियर्चा हुत्वा हंविधीने प्र वंतियित सिवृत्पप्रंसूत एवैने प्र वंतियित वरुणो वा एष दुर्वागुंभयतों बुद्धो यदक्षः स यदु्ध्सर्जेद्यजंमानस्य गृहान्भ्युथ्संर्जेथ्सुवाग्देव दुर्या् आ वदेत्यांह गृहा व दुर्याः शान्त्ये पत्नीं (४५)

उपांनिक्त् पत्नी हि सर्वस्य मित्रिम्मित्रत्वाय यद्वै पत्नी यज्ञस्य करोति मिथुनं तदथो पत्निया एवेष यज्ञस्यान्वार्म्भोऽनंबच्छित्त्यै वर्त्मना वा अन्वित्यं यज्ञ रक्षार्रसि जिघारसन्ति वैष्ण्वीभ्यामृग्भ्यां वर्त्मनोर्जुहोति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञादेव रक्षार्थस्यपं हन्ति यदंष्व्युरंन्न्ग्रावाहुंतिञ्जह्याद्भ्याँऽष्व्युः स्याद्रक्षार्रसि यज्ञ रहेन्युः (४६)

हिरंण्यमुपास्यं जुहोत्यग्निवत्येव जुंहोति नान्भौंऽध्वर्युर्भवंति न यज्ञ र रक्षारंसि घ्रन्ति प्राची प्रेतंमध्वरं कृत्पयंन्ती इत्यांह सुवर्गमेवैने लोकं गंमयत्यत्रं रमेथां वर्ष्मन्पृथिव्या इत्यांह् वर्ष्म ह्येतत्पृथिव्या यद्देवयजंन् शिरो वा पृतद्यज्ञस्य यद्धंविर्धानंन्द्वि वां विष्णवत वां पृथिव्याः (४७)

इत्याशीर्पदयुची दक्षिणस्य हिव्धानस्य मेथीं नि हंन्ति शीर्षत एव युज्ञस्य यर्जमान आशिषोऽवं रुन्द्धे दुण्डो वा औप्रस्तृतीयस्य हिव्धानस्य वषद्कारेणाक्षंमच्छिन्द्यत्तृतीयं छुदिर्हिव्धानयोश्दाह्वियतं तृतीयंस्य हिव्धानस्यावंश्र्द्धे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविधानं विष्णों र्राटंमिस् विष्णोः पृष्ठम्सीत्यांह् तस्मादितावृद्धा शिरो विष्यूतं विष्णोः स्यूरंसि विष्णोंधुवम्सीत्यांह वैष्णवश् हि देवतया हिव्धानं यम्प्रथमं ग्रन्थिं ग्रंश्रीयाद्यतं न

विसु सयेदमें हेनाध्वर्युः प्र मीयेत तस्माथ्स विस्नस्यः॥ (४८)

पत्नी हन्युर्वा पृथिव्या विर्घ्यूतं विष्णोः षड्वि १ शतिश्च॥————[९]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्व इत्यभ्रिमा दंत्ते प्रसूँत्या अश्विनौर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्तांभ्यामित्यांहु यत्ये वज्रं इव वा एषा यदभ्रिरभ्रिरिस् नारिर्सीत्यांहु शान्त्ये काण्डेंकाण्डे वे क्रियमांणे यृज्ञ रक्षारंसि जिघारसन्ति परिलिखित्र रक्षः परिलिखिता अरांतय इत्यांह रक्षंसामपंहत्ये (४९)

ड्दमृह र रक्षंसो ग्रीवा अपि कृन्तामि यौं उस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इत्यांह् द्वौ वाव पुरुषो यं चैव द्वेष्टि यश्चें चं द्वेष्टि यश्चें चेव द्वेष्टि यश्चें चेव देष्टि तयोरेवानंन्तरायं ग्रीवाः कृन्तिति दिवे त्वान्तिरक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेत्यांहैभ्य एवैना ह्यों केभ्यः प्रोक्षंति पुरस्तादुर्वाचीं प्रोक्षंति तस्मात् (५०)

प्रस्तांद्र्वाचींम्मनुष्यां ऊर्ज्मुपं जीवन्ति ऋूरमिव वा एतत्करिति यत्खनंत्यपोऽवं नयति शान्त्ये यवंमतीरवं नयत्यूर्वे यव ऊर्गुदुम्बरं ऊर्जेवोर्ज् समर्धयिति यजंमानेन् सिम्मृतौदुंम्बरी भवति यावांनेव यजंमान्स्तावंतीमेवास्मिन्नूर्जं दधाति पितृणार सदंनम्सीतिं बर्हिरवं स्तृणाति पितृदेवत्यम् (५१)

ह्यंतद्यन्निखांतं यद्वर्हिरनंवस्तीर्य मिनुयात्पितृदेवृत्यां निखांता स्याद्वर्हिरंवृस्तीर्यं मिनोत्यस्यामेवैनांमिनोत्यथौं स्वारुहंमेवैनां इरोत्युद्दिव है स्तभानान्तरिक्षं पृणेत्यांहेषाङ्कौंकानां विधृंत्यै द्युतानस्त्वां मारुतो मिनोत्वित्यांह द्युतानो हं स्म वै मारुतो देवानामौद्धंम्बरीम्मिनोति तेनैव (५२)

पुनाम्मिनोति ब्रह्मवर्निं त्वा क्षत्रविनिमित्यांह यथायजुर्वेतद्भृतेनं द्यावापृथिवी आ पृणेथामित्यौद्रेम्बर्यां जुहोति द्यावांपृथिवी एव रसेनानक्त्यान्तम्नववंस्रावयत्यान्तमेव यजंमानं तेजंसाऽनक्त्यैन्द्रम्सीतिं छुदिरिधे नि दंधात्यैन्द्र॰ हि देवतंया सदों विश्वजनस्यं छायेत्यांह विश्वजनस्य ह्येषा छाया यथ्सदो नवंछिद (५३)

तेर्जस्कामस्य मिनुयात्रिवृता स्तोमेन सम्मित्नतेर्जस्त्रिवृत्तेज्स्व्येव भेवत्येकां-दशछदीन्द्रियकांम्स्यैकांदशाक्षरा त्रिष्ठगिन्द्रियं त्रिष्ठगिन्द्रियाव्येव भेवति पश्चंदशछिद् भातृंव्यवतः पश्चदशो वज्रो भातृंव्याभिभूत्यै सप्तदंशछिद प्रजाकांमस्य सप्तद्शः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्या एकविरशतिछिद प्रतिष्ठाकांमस्यैकविर्शः स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या उदरं वै सद् ऊर्गुंदुम्बरों मध्यत औदुंम्बरीम्मिनोति मध्यत एव प्रजानामूर्जं दधाति तस्मात् (५४)

मध्यत ऊर्जा भुंञ्जते यजमानलोके वै दक्षिणानि छुदी १ षि भ्रातृव्यलोक उत्तरिण दिक्षिणान्युत्तरिण करोति यजमानमेवायंजमानादुत्तरे करोति तस्माद्यजमानोऽयंजमानादुत्तरे उन्तर्वृतान्करेरोति व्यावृत्त्ये तस्मादरण्यं प्रजा उपं जीवन्ति परि त्वा गिर्वणो गिर् इत्यांह यथायुजुरेवैतदिन्द्रंस्य स्यूरसीन्द्रंस्य भ्रुवम्सीत्यांहुन्द्र हे देवत्या सदो यम्प्रंथमं ग्रन्थिं ग्रंश्चीयाद्यत्तं न विस्रुर्सयेदमेहेनाध्वर्युः प्र मीयेत तस्माथ्स विस्रस्यः॥ (५)

अपंहत्यै तस्मांत्पितृदेवृत्यंन्तेनैव नवंछिद् तस्माथ्सदः पश्चंदश च॥-----[१०]

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्वंविर्धानं प्राणा उंपरवा हंविर्धानं खायन्ते तस्माँच्छी्र्षन्प्राणा अधस्ताँत्खायन्ते तस्मांद्धस्ताँच्छी्र्ष्णः प्राणा रंक्षोहणां वलगृहनों वैष्णवान्खंनामीत्यांह वैष्णवा हि देवतंयोपर्वा असुंरा वै निर्यन्तों देवानां प्राणेषुं वलगात्र्यंखन्नतान्बांहुमात्रे- उन्वंविन्दन्तस्माँद्वाहुमात्राः खांयन्त इदमहं तं वलगमुद्वंपामि (५६)

यं नंः समानो यमसंमानो निच्खानेत्यांहु द्वौ वाव पुरुषौ यश्चैव संमानो यश्चासंमानो यमेवास्मै तौ वेलुगं निखनंतुस्तमेवोद्वंपिति सं तृंणिति तस्माथ्सन्तृंण्णा अन्तर्तः प्राणा न सिम्निनित्ति तस्मादसंस्मिन्नाः प्राणा अपोऽवं नयित तस्मादार्द्रा अन्तर्तः प्राणा यवमतीरवं नयित (५७)

ऊर्ग्वे यवंः प्राणा उपर्वाः प्राणेष्वेवोर्जं दधाति ब्र्हिरवं स्तृणाति तस्मौल्लोम्शा अन्तर्तः प्राणा आज्येन व्याघारयित तेजो वा आज्यें प्राणा उपर्वाः प्राणेष्वेव तेजों दधाति हनू वा एते यज्ञस्य यदिधिषवंणे न सं तृण्त्यसंतृण्णे हि हनू अथो खलुं दीर्घसोमे सुन्तृह्ये धृत्ये शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदिधिधानम् (५८)

प्राणा उंपर्वा हर्नू अधिषवंणे जिह्वा चर्म ग्रावांणो दन्ता मुखंमाहवनीयो नासिंकोत्तरवेदिरुदर्भ सदों यदा खलु वै जिह्वयां दथ्स्वधि खादत्यथ् मुखं गच्छति यदा मुखं गच्छत्यथोदरं गच्छति तस्माँद्धविर्धाने चर्मन्नधि ग्रावंभिरभिषुत्यांहवनीयें हुत्वा प्रत्यश्चं प्रेत्य सदंसि भक्षयन्ति यो वै विराजों यज्ञमुखे दोहं वेदं दुह एवैनांमियं वै विराद्गस्यैं त्वक्रमोंधोऽधिषवंणे स्तनां उपर्वा ग्रावांणो वथ्सा ऋत्विजों दुहन्ति सोमः पयो य एवं वेदं दुह एवैनाँम्॥ (५९)

वृपामि यवमतीरवं नयति हिवधनिमेव त्रयोवि १शतिश्च॥———[११]

चात्वांलाथ्सुवर्गाय् यद्वैसर्जुनानिं वैष्ण्व्यर्चा पृथिव्यै साध्या इषे त्वेत्यग्निना पर्यंग्नि पृशोः पृशुमालभ्य मेदंसा सुचावेकांदश॥——[१२]चात्वांलाद्देवानुपैतिं मुश्चति प्रह्रियमांणाय् पर्यग्नि पृशुमालभ्य चतुंष्पादो द्विषंष्टिः॥62॥ चात्वांलात्पृशुषुं दधाति॥

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

चात्वांलाद्धिष्णियानुपं वपित् योनिर्वे यज्ञस्य चात्वांलं यज्ञस्यं सयोनित्वायं देवा वै यज्ञं पराजयन्त तमाग्नींभात्पुन्रपांजयन्नेतद्वे यज्ञस्यापंराजितं यदाग्नींभ्राद्धिष्णियान् विहरंति यदेव यज्ञस्यापंराजितं ततं एवैन्म्पुनंस्तन्ते पराजित्येव खलु वा एते यन्ति ये बंहिष्पवमान सर्पन्ति बहिष्पवमाने स्तुते (१)

आहाग्नींद्ग्रीन् वि हंर ब्र्हिः स्तृंणाहि पुरोडाशा ४ अर्लं कुर्विति यज्ञमेवापिजित्य पुनंस्तन्वाना यन्त्यङ्गारेर्द्वे सर्वने वि हंरति श्लाकांभिस्तृतीयर्थ सशुकृत्वायाथो सम्भंरत्येवैनृद्धिणिया वा अमुष्मिंश्लोंके सोमंमरक्षन्तेभ्योऽिय सोम्माहंर्न्तमंन्ववायन्तं पर्यविश्वन् य एवं वेदं विन्दतें (२)

परिवेष्टार्न्ते सोंमपीथेन् व्यार्ध्यन्त् ते देवेषुं सोमपीथमैंच्छन्त् तां देवा अंब्रुवन्द्वेद्वे नामंनी कुरुध्वमथ् प्र वापस्यथ् न वेत्यग्नयो वा अथ् धिष्णियास्तस्माहिनामां ब्राह्मणोऽर्धुकस्तेषां ये नेदिष्टम्पूर्यविश्वन्ते सोंमपीथं प्राप्नुवन्नाहवनीयं आग्नीधीयो होत्रीयो मार्जालीयस्तस्मात्तेषु जुह्वत्यितिहाय् वषद्वरोति वि हि (३)

पृते सोमपीथेनार्ध्यन्त देवा वै याः प्राचीराहुंतीरजुंहबुर्ये पुरस्तादसुंरा आस्ननाः स्ताभिः प्राणुंदन्त याः प्रतीचीर्ये पृश्चादसुंरा आस्नताः स्ताभिरणानुदन्त प्राचीर्न्या आहुंतयो हूयन्ते प्रत्यक्वासीनो धिष्णियान्व्याघारयति पृश्चाचैव पुरस्तांच यजमानो भ्रातृंव्यान्त्र णुंदते तस्मात्परांचीः प्रजाः प्र वीयन्ते प्रतीचीः (४)

जायन्ते प्राणा वा एते यद्धिष्णिया यदेष्वर्यः प्रत्यिङ्घिष्णियानित्सर्पेत्प्राणान्थसं कंर्षेत्प्रमायुंकः स्यान्नाभिवां एषा यज्ञस्य यद्धोतोष्वः खलु वै नाभ्ये प्राणोऽवांङपानो यदेष्वर्युः प्रत्यङ्कोतांरमित्सर्पेदपाने प्राणं देष्यात् प्रमायुंकः स्यान्नाष्वर्युरुपं गायेद्वाग्वींयर्गे वा अष्वर्युर्यदेष्वर्युरुप्पगायेद्वद्भात्रे (५)

वाच् सम्प्र यंच्छेदुप्दासुंकास्य वाख्स्याँद्वह्मवादिनों वदन्ति नासईस्थिते सोमैंऽध्वर्यः प्रत्यङ्ख्सदोऽतींयाद्यं कथा दाँक्षिणानि होतुंमेति यामो हि स तेषां कस्मा अहं देवा यामं वायामं वान् ज्ञास्यन्तीत्युत्तंरेणाग्रींग्रं प्रीत्यं जुहोति दाक्षिणानि न प्राणान्थ्सं कंर्षित् न्यंन्ये धिष्णिया उप्यन्ते नान्ये यात्रिवपंति तेन तान्ग्रींणाति यात्र निवपंति यदंनुदिशति तेन तान्॥ (६)

स्तुते बिन्दते हि वीयन्ते प्रतीचीरुद्गात्र उप्यन्ते चतुर्दश च॥———[१]

सुवर्गाय वा एतानि लोकायं हूयन्ते यद्वैसर्जुनानि द्वाभ्यां गार्हंपत्ये जुहोति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्या आग्नीप्रे जुहोत्त्यन्तिरिक्ष एवा क्रमत आहवनीयं जुहोति सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित देवान् वै सुवर्गं लोकं यतो रक्षाः स्यजिघाः सन्ते सोमेन राज्ञा रक्षाः स्यप्हत्याप्तुमात्मानं कृत्वा सुवर्गं लोकमायत्रक्षंसामनुपलाभायात्तः सोमो भवत्यथं (७)

वैसर्जुनानि जुहोति रक्षंसामपंहत्यै त्व॰ सोम तन्कृज्य इत्यांह तन्कृद्धीष द्वेषोंभ्यो-ऽन्यकृतेभ्य इत्यांहान्यकृतानि हि रक्षाईस्युरु यन्तासि वर्रूथमित्याहोरु णंस्कुधीति वावैतदांह जुषाणो अप्तराज्यस्य वेत्वित्यांहाप्तुमेव यर्जमानं कृत्वा सुंवर्गं लोकं गमयित रक्षंसामनुंपलाभाया सोमं ददते (८)

आ ग्राच्ण् आ वांय्व्यांन्या द्रोणकल्शमृत्पत्नीमा नंयन्त्यन्वनारेसि प्र वंर्तयन्ति यावंदेवास्यास्ति तेनं सह सुंवर्गं लोकमेति नयंवत्यर्चाग्रींप्रे जुहोति सुवर्गस्यं लोकस्याभिनींत्ये ग्राच्णों वाय्व्यानि द्रोणकल्शमाग्रींप्र उपं वासयति वि ह्येनं तैर्गृह्णते यथ्सहोपंवासयेदपुवायेतं सौम्यर्चा प्र पांदयति स्वयां (९)

पुवैनं देवतंया प्र पांदयत्यदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद् आ सीदेत्यांह यथायुजुरेवैतद्यजंमानो वा एतस्यं पुरा गोप्ता भवत्येष वो देव सवितः सोम् इत्यांह सवितृप्रंसूत पुवैनं देवतांभ्यः सम्प्र यंच्छत्येतत्त्वः सोम देवो देवानुपांगा इत्यांह देवो ह्येष सन् (१०)

देवानुपैतीदमहम्मंनुष्यों मनुष्यांनित्यांह मनुष्यो ३ ह्यंष सन्मंनुष्यांनुपैति यदेतद्यजुर्न ब्रूयादप्रंजा अपृशुर्यजंमानः स्याध्सह प्रजयां सह रायस्पोषेणेत्यांह प्रजयेव पृशुभिः सहेमं लोकमुपावंतिते नमीं देवेभ्य इत्यांह नमस्कारो हि देवानाई स्वधा पितृभ्य इत्यांह स्वधाकारो हि (११)

पितृणामिदमहं निर्वर्रणस्य पाशादित्यांह वरुणपाशादेव निर्मुच्यतेऽग्ने व्रतपत आत्मनः पूर्वा तनूरादेयेत्यांहुः को हि तद्वेद यद्वसीयान्थ्यते वशे भूते पुनेर्वा ददांति न वेति ग्रावांणो वै सोमंस्य राज्ञों मलिस्नुसेना य एवं विद्वान्ग्राव्णण आग्नीप्र उपवासयंति नैनंम्मलिस्नुसेना विन्दित॥ (१२)

अर्थ ददते स्वया सन्थ्स्वंधाकारो हि विन्दति॥————[२]

वैष्ण्व्यर्चा हुत्वा यूपमच्छैति वैष्ण्वो वे देवतंया यूपः स्वयैवेनं देवत्याच्छैत्यत्यन्यानगां नान्यानुपांगामित्याहाति ह्यांन्यानेति नान्यानुपैत्यर्वाक्ता परैरविदम्परोऽवंरैरित्यांहार्वाग्य्येनं परैंविंन्दितं प्रोवंरै्स्तं त्वां जुषे (१३)

वैष्ण्वं देवयुज्याया इत्यांह देवयुज्यायै ह्येनं जुषते देवस्त्वां सिवृता मध्वानक्तित्यांह् तेजंसैवैनमम्त्त्त्योषंधे त्रायंस्वेन् स्वधिते मैनर् हिरसीरित्यांह् वज्रो वे स्वधितिः शान्त्यै स्वधितेर्वृक्षस्य विभ्यंतः प्रथमेन शकंलेन सह तेजः परा पतित् यः प्रथमः शकंलः परापतेत्तमप्या हेर्थ्सतेजसम् (१४)

पुवैनुमा हंरतीमे वै लोका यूपौत्प्रयतो बिभ्यति दिवमग्रेण मा लेखीर्न्तरिक्षम्मध्येन मा हिर्स्मीरित्याहिभ्य पुवैनं लोकभ्यः शमयति वनस्पते शतवंल्शो वि रोहेत्याव्रश्चने जुहोति तस्मादाव्रश्चनाद्वृक्षाणाम्भूयारेम् उत्तिष्ठन्ति सहस्रंवल्शा वि वयर रुहेमेत्यांहाशिषंमेवैतामा शास्तेऽनंक्षसङ्गम् (१५)

वृश्चेद्यदेश्वस्ङ्गं वृश्चेदेधर्ड्षं यजंमानस्य प्रमायुंकः स्याद्यं कामयेताप्रतिष्ठितः स्यादित्यारोहं तस्मैं वृश्चेदेष वै वनस्पतीनामप्रतिष्ठितोऽप्रतिष्ठित एव भविति यं कामयेतापृशः स्यादित्यंपृणं तस्मै शुष्कांग्रं वृश्चेदेष वै वनस्पतीनामपश्च्योऽपृश्रुरेव भविति यं कामयेत पशुमान्थस्यादिति बहुपृणं तस्मै बहुशाखं वृश्चेदेष वै (१६)

वनस्पतींनाम्पश्रव्यः पशुमानेव भंवित प्रतिष्ठितं वृश्चेत्प्रतिष्ठाकांमस्यैष वै वनस्पतींनां प्रतिष्ठितो यः समे भूम्यै स्वाद्योनें रूढः प्रत्येव तिष्ठति यः प्रत्यङ्कुपंनतस्तं वृश्चेथ्स हि मेधमभ्युपंनतः पश्चारित्वें तस्मै वृश्चेद्यं कामयेतोपैनमुत्तरो यज्ञो नंमेदिति पश्चौक्षरा पङ्किः पाङ्को यज्ञ उपैनमुत्तरो यज्ञः (१७)

नुमृति षडंरित्तं प्रतिष्ठाकांमस्य षङ्घा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठति स्प्तारंत्तिम्पृश्कांमस्य स्प्तपंदा शक्करी पृशवः शक्करी पृश्नेवावं रुन्द्धे नवारित्वं तेर्जस्कामस्य त्रिवृता स्तोमंन् सिम्मितं तेर्जस्त्रिवृत्तेंजस्व्येव भवत्येकांदशारित्तिमिन्द्रियकांमस्यैकांदशाक्षरा त्रिष्ठुगिन्द्रियं त्रिष्ठुगिन्द्रियाव्येव भवति पश्चंदशारित्तम्भ्रातृंव्यवतः पश्चदशो वज्रो भ्रातृंव्याभिभूत्यै स्प्तदंशारितं प्रजाकांमस्य सप्तद्शः प्रजापंतिः प्रजापंतराया एकंविश्शत्यरितं प्रतिष्ठाकांमस्यैकविश्शः स्तोमांनां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या अष्टाश्चिभवत्यष्टाक्षरा गायत्री तेर्जो गायत्री गायत्रिया गायत्री गायत्री

पृथिव्यै त्वान्तिरिक्षाय त्वा दिवे त्वेत्यांहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः प्रोक्षंति पराँश्चं प्रोक्षंति परांश्चित् परांश्चित् हि सुंवर्गो लोकः ऋूरिमंव वा एतत्करोति यत्खनंत्यपोवं नयित शान्त्यै यवंमतीरवं नयत्यूर्गेवं यवो यजंमानेन यूपः सिम्मितो यावांनेव यजंमानस्तावंतीमेवास्मिन्नूर्जं दधाति (१९)

पितृणा॰ सदंनम्सीतिं ब्रहिरवं स्तृणाति पितृदेवृत्य रृं हुं ह्यंतद्यन्निखांतं यद्व्रहिरनंवस्तीर्यं मिन्यात्पंतृदेवृत्यों निखांतः स्याद्व्रहिरवंवस्तीर्यं मिनोत्यस्यामेवैनंम्मिनोति यूपशकुलमवांस्यित् सतेंजसमेवैनंम्मिनोति देवस्त्वां सविता मध्यांनृक्कित्यांह् तेजंसैवैनंमनक्ति सुपिप्पुलाभ्यस्त्वोषंधीभ्य इतिं चृषालुं प्रतिं (२०)

मुश्चित् तस्माँच्छीर्षत ओषंधयः फलं गृह्धन्त्यनिक्त् तेजो वा आज्यं यर्जमानेनाग्निष्ठाश्चिः सम्मिता यदंग्निष्ठामश्चिमनिक्त यर्जमानमेव तेजंसानक्त्यान्तमेनक्त्यान्तमेव यर्जमानं तेजंसानिक्त सर्वतः परि मृश्तत्यपरिवर्गमेवास्मिन्तेजो दधात्युद्दिव स्तभानान्तरिक्षं पृणेत्याहुषां लोकानां विधृत्यै वैष्णव्यर्चा (२१)

कुल्पुयति वैष्णुवो वे देवतंया यूपः स्वयैवैनं देवतंया कल्पयति द्वाभ्यां कल्पयति

द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्यै यं कामयेत् तेजंसैनं देवतांभिरिन्द्रियेण् व्यर्धयेयमित्यंग्निष्ठां तस्याश्रिमाहवनीयांदित्थं वेत्थं वातिं नावयेत्तेजंसैवैनं देवतांभिरिन्द्रियेण् व्यर्धयति यं कामयेत् तेजंसैनं देवतांभिरिन्द्रियेण् समर्धयेयमितिं (२२)

अग्निष्ठां तस्याश्रिमाहव्नीयेन सम्मिन्यात्तेजंसैवैनं देवतांभिरिन्द्रियेण समर्धयित ब्रह्मविनं त्वा क्षत्रविनिम्त्यांह यथायुजुरेवैतत्पिरं व्ययत्यूर्ग्वे रंशना यजमानेन यूपः सम्मितो यजमानमेवोर्जा समर्धयित नाभिद्घ्रे पिरं व्ययति नाभिद्घ्र एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्नाभिद्घ्र ऊर्जा भुंञ्जते यं कामयेतोर्जेनम् (२३)

व्यर्धयेयमित्यूर्ध्वां वा तस्यावांचीं वावोहेदूर्जैवैनं व्यर्धयति यदिं कामयेत् वर्षुकः पर्जन्यः स्यादित्यवांचीमवीहेद्वृष्टिमेव नि यच्छति यदिं कामयेतावर्षुकः स्यादित्यूर्ध्वामुद्देह्वृष्टिमेवोद्यंच्छति पितृणां निखातम्मनुष्यांणामूर्ध्वं निखातादा रंशनाया ओषंधीना रशना विश्वेषाम् (२४)

देवानांमूर्ध्वर रंशनाया आ चृषालादिन्द्रंस्य चृषालर्र साध्यानामितिरिक्तर् स वा पृष संविदेवत्यों यद्यूपो यद्यूपिम्मिनोति सर्वा एव देवताः प्रीणाति यज्ञेन वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्तेऽमन्यन्त मनुष्यां नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते यूपेन योपियत्वा सुंवर्गं लोकमायन्तम्षयो यूपेनैवानु प्राजांनन्तद्यूपंस्य यूपत्वम् (२५)

यद्यूपंम्मिनोति सुवर्गस्यं लोकस्य प्रज्ञांत्ये पुरस्तांन्मिनोति पुरस्ताद्धि यज्ञस्यं प्रज्ञायते-ऽप्रज्ञात् हि तद्यदतिपत्र आहुरिदं कार्यमासीदिति साध्या वै देवा यज्ञमत्यंमन्यन्त तान् यज्ञो नास्पृंशत्तान् यद्यज्ञस्यातिरिक्तमासीत्तदंस्पृश्दतिरिक्तं वा एतद्यज्ञस्य यद्ग्राविग्निम्मिथित्वा प्रहरुत्यितिरिक्तमेतत् (२६)

यूपंस्य यदूर्ध्वं चुषालात्तेषां तद्भांगुधेयं तानेव तेनं प्रीणाति देवा वै सङ्स्थिते सोमे प्र स्रुचोहंरुन्प्र यूपं तेंऽमन्यन्त यज्ञवेशसं वा इदं कुंर्म् इति ते प्रंस्तरङ् स्रुचान्निष्क्रयंणमपश्यन्थ्स्वरुं यूपंस्य सङ्स्थिते सोमे प्र प्रंस्तरः हरंति जुहोति स्वरुमयंज्ञवेशसाय॥ (२७)

द्धाति प्रत्युचा समर्धयेयमित्यूर्जैनं विश्वेषां यूप्त्वमितिरिक्तमेतिद्विचंत्वारि शच॥———[४]

साध्या वै देवा अस्मिल्लाँक आंसुन्नान्यत्किश्चन मिषत्तें ऽग्निमेवाग्नये मेधायालंभन्त न

ह्यंन्यदांलुम्भ्यंमविन्द्नताे वा इमाः प्रजाः प्राजांयन्त् यदुग्नावृग्निम्मंथित्वा प्रहरंति प्रजानां प्रजनंनाय रुद्रो वा एष यद्ग्निर्यजमानः पृशुर्यत्पृशुमालभ्याग्निम्मन्थेंद्रुद्राय् यजमानम् (२८)

अपि दथ्यात्प्रमायुंकः स्यादथो खल्बांहुर्ग्निः सर्वा देवतां हृविरेतद्यत्पशुरिति यत्पशुमालभ्याग्निम्मन्थिति हृव्यायैवासंन्नाय सर्वा देवतां जनयत्युपाकृत्यैव मन्थ्यस्तन्नेवालंब्यं नेवानांलब्यमुग्नेर्जुनित्रमसीत्यांहाग्नेर्ह्यतज्ञुनित्रं वृषंणौ स्थ इत्याह वृषंणौ (२९)

ह्यंताबुर्वश्यंस्यायुर्सीत्यांह मिथुन्त्वायं घृतेनाक्ते वृषंणं दधाथामित्यांह् वृषंण्ड् ह्यंते दधांते ये अग्निङ्गांयत्रं छन्दोऽनु प्र जायस्वेत्यांह् छन्दोभिरेवेनम्प्र जनयत्यग्रयं मुथ्यमानायानुं ब्रूहीत्यांह सावित्रीमृचमन्वांह सवितृप्रंसूत एवेनंम्मन्थति जातायांनु ब्रूहि (३०)

प्रह्रियमांणायानुं ब्रूहीत्यांह् काण्डंकाण्ड पुवैनं क्रियमांणे समर्धयित गायुत्रीः सर्वा अन्वांह गायुत्रछंन्दा वा अग्निः स्वेनैवेनं छन्दंसा समर्धयत्यग्निः पुरा भवंत्यग्निम्मंथित्वा प्र हंरित तौ सम्भवंन्तौ यजंमानम्भि सम्भवतो भवंतं नः समनसावित्यांह् शान्त्यै प्रह्त्यं जुहोति जातायैवास्मा अन्नमिपं दधात्याज्येन जुहोत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम् यदाज्यम्प्रियेणैवेनं धाम्रा समर्धयत्यथो तेजंसा॥ (३१)

यजंमानमाह् वृषंणौ जातायानुंब्रूह्मप्यष्टादंश च॥------[५]

ड्रषे त्वेतिं ब्र्हिरा देत्त ड्रच्छतं इव् ह्येष यो यर्जत उपवीर्सीत्याहोप् ह्येनानाकरोत्युपों देवान्दैवीर्विशः प्रागुरित्याह् दैवीर्ह्येता विशः स्तीर्देवानुपयन्ति वहीर्षशज् इत्याहिर्त्विजो वे वहंय उशिज्स्तस्मादेवमाह बृहंस्पते धारया वसूनीतिं (३२)

आह् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पितिर्ब्रह्मणैवास्मैं पुशूनवं रुन्द्धे ह्व्या तें स्वदन्तामित्यांह स्वदयंत्येवैनान्देवं त्वष्ट्वंसुं रुण्वेत्यांह त्वष्टा वै पंशूनाम्मिथुनानारं रूपकृद्रूपमेव पुशुपुं दधाति रेवंती रमध्वमित्यांह पुशवो वै रेवतीः पुशूनेवास्मैं रमयति देवस्यं त्वा सिवृतः प्रमुव इतिं (३३)

र्शनामा दंते प्रसूँत्या अश्विनौंर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्तांभ्यामित्यांह यत्यां ऋतस्यं त्वा देवहिवः पाशेना रंभ इत्यांह सत्यं वा ऋतः सत्येनैवैनंमृतेना रंभतेऽक्ष्णया परिं हरित वध्यः हि प्रत्यश्चं प्रतिमुश्चन्ति व्यावृंत्त्यै धर्षा मानुंषानिति नि युनिक्ते धृत्यां अन्द्यः (३४)

त्वौषंधीभ्यः प्रोक्षामीत्यांहाद्यो ह्यंष ओषंधीभ्यः सम्भवंति यत्पशुरूपाम्पेरुर्सीत्यांहैष ह्यंपाम्पाता यो मेधांयार्भ्यते स्वात्तं चिथ्सदेव ह्व्यमापो देवीः स्वदंतैन्मित्यांह स्वदयंत्येवैनंमुपरिष्टात्योक्षंत्युपरिष्टादेवेन्म्मेध्यं करोति पाययंत्यन्तर्त एवेन्म्मेध्यं करोत्यधस्तादुपौक्षति सर्वतं एवेनम्मेध्यं करोति॥ (३५)

वसूनितिं प्रसुव इत्युद्धौंऽन्तर्त एवेनुन्दशं च॥-----[६]

अग्निना वै होत्रां देवा असुंरान्भ्यंभवत्रृग्नयं सिम्ध्यमानायानुं ब्रूहीत्यांहु भ्रातृंव्याभिभूत्ये सप्तदंश सामिधेनीरन्वांह सप्तदंशः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यं स्प्तदंशान्वांहु द्वादंश मासाः पञ्चर्तवः स संवथ्सरः संवथ्सरं प्रजा अनु प्र जांयन्ते प्रजानां प्रजनंनाय देवा वै सामिधेनीरन्व्यं यज्ञं नान्वंपश्यन्थ्स प्रजापंतिस्तूष्णीमांघारम् (३६)

आघारयत्ततो वै देवा यज्ञमन्वंपश्यन् यत्तूष्णीमांघारमांघारयंति यज्ञस्यानुंख्यात्या असुरेषु वै यज्ञ आंसीत्तं देवास्तूष्णीश्होमेनांवृञ्जत् यत्तूष्णीमांघारमांघारयंति आतृंव्यस्यैव तद्यज्ञं वृंङ्के परिधीन्थ्सम्मांष्टिं पुनात्येवैनान्निञ्जिः सम्मांष्टिं त्र्यांवृद्धि यज्ञोऽथो रक्षंसामपंहत्यै द्वादंश् सम्मंद्यन्ते द्वादंश (३७)

मासाः संवथ्सरः संवथ्सरमेव प्रीणात्यथी संवथ्सरमेवास्मा उपं दधाति सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्रे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघारौंऽग्निः सर्वा देवता यदाघारमाघारयंति शीर्षत एव यज्ञस्य यज्ञमानः सर्वा देवता अवं रुन्द्वे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघार आत्मा पृश्रराघारमाघार्यं पृशु समनत्त्वात्मन्नेव यज्ञस्यं (३८)

शिरः प्रतिं दधाति सं ते प्राणो वायुनां गच्छतामित्यांह वायुदेवत्यों वै प्राणो वायावेवास्यं प्राणं जुंहोति सं यजेत्रैरङ्गांनि सं यज्ञपंतिराशिषेत्यांह यज्ञपंतिमेवास्याशिषं गमयति विश्वरूपो वै त्वाष्ट्र उपरिष्टात्पशुम्भ्यंवमीत्तस्मांदुपरिष्टात्पशोर्नावं द्यन्ति यदुपरिष्टात्पशु सम्मिक्ति मेध्यमेव (३९)

पुनं करोत्यृत्विजो वृणीते छन्दाईस्येव वृणीते सप्त वृणीते सप्त ग्राम्याः पृशवः सप्तारण्याः सप्त छन्दाईस्युभयस्यावंरुद्धा एकांदश प्रयाजान् यंजति दश वै पृशोः प्राणा आत्मैकांदशो यावांनेव पृशुस्तम्प्र यंजति वृपामेकः परि शय आत्मैवात्मानं परि शये वज्रो वै स्विधितिर्वज्ञो यूपशक्लो घृतं खलु वै देवा वर्ज्ञं कृत्वा सोममप्रम्यृतेनाक्तौ पृशं त्रायिथामित्याह वज्रेणैवैनं वशे कृत्वा लंभते॥ (४०)

आघारम्पंद्यन्ते द्वादंशात्मन्नेव यज्ञस्य मेध्यमेव खलु वा अष्टादंश च॥————[७]

पर्यमि करोति सर्वृहुर्तमेवैनं करोत्यस्कंन्दायास्कंन्न् हि तद्यद्धृतस्य स्कन्दंति तिः पर्यमि करोति त्र्यांवृद्धि यज्ञोऽथो रक्षंसामपंहत्यै ब्रह्मवादिनो वदन्त्यन्वारभ्यः पुशू (३) र्नान्वारभ्या (३) इति मृत्यवे वा एष नीयते यत्पशुस्तं यदंन्वारभेत प्रमायुंको यजमानः स्यादथो खल्बांहः सुवर्गाय वा एष लोकायं नीयते यत् (४१)

पृशुरिति यन्नान्वारभेत सुवर्गाल्लोकाद्यजंमानो हीयेत वपाश्रपंणीभ्यामुन्वारंभते तन्नेवान्वारंब्यं नेवानंन्वारब्यमुप् प्रेष्यं होतर्ह्व्या देवेभ्य इत्यांहेषितः हि कर्म क्रियते रेवंतीर्य्ज्ञपंति प्रिय्धा विश्वतत्यांह यथायुजुरेवेतद्ग्निनां पुरस्तांदेति रक्षंसामपंहत्ये पृथिव्याः सम्पृचंः पाहीतिं ब्रहः (४२)

उपाँस्यत्यस्कंन्दायास्कंन्न् हे तद्यद्वर्रिष् स्कन्दत्यथों बर्हिषदंमेवेनं करोति पराङा वंतितऽध्वर्युः पृशोः संज्ञाप्यमांनात्पशुभ्यं एव तिन्न ह्रुंत आत्मनोनांन्नस्काय गच्छंति श्रियं प्र पृश्ननांप्रोति य एवं वेदं पृश्वाञ्लोका वा एषा प्राच्युदानींयते यत्पत्नी नमंस्त आतानत्यांहादित्यस्य व रुश्मयः (४३)

आतानास्तेभ्यं एव नर्मस्करोत्यन्वां प्रेहीत्यांह् भ्रातृंच्यो वा अर्वा भ्रातृंच्यापनुत्त्यै घृतस्यं कुल्यामन् सह प्रजयां सह रायस्योषेणेत्यांहाशिषंमेवेतामा शांस्त आपों देवीः शुद्धायुव इत्यांह यथायुजुरेवेतत्॥ (४४)

लोकार्य नीयते यद्वर्ही रुश्मर्यः सप्तित्रिर्शशच॥————[८]

पृशोर्वा आलंब्यस्य प्राणाञ्छुगृंच्छति वाक्त आ प्यायतां प्राणस्त आ प्यायतामित्यांह प्राणेभ्यं पृवास्य शुचरं शमयति सा प्राणेभ्योऽधि पृथिवीर शुक्प्र विंशति शमहोंभ्यामिति नि नयत्यहोरात्राभ्यामेव पृथिव्ये शुचरं शमयत्योषंधे त्रायंस्वैन् स्वधिते मैनरं हिरसीरित्यांह वज्रो वै स्वधितिः (४५)

शान्त्यै पार्श्वत आच्छांति मध्यतो हि मंनुष्यां आच्छान्ति तिर्श्वीनमा च्छांत्यनूचीन् १ हि मंनुष्यां आच्छान्ति व्यावृत्त्यै रक्षंसाम्भागोऽसीति स्थविमतो बर्हिर्क्कापाँस्यत्यस्रेव रक्षार्थसि निरवंदयत इदम्हर रक्षोंऽधुमं तमों नयामि योंऽस्मान्द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्म इत्यांह द्वौ वाव पुरुषो यं चैव (४६)

द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तावुभावंधमं तमो नयतीषे त्वेति वपामुत्खिंदतीच्छतं इव ह्येष यो यजेते यद्पतृन्द्यादुद्रौंऽस्य पृशून्धातुंकः स्याद्यन्नोपतृन्द्यादयंता स्याद्न्ययोपतृणत्त्यन्यया न भृत्यै घृतेनं द्यावापृथिवी प्रोण्वांथामित्यांह द्यावांपृथिवी एव रसेनान्त्त्वछिन्नः (४७)

रायः सुवीर् इत्यांह यथाय्जुरेवैतत्क्रूरमिंव् वा एतत्कंरोति यद्धपामृंत्खिदत्युर्वन्तरिक्षमिन्विहीत् शान्त्ये प्र वा एषौंऽस्माल्लोकाच्यंवते यः पृशुम्मृत्यवे नीयमानमन्वारभेते वपाश्रपंणी पुनंर्-वारंभतेऽस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठत्यग्निनां पुरस्तांदेति रक्षंसामपंहत्या अथौं देवतां एव हव्येनं (४८)

अन्वेति नान्तममङ्गार्मितं हरेद्यदंन्तममङ्गारमित्हरेद्देवता अति मन्येत् वायो वीहिं स्तोकानामित्यांह् तस्माद्विभंक्ताः स्तोका अवं पद्यन्तेऽग्रं वा एतत्पंशूनां यद्यपाग्रमोषंधीनाम्बर्हिरग्रेंणैवाग्रन् समर्धयत्यथो ओषंधीष्वेव पृशून्प्रतिं ष्ठापयित् स्वाहांकृतीभ्यः प्रेष्येत्यांह (४९)

यज्ञस्य सिमेध्यै प्राणापानौ वा एतौ पंशूनां यत्पृषदाज्यमात्मा वृपा पृषदाज्यमंभिघार्य वृपाम्भि घारयत्यात्मन्नेव पंशूनाम्प्राणापानौ दंधाति स्वाहोर्ध्वनंभसम्मारुतं गंच्छत्मित्यांहोर्ध्वनंभा ह स्मृ वै मांरुतो देवानां वपाश्रपंणी प्रहंरित तेनैवेने प्र हंरित विषूंची प्र हंरित तस्माद्विष्वंश्चौ प्राणापानौ॥ (५०)

स्विधितिश्चैवाच्छिन्नो हुव्येनेप्येत्यांहु पद्गंत्वारि १ शच॥————[९]

पृशुमालभ्यं पुरोडाशं निर्वपित समेंधमेवैनमा लेभते व्पयाँ प्रचर्य पुरोडाशेंन् प्र चंर्त्यूर्वें पुरोडाश ऊर्जमेव पंशूनाम्मध्यतो दंधात्यथों पृशोरेव छिद्रमिप दंधाति पृषदाज्यस्योपहत्य त्रिः पृंच्छिति शृत हवीः (३) शंमित्रिति त्रिषंत्या हि देवा योऽश्वंत शृतमाह स एनंसा प्राणापानौ वा एतौ पंशूनाम् (५१)

यत्पृषदाज्यम्पृशोः खलु वा आलंब्यस्य हृदयमात्माभि समेति यत्पृषदाज्येन् हृदयमभिघारयंत्यात्मन्नेव पंशूनाम्प्रांणापानौ दंधाति पृशुना वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्ते-ऽमन्यन्त मनुष्यां नोऽन्वाभविष्यन्तीति तस्य शिरंश्छित्त्वा मेधुम्प्राक्षांरय्न्थ्स प्रक्षों-ऽभवृत्तत्प्रक्षस्यं प्रक्षुत्वं यत्प्रंक्षशाखोत्तंरबुर्हिर्भविति समेधस्यैव (५२) पृशोरवं द्यति पृशुं वे ह्वियमांण् रक्षा्ड्स्यनुं सचन्तेऽन्त्रा यूपंं चाहवनीयंं च हरित रक्षंसामपंहत्ये पृशोर्वा आलंब्यस्य मनोऽपं क्रामित मृनोतांये ह्विषोंऽवदीयमांनस्यानुं ब्रूहीत्यांह् मनं पृवास्यावं रुन्द्ध एकांदशावदानान्यवं द्यति दश् वे पृशोः प्राणा आत्मैकांदृशो यावांनेव पशुस्तस्यावं (५३)

द्यति हृदंयस्याग्रेऽवं द्यत्यथं जिह्वाया अथ् वक्षंसो यद्वै हृदंयेनाभिगच्छंति ति ति विद्यां वदित यि विद्यां वदित ति तदुरसोऽधि निर्वदत्येतद्वै पृशोर्यथापूर्वं यस्यैवमंवदायं यथाकाम्मत्तंरेषामव्द्यति यथापूर्वमेवास्यं पृशोरवंत्तम्भवित मध्यतो गुदस्यावं द्यति मध्यतो हि प्राण उत्तमस्यावं द्यति (५४)

उत्तमो हि प्राणो यदीतंरं यदीतंरमुभयंमेवाजांमि जायंमानो वै ब्राँह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जांयते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो युज्ञेन देवेभ्यः प्रजयां पितृभ्यं एष वा अंनृणो यः पुत्री यज्वां ब्रह्मचरिवासी तदंवदानैरेवावं दयते तदंवदानांनामवदानृत्वन्देवासुराः संयंत्ता आस्नन्ते देवा अग्निमंब्रुवन्त्वयां वीरेणासुरान्भि भवामेति (५)

सौंऽब्रवीद्वरं वृणे पृशोरुं द्धारमुद्धंरा इति स एतमुं द्धारमुदंहरत दोः पूँर्वार्धस्यं गुदम्मध्यतः श्रोणिं जघनार्धस्य ततों देवा अभवन्यरासुंरा यत्र्यङ्गाणार्थं समवद्यति आतृं व्याभिभूत्ये भवंत्यात्मना पराँस्य आतृं व्यो भवत्यक्ष्णयावं द्यति तस्मांदक्ष्णया पृशवोऽङ्गांनि प्र हंरन्ति प्रतिष्ठित्ये॥ (५६)

मेदंसा सुचौ प्रोर्णोति मेदोंरूपा वै पुशवों रूपमेव पुशुषुं दधाति यूषन्नंवधाय प्रोर्णोति रसो वा एष पंशूनां यद्य रसंमेव पुशुषुं दधाति पार्श्वनं वसाहोमम्प्र यौति मध्यं वा एतत्पंशूनां यत्पार्श्वर रसं एष पंशूनां यद्वसा यत्पार्श्वनं वसाहोमम्प्रयौतिं मध्यत एव पंशूनार रसं दधाति प्रन्तिं (५७)

वा एतत्पशुं यथ्मंज्ञपयंन्त्येन्द्रः खलु वै देवतंया प्राण ऐन्द्रोऽपान ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे नि देष्यदित्यांह प्राणापानावेव पृशुषुं दधाति देवं त्वष्टभूरिं ते सरसंमेत्वित्यांह त्वाष्ट्रा हि देवतंया पृशवो विषुंरूपा यथ्सलंक्ष्माणो भव्येत्यांह विषुंरूपा ह्येते सन्तः सलंक्ष्माण एतर्हि भवन्ति देवत्रा यन्तम् (५८)

अवंसे सखायोऽनुं त्वा माता पितरों मदन्त्वत्याहानुंमतमेवेनंम्मात्रा पित्रा सुंवर्गं लोकं गंमयत्यर्धेर्चे वंसाहोमं जुंहोत्यसौ वा अर्धेर्च इ्यमंर्ध्चं इमे एव रसेनानिक दिशों जुहोति दिशं एव रसेनानक्त्र्यथों दिग्भ्य एवोर्जु रस्मवं रुन्द्धे प्राणापानौ वा एतौ पंशूनां यत्पृषदाज्यं वानस्पत्याः खलुं (५९)

वै देवतंया पृशवो यत्पृषदाज्यस्योंपृहत्याह् वनस्पत्येऽनुं ब्रूहि वनस्पतंये प्रेष्येतिं प्राणापानावेव पृशुषुं दधात्यन्यस्यान्यस्य समवृत्तः समवंद्यति तस्मान्नानांरूपाः पृशवों यूष्णोपं सिश्चति रसो वा एष पंशूनां यद्यू रसंमेव पृशुषुं दधातीडामुपं ह्वयते पृशवो वा इडां पृशूनेवोपं ह्वयते चृतुरुपं ह्वयते (६०)

चतुंष्पादो हि पृशवो यं कामयेतापृशुः स्यादित्यंमेदस्कं तस्मा आ देध्यान्मेदों रूपा वै पृशवों रूपेणैवैनंम्पृशुभ्यो निर्भंजत्यपृशुरेव भेवति यं कामयेत पशुमान्थ्रस्यादिति मेदंस्वत्तस्मा आ देध्यान्मेदों रूपा वै पृशवों रूपेणैवास्में पृशूनवं रुन्द्धे पशुमानेव भेवति प्रजापितर्यज्ञमंसृजत् स आज्यम् (६१)

पुरस्तांदसृजत पृशुम्मंध्यतः पृषदाज्यम्पश्चात्तस्मादाज्येन प्रयाजा इंज्यन्ते पृशुनां मध्यतः पृषदाज्येनांनूयाजास्तस्मादेतिन्मृश्रमिव पश्चाथ्मृष्ट् ह्येकांदशानूयाजान् यंजित दश् व पृशोः प्राणा आत्मैकांदशो यावांनेव पृशुस्तमन् यजित प्रन्ति वा पृतत्पृशं यथ्मंज्ञपर्यन्ति प्राणापानौ खलु वा पृतौ पंशूनां यत्पृषदाज्यं यत्पृषदाज्येनांनूयाजान् यजित प्राणापानावेव पृशुषुं दधाति॥ (६२)

घ्रन्ति यन्तं खर्लु चतुरुपं ह्वयत् आज्यं यत्पृषदाज्येन षट्वं॥————[११]

युज्ञेन ता उपयिङ्गिर्देवा वे युज्ञमाग्रीप्रे ब्रह्मवादिनः सत्वे देवस्य ग्रावाणं प्राण उपार्श्वंग्रा देवा वा उपार्श्यो वाग्वे मित्रं युज्ञस्य बृहुस्पतिर्देवा वा आंग्रयणाग्रानेकांदश॥[१२]युज्ञेनं लोके पंशुमान्थ्स्याथ्सवंनुम्माध्यंन्दिनं वाग्वा अरिक्तानि तत्प्रजा अभ्येकंपश्चाशत्॥51॥ युज्ञेन गौर्भि निवंतते॥

॥चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

यज्ञेन वै प्रजापितः प्रजा अंसृजत् ता उंप्यिङ्गेरेवासृंजत् यदुंप्यजं उप्यजंति प्रजा एव तद्यजंमानः सृजते जघनार्धादवं द्यति जघनार्धाद्धि प्रजाः प्रजायंन्ते स्थविमृतोऽवं द्यति स्थविमृतो हि प्रजाः प्रजायन्तेऽसंिम्भिन्दन्नवं द्यति प्राणानामसंम्भेदाय न पूर्यावर्तयित् यत्पर्यावर्तयेदुदावर्तः प्रजा ग्राहुंकः स्याथ्समुद्रं गंच्छ स्वाहेत्याह रेतंः (१)

पुव तद्दंधात्यन्तरिक्षं गच्छ् स्वाहेत्यांहान्तरिक्षेणेवास्मै प्रजाः प्र जंनयत्यन्तरिक्ष्ड् ह्यनुं प्रजाः प्रजायंन्ते देव संवितारं गच्छ् स्वाहेत्यांह सवितृप्रंसूत पुवास्मै प्रजाः प्र जंनयत्यहोरात्रे गंच्छ् स्वाहेत्यांहाहोरात्राभ्यांमेवास्मै प्रजाः प्र जंनयत्यहोरात्रे ह्यनुं प्रजाः प्रजायंन्ते मित्रावरुंणो गच्छ स्वाहाँ (२)

इत्यांह प्रजास्वेव प्रजांतासु प्राणापानौ दंधाति सोमं गच्छु स्वाहेत्यांह सौम्या हि देवतंया प्रजा युज्ञं गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव युज्ञियाः करोति छन्दारंसि गच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव युज्ञियाः करोति छन्दारंसि गच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव प्रजांता द्यावांपृथिवीभ्यांमुभयतः परि गृह्णाति नर्मः (३)

दिव्यं गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजाभ्यं एव प्रजांताभ्यो वृष्टिं नि यंच्छत्युग्निं वैश्वान्रं गंच्छु स्वाहेत्यांह प्रजा एव प्रजांता अस्यां प्रतिं ष्ठापयति प्राणानां वा एषोऽवं द्यति योऽवद्यतिं गुदस्य मनों में हार्दिं युच्छेत्यांह प्राणानेव यंथास्थानमुपं ह्वयते पृशोर्वा आलंब्धस्य हृदयेष् शुगृंच्छिति सा हृंदयशूलम् (४)

अभि समेति यत्पृंथिव्याः हृंदयशूलमृंद्वासयैत्पृथिवीः शुचार्पयेद्यद्पस्वंपः शुचार्पयेच्छुष्कंस्य चार्द्रस्यं च सन्धावुद्वांसयत्युभयंस्य शान्त्ये यं द्विष्यात्तं ध्यायेच्छुचैवैनंमर्पयति॥ (५)

रेतों मित्रावर्रुणौ गच्छु स्वाहा नभों हृदयश्रूलं द्वात्रिर्शशच॥_____[१]

देवा वै यज्ञमाग्नींध्रे व्यंभजन्त ततो यद्त्यशिष्यत् तदंब्रुवन्वसंतु न नं इदमिति तद्वंसतीवरींणां वसतीवरित्वम् तस्मिन्प्रातर्न समंशक्नुवन्तद्फ्सु प्रावेशयन्ता

वंसती्वरीरभवन्वसती्वरींगृह्णाति युज्ञो वै वंसती्वरींर्युज्ञमेवारभ्यं गृहीत्वोपं वसति यस्यागृहीता अभि निम्रोचेदनांरब्योऽस्य यज्ञः स्यात् (६)

यज्ञं वि च्छिं-चाज्ञ्योतिष्यां वा गृह्णीयाद्धिरंण्यं वावधाय सशुंक्राणामेव गृह्णाति यो वाँ ब्राह्मणो बंहुयाजी तस्य कुम्भ्यांनां गृह्णीयाथ्स हि गृहीतवंसतीवरीको वसतीवरींगृह्णाति प्रश्वो वै वंसतीवरीः पृश्चनेवारभ्यं गृहीत्वोपं वसति यदंन्वीपं तिष्ठंन्गृह्णीयात्रिर्मार्गुका अस्मात्प्रश्वंः स्युः प्रतीपं तिष्ठंन्गृह्णाति प्रतिरुध्यैवास्मै पृश्चाह्णातीन्द्रंः (७)

वृत्रमंहुन्थ्सो ईऽपो ईऽभ्यंम्रियत् तासां यन्मेध्यं युज्ञिय् सर्वेवमासीत्तदत्यंमुच्यत् ता वहंन्तीरभवन्वहंन्तीनां गृह्णाति या एव मेध्यां युज्ञियाः सर्वेवा आपस्तासामेव गृह्णाति नान्तमा वहंन्तीरतीयाद्यदंन्तमा वहंन्तीरतीयाद्यज्ञमितं मन्येत् न स्थांवराणां गृह्णीयाद्वरुंणगृहीता वै स्थांवरा यथ्स्थांवराणां गृह्णीयात् (८)

वर्रुणेनास्य युज्ञं ग्रांहयेद्यद्वै दिवा भवंत्युपो रात्रिः प्र विंशति तस्मां ताम्रा आपो दिवां ददश्चे यन्नक्तम्भवंत्यपोऽहः प्र विंशति तस्मां चन्द्रा आपो नक्तं ददश्चे छायायै चातपंतश्च संधौ गृह्णात्यहोरात्रयोरेवास्मै वर्णं गृह्णाति ह्विष्मंतीरिमा आप इत्याह ह्विष्कृंतानामेव गृह्णाति हविष्मार्थ अस्तु (९)

सूर्य इत्यांह् सशुंक्राणामेव गृंह्णात्यनुष्टुभां गृह्णाति वाग्वा अनुष्टुग्वाचैवैनाः सर्वया गृह्णाति चतुंष्पदय्चां गृह्णाति क्रिः सांदयित सप्त सम्पंद्यन्ते सप्तपंदा शक्कंरी पृशवः शक्कंरी पृश्न्वेवावं रुन्द्धेऽस्मै वै लोकाय गार्हंपत्य आ धीयतेऽमुष्मां आहव्नीयो यद्गार्हंपत्य उपसादयेदस्मिल्लोंके पंशुमान्थस्याद्ययदांहव्नीयेऽमुष्मित्रं (१०)

लोके पंशुमान्थस्यांदुभयोरुपं सादयत्युभयोंरेवैनं लोकयोः पशुमन्तं करोति सर्वतः परि हरित रक्षंसामपंहत्या इन्द्राग्नियोभांगधेयीः स्थेत्यांह यथायजुरेवैतदाग्नींप्र उपं वासयत्येतद्वे यज्ञस्यापंराजितं यदाग्नींप्रं यदेव यज्ञस्यापंराजितं तदेवेना उपं वासयित यतः खलु वे यज्ञस्य वितंतस्य न क्रियते तदनुं यज्ञ रक्षाड्स्यवं चरन्ति यद्वहंन्तीनां गृह्णाति क्रियमांणमेव तद्यज्ञस्यं शये रक्षंसामनंन्ववचाराय न ह्यंता ईलयन्त्या तृंतीयसवनात्परि शेरे यज्ञस्य सन्तंत्ये॥ (११)

स्यादिन्द्रो गृह्णीयादंस्त्वमुष्मिन्क्रियते षड्विरंशतिश्च॥——

ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वा अंध्वर्युः स्याद्यः सोमंमुपावृहर्न्थ्सर्वाभ्यो देवताभ्य उपावृहरेदितिं हृदे त्वेत्यांह मनुष्येभ्य पृवैतेनं करोति मनंसे त्वेत्यांह पितृभ्यं पृवैतेनं करोति दिवे त्वा सूर्याय त्वेत्यांह देवेभ्यं पृवैतेनं करोत्येतावंतीवें देवतास्ताभ्यं पृवैन्ध् सर्वाभ्य उपावंहरति पुरा वाचः (१२)

प्रवंदितोः प्रातरनुवाकमुपाकंरोति यावंत्येव वाक्तामवं रुन्द्धेऽपोऽग्रेंऽभिव्याहंरित युज्ञो वा आपों युज्ञमेवाभि वाचं वि सृंजिति सर्वाणि छन्दा इस्यन्वांह पृशवो वै छन्दा सि पृशूनेवावं रुन्द्धे गायित्रया तेजंस्कामस्य परि दथ्यात्रिष्ठभैन्द्रियकांमस्य जगंत्या पृशुकांमस्यानुष्टुभौ प्रतिष्ठाकांमस्य पृङ्क्या युज्ञकांमस्य विराजान्नंकामस्य शृणोत्वग्निः समिधा हवम् (१३)

म् इत्यांह सिवतृप्रंसूत एव देवतांभ्यो निवेद्यापोऽच्छैंत्यप इंष्य होत्रित्यांहेषित र हि कर्म क्रियते मैत्रांवरुणस्य चमसाध्वर्यवा द्रवेत्यांह मित्रावरुणौ वा अपां नेतारौ ताभ्यांमेवैना अच्छैति देवींरापो अपां नपादित्याहाहुंत्यैवैनां निष्क्रीयं गृह्णात्यथीं ह्विष्कृतानामेवाभिधृतानां गृह्णाति (१४)

कार्षिर्सीत्यांह् शर्मलमेवासामपं प्लावयित समुद्रस्य वोक्षित्या उन्नय इत्यांह् तस्मांद्द्यमांनाः पीयमांना आपो न क्षीयन्ते योनिर्वे यज्ञस्य चात्वांलं यज्ञो वंसतीवरीर्ंहोतृचम्सं चं मैत्रावरुणचम्सं चं स्ङ्स्पर्श्यं वसतीवरीर्व्यानंयित यज्ञस्यं सयोनित्वायाथो स्वादेवेना योनेः प्र जंनयत्यध्वर्योऽवेर्पा (३) इत्यांहोतेमंनत्रमुरुतेमाः पृश्येति वावेतदांह् यद्यग्निष्टोमो जुहोति यद्युक्थ्यः परि्षौ नि मांष्टिं यद्यंतिरात्रो यज्ञवंदन्त्र पंद्यते यज्ञकतूनां व्यावृत्त्ये॥ (१५)

वाचो हर्वम्भिर्घृतानां गृह्णात्युत पश्चवि शतिश्च॥————[३]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्व इति ग्रावाणमा देते प्रसूँत्या अश्विनौर्बाहुभ्यामित्यांहाश्विनौ हि देवानांमध्वर्यू आस्तौम् पूष्णो हस्तौभ्यामित्यांह् यत्यै पृशवो वे सोमौ व्यान उपारशुसवंनो यदुंपारशुसवंनम्भि मिमीते व्यानमेव पृशुषुं दधातीन्द्रांय त्वेन्द्रांय त्वेतिं मिमीत इन्द्रांय हि सोमं आहियते पश्च कृत्वो यज्ञंषा मिमीते (१६)

पश्चौक्षरा पृङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे पश्च कृत्वंस्तूष्णीन्दश् सम्पंद्यन्ते दशाँक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराजैवान्नाद्यमवं रुन्द्धे श्वाृत्राः स्थं वृत्रतुर् इत्यांहैष वा अपार सोमपी्थो य एवं वेद नापस्वार्तिमार्च्छति यत्ते सोम दिवि ज्योतिरित्यांहैभ्य एवैनम् (१७)

लोकेभ्यः सम्भंरित सोमो वै राजा दिशोऽभ्यंध्यायथ्स दिशोऽन् प्राविंशत्प्रागपागुदंगधरागित्यांह दिग्भ्य एवैन् सम्भंरत्यथो दिशं एवास्मा अव रुन्द्धेऽम्ब नि ष्वरेत्यांह कामुंका एन् स्नियो भवन्ति य एवं वेद यत्तें सोमादांभ्यं नाम जागृवीतिं (१८)

आहेष वै सोमंस्य सोमपीथो य एवं वेद न सौम्यामार्तिमार्च्छति घ्नन्ति वा एतथ्सोम् यदंभिषुण्वन्त्य १ शूनपं गृह्णति त्रायंत एवैनं प्राणा वा अ १ शर्वः प्रावः सोमोऽ १ शून्युन्रिपं सृजति प्राणानेव पृशुषुं दधाति द्वौद्वाविषं सृजति तस्माद्वौद्वौं प्राणाः॥ (१९)

यर्जुषा मिमीत एनं जागृवीति चतुंश्चत्वारि शच॥______

प्राणो वा एष यदुंपा्रश्चर्यदुंपा्रश्चंग्रा ग्रहां गृह्यन्तें प्राणमेवानु प्र यंन्त्यरुणो हं स्माहौपंवेशिः प्रातःसवन एवाहं यज्ञर सङ्स्थांपयामि तेन ततः सङ्स्थितेन चरामीत्यष्टौ कृत्वोऽग्रेऽभि षुंणोत्यष्टाक्षंरा गायत्री गायत्रम्प्रांतःसवनम् प्रांतःसवनमेव तेनांऽऽप्रोत्येकांदश् कृत्वों द्वितीयमेकांदशाक्षरा त्रिष्टुत्रेष्टुंभूम्माध्यंदिनम् (२०)

सर्वनुम्मार्थ्यंदिनमेव सर्वनं तेनाँऽऽप्नोति द्वादंश् कृत्वंस्तृतीयं द्वादंशाक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनन्तृतीयसवनमेव तेनाँऽऽप्नोत्येताः ह् वाव स यज्ञस्य सङ्स्थितिमुवाचास्कंन्दायास्कंन्नः हि तद्यद्यज्ञस्य सङ्स्थितस्य स्कन्दत्यथो खल्वांहुर्गायत्री वाव प्रांतःसवने नातिवाद इत्यनंतिवादुक एनुम्भ्रातृंव्यो भवति य एवं वेद तस्माद्ष्यावंष्टौ (२१)

कृत्वोऽभिषुत्यं ब्रह्मवादिनों वदन्ति पवित्रंवन्तोऽन्ये ग्रहां गृह्मन्ते किम्पंवित्र उपार्शुरिति वाक्पंवित्र इतिं ब्रूयात् वाचस्पतंये पवस्व वाजिन्नित्यांह वाचैवैनंम्पवयति वृष्णो अर्शुभ्यामित्यांह वृष्णो ह्येताव्रश् यौ सोमंस्य गर्भस्तिपूत् इत्यांह गर्भस्तिना ह्येनम्पवयंति देवो देवानां पवित्रंमसीत्यांह देवो ह्येषः (२२)

सं देवानां पिवित्रं येषां भागोऽसि तेभ्यस्त्वेत्यांह् येषा् होष भागस्तेभ्यं एनं गृह्णाति स्वां कृतोऽसीत्यांह प्राणमेव स्वमंकृत् मधुंमतीर्न् इषंस्कृधीत्यांह् सर्वमेवास्मां इदः स्वंदयति विश्वेभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यों दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्य इत्यांहोभयेंष्वेव देवमनुष्येषुं प्राणान्दंधाति मनंस्त्वा (२३)

अष्ट्वित्यांह् मनं एवाश्चंत उर्वन्तरिक्षमिन्वहीत्यांहान्तरिक्षदेवत्यां हि प्राणः स्वाहां त्वा सुभवः सूर्यायेत्यांह प्राणा वै स्वभंवसो देवास्तेष्वेव प्रोक्षं जुहोति देवेभ्यंस्त्वा मरीचिपेभ्य इत्याहादित्यस्य वै रश्मयों देवा मंरीचिपास्तेषां तद्भांगधेयन्तानेव तेनं प्रीणाति यदि कामयेत वर्षुकः पर्जन्यः (२४)

स्यादिति नीचा हस्तेन नि मृंज्याद्वृष्टिंमेव नि यंच्छति यदिं कामयेतावंर्षुकः स्यादित्युंतानेन नि मृंज्याद्वृष्टिंमेवोद्यंच्छति यद्यंभिचरेदमुं ज्रुह्यथं त्वा होष्यामीतिं ब्रूयादाहुंतिमेवेनंम्य्रेफ्सन् हंन्ति यदिं दूरे स्यादा तिमंतोस्तिष्ठेत्प्राणमेवास्यांनुगत्यं हन्ति यद्यंभिचरेदमुष्यं (२५)

त्वा प्राणे सांदयामीति सादयेदसंत्रो वै प्राणः प्राणमेवास्यं सादयित षङ्किर्ष्शुभिः पवयित षङ्का ऋतवं ऋतुभिरेवैनंम्पवयित त्रिः पंवयित त्रयं इमे लोका एभिरेवैनं लोकैः पंवयित ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मांथ्सृत्यात्रयः पश्चाः हस्तांदाना इति यत्रिरुंपाष्शुः हस्तेन विगृह्णाति तस्मात्रयः पश्चाः हस्तांदानाः पुरुषो हस्ती मुर्कटः॥ (२६)

मार्ध्यन्दिनम्ष्टावेष्टावेष मनस्त्वा पूर्जन्योऽमुष्य पुरुषो हे चं॥------[५]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा उंपार्शौ यज्ञ र स्र्थाप्यंमपश्यन्तमुंपार्शौ समंस्थापयन्तेऽसुंरा वज्रंमुद्यत्यं देवान्भ्यायन्त् ते देवा बिभ्यंत् इन्द्रमुपांधावन्तानिन्द्रौंऽन्तर्यामेणान्तरंधत्त् तदंन्तर्यामस्यौन्तर्यामत्वम् यदंन्तर्यामो गृद्यते भ्रातृंव्यानेव तद्यजंमानोऽन्तर्धत्तेऽन्तस्तौं (२७)

द्धामि द्यावांपृथिवी अन्तरुर्वन्तरिक्षमित्यांहैभिरेव लोकेर्यजमानो भ्रातृंव्यानुन्तर्धत्ते ते देवा अमन्यन्तेन्द्रो वा इदर्मभूद्यद्वयः स्म इति तैंऽब्रुवन्मघंवन्नन्नं न आ भजेतिं सजोषां देवैरवंरैः परेश्चेत्यंब्रवीद्ये चैव देवाः परे ये चावरे तानुभयान् (२८)

अन्वार्भज्ञथ्मजोषां देवैरवंरैः परैश्चेत्यांह् ये चैव देवाः परे य चावंरे तानुभयांनुन्वार्भज्ञत्यन्तर्यामे मेघवन्मादयस्वेत्यांह यज्ञादेव यजमानं नान्तरैत्युपयामगृहीतो- ऽसीत्यांहापानस्य धृत्ये यदुभावंपवित्रौ गृह्येयांतां प्राणमंपानोऽनु न्यृंच्छेत्प्रमायुंकः स्यात्पवित्रंवानन्तर्यामो गृह्यते (२९)

प्राणापानयोर्विधृंत्यै प्राणापानौ वा एतौ यदुंपारश्वन्तर्यामौ व्यान उंपारशुसवंनो यं कामयंत प्रमायुंकः स्यादित्यसईस्पृष्टौ तस्यं सादयेद्धानेनैवास्यं प्राणापानौ वि च्छिंनत्ति ताजक्प्रमीयते यं कामयेत् सर्वमायुंरियादिति सइस्पृंष्टौ तस्यं सादयेद्धानेनैवास्यं प्राणापानौ सं तंनोति सर्वमायुंरित॥ (३०)

त उभयाँनगृह्यते चतुंश्चत्वारि १शच॥

-[ε]

वाग्वा एषा यदैँन्द्रवाय्वो यदैँन्द्रवाय्वाग्रा ग्रहां गृह्यन्ते वाचंमेवानु प्र यन्ति वायुं देवा अंब्रुवन्थ्सोम् राजांन हन्।मेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मदंग्रा एव वो ग्रहां गृह्यान्ता इति तस्मादैन्द्रवायवाग्रा ग्रहां गृह्यन्ते तमंघ्रन्थ्सोऽपूयत् तं देवा नोपांधृष्णुवन्ते वायुमंब्रुविन्नमं नंः स्वदय (३१)

इति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मद्देवत्यांन्येव वः पात्रांण्युच्यान्ता इति तस्मांन्नानादेवत्यांनि सन्ति वायव्यांन्युच्यन्ते तमेंभ्यो वायुरेवास्वंदयत्तस्माद्यत्पूर्यति तत्प्रंवाते वि षंजन्ति वायुर्हि तस्यं पवियता स्वंदियता तस्यं विग्रहंणं नाविन्दन्थ्साऽदिंतिरब्रवीद्वरं वृणा अथ मया वि गृह्णीध्वम्मदेवत्यां एव वः सोमाः (३२)

स्त्रा अंस्त्रित्युंपयामगृंहीतोऽसीत्यांहादितिदेवृत्यांस्तेन यानि हि दांरुमयांणि पात्रांण्यस्यै तानि योनेः सम्भूंतानि यानि मृन्मयांनि साक्षात्तान्यस्यै तस्मादेवमांह् वाग्वै पराच्यव्यांकृतावद्त्ते देवा इन्द्रंमब्रुवित्नमां नो वाचं व्याकुर्विति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मह्यं चैवेष वायवें च सह गृंह्याता इति तस्मादेन्द्रवायवः सह गृंह्यते तामिन्द्रों मध्यतोंऽवृक्रम्य व्याकंरोत्तस्मादियं व्याकृंता वागुंद्यते तस्मांथ्सकृदिन्द्रांय मध्यतो गृंह्यते द्विवीयवे द्वौ हि स वराववृंणीत॥ (३३)

स्वद्य सोमाः सहाष्टावि १ शतिश्व॥

-[७]

मित्रं देवा अंब्रुवन्थ्सोम् राजांन हनामेति सौंऽब्रवीन्नाह सर्वस्य वा अहिम्मित्रम्स्मीति तमंब्रुवन् हनामैवेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे पयंसैव मे सोमई श्रीणनिति तस्मौंन्मैत्रावरुणम्पयंसा श्रीणन्ति तस्मौंत्पशवोऽपौंक्रामन् मित्रः सन्क्रूरमंक्रितिं क्रूरमिंव खलु वा एषः (३४)

क्रोति यः सोमेन् यजंते तस्मात्पशबोऽपं क्रामन्ति यन्मैत्रावरुणम्पयंसा श्रीणाति

पृशुभिरेव तन्मित्र संमूर्धयंति पृशुभिर्यजमानम्पुरा खलु वावैविम्मित्रोऽवेदप् मत्क्रूरं चुत्रुषंः पृशवंः क्रिमिष्यन्तीति तस्मादेवमंवृणीत् वर्रुणं देवा अंब्रुवन्त्वयार्थश्रभुवा सोम् राजानर हनामेति सौंऽब्रवीद्वरं वृणे मह्यं च (३५)

पृवेष मित्रायं च सह गृंह्याता इति तस्माँ-मैत्रावरुणः सह गृंह्यते तस्माद्राज्ञा राजांनम॰श्गभुवाँ घ्रन्ति वैश्यंन वैश्यं॰ शूद्रणं शूद्रत्र वा इदं दिवा न नक्तंमासीदव्यांवृत्तन्ते देवा मित्रावरुणावब्रुवित्तदं नो वि वांसयत्मिति तावंब्रूतां वरं वृणावहा एकं पृवावत्पूर्वी ग्रहों ग्रहों गृह्याता इति तस्मादैन्द्रवायवः पूर्वों मैत्रावरुणाद्गृंह्यते प्राणापानौ ह्यंती यदुंपा॰श्वन्तर्यामौ मित्रोऽह्रजंनयद्वरुणो रात्रिन्ततो वा इदं व्यौच्छ्रद्यन्मैत्रावरुणो गृह्यते व्युंछ्रौ॥ (३६)

पुष चैन्द्रवायुवो द्वावि १ शतिश्च॥_____

=Γ∠1

यज्ञस्य शिरों ऽच्छिद्यत् ते देवा अश्विनांवब्रुविन्भिषजो वै स्थं इदं यज्ञस्य शिर्ः प्रतिं धत्तिति तार्वब्रूतां वरं वृणावहै ग्रहं एव नावत्रापिं गृह्यतामिति ताभ्यांमेतमांश्विनमंगृह्यन्ततो वै तौ यज्ञस्य शिरः प्रत्यंधत्ताम् यदांश्विनो गृह्यते यज्ञस्य निष्कृंत्यै तौ देवा अंब्रुवृत्नपूंतौ वा हुमौ मंनुष्यचुरौ (३७)

भिषजाविति तस्माँ द्वाह्मणेनं भेषुजं न कार्यं मपूतो हो ई षों ऽमेध्यो यो भिषक्तौ बंहिष्यवमानेनं पवियत्वा ताभ्यां मेतमाँ श्विनमंगृह्ण-तस्माँ द्विहिष्यवमाने स्तुत आँश्विनो गृह्यते तस्मादेवं विदुषां बहिष्यवमान उपसद्यः प्वित्रं वै बंहिष्यवमान आत्मानं मेव पंवयते तयोँ श्वेधो भेषं उत्यं वि न्यंदधुरुग्नौ तृतीयमुपसु तृतीयम्ब्राह्मणे तृतीयन्तस्मादुदपात्रम् (३८)

उपनिधार्य ब्राह्मणं देक्षिणतो निषाद्यं भेषुजं कुर्याद्यावंदेव भेषुजं तेनं करोति समर्धुकमस्य कृतम्भंवित ब्रह्मवादिनों वदन्ति कस्माँध्मत्यादेकंपात्रा द्विदेवृत्यां गृह्यन्तें द्विपात्रां हूयन्त इति यदेकंपात्रा गृह्यन्ते तस्मादेकोंऽन्तर्तः प्राणो द्विपात्रां हूयन्ते तस्माद्वौद्वौं बहिष्टांत्प्राणाः प्राणा वा एते यिद्वेवृत्याः पृशव इडा यदिडाम्पूर्वां द्विदेवृत्येंभ्य उपह्वयेत (३९)

पृशुभिः प्राणान्-तर्दधीत प्रमायुंकः स्याद्विदेवृत्याँन्भक्षयित्वेडामुपं ह्वयते प्राणान्वात्मन्धित्वा पृशूनुपं ह्वयते वाग्वा ऐंन्द्रवायवश्चक्षुंर्मैत्रावरुणः श्रोत्रंमाश्विनः पुरस्तांदैन्द्रवायवम्भंक्षयित् तस्मांत्पुरस्तांद्वाचा वंदित पुरस्तांन्मैत्रावरुणं तस्मांत्पुरस्ताचिश्वंषा पश्यित सूर्वतः परि्हारंमाश्विनं तस्मांथ्सुर्वतः श्रोत्रेण शृणोति प्राणा वा एते यिद्वेदेवत्याः (४०)

अरिंक्तानि पात्रांणि सादयित तस्मादिरिंक्ता अन्तर्तः प्राणा यतः खलु वै यज्ञस्य वितंतस्य न क्रियते तदनुं यज्ञर रक्षाङ्स्यवं चरन्ति यदिर्रक्तानि पात्रांणि सादयंति क्रियमाणमेव तद्यज्ञस्यं शये रक्षंसामनंन्ववचाराय दिक्षंणस्य हिवधीनस्योत्तरस्यां वर्तन्यार सादयित वाच्येव वाचं दधात्या तृंतीयसवनात्परिं शेरे यज्ञस्य सन्तंत्ये॥ (४१)

म्नुष्यच्रावृंदपात्रम्ंपृह्वयेत द्विदेवृत्याः षद्गंत्वारि १शच॥————[९]

बृह्स्पतिंर्देवानां पुरोहित् आसीच्छण्डामक्विस्तराणां ब्रह्मण्वन्तो देवा आस्-ब्रह्मण्वन्तो-ऽस्रीरास्ते ३५२योन्यं नाशंक्रुवन्नभिभवितुन्ते देवाः शण्डामक्वियामत्रयन्त तावंब्र्तां वर्रं वृणावहै ग्रहांवेव नावत्रापि गृह्येतामिति ताभ्यांमेतौ शुक्राम्न्थिनांवगृह्चन्ततो देवा अभवन्यरास्रीरा यस्यैवं विदुषः शुक्राम्न्थिनौ गृह्येते भवत्यात्मना परा (४२)

अस्य भ्रातृंच्यो भवति तौ देवा अपूनुद्यात्मन् इन्द्रांयाजुहवुरपंनुत्तौ शण्डामकौँ सहामुनेतिं ब्रूयाद्यं द्विष्याद्यमेव द्वेष्टि तेनैनौ सहापं नुदते स प्रथमः सङ्कृतिर्विश्वकर्मेत्येवैनांवात्मन् इन्द्रांयाजुहवुरिन्द्रो ह्येतानि रूपाणि करिकृदचंरदसौ वा आंदित्यः शुक्रश्चन्द्रमां मन्थ्यंपिगृह्य प्राश्चौ निः (४३)

ऋामृत्स्तस्मात्प्राश्चौ यन्तौ न पंश्यन्ति प्रत्यश्चांवावृत्यं जुहुत्स्तस्मांत्प्रत्यश्चौ यन्तौ पश्यन्ति चक्षुंषी वा एते यज्ञस्य यच्छुकामृन्थिनौ नासिंकोत्तरवेदिर्भितः परिक्रम्यं जुहुत्स्तस्मांद्भितो नासिंकां चक्षुंषी तस्मान्नासिंकया चक्षुंषी विधृते सर्वतः परि क्रामतो रक्षंसामपंहत्ये देवा व याः प्राचीराहुतीरजुंहवुर्ये पुरस्तादसुंरा आसुन्ताः स्ताभिः प्र (४४)

अनुदन्त याः प्रतीचीर्ये पृश्चादस्रंग् आस्नताः स्ताभिरपानुदन्त प्राचीर्न्या आहुंतयो हृयन्ते प्रत्यश्चौ शुक्रामृन्थिनौ पृश्चाचैव पुरस्तांच यजमानो भ्रातृंव्यान्प्र णुंदते तस्मात्परांचीः प्रजाः प्र वीयन्ते प्रतीचीर्जायन्ते शुक्रामृन्थिनौ वा अनु प्रजाः प्र जायन्तेऽत्रीश्चाद्यांश्च सुवीराः प्रजाः प्रंजनयन्परीहि शुक्रः शुक्रशोचिषा (४५)

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन्परीहि मुन्थी मुन्थिशोचिषेत्यांहैता वै सुवीरा

या अत्रीरेताः सुप्रजा या आद्यां य एवं वेदात्र्यंस्य प्रजा जायते नाद्यां प्रजापंतेरक्ष्यंश्वयत्तत्परापतृत्तद्विकंङ्कतुम्प्राविंशृत्तद्विकंङ्कते नारमत् तद्यवम्प्राविंशृत् तद्यवेंऽरमत् तद्यवंस्य (४६)

युवत्वं यद्वैकंङ्कतम्मन्थिपात्रम्भविति सक्तिभिः श्रीणाति प्रजापंतेरेव तच्चक्षुः सम्भेरति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माँथ्मत्यान्मंन्थिपात्रः सदो नाश्चृंत इत्याँर्तपात्रः हीतिं ब्रूयाद्यदंश्चवीतान्थौंऽध्वर्युः स्यादार्तिमार्च्छ्नेत्तस्मान्नाश्चृंते॥ (४७)

आत्मना परा निष्प्र शुक्रशोचिषा यवस्य सप्तित्रिर्श्शच॥————[१०]

देवा वै यद्यज्ञेऽर्कुर्वत् तदस्रीरा अकुर्वत् ते देवा आग्नयणाग्रान्ग्रहानपश्यन्तानगृह्णत् ततो वै तेऽग्रं पर्यायन् यस्यैवं विदुषं आग्नयणाग्रा ग्रहां गृह्यन्तेऽग्रंमेव संमानानां पर्येति रुग्णवंत्यर्चा भ्रातृंव्यवतो गृह्णीयाद्भातृंव्यस्यैव रुक्षाग्रं समानानां पर्येति ये देवा दिव्येकांदश् स्थेत्यांह (४८)

पृतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं पृवैन् सर्वाभ्यो गृह्णात्येष ते योनिर्विश्वभ्यस्त्वा देवेभ्य इत्याह वैश्वदेवो ह्येष देवत्या वाग्वै देवेभ्योऽपाँकामद्यज्ञायातिष्ठमाना ते देवा वाच्यपंकान्तायां तूष्णीं ग्रहांनगृह्णत् साऽमंन्यत् वागुन्तर्यान्ते वे मेति साग्रयणम्प्रत्यागंच्छत्तदाँग्रयणस्यांग्रयणत्वम् (४९)

तस्मांदाग्रयणे वाग्वि सृंज्यते यत्तूष्णीम्पूर्वे ग्रहां गृह्यन्ते यथां थ्सारीयंति म् आख् इयंति नापं राथ्स्यामीत्युंपावसृजत्येवमेव तदंष्वयुंरांग्रयणं गृहीत्वा यज्ञमारभ्य वाचं वि सृंजते त्रिर्हिं कंरोत्युद्गातॄनेव तद्वंणीते प्रजापंतिर्वा एष यदांग्रयणो यदांग्रयणं गृहीत्वा हिंकरोतिं प्रजापंतिरेव (५०)

तत्प्रजा अभि जिंघ्रिति तस्माँद्धथ्सं जातं गौर्भि जिंघ्रत्यात्मा वा एष यज्ञस्य यदाँग्रयणः सर्वनेसवनेऽभि गृंह्णात्यात्मन्नेव यज्ञः सं तंनोत्युपरिष्टादा नंयिति रेतं एव तद्दंधात्यधस्तादुपं गृह्णाति प्र जनयत्येव तद्वंह्मवादिनों वदन्ति कस्माँथ्सत्याद्गायत्री किनेष्ठा छन्दंसाः स्ती सर्वाणि सर्वनानि वह्तीत्येष वै गांयित्रये वथ्सो यदाँग्रयणस्तमेव

तर्दभिनिवर्त्र सर्वाणि सर्वनानि वहति तस्माँद्वथ्समुपार्कृतं गौर्भि नि वंर्तते॥ (५१)

आहाम्रयुण्त्वं प्रजापंतिरेवेतिं विश्शतिश्वं॥_________[११]

इन्द्रों वृत्रायायुर्वे यज्ञेनं सुवृगयिन्द्रों मुरुद्भिरिदितिरन्तर्यामपात्रेणं प्राण उंपारशुपात्रेणेन्द्रों वृत्रमंहुन्तस्य ग्रहान् वै प्रान्यान्येकांदश॥[१२]इन्द्रों वृत्राय पुनंर्ऋतुनांह मिथुनम्पृशवो नेष्टः पत्नीमुपारश्वन्तर्यामयोर्द्विचंत्वारिरशत्॥42॥ इन्द्रों वृत्रायं पाङ्कत्वम्॥

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे पञ्चमः प्रश्नः॥

इन्द्रों वृत्राय वज्रमुदंयच्छुथ्स वृत्रो वज्रादुद्यंतादिबभेथ्सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम्मियं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीति तस्मां उक्थ्यंम्प्रायंच्छुत्तस्मैं द्वितीयमुदंयच्छुथ्सौंऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं मियं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीतिं (१)

तस्मां उक्थ्यंमेव प्रायंच्छत्तस्मैं तृतीयमुदंयच्छत्तं विष्णुरन्वंतिष्ठत ज्हीति सौँऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदम्मयिं वीर्यं तत्ते प्र दौस्यामीति तस्मां उक्थ्यमेव प्रायंच्छत्तं निर्मायम्भूतमहन् युज्ञो हि तस्यं मायासीद्यदुक्थ्यों गृह्यतं इन्द्रियमेव (२)

तद्वीर्यं यजंमानो भ्रातृंव्यस्य वृङ्क इन्द्रांय त्वा बृहद्वंते वयंस्वत इत्याहेन्द्रांय हि स तम्प्रायंच्छत्तस्में त्वा विष्णंवे त्वेत्यांह् यदेव विष्णुंर्न्वतिष्ठत जहीति तस्माद्विष्णुंम्न्वाभंजित त्रिर्निर्गृह्णाति त्रिर्हि स तं तस्मै प्रायंच्छदेष ते योनिः पुनंर्हिवर्सीत्यांह् पुनंःपुनः (३)

ह्यंस्मान्निर्गृह्णाति चक्षुर्वा एतद्यज्ञस्य यदुक्थ्यंस्तस्मांदुक्थ्यं हुत सोमां अन्वायंन्ति तस्माद्यत्मा चक्षुरन्वेति तस्मादेकं यन्तंम्बहवोऽनं यन्ति तस्मादेको बहूनाम्भद्रो भंवति तस्मादेको बह्वीर्जाया विन्दते यदि कामयेताध्वर्युरात्मानं यज्ञयश्रसेनांपियेयमित्यंन्तराहंवनीयं च हिव्धानं च तिष्ठन्नवं नयेत् (४)

आत्मानंमेव यंज्ञयश्सेनांपियति यदिं कामयेत् यज्ञमानं यज्ञयश्सेनांपियेयमित्यंन्तरा संदोहविर्धाने तिष्ठन्नवं नयेद्यजंमानमेव यंज्ञयश्सेनांपियति यदिं कामयेत सदस्यान् यज्ञयश्रसेनांपियेयमिति सदं आलभ्यावं नयेथ्सद्स्यांनेव यंज्ञयश्रसेनांपियति॥ (५)

इतींन्द्रियमेव पुनःपुनर्नयेत्रयंस्त्रि शच॥_____

-[9]

आयुर्वा पृतद्यज्ञस्य यद्भुव उत्तमो ग्रहाणां गृह्यते तस्मादायुंः प्राणानांमुत्तमम्मूर्धानं दिवो अंर्तिं पृंथिव्या इत्यांह मूर्धानंमेवेन समानानां करोति वैश्वान्रमृतायं जातमृग्निमित्यांह वैश्वान् र हि देवत्यायुं रुभ्यतों वैश्वानरो गृह्यते तस्मादुभ्यतः प्राणा अधस्तां चोपरिष्टा चार्धिनो- उन्ये ग्रहां गृह्यन्ते ऽर्धी भ्रवस्तस्मात् (६)

अध्यवाङ्गाणौऽन्येषां प्राणानामुपौत्तेऽन्ये ग्रहाः साद्यन्तेऽनुपोप्ते ध्रुवस्तस्माद्स्श्रान्याः प्रजाः प्रतितिष्ठन्ति मार्सेनान्या असुंग् वा उत्तर्तः पृथिवीम्पयाचिकीर्षन्तां देवा ध्रुवेणांद्दश्हन्तद्भुवस्यं ध्रुवृत्वं यद्भुव उत्तर्तः साद्यते धृत्या आयुर्वा एतद्यज्ञस्य यद्भुव आत्मा होता यद्धोतृचम्से ध्रुवमंवनयंत्यात्मन्नेव यज्ञस्यं (७)

आयुर्दधाति पुरस्तांदुक्थस्यांवनीय इत्यांहुः पुरस्ताद्धायुंषो भुङ्के मध्यतोऽवनीय इत्यांहुर्मध्यमेन ह्यायुंषो भुङ्क उत्तरार्धेऽवनीय इत्यांहुरुत्तमेन ह्यायुंषो भुङ्के वैंश्वदेव्यामृचि शस्यमानायामवं नयति वैश्वदेव्यो वै प्रजाः प्रजास्वेवायुर्दधाति॥ (८)

ध्रुवस्तस्मांदेव यज्ञस्यैकान्नचंत्वारिष्शचं॥

-[2]

यज्ञेन वै देवाः सुंवर्गं लोकमायन्तेऽमन्यन्त मनुष्यां नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते संवथ्सरेणं योपयित्वा सुंवर्गं लोकमायन्तमृषय ऋतुग्रहेरेवानु प्राजानन्यदंतुग्रहा गृह्यन्ते सुवर्गस्यं लोकस्य प्रज्ञात्ये द्वादंश गृह्यन्ते द्वादंश मासाः संवथ्सरः संवथ्सरस्य प्रज्ञात्ये सह प्रंथमौ गृह्येते सहोत्तमौ तस्माद्वौद्वांवृतू उभयतोमुखमृतुपात्रम्भविति कः (९)

हि तद्वेद यतं ऋतूनाम्मुखंमृतुना प्रेष्येति षद्गृत्वं आह् षड्वा ऋतवं ऋतूनेव प्रींणात्यृतुभि्रितिं चृतुश्चतुंष्पद एव पृशून्प्रींणाति द्विः पुनंर्ऋतुनांह द्विपदं एव प्रींणात्यृतुना प्रेष्येति षद्गृत्वं आहुर्तुभि्रितिं चृतुस्तस्मा्चतुंष्पादः पृशवं ऋतूनुपं जीवन्ति द्विः (१०)

पुनंर्ऋतुनांह् तस्माँद्विपाद्श्वतुंष्पदः पृश्न्नुपं जीवन्त्यृतुना प्रेष्येति षद्गृत्वं आहुर्तुभिरितिं चतुर्द्विः पुनंर्ऋतुनांहाक्रमणमेव तथ्सेतुं यजंमानः कुरुते सुवर्गस्यं लोकस्य समिष्टी नान्योंन्यमनु प्र पंद्येत यद्न्योंऽन्यमंनु प्रपद्येतुर्त्ऋतुमनु प्र पंद्येतुर्तवो मोहुंकाः स्युः (११)

प्रसिद्धमेवाध्वर्युर्दक्षिणेन प्र पंद्यते प्रसिद्धं प्रतिप्रस्थातोत्तरेण तस्मादादित्यः षण्मासो

दक्षिणेनैति षडुत्तरेणोपयामगृहीतोऽसि स्र्सर्पेंऽस्य १ हस्पत्याय त्वेत्याहास्तिं त्रयोदशो मास् इत्यांहुस्तमेव तत्प्रीणाति॥ (१२)

को जीवन्ति द्विः स्युश्चतुंस्त्रि॰शच॥----[३]

सुवर्गाय वा एते लोकायं गृह्यन्ते यदंतुग्रहा ज्योतिंरिन्द्राग्नी यदेँन्द्राग्नमृंतुपात्रेणं गृह्णाति ज्योतिरेवास्मां उपरिष्टाद्दधाति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या ओजोभृतौ वा एतौ देवानां यदिनद्राग्नी यदैंन्द्राग्नी गृह्णात ओजं एवावं रुन्द्रे वैश्वदेवर शुंक्रपात्रेणं गृह्णाति वैश्वदेव्यों वै प्रजा असावांदित्यः शुक्रो यद्वैश्वदेवर शुंक्रपात्रेणं गृह्णाति तस्मांद्सावांदित्यः (१३)

सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ्कदेति तस्माथ्सर्वे एव मन्यते माम्प्रत्युदंगादितिं वैश्वदेव श्रृंकपात्रेणं गृह्णति वैश्वदेव्यों वै प्रजास्तेजः शुक्रो यद्वैश्वदेव श्रृंकपात्रेणं गृह्णतिं प्रजास्वेव तेजों दधाति॥ (१४)

इन्द्रों मुरुद्भिः सांविद्येन् मार्थ्यंदिने सर्वने वृत्रमंहुन्यन्मार्थ्यंदिने सर्वने मरुत्वतीयां गृह्यन्ते वार्त्रघ्ना एव ते यजमानस्य गृह्यन्ते तस्यं वृत्रं ज्ञघ्नुषं ऋतवोऽमुह्यन्थ्स ऋतुपात्रेणं मरुत्वतीयांनगृह्णात्ततो व स ऋतून्प्राजांनाद्यदंतुपात्रेणं मरुत्वतीयां गृह्यन्तं ऋतूनाम्प्रज्ञांत्ये वज्रं वा एतं यजमानो भ्रातृंब्याय् प्र हंरति यन्मंरुत्वतीया उदेव प्रथमेनं (१५)

युच्छुति प्र हंरित द्वितीयेन स्तृणुते तृतीयेनायुंधं वा एतद्यजंमानः सङ्स्कुंरुते यन्मंरुत्वतीया धनुरेव प्रंथमो ज्या द्वितीय इषुंस्तृतीयः प्रत्येव प्रंथमेन धत्ते वि सृंजित द्वितीयेन विध्यंति तृतीयेनेन्द्रों वृत्र हत्वा पर्गं परावतंमगच्छुदपाराध्मिति मन्यंमानः स हरितोऽभव्थस एतान्मंरुत्वतीयांनात्मुस्परंणानपश्यत्तानंगृह्णीत (१६)

प्राणमेव प्रथमेनांस्पृणुतापानं द्वितीयेनात्मानं तृतीयेनात्मस्परंणा वा एते यजंमानस्य गृह्यन्ते यन्मंरुत्वतीयाः प्राणमेव प्रथमेनं स्पृणुतेऽपानं द्वितीयेनात्मानं तृतीयेनेन्द्रों वृत्रमंहुन्तं देवा अंब्रुवन्महान् वा अयमंभूद्यो वृत्रमवंधीदिति तन्मंहेन्द्रस्यं महेन्द्रत्व स एतम्माहेन्द्रमुंद्धारमुदंहरत वृत्र हत्वान्यासुं देवतास्विध यन्माहेन्द्रो गृह्यतं उद्धारमेव तं यजंमान् उद्धरतेऽन्यासुं प्रजास्विधं शुक्रपात्रेणं गृह्णाति यजमानदेवत्यों वै महिन्द्रस्तेजंः

शुक्रो यन्मांहेन्द्र श्रुंकपात्रेणं गृह्णाति यजंमान एव तेजों दधाति॥ (१७)

प्रथमेनांगृह्णीत देवतांस्वष्टावि रेशतिश्च॥—————[५]

अदितिः पुत्रकांमा साध्येभ्यां देवेभ्यां ब्रह्मौदनमंपचत्तस्यां उच्छेषंणमददुस्तत्प्राश्चाथसा रेतोंऽधत्त तस्यें चत्वारं आदित्या अंजायन्त सा द्वितीयंमपचथ्सामन्यतोच्छेषंणान्म इमेंऽज्ञत् यदग्रें प्राशिष्यामीतो मे वसीया सो जनिष्यन्त इति साग्रे प्राश्चाथ्सा रेतोंऽधत्त तस्यै व्यृद्धमाण्डमंजायत् सादित्येभ्यं एव (१८)

तृतीयंमपच्द्भोगांय म इद श्रान्तम्स्त्वित् तें ऽब्रुव्न्वरं वृणामहै योऽतो जायांता अस्माक् स एको ऽसद्यों उस्य प्रजायामृध्यांता अस्माक्म्भोगांय भवादिति ततो विवंस्वानादित्यों ऽजायत् तस्य वा इयं प्रजा यन्मंनुष्यां स्तास्वेकं एवर्द्धो यो यजेते स देवानाम्भोगांय भवति देवा वै युज्ञात् (१९)

रुद्रम्-तराय्न्थ्स आंदित्यान्नवाक्रंमत् ते द्विदेवत्यांन्प्रापंचन्त् तान्न प्रति प्रायंच्छन्तस्मादिष् वध्यम्प्रपंत्रं न प्रति प्र यंच्छन्ति तस्मांद्विदेवत्यांभ्य आदित्यो निर्गृह्यते यदुच्छेषंणादजांयन्त् तस्मांदुच्छेषंणाद्गृह्यते तिसृभिंर्ऋग्भिर्गृह्णाति माता पिता पुत्रस्तदेव तिम्भिथुनमुल्बं गर्भो जुरायु तदेव तत् (२०)

मिथुनम्प्शवो वा एते यदांदित्य ऊर्ग्दिधं दुध्ना मध्यतः श्रीणात्यूर्जमेव पंशूनाम्मध्यतो दंधाति श्वतातुङ्क्ष्यंन मध्यत्वाय तस्मादामा पृक्कं दुंहे पृशवो वा एते यदांदित्यः पंरिश्रित्यं गृह्णाति प्रतिरुध्येवास्म पृशून्गृह्णाति पृशवो वा एते यदांदित्य एष रुद्रो यद्ग्निः पंरिश्रित्यं गृह्णाति रुद्रादेव पृशूनन्तर्दधाति (२१)

णुष वै विवंस्वानादित्यो यदुंपाःश्चुसवंनः स पृतमेव सोमपीथं परिं शय आ तृंतीयसवनाद्विवंस्व आदित्येष तें सोमपीथं इत्यांह् विवंस्वन्तमेवाऽऽदित्यः सोमपीथेन् समर्धयित् या दिव्या वृष्टिस्तयां त्वा श्रीणामीति वृष्टिंकामस्य श्रीणीयाद्वृष्टिंमेवावं रुन्द्वे यदिं ताजक्प्रस्कन्देद्वर्षुंकः पूर्जन्यः स्याद्यदिं चिरमवंर्षुको न सादयत्यसंत्राद्धि प्रजाः प्रजायंन्ते नानु वर्षद्वरोति यदंनुवषद्भूर्याद्वुदं प्रजा अन्ववंसुजेत्र हुत्वान्वीक्षेत् यद्न्वीक्षेत् चक्षुंरस्य प्रमायुंकः स्यात्तस्मान्नान्वीक्ष्यः॥ (२२)

एव युज्ञाञ्चरायु तदेव तदन्तर्दधाति न सप्तवि^५शतिश्च॥**————**

अन्तर्याम्पात्रेणं सावित्रमांग्रयणाद्गृंह्णाति प्रजापंतिर्वा एष यदांग्रयणः प्रजानां प्रजनंनाय न सादयत्यसंत्राद्धि प्रजाः प्रजायन्ते नानु वषंद्वरोति यदनुवषद्भुर्याद्भुद्रं प्रजा अन्ववंसृजेदेष वै गायत्रो देवानां यथ्संवितेष गायत्रिये लोके गृंह्यते यदांग्रयणो यदंन्तर्यामपात्रेणं सावित्रमांग्रयणाद्गृह्णाति स्वादेवेनं योनेर्निगृह्णाति विश्वे (२३)

देवास्तृतीय् सर्वनं नोदंयच्छुन्ते संवितारंम्प्रातःसवनभाग् सन्तं तृतीयसवनम्भि पर्यणयन्ततो वै ते तृतीय् सर्वनमुदंयच्छुन्यत्तृतीयसवने सांवित्रो गृह्यते तृतीयस्य सर्वनस्योद्यंत्ये सवितृपात्रेणं वैश्वदेवं कुलशाँद्गृह्णाति वैश्वदेवं कुलशाँद्गृह्णाति वेश्वदेवं कुलशाँद्गृह्णाति सवितृप्रंसूत एवास्मै प्रजाः प्र (२४)

जन्यति सोमे सोमंम्भि गृह्णति रेतं एव तद्दंधाति सुशर्मांसि सुप्रतिष्ठान इत्यांह् सोमे हि सोमंमिभगृह्णाति प्रतिष्ठित्या एतस्मिन्वा अपि ग्रहें मनुष्यैंभ्यो देवेभ्यः पितृभ्यः क्रियते सुशर्मांसि सुप्रतिष्ठान इत्यांह मनुष्यैंभ्य एवैतेनं करोति बृहदित्यांह देवेभ्यं एवैतेनं करोति नम् इत्यांह पितृभ्यं एवैतेनं करोति नम् इत्यांह पितृभ्यं एवैतेनं करोत्येतावंतीर्वे देवतास्ताभ्यं एवैन् सर्वांभ्यो गृह्णात्येष ते योनिर्विश्वंभ्यस्त्वा देवेभ्य इत्यांह वैश्वदेवो ह्यंषः॥ (२५)

विश्वे प्र पितृभ्यं पुवैतेनं करोत्येकान्नविर्श्यातिश्चं॥______[७]

प्राणो वा एष यद्ंपार्श्यर्यंपारश्पात्रेणं प्रथमश्चौत्तमश्च ग्रहौं गृह्येतें प्राणमेवानं प्रयन्तिं प्राणमनूद्यंन्ति प्रजापंतिर्वा एष यदाँग्रयणः प्राण उंपार्शः पत्नौः प्रजाः प्र जंनयन्ति यदंपारश्पात्रेणं पात्नीवृतमाँग्रयणाद्गृह्णातिं प्रजानां प्रजनंनाय तस्माँत्प्राणं प्रजा अनु प्रजायन्ते देवा वा इतइंतः पत्नीः सुवर्गम् (२६)

लोकमंजिगा १ स्व-ते सुंवर्गं लोकं न प्राजांनुन्त एतम्पाँ बीवतमंपश्यन्तमंगृह्वत् ततो वै ते सुंवर्गं लोकम्प्राजांनुन् यत्पाँ बीवतो गृह्यते सुवर्गस्यं लोकस्य प्रज्ञाँत्ये स सोमो नातिष्ठत स्त्रीभ्यो गृह्यमांणस्तं घृतं वर्ज्नं कृत्वाघ्नन्तं निरिन्द्रियम्भूतमंगृह्न्नतस्माध्स्रियो निरिन्द्रिया अदांयादीरिपं पापात्पु १ स उपंस्तितरम् (२७)

वृद्न्ति यद्भृतेनं पात्नीवृतः श्रीणाति वर्ज्रेणैवैनं वर्शे कृत्वा गृह्णात्युपयामगृहीतो-ऽसीत्याहेयं वा उपयामस्तस्मादिमां प्रजा अनु प्र जायन्ते बृह्स्पतिसुतस्य त इत्याह् ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिर्ब्रह्मणेवास्मैं प्रजाः प्र जनयतीन्दो इत्यांह् रेतो वा इन्दू रेते एव तद्दंधातीन्द्रियाव इति (२८)

आह् प्रजा वा इंन्ड्रियं प्रजा एवास्मै प्र जंनयत्यग्ना(३) इत्यांहाग्निर्वे रेतोधाः पत्नीव इत्यांह मिथुनत्वायं सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमंग्पिवेत्यांह त्वष्टा वै पंशूनाग्मिथुनानारं रूपकृद्रूपमेव पृशुषुं दधाति देवा वै त्वष्टांरमजिघारस्नश्यस पत्नीः प्रापंद्यत् तं न प्रति प्रायंच्छन्तस्मादपिं (२९)

वध्यम्प्रपंत्रं न प्रति प्र यंच्छन्ति तस्मौत्पालीवते त्वष्ट्रेऽपिं गृह्यते न सादयत्यसंत्राद्धि प्रजाः प्रजायंन्ते नानु वर्षद्वरोति यदंनुवषद्भुर्याद्रुद्धं प्रजा अन्ववंसजेद्यन्नानुंवषद्भुर्यादशौन्तम्ग्रीथ्सोमंम्भक्षयेदुपा्र्श्वनु वर्षद्वरोति न रुद्रं प्रजा अन्ववसुजति शान्तम्ग्रीथ्सोमंम्भक्षयत्यग्रीन्नेष्टुंरुपस्थमा सींद (३०)

नेष्टः पत्नीमुदान्येत्यांहाग्नीदेव नेष्टंरि रेतो दर्धाति नेष्टा पत्नियामुद्गात्रा सं ख्यांपयित प्रजापितिर्वा एष यदुंद्गाता प्रजानां प्रजननायाप उप प्र वंतियित रेतं एव तथ्सिश्चत्यूरुणोप प्र वंतियत्यूरुणा हि रेतः सिच्यते नम्नंकृत्योरुमुप प्र वंतियति यदा हि नम्न ऊरुर्भवृत्यर्थं मिथुनी भवतोऽथ् रेतः सिच्यतेऽथं प्रजाः प्र जांयन्ते॥ (३१)

पर्बीः सुवर्गमुपंस्तितरमिन्द्रियाव इत्यपिं सीद मिथुन्यंष्टौ चं॥-----[८]

इन्द्रों वृत्रमंह्न्तस्यं शीर्षकपालमुदौं ब्रथ्स द्रोणकलृशों ऽभवृत्तस्माथ्सोमः समस्रवृथ्स हारियोज्ञनों ऽभवृत्तं व्यंचिकिथ्सञ्चृहवानी(३) मा हौषा(३) मिति सो ऽमन्यत् यद्धोच्याम्याम हौंच्यामि यत्र होच्यामि यज्ञवेश्यसं करिच्यामीति तमिप्रयत् होतु सो ऽग्निरं ब्रवीत्र मय्याम हौंच्यासीति तं धानाभिरश्रीणात् (३२)

तः शृतम्भूतमंजुहोद्यद्धानाभिर्हारियोजनः श्रीणाति शृतत्वायं शृतमेवैनंम्भूतं जुंहोति बह्वीभिः श्रीणात्येतावंतीरेवास्यामुष्मिंश्लाँके कामदुषां भवन्त्यथो खल्वांहुरेता वा इन्द्रंस्य पृश्लंयः कामदुषा यद्धारियोजनीरिति तस्माँद्वह्वीभिः श्रीणीयादख्सामे वा इन्द्रंस्य हरीं सोमुपानौ तयोः परि्धयं आधानं यदप्रहत्य परि्धीञ्जंहुयादन्तरांधानाभ्याम् (३३)

घासम्प्र यंच्छेत्प्रहृत्यं परिधीञ्चंहोति निराधानाभ्यामेव घासम्प्र यंच्छत्युन्नेता जुंहोति यातयांमेव ह्यंतर्ह्यंष्वर्युः स्वगाकृतो यदंष्वर्युर्जुहुयाद्यथा विमुक्तम्पुनंर्युनिक्तं तादगेव तच्छी्र्षन्नंधिनिधायं जुहोति शीर्षतो हि स समभंविद्विक्रम्यं जुहोति विक्रम्य हीन्द्रों वृत्रमहन्थ्समृद्धौ पुशवो वै हांरियोजनीर्यथ्संम्भिन्द्यादल्पाः (३४)

एन्म्प्शवो भुञ्जन्त उपं तिष्ठेर्न्यन्न संस्भिन्द्याद्बहवं एनम्प्शवोऽभुंञ्जन्त उपं तिष्ठेर्न्मनंसा सम्बांधत उभयं करोति बहवं एवैनम्प्शवो भुञ्जन्त उपं तिष्ठन्त उन्नेतर्युपह्विमेच्छन्ते य एव तत्रं सोमपीथस्तमेवावं रुन्धत उत्तरवेद्यां नि वंपित पृशवो वा उत्तरवेदिः पृशवों हारियोज्नीः पृशुष्वेव पृशून्प्रतिं ष्ठापयन्ति॥ (३५)

अश्रीणादन्तरांधानाभ्यामल्पाः स्थापयन्ति॥🕳

-[8]

ग्रहान् वा अनुं प्रजाः पृशवः प्र जांयन्त उपारश्वन्तर्यामावंजावयः शुकामृन्थिनौ पुरुषा ऋतुग्रहानेकंशफा आदित्यग्रहं गावं आदित्यग्रहो भूयिष्ठाभिर्ऋग्भिर्गृह्यते तस्माद्गावंः पश्नाम्भूयिष्ठा यत्रिरुपार्शु हस्तेन विगृह्णाति तस्माद्गौ त्रीनृजा जनयृत्यथावयो भूयंसीः पिता वा एष यदांग्रयणः पुत्रः कुलशो यदांग्रयण उपदस्येत्कुलशांद्गृह्णीयाद्यथां पिता (३६)

पुत्रं क्षित उंप्धावंति ताहगेव तद्यत्कलशं उपदस्येदाग्रयणाद्गृंह्णीयाद्यथां पुत्रः पितरं क्षित उंप्धावंति ताहगेव तदात्मा वा एष यज्ञस्य यदाँग्रयणो यद्गहों वा कुलशों वोपदस्येदाग्रयणाद्गृंह्णीयादात्मनं एवाधि यज्ञं निष्करोत्यविज्ञातो वा एष गृंह्यते यदाँग्रयणः स्थाल्या गृह्णाति वायुव्येन जुहोति तस्मात (३७)

गर्भेणाविज्ञातेन ब्रह्महावंभृथमवं यन्ति परौ स्थालीरस्यन्त्युद्वांयव्यांनि हरन्ति तस्माध्यियं जातां परौस्यन्त्युत्पृमार्श्स हरन्ति यत्पुरोरुचमाह् यथा वस्यंस आहरंति तादृगेव तद्यद्वहं गृह्णाति यथा वस्यंस आहत्य प्राहं तादृगेव तद्यथ्साद्यंति यथा वस्यंस उपनिधायांपृकामंति तादृगेव तद्यद्वै यज्ञस्य साम्रा यज्ञंषा क्रियते शिथिलं तद्यदृचा तद्दृढम्पुरस्तांदुपयामा यज्ञंषा गृह्यन्त उपरिष्टादुपयामा ऋचा यज्ञस्य धृत्ये॥ (३८)

यथां पिता तस्मांदपुकार्मित तादृगेव तद्यदृष्टादेश च॥______

-[00]

प्रान्यानि पात्रांणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनांनि प्रयुज्यन्तेऽमुमेव तैर्लोकम्भि जंयिति पराङिव ह्यंसौ लोको यानि पुनः प्रयुज्यन्तं इममेव तैर्लोकम्भि जंयिति पुनःपुनरिव ह्यंयं लोकः प्रान्यानि पात्रांणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनांनि प्रयुज्यन्ते तान्यन्वोषंधयः परां भवन्ति यानि पुनः (३९)

प्रयुज्यन्ते तान्यन्वोषंधयः पुन्रा भंविन्ति प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्ते तान्यन्वार्ण्याः पृशवोऽरंण्यमपं यन्ति यानि पुनः प्रयुज्यन्ते तान्यन्तं ग्राम्याः पृशवो ग्राममुपावंयन्ति यो वै ग्रहाणां निदानं वेदं निदानंवान्भवत्याज्यमित्युक्थं तद्वै ग्रहाणां निदानं यदुंपार्श शर्सिति तत् (४०)

उपार्श्वन्तर्यामयोर्यदुचैस्तदितरेषां ग्रहाणामेतद्वे ग्रहाणां निदानं य एवं वेदं निदानंवान्भवति यो वे ग्रहाणाम्मिथुनं वेद् प्र प्रजयां पृश्भिर्मिथुनैर्जायते स्थालीभिर्न्ये ग्रहां गृह्यन्ते वाय्व्येर्न्य एतद्वे ग्रहांणाम्मिथुनं य एवं वेद् प्र प्रजयां पृश्भिर्मिथुनैर्जायत् इन्द्रस्त्वष्टुः सोमंमभीषहांपिबथ्स विष्वङ्कं (४१)

व्यांच्छ्रिथ्स आत्मन्नारमंण्ं नाविन्द्रथ्स एतानंनुसव्नम्पुंग्रेडाशांनपश्यत्तां निर्रवपत्तेर्वे स आत्मन्नारमंणमकुरुत् तस्मांदनुसव्नम्पुंग्रेडाशां निर्रप्यन्ते तस्मांदनुसव्नम्पुंग्रेडाशांनाम्प्राश्लीयादात्मन्नेवारमंणं कुरुते नैन् सोमोऽतिं पवते ब्रह्मवादिनों वदन्ति नर्चा न यज्ञुंषा पृङ्किरांप्यतेऽथ् किं यज्ञस्यं पाङ्कृत्वमितिं धानाः कंरुम्भः परिवापः पुरोडाशः पयस्यां तेनं पृङ्किरांप्यते तद्यज्ञस्यं पाङ्कृत्वम्॥ (४२)

भ्वन्ति यानि पुनः शश्संति तद्विष्वङ्किश्चतुर्दश च॥————[११]
सुवर्गाय यद्दांक्षिणानि समिष्टयज्ञ्र्रष्यंवभृथयज्ञ्र्रषि स्प्येनं प्रजापंतिरेकाद्शिनीमिन्द्रः पत्निया प्रन्ति देवा वा इंन्द्रियं देवा वा अदांभ्ये देवा वै प्रबाहुंक्य्रजापंतिर्देवभ्यः स रिरिचानः षोडश्ययेकांदश॥————[१२]सुवर्गायं यजित प्रजाः सौम्येनं गृह्णीयात्प्रत्यश्चं गृह्णीयात्प्रजां प्रशूत्रिचंत्वारिश्शत्॥43॥ सुवर्गाय् वर्ष्रस्य रूपश् समृद्धौ॥

॥षष्ठमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठमकाण्डे षष्ठमः प्रश्नः॥

सुवर्गाय वा एतानिं लोकायं हूयन्ते यहाँश्चिणानि द्वाभ्यां गार्हंपत्ये जुहोति द्विपाद्यजंमानः प्रतिष्ठित्या आग्नींध्रे जुहोत्यन्तिरिक्ष एवा क्रमते सदोऽभ्यैतिं सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित सौरीभ्यांमृग्भ्यां गार्हंपत्ये जुहोत्यमुमेवैनं लोकर समारोहयित नयंवत्यर्चाग्नींध्रे जुहोति सुवर्गस्यं लोकस्याभिनींत्यै दिवं गच्छ सुवं पतेति हिरंण्यम् (१)

हुत्वोद्गृह्णाति सुवर्गमेवैनं लोकङ्गमयित रूपेणं वो रूपम्भ्यैमीत्यांह रूपेण ह्यांसा र रूपम्भ्यैति यद्धिरंण्येन तुथो वो विश्ववेदा वि भंजत्वित्यांह तुथो हं स्मृ वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा वि भंजिति तेनैवैना वि भंजत्येतत्ते अग्ने रार्थः (२)

ऐति सोमंच्युत्मित्यांह् सोमंच्युत् ह्यंस्य राध् ऐति तन्मित्रस्यं पृथा न्येत्यांह् शान्त्यां ऋतस्यं पृथा प्रेतं चन्द्रदंक्षिणा इत्यांह सृत्यं वा ऋतः सृत्येनैवेनां ऋतेन् वि भंजित यज्ञस्यं पृथा सुंविता नयंन्तीरित्यांह यज्ञस्य ह्यंताः पृथा यन्ति यद्दक्षिणा ब्राह्मणमद्य राध्यासम् (३)

ऋषिंमार्षेयमित्यांहैष वै ब्राँह्मण ऋषिंरार्षेयो यः शुंश्रुवान्तस्मांदेवमांह वि सुवः पश्यु व्यन्तिरिक्षमित्यांह सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित यतंस्व सद्स्यैरित्यांह मित्रत्वायास्मद्दात्रा देवत्रा गंच्छत मधुंमतीः प्र दातार्मा विंशतेत्यांह व्यमिह प्रदातारः स्मोंऽस्मानमुत्र मधुंमतीरा विंशतेति (४)

वावैतदांहु हिरंण्यं ददाति ज्योतिर्वे हिरंण्यं ज्योतिरेव पुरस्ताँ छत्ते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्या अग्नीर्धे ददात्यग्निम्ंखानेवर्तून्त्रींणाति ब्रह्मणे ददाति प्रसूँत्यै होत्रें ददात्यात्मा वा एष यज्ञस्य यद्धोतात्मानंमेव यज्ञस्य दक्षिणाभिः समर्धयति॥ (५)

हिरंण्यु राधो राध्यासम्मुत्र मधुंमतीरा विंशतेत्युष्टात्रि रंशच॥———[१]

स्मिष्ट्यजू १ षिं जुहोति यज्ञस्य सिम्छि यद्वै यज्ञस्यं क्रूरं यद्विलिष्टं यद्त्येति यन्नात्येति यदंतिकरोति यन्नापिं करोति तदेव तैः प्रीणाति नवं जुहोति नव वै पुरुषे प्राणाः पुरुषेण यज्ञः सिम्नितो यावानेव यज्ञस्तम्प्रीणाति षड्गिमयाणि जुहोति षड्वा ऋतवं ऋतूनेव प्रीणाति त्रीणि यजू १ षि (६)

त्रयं इमे लोका इमानेव लोकान्प्रीणाति यज्ञं युज्ञं गच्छ युज्ञपंतिं गुच्छेत्यांह युज्ञपंतिमेवेनं गमयति स्वां योनिं गुच्छेत्यांह स्वामेवेनं योनिं गमयत्येष ते युज्ञो यंज्ञपते सहसूँक्तवाकः सुवीर इत्यांह यज्ञंमान एव वीर्यं दधाति वासिष्ठो हं सात्यह्व्यो देवभागम्पप्रच्छ् यथ्सृश्चयान्बहुयाजिनोऽयीयजो युज्ञे (७)

यज्ञम्प्रत्यंतिष्ठिपा(३)यज्ञप्ता(३)विति स होवाच यज्ञपंताविति सत्याद्वे सृश्जयाः परां बभूबुरिति होवाच यज्ञे वाव यज्ञः प्रतिष्ठाप्यं आसीद्यजंमान्स्यापंराभावायेति देवां गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमितेत्यांह यज्ञ एव यज्ञं प्रतिं ष्ठापयति यजंमानस्यापंराभावाय॥ (८)

यजूरंषि युज्ञ एकंचत्वारिरशच॥———[२]

अवभृथयज्ञू १षिं जुहोति यदेवार्वाचीनमेकंहायनादेनः करोति तदेव तैरवं यजतेऽपीं-ऽवभृथमवैत्यप्ममु वे वरुणः साक्षादेव वरुणमवं यजते वर्त्मना वा अन्वित्यं यज्ञ १ रक्षा १सि जिघा १सिन्ति साम्नां प्रस्तोतान्ववैति साम् वे रक्षोहा रक्षंसामपंहत्यै त्रिर्निधन्मुपैति त्रयं इमे लोका पृभ्य एव लोकेभ्यो रक्षा १सि (९)

अपं हिन्तु पुरुषःपुरुषो निधन्मुपैति पुरुषःपुरुषो हि रेक्षस्वी रक्षंसामपंहत्या उरु र हि राजा वरुणश्चकारेत्यांह प्रतिष्ठित्यै शतं ते राजिन्धिष्जः सहस्रमित्यांह भेषजमेवास्मैं करोत्यभिष्ठितो वरुणस्य पाश इत्यांह वरुणपाशमेवाभि तिष्ठति ब्रहिर्भि जुंहोत्याहुंतीनां प्रतिष्ठित्या अथौ अग्निवत्येव जुंहोत्यपंबर्हिषः प्रयाजान् (१०)

युज्ति प्रजा वै बुर्हिः प्रजा एव वंरुणपाशान्मुंश्चत्याज्यंभागौ यजित युज्ञस्यैव चक्षुंषी नान्तरंति वरुणं यजित वरुणपाशादेवेनंम्मुश्चत्यग्नीवरुणौ यजित साक्षादेवेनं वरुणपाशान्मुंश्चत्यपंबर्हिषावनूयाजौ यंजित प्रजा वै बुर्हिः प्रजा एव वंरुणपाशान्मुंश्चिति चुतुरंः प्रयाजान् यंजिति द्वावंनूयाजौ षद्थसम्पंचन्ते षड्वा ऋतवंः (११)

ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठत्यवंभृथ निचङ्कुणेत्यांह यथोदितमेव वर्रुणमवं यजते समुद्रे ते हृदंयमुफ्स्वंन्तरित्यांह समुद्रे ह्यंन्तर्वरुणः सं त्वां विश्वन्त्वोषधीकृताप् इत्यांहाद्भिरेवेनुमोषधीभिः सम्यश्चं दधाति देवीराप एष वो गर्भ इत्यांह यथायुजुरेवैतत्पृशवो वै (१२)

सोमो यद्भिन्दूनाम्नक्षयेंत्पशुमान्थस्याद्धर्रणस्त्वेनं गृह्णीयाद्यन्न भृक्षयेदपृशुः स्यान्नैनं वर्रुणो गृह्णीयादपुस्पृश्यंमेव पंशुमान्भंवित नैनं वर्रुणो गृह्णाति प्रतियुतो वर्रुणस्य पाश इत्यांह वरुणपाशादेव निर्मुच्यतेऽप्रतीक्षमा यन्ति वर्रुणस्यान्तरहित्या एधौंऽस्येधिषीम्हीत्यांह स्मिधेवाग्निं नंमस्यन्तं उपायंन्ति तेजोंऽसि तेजो मिये धेहीत्यांह तेजं पुवात्मन्धंत्ते॥ (१३)

रक्षारंसि प्रयाजानृतवो वै नंमस्यन्तो द्वादंश च॥----[३]

स्फोन् वेदिमुद्धन्ति रथाक्षेण् वि मिमीते यूपेम्मिनोति त्रिवृतंमेव वज्रर्थ सम्भृत्य भ्रातृंच्याय् प्र हरिति स्तृत्यै यदेन्तर्वेदि मिनुयाद्देवलोकम्भि जंयेद्यद्वहिर्वेदि मेनुष्यलोकं वैद्यन्तस्य संधौ मिनोत्युभयौर्लोकयोर्भिजित्या उपरसम्मिताम्मिनुयात्पितृलोककांमस्य रशुनसंम्मिताम्मनुष्यलोककांमस्य चृषालंसिम्मितामिन्द्रियकांमस्य सर्वांन्थ्समान्प्रंतिष्ठाकांमस्य ये त्रयों मध्यमास्तान्थ्समान्पशुकांमस्येतान् वै (१४)

अनुं पृशव उपं तिष्ठन्ते पशुमानेव भवित व्यतिषजेदितंरान्य्रजयैवैनंम्पृशुभिर्व्यतिषजित यं कामयेत प्रमायुंकः स्यादितिं गर्तमितं तस्यं मिनुयादुत्तरार्ध्यं वर्षिष्ठमथ् ह्रसीया समेषा वै गर्तिमिद्यस्यैविम्मिनोतिं ताजक्प्र मीयते दक्षिणार्ध्यं वर्षिष्ठम्मिनुयाथ्सुवर्गकांम्स्याथ् ह्रसीया समाक्रमणमेव तथ्सेतुं यर्जमानः कुरुते सुवर्गस्यं लोकस्य सम्ध्ये (१५)

यदेकंस्मिन् यूपे द्वे रंश्ने पंरिव्ययंति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नैका रंश्नां द्वयोर्यूपंयोः परिव्ययंति तस्मान्नैका द्वौ पतीं विन्दते यं कामयेत रूयंस्य जायेतेत्युंपान्ते तस्य व्यतिषज्ञेथ्रूयंवास्यं जायते यं कामयेत पुमानस्य जायेतेत्यान्तं तस्य प्र वैष्टयेत्पुमानेवास्यं (१६)

जायतेऽसुंरा वै देवान्दंक्षिणत उपानयन्तां देवा उपश्येनैवापानुदन्त तदुंपश्यस्योपशयत्वं यद्दंक्षिणत उपश्य उपशये भ्रातृं व्यापनुत्त्ये सर्वे वा अन्ये यूपाः पशुमन्तोऽथोपश्य एवापशुस्तस्य यजमानः पशुर्यन्न निर्दिशेदार्तिमार्च्छेद्यजमानोऽसौ ते पशुरिति निर्दिशेद्यं द्विष्याद्यमेव (१७)

द्वेष्ट्रि तमंस्मै पृशुं निर्दिशिति यदि न द्विष्यादाखुस्तें पृशुरितिं ब्रूयात्र ग्राम्यान्पृशून् हिनस्ति नार्ण्यान्प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् सौंऽन्नाद्येन् व्याध्यंत् स पृतामंकाद्शिनींमपश्यत्तया वै सौंऽन्नाद्यमवांरुन्द्व यद्दश् यूपा भवंन्ति दशांक्षरा विराडन्नं विराद्विराजेवान्नाद्यमवं रुन्द्वे (१८)

य एंकाद्रशः स्तनं एवास्ये स दुह एवैनां तेन वज्रो वा एषा सम्मीयते यदेंकाद्शिनी सेश्वरा पुरस्तांत्प्रत्यश्चं यज्ञ सम्मीर्दितोर्यत्पांनीवृतम्मिनोतिं यज्ञस्य प्रत्युत्तं ब्ये सयत्वायं॥ (१९)

वै सम्प्ये पुर्मानेवास्य यमेव रुन्धे त्रिष्शर्च॥————[४]

प्रजापंतिः प्रजा अंस्रजत् स रिरिचानों ऽमन्यत् स एतामें काद्शिनीं मपश्यत्तया वै स आयुंरिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नेथत्त प्रजा इंव खलु वा एष सृजते यो यजते स एतर्हि रिरिचान इंव यदेषेकांद्शिनी भवत्यायुंरेव तयैन्द्रियं वीर्यं यजमान आत्मन्धंत्ते प्रैवाग्नेयेनं वापयति मिथुन सारस्वत्या करोति रेतः (२०)

सौम्येनं दधाति प्र जंनयित पौष्णेनं बार्हस्पत्यो भंवित ब्रह्म वै देवानाम्बृह्स्पतिब्रह्मणैवास्मैं प्रजाः प्र जंनयित वैश्वदेवो भंवित वैश्वदेव्यों वे प्रजाः प्रजा एवास्मै प्र जंनयतीन्द्रियमेवैन्द्रेणावंरुन्द्धे विशंम्मारुतेनौजो बलंमैन्द्राग्नेनं प्रस्वायं सावित्रो निर्वरुणत्वायं वारुणो मंध्यत ऐन्द्रमा लंभते मध्यत एवेन्द्रियं यजंमाने दधाति (२१)

पुरस्तांदैन्द्रस्यं वैश्वदेवमालंभते वैश्वदेवं वा अन्नमन्नमेव पुरस्तांद्धते तस्मांत्पुरस्तादन्नमद्यत ऐन्द्रमालभ्यं मारुतमा लंभते विश्वे मुरुतो विश्वंमेवास्मा अनुं ब्रधाति यदि कामयेत् योऽवंगतः सोऽपं रुध्यतां योऽपंरुद्धः सोऽवं गच्छुत्वित्यैन्द्रस्यं लोके वारुणमा लंभेत वारुणस्यं लोक ऐन्द्रम् (२२)

य पुवावंगतः सोऽपं रुध्यते योऽपंरुद्धः सोऽवं गच्छति यदिं कामयेत प्रजा मृंह्ययुरितिं पृशून्व्यतिषजेत्प्रजा एव मोंहयति यदंभिवाहृतोऽपां वांरुणमालभेत प्रजा वरुणो गृह्णीयादक्षिणत उदंश्रमा लेभतेऽपवाहतोऽपां प्रजानामवंरुणग्राहाय॥ (२३)

रेतो यर्जमाने दधाति लोक ऐन्द्र॰ सप्तित्रि॰शच॥_____[५]

इन्द्रः पिन्निया मनुंमयाजयत्तां पर्यग्निकृतामुदंसृजत्तया मनुंरार्भ्रोद्यत्पर्यग्निकृतम्पानीवृतमुंथ्सृजी यामेव मनुर्ऋद्धिमार्भ्रोत्तामेव यर्जमान ऋभ्रोति यज्ञस्य वा अप्रतिष्ठिताद्यज्ञः परां भवति यज्ञं पराभवन्तं यर्जमानोऽनु परां भवति यदाज्येन पानीवृतः सःह्रस्थापयंति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै युज्ञम्प्रतितिष्ठन्तं यर्जमानोऽनु प्रतिं तिष्ठतीष्टं वृपयां (२४)

भवत्यिनिष्टं वशयार्थं पात्नीवृतेन् प्र चंरित तीर्थं एव प्र चंर्त्यथीं एतर्ह्येवास्य यामंस्त्वाष्ट्रो भंवित त्वष्टा वै रेतंसः सिक्तस्यं रूपाणि वि कंरोति तमेव वृंषाणम्पत्नीष्विपं सृजिति सौंऽस्मै रूपाणि वि कंरोति॥ (२५)

वृपया षद्गिर्श्शच॥-----[६]

प्रन्ति वा एतथ्सोम्ं यदंभिषुण्वन्ति यथ्सौम्यो भवंति यथां मृतायांनुस्तरंणीं प्रन्तिं ताहगेव तद्यदुंत्तरार्धे वा मध्यें वा जुहुयाद्देवतांभ्यः समदं दध्याद्दक्षिणार्धे जुंहोत्येषा वै पिंतृणां दिख्स्वायांमेव दिशि पितृन्त्रिरवंदयत उद्गातृभ्यों हरन्ति सामदेवृत्यों वै सौम्यो यदेव साम्रंश्छम्बद्भवन्ति तस्यैव स शान्तिरवं (२६)

ईक्षन्ते पवित्रं वै सौम्य आत्मानंमेव पंवयन्ते य आत्मानं न पंरिपश्येदितासुंः स्यादिभदिदिं कृत्वावेंक्षेत् तस्मिन् ह्याँत्मानं परिपश्यत्यथीं आत्मानंमेव पंवयते यो गतमनाः स्याथ्सोऽवेंक्षेत् यन्मे मनः परागतं यद्वां मे अपंरागतम्। राज्ञा सोमेन तद्वयमस्मासुं धारयामसीति मनं एवात्मन्दांधार (२७)

न गृतमंना भवृत्यप् वै तृंतीयसवृने युज्ञः क्रांमतीजानादनीजानमृभ्यामावैष्ण्व्यर्चा घृतस्यं यजत्यम्निः सर्वा देवता विष्णुंर्यज्ञो देवताश्चेव युज्ञं चं दाधारोपा १ यंजिति मिथुनृत्वायं ब्रह्मवादिनों वदन्ति मित्रो यज्ञस्य स्विष्टं युवते वर्रुणो दुरिष्टं क्रं तर्रहें युज्ञः क्रं यजमानो भवृतीति यन्मैत्रावरुणीं वृशामालभेते मित्रेणैव (२८)

यज्ञस्य स्विष्टश् शमयित वर्रणेन दुरिष्टं नार्तिमार्च्छंति यजंमानो यथा वै लाङ्गंलेनोर्वराँ प्रिमेन्दन्त्येवमृंख्सामे यज्ञम्प्र भिन्तो यन्मैंत्रावरुणीं वृशामालभेते यज्ञायैव प्रभिन्नाय मृत्यंमन्ववास्यिति शान्त्यै यातयांमानि वा एतस्य छन्दाश्सि य ईजानश्छन्दंसामेष रसो यहुशा यन्मैंत्रावरुणीं वृशामालभेते छन्दाश्स्येव पुन्रा प्रीणात्ययांतयामत्वायाथो छन्दंःस्वेव रसं दर्धात॥ (२९)

अवं दाधार मित्रेणैव प्रींणाति षट्वं॥_____

-[(0]

देवा वा इंन्द्रियं वीर्यं १ व्यंभजन्त ततो यद्त्यशिष्यत् तदंतिग्राह्यां अभवन्तदंतिग्राह्यांणामितग्राह्यत्वं यदंतिग्राह्यां गृह्यन्तं इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजंमान आत्मन्धंत्ते तेजं आग्नेयेनेन्द्रियमैन्द्रेणं ब्रह्मवर्च्सर सौर्येणोप्स्तम्भेनं वा एतद्यज्ञस्य यदंतिग्राह्यांश्वके पृष्ठानि यत्पृष्ठो न गृह्णीयात्प्राश्चं युज्ञं पृष्ठानि सर शृंणीयुर्यदुक्थ्यें (३०)

गृह्णीयात्प्रत्यश्चं यज्ञमंतिग्राह्याः स॰ शृंणीयुर्विश्वजिति सर्वपृष्ठे ग्रहीत्व्यां यज्ञस्यं सवीर्यत्वायं प्रजापंतिर्देवेभ्यों यज्ञान्व्यादिश्थम प्रियास्तुनूरप् न्यंधत्त तदंतिग्राह्यां अभवन्वितंनुस्तस्यं यज्ञ इत्यांहुर्यस्यांतिग्राह्यां न गृह्यन्त इत्यप्यंग्निष्टोमे ग्रंहीत्व्यां यज्ञस्यं सतनुत्वायं देवता वै सर्वाः सदर्शीरास्नता न व्यावृत्तमगच्छन्ते देवाः (३१)

पुत पुतान्ग्रहांनपश्यन्तानंगृह्णताभ्रेयम्भ्रिरैन्द्रमिन्द्रः सौर्यश् सूर्यस्ततो वै तैं-ऽन्याभिर्देवताभिर्व्यावृतंमगच्छ्न् यस्यैवं विदुषं पुते ग्रहां गृह्यन्तें व्यावृतंमेव पाप्मना भ्रातृंव्येण गच्छतीमे लोका ज्योतिष्मन्तः समावद्वीर्याः कार्या इत्यांहुराभ्रेयेनास्मिक्षौंक ज्योतिर्धत्त ऐन्द्रेणान्तरिक्ष इन्द्रवायू हि सयुजौ सौर्येणामुष्मिल्लौंके (३२)

ज्योतिर्धत्ते ज्योतिष्मन्तोऽस्मा इमे लोका भवन्ति समावद्वीर्यानेनान्कुरुत एतान् वै ग्रहाँन्बम्बाविश्ववयसाववित्ताम् ताभ्यामिमे लोकाः पराँश्वश्चार्वाश्चेश्च प्राभुर्यस्यैवं विदुषं एते ग्रहां गृह्यन्ते प्रास्मां इमे लोकाः पराँश्वश्चार्वाश्चेश्च भान्ति॥ (३३)

उक्थ्ये देवा अमुष्मिं श्लाँक एकान्नचंत्वारि ५ शर्च॥ ______[८]

देवा वै यद्यज्ञेऽकुंर्वत् तदसुंरा अकुर्वत् ते देवा अदाँभ्ये छन्दा स्मि सर्वनानि समस्थापयन्ततों देवा अर्भवन्यरासुंरा यस्यैवं विदुषोऽदाँभ्यो गृह्यते भवंत्यात्मना पराँस्य आतृंव्यो भवति यद्वै देवा असुंरानदाँभ्येनादंभुवन्तददाँभ्यस्यादाभ्यत्वं य एवं वेदं दुभ्रोत्येव आतृंव्यं नैनम्भ्रातृंव्यो दभ्रोति (३४)

एषा वै प्रजापंतरितमोक्षिणी नामं तुनूर्यददाँभ्य उपंनद्धस्य गृह्णात्यितिमृत्त्वा अति पाप्मानुम्भ्रातृंच्यम्मुच्यते य एवं वेद घ्रन्ति वा एतथ्सोम् यदंभिषुण्वन्ति सोमें हृन्यमान यज्ञो हंन्यते यज्ञे यजमानो ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं तद्यज्ञे यजमानः कुरुते येन जीवन्थ्यमुवर्गं लोकमेतीति जीवग्रहो वा एष यददाभ्योऽनंभिषुतस्य गृह्णाति जीवन्तमेवैन स्मुवर्गं लोकं गमयित वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यददाँभ्ये सङ्स्थापयंन्त्य श्रूनिपं सृजित यज्ञस्य सन्तंत्यै॥ (३५)

दुभ्रोत्यनंभिषुतस्य गृह्णात्येकान्नविर्शातिश्चं॥______[९]

देवा वै प्रबाहुग्ग्रहांनगृह्णत् स एतं प्रजापंतिर्ध्शुमंपश्यत्तमंगृह्णीत् तेन् वै स आंर्फ्रोंद्यस्यैवं विदुषोऽध्शुर्गृद्यतं ऋभोत्येव स्कृदंभिषुतस्य गृह्णाति स्कृद्धि स तेनार्भोन्मनंसा गृह्णाति मनं इव हि प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्या औद्ंम्बरेण गृह्णात्यूर्ग्वा उंदुम्बर् ऊर्जमेवावं रुन्द्धे चतुं:स्रक्ति भवति दिक्षु (३६)

एव प्रति तिष्ठति यो वा अर्शोरायतंनं वेदायतंनवान्भवति वामदेव्यमिति साम तद्वा अस्यायतंनम्मनंसा गायंमानो गृह्णात्यायतंनवानेव भविति यदंष्वर्युर्र्श् गृह्णन्नार्धयेदुभाभ्यां नर्ध्येताध्वर्यवे च यजंमानाय च यद्ध्येदुभाभ्यांमृध्येतानंवानं गृह्णाति सैवास्यर्द्धिर्हिरंण्यम्भि व्यंनित्यमृतं वै हिरंण्यमायुंः प्राण आयुंषेवामृतंम्भि धिनोति श्तमानम्भवति श्तायुः पुरुषः

श्वतेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठति॥ (३७)

दिक्ष्वंनिति विरश्तिश्चं॥----[१०]

प्रजापंतिर्देवेभ्यों युज्ञान्व्यादिशृथ्स रिंरिचानोंऽमन्यत् स युज्ञानार् षोडश्घेन्द्रियं वीर्यमात्मानम्भि समंक्खिद्त् तथ्योंड्रश्यंभवन्न वै षोंड्शी नामं युज्ञौंऽस्ति यद्वाव षोंड्शक्ष् स्तोत्रर षोंड्शर शुस्त्रं तेनं षोड्शी तथ्योंड्शिनंः षोडशित्वं यथ्योंड्शी गृह्यतं इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजमान आत्मन्धंते देवेभ्यो वै सुवर्गो लोकः (३८)

न प्राभंवत्त पुतर षोंड्शिनंमपश्यन्तमंगृह्णत् ततो वै तेभ्यः सुवर्गो लोकः प्राभंवद्यथ्योंड्शी गृह्यते सुवर्गस्यं लोकस्याभिजित्या इन्द्रो वै देवानांमानुजावर आंसीथ्स प्रजापंतिमुपांधावत्तस्मां पुतर षोंड्शिन्म्प्रायंच्छुत्तमंगृह्णीत् ततो वै सोऽग्रं देवतांनां पर्येद्यस्यैवं विदुषंः षोड्शी गृह्यतें (३९)

अग्रंमेव संमानानां पर्येति प्रातःसवने गृह्णाति वज्रो वै षोंड्शी वर्ज्यः प्रातःसवनः स्वादेवेनं योनेर्निगृह्णाति सर्वनेसवनेऽभि गृह्णाति सर्वनाथ्सवनादेवेनम्प्र जनयति तृतीयसवने पृश्चकांमस्य गृह्णीयाद्वज्रो वै षोंड्शी पृश्चवंस्तृतीयसवनं वर्ज्जेणैवास्मै तृतीयसवनात्पृश्चवं रुन्द्धे नोक्थ्ये गृह्णीयात्प्रज्ञा वै पृश्चवं उक्थानि यदुक्थ्ये (४०)

गृह्णीयात्प्रजां पृश्ननंस्य निर्देहेदितरात्रे पृश्चकांमस्य गृह्णीयाद्वज्ञो वै षोंड्शी वज्रेणैवास्में पृश्चनंवरुध्य रात्रियोपरिष्टाच्छमयत्यप्यंग्निष्टोमे राजन्यं गृह्णीयाद्वावृत्कांमो हि राजन्यों यजेते साह्र एवास्मै वज्रं गृह्णाति स एनं वज्रो भूत्यां इन्द्वे निर्वा दहत्येकविष्शः स्तोत्रम्भविति प्रतिष्ठित्ये हरिवच्छस्यत् इन्द्रंस्य प्रियं धामं (४१)

उपाँप्नोति कर्नीयारसि वै देवेषु छन्दार्श्स्यासुभ्यायार्श्स्यस्रेषु ते देवाः कर्नीयसा छन्दंसा ज्यायुश्छन्दोऽभि व्यंशरसन्ततो वै तेऽसुंराणां लोकमंवृश्चत् यत्कर्नीयसा छन्दंसा ज्यायुश्छन्दोऽभि विशरसंति भ्रातृंव्यस्यैव तल्लोकं वृंङ्के षड्क्षराण्यति रेचयन्ति पङ्घा ऋतवं ऋतूनेव प्रीणाति चत्वारि पूर्वाण्यवं कल्पयन्ति (४२)

चर्तुष्पद एव पृश्न्नवं रुन्द्धे द्वे उत्तरे द्विपदं एवावं रुन्द्वेऽनुष्टुर्भम्भि सम्पादयन्ति वाग्वा अनुष्टुप्तस्मात्प्राणानां वार्गुत्तमा संमयाविषिते सूर्ये षोड्शिनः स्तोत्रमुपाकंरोत्येतस्मिन्वै लोक इन्द्रों वृत्रमहन्थ्साक्षादेव वज्रम्भ्रातृंव्याय प्र हंरत्यरुणपिश्ंगोऽश्वो दक्षिणैतद्वे वज्रस्य रूप॰ समृंद्धौ (४३)

लोको विदुषंः षोडुशी गृह्यते यदुक्थ्यें धामं कल्पयन्ति सप्तचंत्वारि शच॥———[११]

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ७)

॥काण्डम् ७॥

॥प्रथमः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे प्रथमः प्रश्नः॥

प्रजनंनं ज्योतिंर्भिर्देवतांनां ज्योतिंर्विराद्धन्दंसां ज्योतिंर्विराङ्घाचौंऽग्नौ सं तिष्ठते विराजम्भि सम्पंद्यते तस्मात्तङ्योतिंरुच्यते द्वौ स्तोमौं प्रातःसवनं वंहतो यथा प्राणश्चापानश्च द्वौ माध्यंदिन् सवनं यथा चक्षुंश्च श्रोत्रं च द्वौ तृतीयसवनं यथा वाक्नं प्रतिष्ठा च पुरुषसम्मितो वा एष युज्ञोऽस्थूंरिः (१)

यं कामंं कामयंते तमेतेनाभ्यंश्जुते सर्वृष्ट् ह्यस्थूरिणाभ्यश्जुतैंऽग्निष्टोमेन वै प्रजापितिः प्रजा अंसृजत् ता अंग्निष्टोमेनेव पर्यगृह्णात्तासां परिंगृहीतानामश्वत्रोऽत्यंप्रवत् तस्यांनुहाय् रेत् आदंत्त् तद्गंद्भे न्यंमार्द्वस्मौद्गद्भो द्विरेता अथौ आहुर्वडंबायां न्यंमार्डिति तस्माद्वडंबा द्विरेता अथौ आहुरोषंधीषु (२)

न्यंमार्डिति तस्मादोषंध्योऽनंभ्यक्ता रेभुन्त्यथीं आहुः प्रजासु न्यंमार्डिति तस्माँ ह्यमौ जांयेते तस्मांदश्वत्रो न प्र जांयत् आत्तरेता हि तस्माँ द्वरहिष्यनं बक्कृताः सर्ववेदसे वां सहस्रे वावं क्रुत्तोऽति ह्यप्रंवत् य एवं विद्वानं ग्निष्टोमेन् यजेते प्राजांताः प्रजा जनयंति परि प्रजांता गृह्णाति तस्मांदाहुर्ज्येष्ठयुज्ञ इति (३)

प्रजापंतिर्वाव ज्येष्टः स ह्यंतेनाग्रेऽयंजत प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स मुंखतस्त्रिवृतं निरंमिमीत् तमृग्निर्देवतान्वंसृज्यत गायत्री छन्दों रथन्तर सामं ब्राह्मणो मंनुष्याणाम्जः पंशूनान्तस्मात्ते मुख्यां मुख्तो ह्यस्ंज्यन्तोरंसो बाहुभ्यां पश्चद्शं निरंमिमीत् तमिन्द्रों देवतान्वंसृज्यत त्रिष्टुप्छन्दों बृहत् (४)

सामं राज्न्यों मनुष्यांणामविः पश्नान्तस्मात्ते वीर्यावन्तो वीर्याद्धासंज्यन्त मध्यतः संप्तद्शं निरंमिमीत् तं विश्वं देवा देवता अन्वंसृज्यन्त जर्गती छन्दों वैरूपः साम् वैश्यों मनुष्यांणां गावः पश्नान्तस्मात्त आद्यां अत्रधानाद्धासंज्यन्त तस्माद्भ्याः सोऽन्येभ्यो भूयिष्ठा हि देवता अन्वसंज्यन्त पत्त एंकविष्शं निरंमिमीत् तमंनुष्टुप्छन्दः [5]

अन्वंसृज्यत वैराज॰ सामं शूद्रो मंनुष्यांणामश्वः पशूनान्तस्मात्तौ भूतसङ्कामिणावश्वंश्च

शूद्रश्च तस्माँच्छूद्रो यज्ञेऽनंबक्क्षमो न हि देवता अन्वसृंज्यत् तस्मात्पादावुपं जीवतः पत्तो ह्यसृंज्येतां प्राणा वै त्रिवृदंर्धमासाः पंश्चद्रशः प्रजापंतिः सप्तद्रशस्त्रयं इमे लोका असावांदित्य एंकवि १ एतस्मिन्वा एते श्रिता एतस्मिन्प्रतिंष्ठिता य एवं वेदैतस्मिन्नेव श्रंयत एतस्मिन्प्रतिं तिष्ठति॥ (६)

अस्थूंरिरोषंधीषु ज्येष्ठयज्ञ इति बृहदंनुष्टुप्छन्दः प्रतिष्ठिता नवं च॥————[१]

प्रातःसवने वै गांयत्रेण छन्दंसा त्रिवृते स्तोमांय ज्योतिर्दधंदेति त्रिवृतां ब्रह्मवर्चसेनं पश्चद्शाय ज्योतिर्दधंदेति पश्चद्शेनोजंसा वीर्येण सप्तद्शाय ज्योतिर्दधंदेति सप्तद्शेनं प्राजापृत्येनं प्रजननेनैकविर्शाय ज्योतिर्दधंदेति स्तोमं एव तथ्स्तोमांय ज्योतिर्दधंदेत्यथो स्तोमं एव स्तोमम्भि प्र णंयति यावन्तो वै स्तोमास्तावन्तः कामास्तावन्तो लोकास्तावन्ति ज्योतीर्थयेतावंत एव स्तोमानेतावंतः कामानेतावंतो लोकानेतावंन्ति ज्योतीर्थ्यवं रुन्दे॥ (७)

तार्वन्तो लोकास्त्रयोदश च॥_____[२]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति स त्वै यंजेत् योंऽग्निष्टोमेन् यजंमानोऽथ् सर्वस्तोमेन् यजेतेति यस्यं त्रिवृतंमन्त्यंन्तिं प्राणाङ्स्तस्यान्तयंन्ति प्राणेषु मेऽप्यंसदिति खलु वै यज्ञेन् यजंमानो यजते यस्यं पश्चद्शमंन्त्यंन्तिं वीर्यं तस्यान्तयंन्ति वीर्यं मेऽप्यंसदिति खलु वै यज्ञेन् यजंमानो यजते यस्यं सप्तदशमंन्त्यंन्तिं (८)

प्रजां तस्यान्तर्यन्ति प्रजायाम्मेऽप्यंसिदिति खलु वै यज्ञेन यजंमानो यजते यस्यैकिविश्शमंन्तर्यन्तिं प्रतिष्ठां तस्यान्तर्यन्ति प्रतिष्ठायाम्मेऽप्यंसिदिति खलु वै यज्ञेन यजंमानो यजते यस्यं त्रिणवमंन्तर्यन्त्यृत्र्श्च तस्यं नक्षत्रियां च विराजंमन्तर्यन्त्यृतुषु मेऽप्यंसन्नक्षत्रियांयां च विराजंति (९)

खलु वै यज्ञेन यजंमानो यजते यस्यं त्रयिश्वर्शमंन्तुर्यन्तिं देवतास्तस्यान्तर्यन्ति देवतांसु मेऽप्यंसदिति खलु वै यज्ञेन यजंमानो यजते यो वै स्तोमानामवमं पर्मतां गच्छंन्तं वेदं पर्मतांमेव गंच्छिति त्रिवृद्धै स्तोमानामवमिश्चवृत्यंरमो य एवं वेदं पर्मतांमेव गंच्छिति॥ (१०)

सप्तदशमंन्तर्यन्तिं विराजीति चतुंश्चत्वारि श्राच॥

प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ७)

अङ्गिरसो वै स्त्रमांसत् ते सुंवर्गं लोकमायन्तेषार् ह्विष्मार्श्व हिविष्कृचोहीयतान्तावंकामयेतार सुवर्गं लोकमियावेति तावेतं द्विरात्रमंपश्यतान्तमाहंरतान्तेनायजे वे तौ सुंवर्गं लोकमैतां य एवं विद्वान्द्विरात्रेण यजेते सुवर्गमेव लोकमैति तावेताम्पूर्वेणा- ऽह्वाऽगंच्छतामुत्तंरेण (११)

अभिप्रुवः पूर्वमहंर्भवित् गित्रुरुत्तरं ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमः पूर्वमहंर्भवित् तेज्स्तेनावं रुन्द्धे सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तर् सर्वस्यास्य सर्वस्यावरुद्धे गायत्रम्पूर्वेहुन्थ्सामं भवित् तेजो वै गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसं तेजं एव ब्रह्मवर्चसमात्मन्थंत्ते त्रैष्टुंभमुत्तरं ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुगोजं एव वीर्यमात्मन्थंत्ते रथन्तरम्पूर्वं (१२)

अह्-थ्सामं भवतीयं वै रंथन्त्रम्स्यामेव प्रतिं तिष्ठति बृहद्त्तरेऽसौ वै बृहद्मुष्यामेव प्रतिं तिष्ठति तदांहुः कं जगती चानुष्ठुष्चेतिं वैखान्सम्पूर्वेऽह्न्थ्सामं भवति तेन् जगत्यै नैतिं षोड्रयुत्तरे तेनांनुष्ठुभोऽथांहुर्यथ्संमानैंऽ धमासे स्यातांमन्यत्रस्याह्रों वीर्यमनुं पद्येतत्यंमावास्यायाम्पूर्वमहंभवत्युत्तरस्मिन्नुत्तर्न्नानेवार्धमासयौभवतो नानांवीर्ये भवतो हिवष्मंत्रिधन्म्पूर्वमहंभवति हिवष्कृत्तिंधन्मुत्तरं प्रतिष्ठित्यै॥ (१३)

उत्तरेण रथन्त्रम्पूर्वेऽन्वेकंवि श्रातिश्च॥______

आपो वा इदमग्रें सिल्लमांसीत्तस्मिन्युजापंतिर्वायुर्भूत्वाचंरथ्स इमामंपश्यत्तां वंराहो भूत्वाहंरतां विश्वकंमां भूत्वा व्यंमाद्रथ्साप्रंथत् सा पृथिव्यंभवृत्तत्पृथिव्ये पृथिवित्वन्तस्यांमश्राम्यत्प्रजापंतिः स देवानंसृजत् वसूत्रुद्रानांदित्यान्ते देवाः प्रजापंतिमब्रुवन्त्र जायामहा इति सौंऽब्रवीत् (१४)

यथाहं युष्मा इस्तप्सासृक्ष्येवं तपंसि प्रजनंनिमच्छध्वमिति तेभ्यो-ऽग्निमायतंनुम्प्रायंच्छदेतेनायतंनेन श्राम्यतेति तैंऽग्निनायतंनेनाश्राम्यन्ते संवथ्सर एकां गामस्जन्त तां वस्नभ्यो रुद्रेभ्यं आदित्येभ्यः प्रायंच्छन्नेता र रेक्षध्वमिति तां वसंवो रुद्रा आदित्या अरक्षन्त सा वस्नभ्यो रुद्रेभ्यं आदित्येभ्यः प्राजांयत् त्रीणिं च (१५)

शृतानि त्रयंश्वि शतं चाथ सैव संहस्रतम्यंभवत्ते देवाः प्रजापंतिमब्रुवन्थ्सहस्रेण नो याज्येति सौंऽग्निष्टोमेन वसूनयाजयत्त इमं लोकमंजयन्तचांददुः स उक्थ्येन रुद्रानंयाजयत्तेंऽन्तरिक्षमजयन्तचांददुः सोऽतिरात्रेणांदित्यानंयाजयत्तेंऽमुं प्रथमः प्रश्नः (काण्डम् ७)

लोकमंजयन्तचांददुस्तदन्तरिक्षम् (१६)

व्यवैर्यत् तस्माँद्रुद्रा घातुंका अनायत्ना हि तस्मांदाहुः शिथिलं वै मंध्यममहंस्त्रिरात्रस्य वि हि तद्वेर्यतेति त्रेष्ट्रंभम्मध्यमस्याहु आज्यंम्भवित संयानांनि सूक्तानिं शश्सित षोड्शिनश्र शश्सत्यह्रो धृत्या अशिथिलम्भावाय तस्माँत्रिरात्रस्याँग्निष्टोम एव प्रंथममहंः स्यादथोक्थ्यो- ऽथांतिरात्र एषां लोकानां विधृत्ये त्रीणित्रीणि शृतान्यंनूचीना्हमव्यंवच्छित्रानि ददाति (१७)

पुषां लोकानामनु सन्तंत्यै दृशतं न विच्छिंन्द्याद्विराजं नेद्विच्छिनदानीत्यथ् या संहस्रतम्यासीत्तस्यामिन्द्रेश्च विष्णुंश्च व्यायंच्छेता स इन्द्रोंऽमन्यतानया वा इदं विष्णुंश्च सहस्रं वर्क्ष्यत् इति तस्यामकल्पेतां द्विभांग् इन्द्रस्तृतीये विष्णुस्तद्वा पृषाभ्यनूँच्यत उभा जिंग्यथुरिति तां वा पृतामंच्छावाकः (१८)

पुव शर्रस्तयथ् या संहस्रतमी सा होत्रे देयेति होतांरं वा अभ्यतिरिच्यते यदंतिरिच्यंते होतानांत्रस्यापयिताथांहुरुत्रेत्रे देयेत्यतिरिक्ता वा एषा सहस्रस्यातिरिक्त उन्नेतर्त्विजामथांहुः सर्वेभ्यः सदस्येभ्यो देयेत्यथांहुरुदाकृत्या सा वशं चरेदित्यथांहुब्र्ह्मणे चाग्नीधे च देयेति (१९)

द्विभागम्ब्रह्मणे तृतीयमुग्नीधं ऐन्द्रो वै ब्रह्मा वैंष्ण्वोंऽग्नीद्यथेव तावकंल्पेतामित्यथांहुर्या कंल्याणी बंहुरूपा सा देयेत्यथांहुर्या द्विरूपोभयतंएनी सा देयेति सहस्रंस्य परिंगृहीत्यै तद्वा एतथ्सहस्रस्यायंन सहस्रं स्तोत्रीयाः सहस्रं दक्षिणाः सहस्रंसम्मितः सुवृगीं लोकः स्वृंपर्यं लोकस्याभिजित्यै॥ (२०)

अब्रवीच् तद्न्तरिक्षन्ददात्यच्छावाकश्च देयेतिं सप्तचंत्वारि १शच॥————[५]

सोमो वै सहस्रंमिवन्द्त्तिमन्द्रोऽन्वंविन्द्त्तौ युमो न्यागंच्छुत्तावंब्रवीदस्तु मेऽत्रापीत्यस्तु ही(३) इत्यंब्रूतार् स युम एकंस्यां वीर्यं पर्यपश्यिद्यं वा अस्य सहस्रंस्य वीर्यम्बिभूर्तीति तावंब्रवीदियम्ममास्त्वेतद्युवयोरिति तावंब्रूतार् सर्वे वा एतदेतस्यां वीर्यम् (२१)

परिं पश्यामोऽ श्मा हंरामहा इति तस्याम श्माहंरन्त ताम्पस् प्रावेशय-थ्सोमायोदेहीति सा रोहिणी पिङ्गलैकंहायनी रूपं कृत्वा त्रयंस्त्रिश्शता च त्रिभिश्चं श्तैः सहोदैत्तस्माद्रोहिण्या पिङ्गलयैकंहायन्या सोमं क्रीणीयाद्य एवं विद्वान्नोहिण्या पिङ्गलयैकंहायन्या सोमं क्रीणीयाद्य एवं विद्वान्नोहिण्या पिङ्गलयैकंहायन्या सोमं क्रीणाति त्रयस्त्रिश्शता चैवास्यं त्रिभिश्चं (२२)

श्रुतैः सोमः क्रीतो भविति सुक्रीतेन यजते तामुफ्सु प्रावेशयन्निन्द्रायोदेहीति सा रोहिणी

लक्ष्मणा पष्ठौही वार्त्रघ्नी रूपं कृत्वा त्रयंस्नि श्वाता च त्रिभिश्चं श्वतेः सहोदैत्तस्माद्रोहिंणीं लक्ष्मणाम्पष्ठौहीं वार्त्रघ्नीं दद्याद्य एवं विद्वात्रोहिंणीं लक्ष्मणाम्पष्ठौहीं वार्त्रघ्नीं ददांति त्रयंस्नि श्ववेवास्य त्रीणि च श्वतानि सा दत्ता (२३)

भ्वृति ताम्पस् प्रावेशयन् यमायोदेहीति सा जरंती मूर्खा तंत्रघन्या रूपं कृत्वा त्रयंस्त्रिश्शता च त्रिभिश्चं श्वौः स्होदैत्तस्माञ्जरंतीम्मूर्खां तंत्रघन्यामंनुस्तरंणीं कुर्वीत् य एवं विद्वाञ्जरंतीम्मूर्खां तंत्रघन्यामंनुस्तरंणीं कुरुते त्रयंस्त्रिश्शचैवास्य त्रीणि च शतानि सामुष्मिं ह्यों के भवित वागेव संहस्रत्मी तस्मांत् (२४)

वरो देयः सा हि वरंः सहस्रंमस्य सा दत्ता भंवित तस्माद्वरो न प्रतिगृह्यः सा हि वरंः सहस्रंमस्य प्रतिगृहीतम्भवतीयं वर् इतिं ब्रूयादथान्याम्ब्र्यादियम्ममेति तथास्य तथ्सहस्रमप्रतिगृहीतम्भवत्युभयतपुनी स्यात्तदाहुरन्यतपुनी स्यांध्सहस्रंम्परस्तादेत्मिति यैव वरंः (२५)

कुल्याणी रूपसंमृद्धा सा स्याथ्सा हि वरः समृद्धौ तामुत्तरेणाग्नीप्रं पर्याणीयांहवनीयस्यान्ते द्रोणकलुशमवं घ्रापयेदा जिंघ्र कुलशंम्मह्युरुधांरा पर्यस्वत्या त्वां विश्वन्त्विन्दंवः समुद्रमिव सिन्धंवः सा मां सहस्र आ भंज प्रजयां पृशुभिः सह पुनुर्मा विंशताद्रयिरिति प्रजयैवैनम्पृशुभी रुय्या सम् (२६)

अर्ध्यति प्रजावाँन्पशुमात्रीयमान्भविति य एवं वेद तयां सहाग्रींप्रम्परेत्यं पुरस्ताँत्प्रतीच्यां तिष्ठंन्त्यां जुहुयादुभा जिंग्यथुर्न परां जयेथे न परां जिग्ये कत्रश्चनैनोः। इन्द्रंश्च विष्णो यदपंस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथामितिं त्रेधाविभक्तं वै त्रिरात्रे सहस्रं साहुस्रीमेवैनौं करोति सहस्रंस्यैवैनाम्मात्राँम् (२७)

करोति रूपाणि जुहोति रूपैरेवैना समर्धयित तस्यां उपोत्थाय कर्णमा जंपेदिडे रन्तेऽदिते सरस्वित प्रिये प्रेयिस मिह् विश्वंत्येतानि ते अघ्निये नामानि सुकृतंं मा देवेषुं ब्रूतादिति देवेभ्यं पुवैनुमा वेंदयत्यन्वेनं देवा बुंध्यन्ते॥ (२८)

पुतदेतस्यां वीर्यमस्य त्रिभिश्चं दत्ता संहस्रतमी तस्मांदेव वरः सम्मात्रामेकान्नचंत्वारिष्शचं॥[६]

सहस्रतम्यां वै यजंमानः सुवर्गं लोकमेति सैन सवर्गं लोकं गंमयित सा मां सुवर्गं लोकं गंम्येत्यांह सुवर्गमेवैनं लोकं गंमयित सा मा ज्योतिष्मन्तं लोकं गंम्येत्यांहु ज्योतिंष्मन्तमेवैनं लोकं गंमयति सा मा सर्वान्युण्यांश्लाँकान्गंम्येत्यांहु सर्वानेवैनम्पुण्यांश्लाँकान्गंमयति सा (२९)

मा प्रतिष्ठां गंमय प्रजयां पृश्भिः सह पुनुर्मा विश्वताद्वियिरितिं प्रजयैवैनंम्पृश्भीं र्य्यां प्रति ष्ठापयित प्रजावांन्पशुमात्रंयिमान्भवित् य एवं वेद् तामृग्नीधें वा ब्रह्मणे वा होत्रें वोद्गात्रे वांध्वर्यवें वा दद्याध्सहस्त्रंमस्य सा दत्ता भवित सहस्रंमस्य प्रतिंगृहीतम्भवित् यस्तामविद्वान् (३०)

प्रतिगृह्णाति तां प्रतिं गृह्णीयादेकांसि न सहस्रमेकां त्वा भूतां प्रतिं गृह्णामि न सहस्रमेकां मा भूता विंश मा सहस्रमित्येकांमेवैनां भूतां प्रतिं गृह्णाति न सहस्रं य एवं वेदं स्योनासिं सुषदां सुशेवां स्योना मा विंश सुषदा मा विंश सुशेवा मा विंश (३१)

इत्यांह स्योनैवैन ५ सुषदां सुशेवां भूता विंशति नैन ५ हिनस्ति ब्रह्मवादिनों वदन्ति सहस्रं५ सहस्रतम्यन्वेती(३) संहस्रतमी५ सहस्रा(३)मिति यत्प्राचींमुथ्युजेथ्सहस्र ५ सहस्रतम्यन्वेयात्तथ्सहस्रंमप्रज्ञात्र५ सुंवर्गं लोकं न प्र जांनीयात्प्रतीची्मुथ्यृंजिति ता५ सहस्रमन् पूर्यावर्तते सा प्रंजानती सुंवर्गं लोकमेति यजमानम्भ्युथ्यृंजिति क्षिप्रे सहस्रम्प्र जांयत उत्तमा नीयते प्रथमा देवान्यंच्छति॥ (३२)

लोकानांमयति साविद्वान्थ्सुशेवा माविश यजमानं द्वादेश च॥-----[७]

अत्रिंरददादौर्वाय प्रजाम्पुत्रकांमाय स रिरिचानोंऽमन्यत निर्वीर्यः शिथिलो यातयांमा स एतं चंतूरात्रमंपश्यत् तमाहंरत्तेनांयजत् ततो वै तस्यं चत्वारों वीरा आजांयन्त सहोता स्वध्वर्युः सुसंभेयो य एवं विद्वाः श्चेत्र्रात्रण् यजत् आस्यं चत्वारों वीरा जांयन्ते सुहोता स्वध्वर्युः सुसंभेयो ये चंतुर्वि शाः पर्वमाना ब्रह्मवर्चसं तत् (३३)

य उद्यन्तः स्तोमाः श्रीः सात्रिई श्रृद्धादेवं यजमानं चृत्वारि वीर्याणि नोपानम्नतेजं इन्द्रियम्ब्रह्मवर्च्सम्त्राद्य् स पृताइश्रृतुरश्चतुष्टोमान्थ्सोमानपश्यत्तानाहर्त्तेरयजत् तेजं पृव प्रंथमेनावारुन्द्धेन्द्र्यं द्वितीर्येन ब्रह्मवर्च्सं तृतीर्येनान्नाद्यं चतुर्थेन् य पृवं विद्वाइश्रृत्र्श्चतुष्टोमान्थ्सोमानाहरति तैर्यजेते तेजं पृव प्रंथमेनावं रुन्द्ध इन्द्रियं द्वितीयेन ब्रह्मवर्चसं तृतीर्येनान्नाद्यं चतुर्थेन् यामेवात्रिर्ऋद्धिमार्श्रोत्तामेव यर्जमान ऋप्नोति॥ (३४)

ज्मदंग्निः पृष्टिंकामश्चत्रात्रेणांयजत् स एतान्योषा । अपुष्यत्तस्मांत्पितृतौ जामंदग्नियौ न सं जानाते एतानेव पोषांन्पुष्यित् य एवं विद्वाः श्चेत्र्येण यर्जते पुरोडाशिन्यं उपसदों भवन्ति पृशवो वै पुरोडाशांः पृश्ननेवावं रुन्द्धेऽत्रृं वै पुरोडाशोऽत्रंमेवावं रुन्द्धेऽत्रादः पंश्नान्भवित् य एवं विद्वाः श्चेत्र्यत्रेण् यर्जते॥ (३५)

ज्मदंग्निर्ष्टाचंत्वारि २शत्॥———[

संवथ्सरो वा इदमेकं आसीथ्सोऽकामयतुर्तून्थ्सृंजेयेति स एतम्पंश्चरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयज ततो वै स ऋतूनंसृजत् य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण् यजते प्रैव जायते त ऋतवंः सृष्टा न व्यावर्तन्त त एतम्पंश्चरात्रमंपश्यन् तमाहंरन्तेनांयजन्त ततो वै ते व्यावर्तन्त (३६)

य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण यजंते वि पाप्मना भ्रातृंव्येणा वर्तते सार्वसेनिः शौचेयों-ऽकामयत पशुमान्थ्स्यामिति स एतम्पंश्चरात्रमाहंर्त्तेनायजत ततो वै स सहस्रं पृशून्प्राप्नोद्य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण यजंते प्र सहस्रं पृशूनांप्नोति बब्रः प्रावांहणिरकामयत वाचः प्रविदिता स्यामिति स एतम्पंश्चरात्रमा (३७)

अह्र्त्तेनायजत् ततो वै स वाचः प्रंविद्ताभंव्द्य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण् यजंते प्रविदितेव वाचो भंवत्यथों एनं वाचस्पितिरित्यांहुरनांप्तश्चत्रात्रोऽतिरिक्तः षड्यत्रोऽथ् वा एष संम्प्रति यज्ञो यत्पंश्चरात्रो य एवं विद्वान्पंश्चरात्रेण् यजंते सम्प्रत्येव यज्ञेनं यजते पश्चरात्रो भंवित् पश्च वा ऋतवेः संवथ्सरः (३८)

ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठत्यथो पश्चांक्षरा पृङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्द्धे त्रिवृदंग्निष्टोमो भविति तेजं पृवावं रुन्द्धे पश्चद्दशो भवतीन्द्रियमेवावं रुन्द्धे सप्तद्दशो भवत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायते पश्चविष्ट्शौंऽग्निष्टोमो भविति प्रजापंतेरास्यै महाबृतवान्नाद्यस्यावंरुद्धौ विश्वजिथ्सवंपृष्ठोऽतिरात्रो भवित सर्वस्याभिजित्यै॥ (३९)

ते व्यावंर्तन्त प्रवदिता स्यामिति स एतम्प्रंश्चरात्रमा संवथ्सरोंऽभिजिंत्यै॥———[१०]

देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रंस्वैंऽिश्वनौंबा्हुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा दंद इमामंगृभ्णत्रश्नामृतस्य पूर्व आयुंषि विदर्थेषु कव्या। तयां देवाः सुतमा बंभूवुर्ऋतस्य सामन्थ्स्रमारपन्ती। अभिधा असि भुवंनमिस यन्तासि धुर्तासि सौंऽिग्ने वैश्वानुर सप्रंथसं गच्छु स्वाहांकृतः पृथिव्यां यन्ता राड्यन्तासि यमंनो धुर्तासि धुरुणः कृष्ये त्वा क्षेमाय त्वा रुय्ये त्वा पोषांय त्वा पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वां सते त्वासंते त्वान्धस्त्वौषंधीभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः॥ (४०)

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽिस् हयोऽस्यत्योऽिस् नरोऽस्यर्वास् सितिरिस वाज्येसि वृषांसि नृमणां असि ययुर्नामांस्यादित्यानाम्पत्वान्विद्याग्रये स्वाहा स्वाहेंन्द्राग्निभ्याः स्वाहां प्रजापंतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा सर्वाभ्यो देवेतांभ्य इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमितिः स्वाहा भूरंसि भुवे त्वा भव्याय त्वा भविष्यते त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यो देवां आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वम्मेधांय प्रोक्षितं गोपायत॥ (४१)

आयंनाय स्वाह्य प्रायंणाय स्वाहोँ द्वावाय स्वाहो द्वेताय स्वाहां शूकाराय स्वाह्य शूकृंताय स्वाह्य पलांयिताय स्वाह्य प्रताह्य स्वाह्य प्रताह्य स्वाह्य प्रताह्य स्वाह्य प्रताह्य स्वाह्य प्रताह्य स्वाह्य प्रत्येत स्वाह्य स्व

आयंनायोत्तंरमापलांयिताय षड्वि र्शितः॥—————[१३]

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहां वायवे स्वाहापाम्मोदाय स्वाहां सिवेत्रे स्वाहा सर्रस्वत्यै स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृह्स्पतंये स्वाहां मित्राय स्वाहा वर्रुणाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥ (४३)

पृथिव्ये स्वाह्य स्वाह्य स्वाहां दिवे स्वाह्य सूर्याय स्वाहां चुन्द्रमंसे स्वाह्य नक्षंत्रेभ्यः स्वाह्य प्राच्ये दिशे स्वाह्य दक्षिणाये दिशे स्वाहां प्रतिच्ये दिशे स्वाहोदींच्ये दिशे स्वाहोदिंच्ये दिशे स्वाहोदिंच्ये दिशे स्वाहोदिंच्ये दिशे स्वाहो दिग्भ्यः स्वाहां ऽवान्तरिद्शाभ्यः स्वाह्य समाभ्यः स्वाहां श्रारद्धः स्वाहांऽहोरात्रेभ्यः स्वाहां ऽर्धमासभ्यः स्वाह्य मासभ्यः स्वाह्तं स्वर्णः स्वाहां संवथ्सराय स्वाह्य सर्वस्मै स्वाहां॥ (४४)

-[१५]

अग्नये स्वाहा सोमांय स्वाहां सिवत्रे स्वाहा सरस्वत्ये स्वाहां पूष्णे स्वाहा

बृहुस्पतंये स्वाहाऽपाम्मोदांय स्वाहां वायवे स्वाहां मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥ (४५)

--[१६]

पृथिव्ये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहां दिवे स्वाहाऽग्नये स्वाहा सोमांय स्वाहा सूर्याय स्वाहां चुन्द्रमंसे स्वाहाऽह्वे स्वाहा रात्रिये स्वाहां कि स्वाहां साधवे स्वाहां सिक्षत्ये स्वाहां क्षुधे स्वाहांऽऽिशतिमे स्वाहा रोगांय स्वाहां हिमाय स्वाहां शीताय स्वाहांऽऽतपाय स्वाहां सुवर्गाय स्वाहां सुवर्गाय स्वाहां लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा॥ (४६)

[89]

भुवों देवानां कर्मणापसर्तस्यं पृथ्यांसि वसुंभिर्देविभिर्देवत्या गायत्रेणं त्वा छन्दंसा युनिज्म वसन्तेनं त्वर्तुनां हिवणं दीक्षयामि रुद्रेभिर्देविभिर्देवत्या त्रैष्टुभेन त्वा छन्दंसा युनिज्म ग्रीष्मेणं त्वर्तुनां हिवणं दीक्षयाम्यादित्येभिर्देविभिर्देवत्या जागंतेन त्वा छन्दंसा युनिज्म वर्षाभिस्त्वर्तुनां हिवणं दीक्षयाम्य विश्वभिर्देविभिर्देवत्यानुष्टुभेन त्वा छन्दंसा युनिज्म (४७)

श्रारदौ त्वर्तुनां ह्विषां दीक्षयाम्यिङ्गिरोभिर्देविभिर्देवतया पाङ्केन त्वा छन्दंसा युनिज्मि हेमन्तिशिश्राभ्यां त्वर्तुनां ह्विषां दीक्षयाम्याहं दीक्षामंश्रहमृतस्य पत्नीं गायत्रेण छन्दंसा ब्रह्मणा चर्ति सत्येऽधा स्तयमृतेऽधाम्। महीमू षु सुत्रामाणिम्ह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमितिः स्वाहा॥ (४८)

[86]

ईङ्काराय स्वाहें कृंताय स्वाहा क्रन्दंते स्वाहांऽवृक्रन्दंते स्वाहा प्रोथंते स्वाहां प्रप्रोथंते स्वाहां गृन्धाय स्वाहां प्राताय स्वाहां प्राणाय स्वाहां व्यानाय स्वाहां प्राताय स्वाहां प्राताय स्वाहां विचृत्यमानाय स्वाहां विचृत्ताय स्वाहां पलायिष्यमांणाय स्वाहा पलायिष्यमांणाय स्वाहां पलायिष्यमांणाय स्वाहां पलायिष्य स्वाहां निविधाय स्वाहां निवध्यते स्वाहां निवध्याय स्वाहां निवध्यते स्वाहां निवध्याय स्वाहां (४९)

आसिष्यते स्वाहाऽऽसींनाय स्वाहांऽऽसिताय स्वाहां निपथ्स्यते स्वाहां निपद्यंमानाय

स्वाहां निपंन्नाय स्वाहां शियष्यते स्वाहा शयांनाय स्वाहां शियताय स्वाहां सम्मीलिष्यते स्वाहां सम्मीलित् स्वाहां सम्मीलिताय स्वाहां स्वपस्यते स्वाहां स्वपते स्वाहां सुप्ताय स्वाहां प्रभोध्स्यते स्वाहां प्रबुद्धाय स्वाहां जागरिष्यते स्वाहां जागरिष्यते स्वाहां जागरिताय स्वाहां शुश्रूंषमाणाय स्वाहां शृण्वते स्वाहां श्रुताय स्वाहां वीक्षिष्यते स्वाहां (५०)

वीक्षंमाणाय स्वाह् वीक्षिताय स्वाहां स॰हास्यते स्वाहां स्अहांनाय स्वाहोजिहांनाय स्वाहां विवथ्स्यते स्वाहां विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहांत्थास्यते स्वाहोत्तिष्ठंते स्वाहोत्थिताय स्वाहां विधविष्यते स्वाहां विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहां चङ्कमियाय स्वाहां चङ्कमिय्यते स्वाहां चङ्कमियाय स्वाहां चङ्कमियाय स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां कण्डूयिष्यते स्वाहां विकष्यते स्वाहां निकष्यते स्वाहां निकष्यते स्वाहां निकष्यते स्वाहां यदित् तस्मै स्वाहा यत्पिबंति तस्मै स्वाहा यन्मेहंति तस्मै स्वाहा यच्छकृंत्करोति तस्मै स्वाहा रेतंसे स्वाहां प्रजाभ्यः स्वाहां प्रजानाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (५१)

[۶۶]

अग्नये स्वाहां वायवे स्वाहा सूर्यांय स्वाहर्तमंस्यृतस्यर्तमंसि स्त्यमंसि स्त्यस्यं स्त्यमंस्यृतस्य पन्थां असि देवानां छायामृतस्य नाम तथ्सत्यं यत्त्वं प्रजापंतिरस्यिध् यदंस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते दिवः सूर्येण विशोऽपो वृंणानः पंवते कृव्यन्पृशुं न गोपा इर्यः परिजमा (५२)

-[२०]

॥द्वितीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे द्वितीयः प्रश्नः॥

साध्या वै देवाः सुंवर्गकामा एतः षंड्रात्रमंपश्यन्तमाहंरन्तेनायजन्त ततो वै ते सुंवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वारसः षड्रात्रमासंते सुवर्गमेव लोकं यन्ति देवसत्रं वै षंड्रात्रः प्रत्यक्ष इं ह्यंतानिं पृष्ठानि य एवं विद्वा १ संः षड्रात्रमासंते साक्षादेव देवतां अभ्यारीहन्ति पड्रात्रो भंवति षड्वा ऋतवः षदृष्ठानिं (१)

पृष्ठेरेवर्तून-वारोहन्त्यृतुभिः संवथ्स्रन्ते संवथ्स्र एव प्रतिं तिष्ठन्ति बृहद्रथन्त्रा-भ्यां यन्तीयं वाव रंथन्त्रम्सौ बृहद्याभ्यामेव यन्त्यथां अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यां अस्यां स्त्रुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकं यंन्ति त्रिवृदंग्निष्टोमो भंवति तेजं एवावं रुन्थते पश्चद्शो भंवतीन्द्रियमेवावं रुन्थते सप्तदशः (२)

भ्वत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायन्त एकविश्सो भंवित प्रतिष्ठित्या अथो रुचंभेवात्मन्दंधते त्रिण्वो भंवित विजित्ये त्रयिष्ठश्यो भंवित प्रतिष्ठित्ये सदोहिवधानिनं एतेनं षड्यत्रेणं यजेर्न्नाश्वंत्थी हिवधानं चाग्नींप्रं च भवतस्तिद्ध सुंवर्ग्यं चुकीवंती भवतः सुवर्गस्यं लोकस्य सम्प्रा उलूखंलबुभ्रो यूपो भवित प्रतिष्ठित्ये प्राञ्चो यान्ति प्राहिंव हि सुंवर्गः (३)

लोकः सरंस्वत्या यान्त्येष वै देवयानः पन्थास्तमेवान्वारोहन्त्याक्रोशंन्तो यान्त्यवंतिमेवान्यस्मिन्प्रतिषज्यं प्रतिष्ठां गंच्छन्ति यदा दशं शतं कुर्वन्त्यथैकंमुत्थानः श्वतायुः पुरुषः श्वतेन्द्रियं आयुंष्येवेन्द्रियं प्रति तिष्ठन्ति यदा श्वतः श्वतः सहस्रं कुर्वन्त्यथैकंमुत्थानः सहस्रं कुर्वन्त्यथैकंमुत्थानः सहस्रं सिम्मतो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकम्भि जंयन्ति यदैषां प्रमीयंत यदा वा जीयेर्न्नथैकंमुत्थान्नति तीर्थम्॥ (४)

पृष्ठानिं सप्तद्शः सुंवुर्गो जंयन्ति यदैकांदश च॥______[१]

कुसुरुबिन्द औद्दांलिकरकामयत पशुमान्थ्स्यामिति स एतः संप्तरात्रमाहंर्त्तेनांयजत् तेन् वै स यावंन्तो ग्राम्याः पृशवस्तानवांरुन्द्ध् य एवं विद्वान्थ्संप्तरात्रेण् यजते यावंन्त एव ग्राम्याः पृशवस्तानेवावं रुन्द्धे सप्तरात्रो भवति सप्त ग्राम्याः पृशवंः स्प्तार्ण्याः स्प्त छन्दाः स्युभयस्यावंरुद्धौ त्रिवृदंग्निष्टोमो भवति तेजः (५)

एवावं रुन्द्धे पश्चद्शो भंवतीन्द्रियमेवावं रुन्द्धे सप्तद्शो भंवत्युत्राद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायत एकविश्शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवात्मन्थंत्ते त्रिण्वो भंवति विजित्ये पश्चविश्शौंऽग्निष्टोमो भंवति प्रजापंतेरात्ये महाब्रतवानुन्नाद्यस्यावंरुद्धौ विश्वजिथ्सर्वपृष्ठो-ऽतिरात्रो भंवति सर्वस्याभिजित्यै यत्प्रत्यक्षम्पूर्वेष्वहंःसु पृष्ठान्युंपेयुः प्रत्यक्षम् (६) विश्वजिति यथां दुग्धामुंप्सीदंत्येवमुंत्तममहंः स्यान्नैकंरात्रश्चन स्याँद्वृहद्रथन्तरे पूर्वेष्वहःसूपं यन्तीयं वाव रंथन्त्रम्सौ बृहद्याभ्यामेव न यन्त्यथों अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्ति यत्प्रत्यक्षं विश्वजितिं पृष्ठान्युंप्यन्ति यथा प्रत्तां दुहे तादृगेव तत्॥ (७)

तेर्ज उपेयुः प्रत्यक्षं द्विचंत्वारि १ शच॥————[२]

बृह्स्पतिरकामयत ब्रह्मवर्च्सी स्यामिति स एतम्ष्टरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै स ब्रह्मवर्च्स्यंभवद्य एवं विद्वानंष्टरात्रेण यजंते ब्रह्मवर्च्स्यंव भंवत्यष्टरात्रो भंवत्यष्टाक्षंरा गायत्री गांयत्री ब्रह्मवर्च्सम्गांयत्रियेव ब्रह्मवर्च्समवं रुन्द्धेऽष्टरात्रो भंवति चतंस्रो वै दिशश्चतंस्रोऽवान्तरदिशा दिग्भ्य एव ब्रह्मवर्च्समवं रुन्द्धे (८)

त्रिवृदंग्निष्टोमो भंवति तेजं एवावं रुन्द्धे पश्चद्दशो भंवतीन्द्रियमेवावं रुन्द्धे सप्तद्दशो भंवत्युत्राद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायत एकविर्शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्धंते त्रिण्वो भंवति विजित्ये त्रयिश्वर्शो भंवति प्रतिष्ठित्ये पश्चविर्शों-ऽग्निष्टोमो भंवति प्रजापंतेरास्ये महाब्रुतवांनुन्नाद्यस्यावंरुद्धौ विश्वजिथ्सवंपृष्ठोऽतिरात्रो भंवति सर्वस्याभिजित्यै॥ (९)

द्रिग्भ्य एव ब्रंह्मवर्च्समवंरुन्धेऽभिजिंत्यै॥———[३]

प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् ताः सृष्टाः क्षुधं न्यांयुन्थ्स एतं नंवरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै प्रजाभ्योऽ कल्पत् यर्हिं प्रजाः क्षुधं निगच्छंयुस्तर्हिं नवरात्रेणं यजेतेमे हि वा एतासां लोका अक्रुंसा अथैताः क्षुधं नि गंच्छन्तीमानेवाभ्यों लोकान्कंल्पयित तान्कल्पंमानान्य्रजाभ्योऽनुं कल्पते कल्पन्ते (१०)

अस्मा इमे लोका ऊर्जं प्रजास् दधाति त्रिरात्रेणैवेमं लोकं केल्पयति त्रिरात्रेणान्तरिक्षं त्रिरात्रेणाम् लोकं यथां गुणे गुणम्नवस्यंत्येवमेव तल्लोके लोकमन्वंस्यति धृत्या अशिथिलम्भावाय ज्योतिर्गीरायुरिति ज्ञाताः स्तोमां भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तरिक्षं गौर्सावायुरेष्वेव लोकेषु प्रतिं तिष्ठन्ति ज्ञात्रं प्रजानाम् (११)

गुच्छुति नुवरात्रो भंवत्यभिपूर्वमेवास्मिन्तेजो दधाति यो ज्योगांमयावी स्याथ्स नंवरात्रेणं यजेत प्राणा हि वा एतस्याधृंता अथैतस्य ज्योगांमयति प्राणानेवास्मिन्दाधारोत द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ७)

यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव॥ (१२)

कर्त्पन्ते प्रजानान्त्रयंस्रिश्शच॥———[४]

प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स एतं दर्शहोतारमपश्यत्तमंजुहोत्तेनं दशरात्रमंसृजत् तेनं दशरात्रेण प्राजायत दशरात्रायं दीक्षिष्यमाणो दर्शहोतारं जुहुयाद्दशहोत्रैव दंशरात्रश् सृंजते तेनं दशरात्रेण प्र जांयते वैराजो वा एष यज्ञो यद्देशरात्रो य एवं विद्वान्दंशरात्रेण यजंते विराजमेव गंच्छति प्राजापत्यो वा एष यज्ञो यद्देशरात्रः (१३)

य एवं विद्वान्दंशरात्रेण् यजंते प्रैव जांयत् इन्द्रो वै स्टङ्केवतांभिरासी्थ्स न व्यावृतंमगच्छ्थ्स प्रजापंतिमुपांधावत् तस्मां एतं दंशरात्रम्प्रायंच्छ्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै सौंऽन्याभिर्देवतांभिर्व्यावृतंमगच्छ्द्य एवं विद्वान्दंशरात्रेण् यजंते व्यावृतंमेव पाप्मना भ्रातृंव्येण गच्छति त्रिकुकुद्वै (१४)

पृष युज्ञो यद्दंशरात्रः कुकुत्पंश्चद्शः कुकुदंकिविष्शः कुकुत्रंयिख्विष्शो य एवं विद्वान्दंशरात्रेण यजंते त्रिकुकुदेव संमानानां भवति यजंमानः पश्चद्शो यजंमान एकिविष्शो यजंमानस्त्रयिख्विष्शः पुर इतंरा अभिचर्यमाणो दशरात्रेणं यजेत देवपुरा एव पर्यूहते तस्य न कुर्तश्चनोपांच्याधो भंवित नैनंमिभ्चरं-थ्स्तृणुते देवासुराः संयंत्ता आस्नन्ते देवा पृताः (१५)

देवपुरा अंपश्यन् यद्दंशरात्रस्ताः पर्योहन्त् तेषां न कुर्तश्चनोपाँच्याधोऽभवत्ततो देवा अभवन्यरासुरा यो भ्रातृंच्यवान्थ्स्याथ्स दंशरात्रेणं यजेत देवपुरा एव पर्यूहते तस्य न कुर्तश्चनोपाँच्याधो भवति भवत्यात्मना पराँस्य भ्रातृंच्यो भवति स्तोमः स्तोमस्योपंस्तिर्भवति भ्रातृंच्यमेवोपंस्तिं कुरुते जामि वै (१६)

पुतत्कुंर्वन्ति यञ्च्यायार्स्स् स्तोमंमुपेत्य कनीयार्समुप्यन्ति यदंग्निष्टोमसामान्यवस्तांच पुरस्तांच भवन्त्यजांमित्वाय त्रिवृदंग्निष्टोमांऽग्निष्टुदांग्नेयीषुं भवति तेजं पुवावं रुन्द्धे पश्चद्श उक्थ्यं पुन्द्रीष्टिंन्द्रियमेवावं रुन्द्धे त्रिवृदंग्निष्टोमो वैंश्वदेवीषु पुष्टिंमेवावं रुन्द्धे सप्तद्शोंऽग्निष्टोमः प्रांजापुत्यासुं तीव्रसोमोंऽन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायते (१७)

पुक्वि॰्श उक्थ्यः सौरीषु प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवात्मन्धंत्ते सप्तद्शौँऽग्निष्टोमः प्रांजापत्यासूपहृब्यं उपह्वमेव गंच्छति त्रिणवावंग्निष्टोमाव्भितं ऐन्द्रीषु विजित्यै त्रयस्त्रि॰्श उक्थ्यों वैश्वदेवीषु प्रतिष्ठित्यै विश्वजिथ्सर्वपृष्ठोऽ तिरात्रो भंवति सर्वस्याभिजिंत्यै॥ (१८)

प्राजापत्यो वा एष यज्ञो यद्वंशरात्रस्त्रिकुकुद्वा एता वै जायत् एकंत्रि॰शच॥———[५]

ऋतवो वै प्रजाकांमाः प्रजां नाविंन्दन्त् तेंऽकामयन्त प्रजा॰ सृंजेमिह प्रजामवं रुन्धीमिह प्रजां विंन्देमिह प्रजावंन्तः स्यामेति त एतमेंकादशरात्रमंपश्यन्तमाहंर्न्तेनायजन्त् ततो वै ते प्रजामंसुजन्त प्रजामवांरुन्थत प्रजामंविन्दन्त प्रजावंन्तोऽभवन्त ऋतवों-ऽभवन्तदातिंवानांमार्तवृत्वमृंतूनां वा एते पुत्रास्तस्मांत् (१९)

आर्त्वा उंच्यन्ते य एवं विद्वारसं एकादशरात्रमासंते प्रजामेव सृंजन्ते प्रजामवं रुन्धते प्रजां विन्दन्ते प्रजावंन्तो भवन्ति ज्योतिरतिरात्रो भवित ज्योतिरेव पुरस्तांद्वधते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये पृष्ठाः षड्हो भविति षङ्घा ऋतवः षद्वृष्ठानि पृष्ठेरेवर्तून्न्वारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव प्रतिं तिष्ठन्ति चतुर्विर्शो भविति चतुर्विरशत्यक्षरा गायत्री (२०)

गायत्रम्ब्रह्मवर्चसङ्गायित्रियामेव ब्रह्मवर्चसे प्रति तिष्ठन्ति चतुश्चत्वारिष्शो भेवित् चतुश्चत्वारिष्शो भेवित् चतुश्चत्वारिष्शा त्रिष्ठुगिन्द्रियं त्रिष्ठुत्रिष्ठुभ्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्त्यष्टाचत्वारिष्शो भेवत्यष्टाचेत्वारिष्शादक्षरा जर्गती जागताः पशवो जर्गत्यामेव पशुषु प्रति तिष्ठन्त्येकादशरात्रो भेवित् पश्च वा ऋतवं आर्त्वाः पश्चर्तुष्वेवार्त्वेषुं संवथ्सरे प्रतिष्ठायं प्रजामवं रुन्धतेऽतिरात्राव्भितौ भवतः प्रजायै परिगृहीत्य॥ (२१)

तस्मौद्गायुत्र्येकान्नपंश्चाशचं॥————[६]

ऐन्द्रवायवाग्रांन्गृह्णीयाद्यः कामयेत यथापूर्वं प्रजाः केल्पेर्न्नितिं यज्ञस्य वै क्लिपिमनुं प्रजाः केल्पन्ते यज्ञस्याक्लेषिमनुं न केल्पन्ते यथापूर्वमेव प्रजाः केल्पयित् न ज्यायार्रस्ं कनीयानितं कामत्येन्द्रवायवाग्रांन्गृह्णीयादामयाविनंः प्राणेन् वा एष व्यृध्यते यस्यामयिति प्राण ऐन्द्रवायवः प्राणेनेवैन्र् समेर्धयित मैत्रावरुणाग्रांन्गृह्णीर्न् येषां दीक्षितानां प्रमीयेत (२२)

प्राणापानाभ्यां वा एते व्यृध्यन्ते येषां दीक्षितानां प्रमीयंते प्राणापानी मित्रावरुंणौ प्राणापानावेव मुंखतः परिं हरन्त आश्विनाग्रांन्गृह्णीतानुजावरौंऽश्विनौ वै देवानांमानुजावरौ पश्चेवाग्रुं पर्येतामृश्विनांवेतस्यं देवता य आनुजावरस्तावेवेनमग्रुं परिं णयतः शुक्राग्रांन्गृह्णीत गृतश्रीः प्रतिष्ठाकांमोऽसौ वा आंदित्यः शुक्र एषोऽन्तोऽन्तंम्मनुष्यः (२३)

श्रियै गुत्वा नि वंर्तुतेऽन्तांदेवान्तुमा रंभते न ततुः पापीयान्भवति

द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ७)

म्नथ्यंग्रान्गृह्णीताभिचरंत्रार्तपात्रं वा एतद्यन्मंन्थिपात्रम्मृत्युनैवेनं ग्राहयति ताजगार्तिमार्च्छंत्याग्रयणा यस्यं पिता पितामृहः पुण्यः स्यादथ् तन्न प्राप्तृयाद्वाचा वा एष इंन्द्रियेण् व्यृध्यते यस्यं पिता पितामृहः पुण्यः (२४)

भवत्यथ् तन्न प्राप्नोत्युरं इवैतद्यज्ञस्य वार्गिव् यदाँग्रयणो वाचैवैनिमिन्द्रियेण् समर्धयित् न ततः पापीयान्भवत्युक्थ्याँग्रान्गृह्णीताभिच्र्यमाणः सर्वेषां वा एतत्पात्रांणामिन्द्रियं यदुंक्थ्यपात्र सर्वेणैवैनिमिन्द्रियेणाति प्र युंङ्के सरंस्वत्यभि नों नेषि वस्य इतिं पुरोरुचं कुर्याद्वाग्वै (२५)

सरंस्वती वाचैवैनमित् प्र युंङ्के मा त्वत्क्षेत्राण्यरंणानि गुन्मेत्यांह मृत्योर्वे क्षेत्राण्यरंणानि तेनैव मृत्योः क्षेत्रांणि न गंच्छति पूर्णान्यहाँन्गृह्णीयादामयाविनः प्राणान् वा एतस्य शुगृंच्छति यस्यामयंति प्राणा ग्रहाः प्राणानेवास्यं शुचो मुंश्चत्युत यदीतासुर्भवंति जीवंत्येव पूर्णान्यहाँन्गृह्णीयाद्यर्हिं पूर्जन्यो न वर्षेत्र्याणान् वा एतर्हिं प्रजाना् शुगृंच्छति यर्हिं पूर्जन्यो न वर्षेति प्राणा ग्रहाः प्राणानेव प्रजानाः शुचो मुंश्चिति ताजक्य वंर्षित॥ (२६)

प्रमीयेत मनुष्यं ऋध्यते यस्यं पिता पितामृहः पुण्यो वाग्वा एव पूर्णान्प्रहान्पश्चवि शतिश्च॥[७]

गायत्रो वा ऐँन्द्रवायवो गांयत्रम्प्रांयणीयमह्स्तस्माँत्प्रायणीयेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णाति त्रेष्ठुंभो वे शुक्रक्षेष्ठुंभं द्वितीयमह्स्तस्माँद्वितीयेऽहंञ्छुको गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णाति जागतो वा आंग्रयणो जागतं तृतीयमह्स्तस्माँ तृतीयेऽहंन्नाग्रयणो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णात्येतद्वै (२७)

यज्ञमांपुद्यच्छन्दा इंस्याप्नोति यदाँग्रयणः श्वो गृह्यते यत्रैव यज्ञमदंशन्ततं एवैनम्पुनः प्र युंङ्के जगंन्मुखो वै द्वितीयंस्निरात्रो जागंत आग्रयणो यचंतुर्थेऽहंन्नाग्रयणो गृह्यते स्व एवैनमायतंने गृह्णात्यथो स्वमेव छन्दोऽन् पूर्यावंतन्ते राथंतरो वा ऐन्द्रवायवो राथंतरं पश्चममहस्तस्मौत्पश्चमेऽहन्नं (२८)

ऐन्द्रवायवो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णति बार्हंतो वै शुक्रो बार्हंतर प्ष्ठमह्स्तस्माँत्पृष्ठेऽहंञ्छुको गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णत्येतद्वे द्वितीयं यक्तमांपृद्यच्छन्दाईस्याप्नोति यच्छुकः श्वो गृह्यते यत्रैव यक्तमदंशन्ततं एवैनम्पुनः प्र युंङ्के त्रिष्टृङ्गंखो वै तृतीयंस्विरात्रस्वष्ट्रंभः (२९)

शुको यथ्संप्तमेऽहं ञ्छुको गृह्मते स्व पुवैनं मायतं ने गृह्णात्यथो स्वमेव छन्दोऽनुं

481

पूर्यावर्तन्ते वाग्वा आंग्रयणो वार्गष्टममह्स्तस्मांदष्टमेऽहंन्नाग्रयणो गृंह्यते स्व पुवैनंमायतंने गृह्णाति प्राणो वा ऐंन्द्रवायवः प्राणो नंवममह्स्तस्मांन्नवमेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृंह्यते स्व एवैनंमायतंने गृह्णात्येतत् (३०)

वै तृतीयंं य्ज्ञमांपृद्यच्छन्दा इंस्याप्नोति यदैंन्द्रवायवः श्वो गृह्यते यत्रैव य्ज्ञमदंशन्ततं एवेन्म्पुनः प्र युङ्केऽथो स्वमेव छन्दोऽनुं पूर्यावर्ततन्ते पृथो वा एतेऽध्यपंथेन यन्ति यैं-ऽन्येनैंन्द्रवायवात्प्रतिपद्यन्तेऽन्तः खलु वा एष य्ज्ञस्य यद्दंशममहंदशमेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृह्यते यज्ञस्यं (३१)

पुवान्तं गुत्वापंथात्पन्थामिपं यन्त्यथो यथा वहीयसा प्रतिसारं वहन्ति ताहगेव तच्छन्दाईस्यन्यौन्यस्यं लोकम्भ्यंध्यायन्तान्येतेनैव देवा व्यवाहयन्नैन्द्रवायवस्य वा एतदायतंनं यचतुर्थमह्स्तस्मिन्नाग्रयणो गृह्यते तस्मादाग्रयणस्यायतंने नवमेऽहंन्नैन्द्रवायवो गृह्यते शुक्रस्य वा एतदायतंनं यत्पश्चमम् (३२)

अहस्तस्मिन्नैन्द्रवाय्वो गृंह्यते तस्मांदैन्द्रवाय्वस्यायतंने सप्तमेऽहंञ्छुको गृंह्यत आग्रयणस्य वा एतदायतंनं यत्पष्ठमहुस्तस्मिञ्छुको गृंह्यते तस्माँच्छुकस्यायतंनेऽष्टमे-ऽहंन्नाग्रयणो गृंह्यते छन्दाईस्येव तिद्व वांहयित प्र वस्यंसो विवाहमाँप्रोति य एवं वेदार्थो देवताँभ्य एव युज्ञे सुंविदं दधाित तस्मांदिदमन्यौँन्यस्मै ददाित॥ (३३)

एतद्वै पंश्रमेऽहुत्रेष्ट्रंभ एतद्गृंहाते युज्ञस्यं प्रश्रममुन्यस्मा एकंश्र॥———[८]

प्रजापंतिरकामयत् प्र जांयेयेति स एतं द्वांदशरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै स प्राजांयत् यः कामयेत् प्र जांयेयेति स द्वांदशरात्रेणं यजेत् प्रैव जांयते ब्रह्मवादिनों वदन्त्यग्निष्टोमप्रांयणा युज्ञा अथ् कस्मांदितरात्रः पूर्वः प्र युंज्यत् इति चक्षुंषी वा एते युज्ञस्य यदंतिरात्रौ कुनीनिके अग्निष्टोमौ यत् (३४)

अग्निष्टोमं पूर्वम्प्रयुश्चीरन्बंहिर्धा कुनीनिकं दध्युस्तस्मांदितरात्रः पूर्वः प्र युंज्यते चक्षुंषी एव युज्ञे धित्वा मध्यतः कुनीनिकं प्रतिं दधित यो वै गांयत्रीं ज्योतिंःपक्षां वेद ज्योतिंषा भासा सुंवर्गं लोकमेति याविग्निष्टोमौ तौ पक्षौ येऽन्तरेऽष्टावुक्थ्याः स आत्मैषा वै गांयत्री ज्योतिं।पक्षा य एवं वेद ज्योतिंषा भासा सुंवर्गं लोकम् (३५)

पृति प्रजापंतिर्वा पुष द्वांदश्धा विहिंतो यद्वांदशरात्रो यावंतिरात्रौ तौ पृक्षौ येऽन्तरे-ऽष्टाबुक्थ्याः स आत्मा प्रजापंतिर्वावैष सन्थ्सद्ध वै सन्नेणं स्पृणोति प्राणा वै सत्प्राणानेव स्पृंणोति सर्वांसां वा एते प्रजानां प्राणेरांसते ये सन्नमासंते तस्मांत्पृच्छन्ति किमेते सन्निण इतिं प्रियः प्रजानामुत्थितो भवति य एवं वेदं॥ (३६)

अ्ग्रिष्टोमौ यथ्सुंवर्गल्लोंकं प्रियः प्रजानां पश्चं च॥————[९]

न वा एषों ऽन्यतोविश्वानरः सुवर्गायं लोकाय प्राभंवदूर्ध्वो हु वा एष आतंत आसीत्ते देवा एतं वैश्वान्तरं पर्योहन्थ्सवर्गस्यं लोकस्य प्रभूत्या ऋतवो वा एतेनं प्रजापंतिमयाजयन्तेष्वां प्रोदिधि तद्ध्रोति हु वा ऋत्विश्च य एवं विद्वान्द्वांदशाहेन यजेते तें ऽस्मिन्नेच्छन्त स रसुमहं वसुन्तायु प्रायंच्छत् (३७)

यवं ग्रीष्मायौषंधीर्व्रषाभ्यौं ब्रीहीञ्छ्रदें माषितलौ हेंमन्तशिशिराभ्यान्तेनन्द्रें प्रजापंतिरयाजयत्ततो वा इन्द्र इन्द्रोऽभवृत्तस्मांदाहुरानुजावरस्यं यज्ञ इति स ह्यंतेनाग्रेऽयंजतेष ह वै कुणपंमित्त यः सुन्ने प्रंतिगृह्णातिं पुरुषकुणपमंश्वकुणपङ्गौर्वा अन्नं येन पात्रेणान्नम्बिभ्रंति यत्तन्न निर्णेनिजिति ततोऽधिं (३८)

मर्लं जायत् एकं एव यंजेतैको हि प्रजापंतिरार्भ्रोद्वादंश् रात्रींदीक्षितः स्याद्वादंश् मासाः संवथ्सरः संवथ्सरः प्रजापंतिः प्रजापंतिवीवेष एष ह त्वे जायते यस्तप्सोऽधि जायते चतुर्धा वा एतास्तिस्रस्तिस्रो रात्रयो यद्वादंशोप्सदो याः प्रथमा यज्ञं ताभिः सम्भरति या द्वितीयां यज्ञं ताभिरा रंभते (३९)

यास्तृतीयाः पात्राणि ताभिर्निर्णेनिके याश्चंतुर्थीरिष ताभिरात्मानंमन्तर्तः शुंन्थते यो वा अस्य पृशुमित्तं मार्स्सर सौंऽति यः पुरोडाशंम्मस्तिष्कर् स यः परिवापं पुरीष्र् स य आज्यंम्मुज्ञान्र स यः सोम्र स्वेद्र सोऽपि ह वा अस्य शीर्षण्यां निष्पदः प्रतिं गृह्णाति यो द्वांदशाहे प्रतिगृह्णाति तस्माद्वादशाहेन न याज्यंम्पाप्मनो व्यावृत्त्यै॥ (४०)

अर्यच्छुदिधं रभते द्वादशाहेर्न चुत्वारिं च॥-----[१०]

एकंस्मै स्वाहा द्वाभ्या्ड् स्वाहाँ त्रिभ्यः स्वाहां चृतुभ्यः स्वाहां पुश्चभ्यः स्वाहां पुष्काः स्वाहां स्वाहां स्वाहां स्वाहां ह्वाद्शभ्यः स्वाहां नवभ्यः स्वाहां द्रशभ्यः स्वाहां व्राद्शभ्यः स्वाहां वर्त्वद्रशभ्यः स्वाहां वर्त्वद्रशभ्यः स्वाहां पश्चद्रशभ्यः स्वाहां षोड्शभ्यः स्वाहां सप्तद्रशभ्यः स्वाहां प्रविद्रशभ्यः स्वाहां सप्तद्रशभ्यः स्वाहां ह्वाद्रशभ्यः स्वाहं सप्तद्रशभ्यः स्वाहां ह्वाद्रशभ्यः स्वाहं स्वाह्वाद्रशभ्यः स्वाहं ह्वाद्रशभ्यः स्वाहं वर्ष्यः स्वाहं नवंवर्ष्यः स्वाहं स्वाहं नवंवर्ष्यः स्वाहं स्वाहं नवंवर्ष्यः स्वाहं स्वाहं नवंवर्षः स्वाहं नवंवर्षः स्वाहं स्वाहं नवंवर्षः स्वाहं नवंवर्षः स्वाहं स्व

स्वाहा नवांशीत्ये स्वाहैकान्न शताय स्वाहां शताय स्वाहा द्वाभ्यारं शताभ्यार् स्वाहा सर्वस्मै स्वाहाँ॥ (४१)

नवंचत्वारि शते स्वाहैकान्नैकंवि शतिश्व॥_____

[88]

एकंस्मै स्वाहाँ त्रिभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां सप्तभ्यः स्वाहां न्वभ्यः स्वाहंकादृशभ्यः स्वाहां त्रयोदृशभ्यः स्वाहां पश्चदृशभ्यः स्वाहां सप्तदृशभ्यः स्वाहेकात्र विर्श्यात्ये स्वाहा नवंविर्शत्ये स्वाहेकात्र चंत्वारिर्श्याते स्वाहा नवंचत्वारिर्शते स्वाहेकात्र षृष्ट्ये स्वाहा नवंषिष्ट्ये स्वाहेकात्राशीत्ये स्वाहा नवंशित्ये स्वाहेकात्र श्राताय स्वाहां श्राताय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहा॥ (४२)

एकंस्मै त्रिभ्यः पंश्राशत्॥-

[१२]

द्वाभ्याः स्वाहां चतुभ्यः स्वाहां पृद्धाः स्वाहांऽष्टाभ्यः स्वाहां दशभ्यः स्वाहां द्वाद्शभ्यः स्वाहां पोड्शभ्यः स्वाहां पोड्शभ्यः स्वाहांऽष्टाद्शभ्यः स्वाहां वि४शृत्ये स्वाहाऽष्टानंवत्ये स्वाहां शताय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहां॥ (४३)

द्वाभ्यांमुष्टानंवत्यै षड्विर्श्शतिः॥---

[१३]

त्रिभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां सप्तभ्यः स्वाहां नृवभ्यः स्वाहंकादृशभ्यः स्वाहां त्रयोदृशभ्यः स्वाहां पश्चदृशभ्यः स्वाहां सप्तदृशभ्यः स्वाहंकात्र विश्वरृष्टे स्वाहा नवंविश्वरृष्टे स्वाहकात्र विश्वरृष्टे स्वाहा नवंविश्वरृष्टे स्वाहकात्र विश्वरृष्टे स्वाहा नवंविश्वरृष्टे स्वाहकात्र विश्वरृष्टे स्वाहकात्राशीत्ये स्वाहा नवंविश्वरृष्टे स्वाहकात्राशीत्ये स्वाहा नवंविश्वरृष्टे स्वाहकात्र विश्वरृष्टे स्वाहकात्राशीत्ये स्वाहा सर्वस्म स्वाहा॥ (४४)

त्रिभ्यौंऽष्टाचत्वारि<u>*</u>शत्॥=

<u> [</u>88]

चृतुर्भ्यः स्वाहाँ ऽष्टाभ्यः स्वाहाँ द्वादुशभ्यः स्वाहां षोडुशभ्यः स्वाहां विश्शृत्ये स्वाहा षण्णंवत्ये स्वाहां शृताय स्वाहा सर्वसमे स्वाहाँ॥ (४५)

चृतुर्भ्यः षण्णंवत्यै षोडंश॥—

[१५]

पुश्चभ्यः स्वाहां दुशभ्यः स्वाहां पश्चदुशभ्यः स्वाहां विष्शृत्ये स्वाहा पश्चनवत्ये स्वाहां

| द्वितीयः प्रश्नः (काण्डम् ७) | 484 |
|---|-------------------|
| शृतायु स्वाहा सर्वस्मे स्वाहाँ॥ (४६) | |
| पुश्चभ्यः प्रश्चनवत्ये चतुर्दश॥ | [१६] |
| दुशभ्यः स्वाहां वि४शृत्ये स्वाहां त्रिपुशते स्वाहां चत्वारिपुशते | स्वाहां पश्चाशते |
| स्वाहां पृष्ठमे स्वाहां सप्तत्ये स्वाहांऽशीत्ये स्वाहां नवृत्ये स्वाहां शृताय | य स्वाहा सर्वस्मै |
| स्वाहाँ॥ (४७) | _ |
| दशस्यो दावि ५ शति ॥ | |

दुशभ्यो द्वावि रंशतिः॥——[१७

विर्शृत्ये स्वाहां चत्वारिर्शते स्वाहां षृष्ट्ये स्वाहांऽशीत्ये स्वाहां शृताय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहां॥ (४८)

विर्शृत्ये द्वादंश॥———[१८]

पृश्चाशते स्वाहां शताय स्वाहा द्वाभ्या श्रिताभ्या स्वाहां त्रिभ्यः श्रितभ्यः स्वाहां चतुभ्यः श्रितभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः श्रितभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः श्रितभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः श्रितभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां पृश्चभ्यः स्वाहां प्रावधः स्वाहं स्व

पुश्चा्राते द्वात्रिर्शत्॥———[१९

श्ताय स्वाहां सहस्राय स्वाहाऽयुताय स्वाहां नियुताय स्वाहां प्रयुताय स्वाहाऽर्बुदाय स्वाहा न्यंर्बुदाय स्वाहां समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहाऽन्ताय स्वाहां परार्धाय स्वाहोषसे स्वाहा व्यंष्ट्री स्वाहोदिष्यते स्वाहोदिताय स्वाहां सुवर्गाय स्वाहां लोकाय स्वाहा सर्वस्मे स्वाहा॥ (५०)

शृतायाृष्टात्रि १ शत्॥-----[२०]

प्रजवं ब्रह्मवादिनः किमेष वा आप्त आंदित्या उभयौः प्रजापंतिरन्वांयन्निन्द्रो वै सदिङ्किन्द्रो वै शिथिलः प्रजापंतिरकामयतान्नादः सा विराहुसावांदित्यौऽर्वाङ्कृतमा मेऽग्निना स्वाहाधिन्दुन्द्रौँऽञ्चेतायं कृष्णायौषंधीभ्यो वनस्पतिभ्यो विश्शतिः॥————[२१]

॥ तृतीयः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे तृतीयः प्रश्नः॥

प्रजवं वा एतेनं यन्ति यद्दंशममहंः पापाव्हीयं वा एतेनं भवन्ति यद्दंशममहुर्यो वै प्रजवं यतामपंथेन प्रतिपद्यंते यः स्थाणु हिन्ति यो भ्रेषं न्येति स हीयते स यो वै दंशमेऽहंन्नविवाका उपहुन्यते स हीयते तस्मै य उपहताय व्याह् तमेवान्वारभ्य समंश्र्जुतेऽथ यो व्याह सः (१)

हीयते तस्माँदृश्मेऽहंन्नविवाक्य उपहताय न व्युच्यमथो खल्वांहुर्यज्ञस्य वै समृद्धेन देवाः सुवर्गं लोकमायन् यज्ञस्य व्यृंद्धेनासुंग्न्यरांभावयन्निति यत्खलु वै यज्ञस्य समृद्धे तद्यजंमानस्य यद्यद्धं तद्भातृंव्यस्य स यो वै दंशमेऽहंन्नविवाक्य उपहुन्यते स एवाति रेचयति ते ये बाह्यां दृशीकवंः (२)

स्युस्ते वि ब्रूंयुर्यिद् तत्र न विन्देयुंरन्तःसद्साद्युच्यं यदि तत्र न विन्देयुंर्गृहपंतिना व्युच्यन्तद्युच्यमेवाथ वा एतथ्संपर्ाज्ञियां ऋग्भिः स्तुंवन्तीयं वै सपंतो राज्ञी यद्वा अस्यां किं चार्चन्ति यदानृचुस्तेनेय सपंराज्ञी ते यदेव किं च वाचानृचुर्यद्तोऽध्यंर्चितारंः (३)

तदुभयंमा्ह्वाव्रुध्योत्तिष्ठामेति ताभिर्मनंसा स्तुवते न वा इमामंश्वर्थो नाश्वंतरीर्थः सद्यः पर्याप्तमरहित मनो वा इमार सद्यः पर्याप्तमर्हित मनः परिभवितुमथ् ब्रह्मं वदन्ति परिमिता वा ऋचः परिमितानि सामानि परिमितानि यजूर्ध्यथैतस्यैवान्तो नास्ति यद्वह्म तत्प्रंतिगृणत आ चेक्षीत् स प्रंतिग्रः॥ (४)

व्याह् स दृंशीकवौँऽर्चितारः स एकेश्र॥=

[8]

ब्रह्मवादिनों वदन्ति किं द्वांदशाहस्यं प्रथमेनाह्नुर्त्विजां यजमानो वृङ्क् इति तेजं इन्द्रियमिति किं द्वितीयेनेतिं प्राणानुत्राद्यमिति किं तृतीयेनेति त्रीनिमाल्लोणकानिति किं चंतुर्थेनेति चतुंष्पदः पुशूनिति किम्पंश्चमेनेति पश्चांक्षराम्पङ्किमिति कि॰ पृष्ठेनेति पङ्गूनिति कि॰ संप्तमेनेतिं सप्तपंदा शकंरीमितिं (५)

किर्मष्टमेनेत्यृष्टाक्षेरां गायुत्रीमिति किं नेवुमेनेति त्रिवृत् र् स्तोम्मिति किं देशमेनेति दशांक्षरां विराज्मिति किमेकाद्शेनेत्येकादशाक्षरां त्रिष्टुभूमिति किं द्वांद्शेनेति द्वादंशाक्षरां

जगंतीमित्येतावद्वा अस्ति यावंदेतद्यावंदेवास्ति तदेषां वृङ्क्षे॥ (६)

शर्करीमित्येकंचत्वारि < शच॥______

पुष वा आप्तो द्वांदशाहो यत्र्रयोदशरात्रः संमानः ह्यंतदह्यंत्प्रांयणीयंश्चोदयनीयंश्च त्र्यंतिरात्रो भवति त्रयं इमे लोका पुषां लोकानामान्ये प्राणो वे प्रंथमोऽतिरात्रो व्यानो द्वितीयोऽपानस्तृतीयः प्राणापानोदानेष्वेवात्राद्ये प्रतिं तिष्ठन्ति सर्वमायुर्यन्ति य एवं विद्वारंसस्त्रयोदशरात्रमासंते तदांहुर्वाग्वा पुषा वितंता (७)

यद्वांदशाहस्तां विच्छिंन्सुर्यन्मध्येंऽतिरात्रं कुर्युरुंपदासुंका गृहपंतेव्वाख्स्यांदुपरिष्टाच्छन्दोमानांम कुंविन्ति सन्तंतामेव वाचमवं रुन्द्वतेऽनुंपदासुका गृहपंतेव्वाग्भंवति पृशवो वे छंन्दोमा अन्नम्महाब्रतं यदुपरिष्टाच्छन्दोमानांम्महाब्रतं कुर्वन्ति पृशुषुं चैवान्नाद्यं च प्रतिं तिष्ठन्ति॥ (८)

वितंता त्रिचंत्वारि १ श च | [३]

आदित्या अंकामयन्तोभयौँर्लोकयोर्ऋध्रयामेति त एतं चंतुर्दशरात्रमंपश्यन्तमाहंर्न्तेनांयजन्त् ततो वे त उभयौँर्लोकयोरार्ध्रवन्नस्मिश्श्यामुष्मिश्र्य य एवं विद्वाश्संश्चत्रदशरात्रमासंत उभयोरेव लोकयोर्ंऋध्रवन्त्यस्मिश्श्यामुष्मिश्र्य चतुर्दशरात्रो भंवति सप्त ग्राम्या ओषंधयः सप्तारुण्या उभयीषामवंरुद्धौ यत्पंराचीनांनि पृष्ठानिं (९)

भवंन्त्यमुमेव तैर्लोकम्भि जंयन्ति यत्प्रंतीचीनांनि पृष्ठानि भवंन्तीममेव तैर्लोकम्भि जंयन्ति त्रयस्त्रि×्षौ मध्यतः स्तोमौ भवतः साम्राज्यमेव गंच्छन्त्यधिराजौ भवतोऽधिराजा एव संमानानां भवन्त्यतिरात्राविभितों भवतः परिगृहीत्यै॥ (१०)

पृष्ठानि चतुंस्त्रि १ शच॥ 🚤 [४

प्रजापंतिः सुवर्गं लोकमैत्तं देवा अन्वायन्तानांदित्याश्चं पृशवश्चान्वायन्ते देवा अंब्रुवन् यान्पृश्नुपाजींविष्म् त इमेंऽन्वाग्म्त्रिति तेभ्यं एतं चेतुर्दशरात्रमप्रत्यौह्न्त आंदित्याः पृष्ठेः सुंवर्गं लोकमारोहत्र्यहाभ्यामस्मिल्लौंके पृश्न्य्यत्यौहन्पृष्ठेरांदित्या अमुष्मिल्लौंक आर्प्रुवत्र्यहाभ्यामस्मिन् (११)

लोके पुशवो य एवं विद्वारसंश्चतुर्दशरात्रमासंत उभयोरेव लोकयोर्ऋध्रवन्त्यस्मिङ्श्चामुष्मिङ् पृष्ठेरेवामुष्मिञ्जाँक ऋंध्रुवन्ति त्र्यहाभ्यांमुस्मिञ्जाँके ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिंर्न्तरिक्षं गौर्सावायुरिमानेव लोकान्भ्यारोहिन्त् यद्न्यतः पृष्ठानि स्युर्विविवधः स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधुत्वायं (१२)

ओजो वै वीर्यं पृष्ठान्योजं एव वीर्यम्मध्यतो दंधते बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रंधन्तरम्मो बृहद्गभ्यामेव यन्त्यथां अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वे यज्ञस्यांश्रमायनी स्रृती ताभ्यांमेव स्वां लोकं यंन्ति पराश्चो वा एते स्वां लोकम्भ्यारोहिन्ति ये पंराचीनानि पृष्ठान्युंप्यन्तिं प्रत्यश्चाहो भवति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयोंलीक्यार्ंश्रद्धित्तिष्ठन्ति चतुंदंशैतास्तामां या दश् दशांक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराजैवान्नाद्यमवं रुन्धते याश्चतंस्रश्चतंस्रो दिशों दिक्ष्वेव प्रतिं तिष्ठन्त्यतिरान्नाव्भितों भवतः परिगृहीत्ये॥ (१३)

आर्धुवन्त्र्यहाभ्यांमस्मिन्थ्संविवधृत्वायः प्रतिष्ठित्याः एकंत्रि शचा ॥————[५]

इन्द्रो वै स्टङ्क्क्वतांभिरासीथ्स न व्यावृतंमगच्छ्थ्स प्रजापंतिमुपांधावृत्तस्मां एतस्पंश्वदशरात्रम्प्रायंच्छ्तमाहंर्त् तेनांयजत् ततो वै सौंऽन्याभिर्देवतांभिर्व्यावृतंमगच्छ्च एवं विद्वारसंः पश्चदशरात्रमासंते व्यावृतंमेव पाप्मना भ्रातृंव्येण गच्छन्ति ज्योतिगौरायुरितिं त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिंरन्तरिक्षम् (१४)

गौर्सावायुरेष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठन्त्यसंत्रं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्थते पृश्चर्चन्दोमैरोजो वा वीर्यं पृष्ठानि पृशवंश्छन्दोमा ओर्जस्येव वीर्ये पृशुषु प्रति तिष्ठन्ति पश्चदशरात्रो भवति पश्चदशो वज्रो वज्रमेव भ्रातृंच्येभ्यः प्र हंरन्त्यतिरात्राविभेतो भवत इन्द्रियस्य परिगृहीत्यै॥ (१५)

अन्तरिक्षमिन्द्रियस्यैकंश्र॥———[ह्

इन्द्रो वै शिथिल इवाप्रतिष्ठित आसीथ्सोऽसुरेभ्योऽिबभ्थ्स प्रजापंतिमुपाधावत्तस्मां एतम्पंश्वदशरात्रं वज्रम्प्रायंच्छ्त् तेनासुरान्यराभाव्यं विजित्य श्रियंमगच्छदग्रिष्टतां पाप्मानं निरंदहत पश्चदशरात्रेणौजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नधत्त् य एवं विद्वारसंः पश्चदशरात्रमासंते भ्रातृंव्यानेव पंराभाव्यं विजित्य श्रियं गच्छन्त्यग्रिष्टतां पाप्मानं निः (१६)

दहन्ते पृश्चदृश्रात्रेणौजो बर्लमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्दंधत एता एव पंश्वव्याः पश्चंदश् वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासुशः संवथ्सर आप्यते संवथ्सरम्पृशवोऽनु प्र जायन्ते तस्मात्पश्व्यां एता एव सुंवर्ग्याः पश्चंदश् वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासुशः संवथ्सर आँप्यते संवथ्सरः सुंवर्गो लोकस्तस्माँथ्सुवर्ग्यां ज्योतिर्गौरायुरितिं त्र्यहो भंवतीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षम् (१७)

गौर्सावायुरिमानेव लोकान्भ्यारोहिन्त् यद्न्यतः पृष्ठानि स्युर्विविवधः स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधृत्वायौजो वै वीर्यं पृष्ठान्योजं एव वीर्यम्मध्यतो देधते बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रथन्तरम्सौ बृहद्यभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यां अस्यां सुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकम् (१८)

यन्ति पराँश्चो वा एते सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहिन्ति ये पंराचीनांनि पृष्ठान्युंप्यन्तिं प्रत्यङ्ग्यहो भंवित प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयौर्लोकयोर्ऋद्धोत्तिष्ठन्ति पश्चंदशैतास्तासां या दश् दशाँक्षरा विराडन्नं विराङ्चिराजैवान्नाद्यमवं रुन्धते याः पश्च पश्च दिशों दिक्ष्वंव प्रतिं तिष्ठन्त्यतिरात्राव्यभितों भवत इन्द्रियस्यं वीर्यस्य प्रजाये पश्नां परिगृहीत्यै॥ (१९)

गुच्छुन्त्युग्निष्टुतां पाप्मानुन्निरुन्तरिक्षल्लाँकं प्रजायै द्वे चं॥______[७]

प्रजापंतिरकामयतात्रादः स्यामिति स एत॰ संप्तदशरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै सौंऽत्रादोऽभवद्य एवं विद्वा॰संः सप्तदशरात्रमासंतेऽत्रादा एव भवन्ति पश्चाहो भविति पश्च वा ऋतवंः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठन्त्यथो पश्चौक्षरा पङ्किः पाङ्को युज्ञो युज्ञमेवावं रुन्थतेऽसंत्रुं वा एतत् (२०)

यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सुत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्थते पृश्र्ञ्छंन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानिं पृश्रवंश्छन्दोमा ओजंस्येव वीर्ये पृशुषु प्रतिं तिष्ठन्ति सप्तदशरात्रो भवति सप्तदशः प्रजापंतिः प्रजापंतेरास्यां अतिरात्राव्यभितों भवतोऽत्राद्यंस्य परिंगृहीत्यै॥ (२१)

पुतथ्सुप्तित्रि ५ श्रच॥______[८]

सा विरािब्वक्रम्यांतिष्ठद्वह्मणा देवेष्वन्नेनास्रेरेषु ते देवा अंकामयन्तोभय् सं वृंश्चीमित् ब्रह्म चान्नं चेति त एता विर्श्यातिर रात्रीरपश्यन्ततो वै त उभय् समंवृश्चत ब्रह्म चान्नं च ब्रह्मवर्चिसिनौऽन्नादा अंभवन् य एवं विद्वारसं एता आसंत उभयंमेव सं वृंश्चते ब्रह्म चान्नं च (२२)

ब्रह्मवर्चिसिनौँऽन्नादा भंविन्ति द्वे वा एते विराजौ तयोरेव नाना प्रति तिष्ठन्ति विर्शा वै पुरुषो दश हस्त्यां अङ्गुलयो दश पद्या यावानेव पुरुषेषस्तमास्वोत्तिष्ठन्ति ज्योतिर्गौरायुरिति

त्र्यहा भंवन्तीयं वाव ज्योतिंर्न्तरिंक्षुं गौर्सावायुंरिमानेव लोकान्भ्यारोहन्त्यभिपूर्वं त्र्यहा भंवन्त्यभिपूर्वमेव सुंवर्गम् (२३)

लोकम्भ्यारोहिन्त् यद्न्यतंः पृष्ठान् स्युर्विविवधः स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सिववधृत्वायौजो वै वीर्यं पृष्ठान्योजं एव वीर्यम्मध्यतो दंधते बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव र्यथन्तरम्सौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यां अस्यां स्रुती ताभ्यांमेव स्वृंवर्गं लोकं यन्ति परां श्रो वा एते स्वृंवर्गं लोकम्भ्यारोहिन्त् ये पर्मचीनांनि पृष्ठान्युंपयन्ति प्रत्यङ्क्याहो भवति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयों लोकयोर् ऋद्धोत्तिष्ठन्त्यतिरात्राविभतों भवतो ब्रह्मवर्चसस्यान्नाद्यंस्य परिगृहीत्यै॥ (२४)

वृञ्जते ब्रह्म चात्रंश्च सुवर्गमेते सुवर्गत्रयोविश्यतिश्च॥

असावांदित्यों ऽस्मिल्लोंक आंसीत्तं देवाः पृष्ठैः परिगृह्यं सुवर्गं लोकमंगमयन्परेर्वस्तात्पर्यगृह्णि सुवर्गे लोके प्रत्यंस्थापयन्परैंः पुरस्तात्पर्यगृह्णस्थापयं कि प्रत्यंस्थापयन्परैंः पुरस्तात्पर्यगृह्णस्थाने सुवर्गमेव तैर्लोकं यजमाना यन्ति परेरवस्तात्परिं गृह्णन्ति दिवाकीर्त्यं (२५)

सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्ति परैंः पुरस्तात्पिरं गृह्णन्ति पृष्ठैरुपावंरोहन्ति यत्परं पुरस्तान्न स्युः पराँश्चः सुवृगिक्षोकान्निष्पंद्येर्न् यद्वस्तान्न स्युः प्रजा निर्देहेयुर्भितों दिवाकीत्यं परंःसामानो भवन्ति सुवृगं एवैनाँ ह्याँक उंभयतः परिं गृह्णन्ति यजंमाना वै दिवाकीत्यं संवथ्सरः परंःसामानोऽभितों दिवाकीत्यं परंः सामानो भवन्ति संवथ्सर एवोभयतः (२६)

प्रति तिष्ठन्ति पृष्ठं वै दिवाकीृत्यंम्पार्श्वे परंःसामानोऽभितो दिवाकीृत्यं परंःसामानो भवन्ति तस्मांद्भितः पृष्ठम्पार्श्वे भूयिष्ठा ग्रहां गृह्यन्ते भूयिष्ठः शस्यते यज्ञस्यैव तन्मंध्यतो ग्रन्थं ग्रंथ्यन्त्यविस्तरसाय सप्त गृह्यन्ते सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधति यत्पराचीनानि पृष्ठानि भवन्त्यमुमेव तैर्लोकम्भ्यारोहन्ति यदिमं लोकं न (२७)

प्रत्यवरोहेंयुरुद्धा माद्येयुर्यजंमानाः प्र वां मीयेर्न् यत्प्रंतीचीनांनि पृष्ठानि भवंन्तीममेव तैर्लोकम्प्रत्यवंरोह्न्त्यथों अस्मिन्नेव लोके प्रतिं तिष्ठन्त्यनुंन्मादायेन्द्रो वा अप्रंतिष्ठित आसीथ्स प्रजापतिमुपांधावत्तस्मां एतमेंकविश्शतिरात्रम्प्रायंच्छुत्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै स प्रत्यंतिष्ठद्ये बंहुयाजिनोऽप्रंतिष्ठिताः (२८)

स्युस्त एंकविश्शितरात्रमांसीर्न्द्वादंश् मासाः पश्चर्तवस्त्रयं इमे लोका असावांदित्य एंकविश्श पुतावंन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यंथापूर्वं प्रति तिष्ठन्त्यसावांदित्यो न व्यंरोचत् स प्रजापित्मुपाधावत्तस्मां पुतमेंकविश्शितरात्रम्प्रायंच्छ्त्तमाहंर्त्तेनांयजत् ततो वै सोंऽरोचत् य पुवं विद्वारंस एकविश्शितरात्रमासंते रोचंन्त पृवैकविश्शितरात्रो भंवति रुग्वा एंकविश्शो रुचंमेव गंच्छ्नन्त्यथौं प्रतिष्ठामेव प्रंतिष्ठा ह्यंकविश्शों-ऽ तिरात्राविभितों भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिंगृहीत्यै॥ (२९)

गृह्ब्नित दिवाकीर्त्येनैवोभयतो नाप्रतिष्ठिता आसंत एकंवि श्वातिश्च॥————[१०]

अर्वाङ्यज्ञः सं क्रांमत्वमुष्मादिष्य माम्भि। ऋषींणां यः पुरोहितः। निर्देवं निर्वीरं कृत्वा विष्कंन्धं तस्मिन् हीयतां योऽस्मान्द्वेष्टिं। शरीरं यज्ञशम्लं कुसीदं तस्मिन्थ्सीदत् योऽस्मान्द्वेष्टिं। यज्ञं यज्ञस्य यत्तेज्ञस्तेन सं क्रांम माम्भि। ब्राह्मणानृत्विजो देवान् यज्ञस्य तपंसा ते सवाहमा हुवे। इष्टेनं पक्कमुपं (३०)

ते हुवे सवाहम्। सन्ते वृञ्जे सुकृत र सं प्रजां पृश्न्न। प्रैषान्थ्यांमिधेनीरांघारावाज्यंभागावाश्रं शृंणामि ते। प्रयाजान्याजान्थ्यंबष्टकृतमिडांमाशिष आ वृञ्जे सुवंः। अग्निनेन्द्रेण सोमेन सरंस्वत्या विष्णुंना देवतांभिः। याज्यानुवाक्यांभ्यामुपं ते हुवे स्वाहं यज्ञमा दंदे ते वर्षद्गृतम्। स्तुत र शुस्त्रमप्रंतिगुरं ग्रह्मिडांमाशिषंः (३१)

आ वृंञ्जे सुवंः। पुत्रीसंयाजानुपं ते हुवे सवाह सिम्धयजुरा दंदे तवं। पुश्नू-असुतम्पुरोडाशा-असवंनान्योत यज्ञम्। देवा-असेन्द्रानुपं ते हुवे सवाहम्ग्निम्ंखा-असोमंवतो ये च विश्वं॥ (३२)

उप ग्रह्मिडांमाशिषो द्वात्रिर्शच॥———[११]

भूतम्भव्यंम्भिविष्यद्वष्ट्रस्वाह्य नम् ऋख्साम् यजुर्वष्ट्रस्वाह्य नमी गायत्री त्रिष्टुज्ञगिती वष्ट्रस्वाह्य नमी पृथिव्यन्तिरक्षे द्यौर्वष्ट्रस्वाह्य नमोऽग्निर्वायुः सूर्यो वष्ट्रस्वाह्य नमी प्राणो व्यानोऽपानो वष्ट्रस्वाह्य नमोऽन्ने कृषिर्वृष्टिर्वष्ट्रस्वाह्य नमी पृता पुत्रः पौत्रो वष्ट्रस्वाह्य नमो भूर्भुवःसुवर्वष्ट्रस्वाह्य नमी॥ (३३)

भुवंश्चत्वारिं च॥-----[१२]

आ में गृहा भंवंं त्वा प्रजा म् आ मां युज्ञो विंशतु वीर्यावान्। आपों देवीर्य्ज्ञिया मा विंशन्तु सहस्रंस्य मा भूमा मा प्र हांसीत्। आ मे ग्रहों भवत्वा पुंरोरुरुद्धतुंतश्स्रे मा विंशतार समीर्चौं। आदित्या रुद्रा वसंवो मे सद्स्यौः सहस्रंस्य मा भूमा मा प्र हांसीत्। आ मौग्निष्टोमो विंशतूक्थ्यंश्चातिरात्रो मा विंशत्वापिशर्व्रः। ति्रोअंह्निया मा सुहुंता आ विंशन्तु सहस्रंस्य मा भूमा मा प्र हांसीत्॥ (३४)

अ्ग्रिष्टोमो विंशत्वृष्टादंश च॥———[१३]

अग्निना तपोऽन्वंभवद्वाचा ब्रह्मं मृणिनां रूपाणीन्द्रेण देवान् वातेन प्राणान्थ्सूर्येण द्याश्चन्द्रमंसा नक्षंत्राणि यमेनं पितृत्राज्ञां मनुष्यांन्फ्लेनं नादेयानंजगरेणं सूर्पान्व्याघ्रेणांरण्यान्पुश्च्छ्येनेनं पत्तित्रणो वृष्णाश्वांनृष्भेण गा बस्तेनाजा वृष्णिनावीं व्रीहिणान्नांनि यवेनौषंधीर्न्युग्रोधेन वनस्पतीं नुदुम्बरेणोर्जंङ्गायित्रया छन्दा स्ति त्रिवृता स्तोमांन्ब्राह्मणेन वाचम्॥ (३५)

ब्राह्मणेनैकंश्र॥-----[१४]

स्वाह्यधिमाधीताय स्वाह्य स्वाहाधीतृम्मनंसे स्वाह्य स्वाह्य मनंः प्रजापंतये स्वाह्य काय स्वाह्य कस्मै स्वाहां कत्मस्मै स्वाहादित्ये स्वाहादित्ये मृह्यँ स्वाहादित्ये सुमृडीकायै स्वाह्य सर्रस्वत्ये स्वाह्य सर्रस्वत्ये बृहुत्यँ स्वाह्य सर्रस्वत्ये पावकायै स्वाह्यं पूष्णे स्वाह्यं पूष्णे प्रपथ्यांय स्वाह्यं पूष्णे न्रन्धिषाय स्वाह्य त्वष्टे स्वाह्य त्वष्टे तुरीपांय स्वाह्य त्वष्टे पुरुरूपांय स्वाह्य विष्णंवे स्वाह्य विष्णंवे निभूयपाय स्वाह्य सर्वस्मै स्वाह्यं॥ (३६)

पुरुरूपांय स्वाहा दर्श च॥------[१५]

दुद्धः स्वाह्य हनूँभ्या् इ स्वाह्यष्ठाँभ्याः स्वाह्य मुखाय स्वाह्य नासिंकाभ्याः इक्षवं प्यार्थेभ्यः पक्ष्मंभ्यः स्वाह्यं प्यर इक्षवं ऽवार्येभ्यः पक्ष्मंभ्यः स्वाहां श्रीर्णे स्वाहां भूभ्याः स्वाहां लुलाटांय स्वाहां मूर्भे स्वाहां मस्तिष्कांय स्वाहां केशेंभ्यः स्वाहां वहांय स्वाहां ग्रीवाभ्यः स्वाहां स्कन्थेभ्यः स्वाहां कीकंसाभ्यः स्वाहां पृष्टीभ्यः स्वाहां पाज्यस्याय स्वाहां पृर्थाभ्याः स्वाहां (३७)

अरसौभ्या्र् स्वाहां दोषभ्या्र् स्वाहां बाहुभ्या्र् स्वाहा जङ्घांभ्या्र् स्वाहा श्रोणींभ्या्र्

स्वाहोरुभ्या इस्वाहाँ शिवज्ञा इस्वाहा जङ्गाँभ्या इस्वाहां भसदे स्वाहां शिखण्डेभ्यः स्वाहां वालधानांय स्वाहाण्डाभ्या इस्वाहा शेपांय स्वाहा रेतंसे स्वाहाँ प्रजाभ्यः स्वाहाँ प्रजनंनाय स्वाहां प्रज्ञः स्वाहां श्रिफेभ्यः स्वाहां लोमेभ्यः स्वाहां त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहां मा इसाय स्वाहा स्नावंभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहां मुजभ्यः स्वाहां स्वाहां स्वाहाः सर्वस्मे स्वाहाः॥ (३८)

अअयेताय स्वाहां असिक्थाय स्वाहां शितिपदे स्वाहां शितिककुदे स्वाहां शितिरन्ध्राय स्वाहां शितिपृष्ठाय स्वाहां शित्यश्साय स्वाहां पृष्पृकर्णाय स्वाहां शित्योष्ठाय स्वाहां शितिभवे स्वाहां शितिभसदे स्वाहां श्वेतानूंकाशाय स्वाहांअये स्वाहां लुलामाय स्वाहासितज्ञवे स्वाहां कृष्णेताय स्वाहां रोहितेताय स्वाहांक्रणेताय स्वाहेदशांय स्वाहां कीदृशांय स्वाहां सदृशांय स्वाहां विसंदशाय स्वाहा सुसंदृशाय स्वाहां रूपाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (३९)

रूपाय स्वाहा द्वे चं॥-----[१७

कृष्णाय स्वाहाँ श्वेताय स्वाहां पिशङ्गाय स्वाहां सारङ्गाय स्वाहां श्वेताय स्वाहां गौराय स्वाहां बुभ्रवे स्वाहां नकुलाय स्वाहा रोहिंताय स्वाहा शोणाय स्वाहां श्यावाय स्वाहां शयामाय स्वाहां पाकुलाय स्वाहां सुरूपाय स्वाहानुंरूपाय स्वाहा विरूपाय स्वाहा सरूपाय स्वाहा प्रतिरूपाय स्वाहां श्वेरो स्वाहां पृश्वियस्वथाय स्वाहा प्रतिरूपाय स्वाहां श्वेरो स्वाहां पृश्वियस्वथाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (४०)

ओषंधीभ्यः स्वाहा मूलैभ्यः स्वाहा तूलैभ्यः स्वाहा काण्डैभ्यः स्वाहा वल्शैभ्यः स्वाहा पुष्पैभ्यः स्वाहा फलैभ्यः स्वाहां गृहीतेभ्यः स्वाहागृहीतेभ्यः स्वाहावंपन्नेभ्यः स्वाहा शर्यानेभ्यः स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा॥ (४१)

ओषंधीभ्यश्चतुंर्वि १ शतिः॥______[१९]

वनस्पतिभ्यः स्वाह्। मूलैभ्यः स्वाह्। तूलैभ्यः स्वाह्। स्कन्भौभ्यः स्वाह्। शाखाँभ्यः

स्वाहां पूर्णेभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेंभ्यः स्वाहां गृहीतेभ्यः स्वाहागृहीतेभ्यः स्वाहावंपन्नेभ्यः स्वाहा श्रयांनेभ्यः स्वाहां श्रिष्टाय स्वाहातिंशिष्टाय स्वाहा परिंशिष्टाय स्वाहा सर्शिष्टाय स्वाहोच्छिंष्टाय स्वाहां रिक्ताय स्वाहारिक्ताय स्वाहा प्रिंकाय स्वाहा सर्शिकाय स्वाहोद्यंक्ताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा॥ (४२)

वन्स्पतिंभ्यः स्कन्धौभ्यः शिष्टायं रिक्ताय षद्धंत्वारि १शत्॥———[२०]

[प्रजर्वं प्रजापंतिर्यदंछन्दोमन्तें हुवे सवाहमोषंधीभ्यो द्विचंत्वारिश्शत्॥42॥ प्रजवृश् सर्वस्मै स्वाहाँ॥]

॥ चतुर्थः प्रश्नः॥

॥ तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे चतुर्थः प्रश्नः॥

बृह्स्पतिरकामयत् श्रन्में देवा दधीर्न्गच्छेयं पुरोधामिति स एतं चंतुर्विरशतिरात्रमंपश्यत्तमाहंर्त्तेनायजत् ततो वै तस्मै श्रद्देवा अदंधतागंच्छत्पुरोधां य एवं विद्वारसंश्चतुर्विरशतिरात्रमासते श्रदेंभ्यो मनुष्यां दधते गच्छंन्ति पुरोधां ज्योतिर्गौरायुरितिं त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तरिक्षुं गौर्सावार्युः (१)

ड्मानेव लोकान्भ्यारीहन्त्यिभपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यिभपूर्वमेव सुंवर्गं लोकम्भ्यारीहन्त्यसंत्रं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सुत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्धते पृश्चर्ञ्जन्दोमीरोजो वै वीर्यं पृष्ठानिं पृशवंश्छन्दोमा ओजंस्येव वीर्ये पृशुषु प्रतिं तिष्ठन्ति बृहद्रथन्तराभ्यां यन्तीयं वाव रंथन्तरमुसौ बृहद्यभ्यामेव (२)

युन्त्यथों अनयोरेव प्रतिं तिष्ठन्त्येते वै युज्ञस्यांश्वसायंनी स्रुती ताभ्यांमेव सुंवर्गं लोकं यंन्ति चतुर्विश्शितरात्रो भंवित् चतुर्विश्शितरिर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरः सुंवर्गो लोकः संवथ्सरः एव सुंवर्गे लोके प्रतिं तिष्ठन्त्यथो चतुर्विश्तत्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसङ्गायत्रियेव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्धतेऽतिरात्राविभितों भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्ये॥ (३)

असावायुंराभ्यामेव पश्चंचत्वारि १शच॥

यथा वै मंनुष्यां एवं देवा अग्रं आसन्तें ऽकामयन्ताविर्तिम्पाप्मानंम्मृत्युमंपृहत्य दैवी रं स्रस्दं गच्छेमेति त एतं चंतुर्वि रशतिरात्रमंपश्यन्तमाहं रन्ते नायजन्त ततो वै ते- ऽविर्तिम्पाप्मानंम्मृत्युमंपृहत्य दैवी रं स्रस्सदंमगच्छन् य एवं विद्वारं सश्चतुर्वि रशितरात्रमास्ते- ऽविर्तिमेव पाप्मानंमपहत्य श्रियं गच्छन्ति श्रीर्हि मंनुष्यंस्य (४)

दैवीं सुर्सञ्च्योतिरतिरात्रो भेवति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये पृष्ठाः षड्हो भेवति षड्वा ऋतवेः संवथ्सरस्तम्मासां अर्धमासा ऋतवेः प्रविश्य दैवी । सुर्सदमगच्छुन् य एवं विद्वा । सश्चरित्रात्रमासेते संवथ्सरमेव प्रविश्य वस्यंसी । सुर्सदं गच्छन्ति त्रयंस्रयस्त्रिष्शा अवस्ता द्वविन्ति त्रयंस्रयस्त्रिष्शाः पुरस्ता त्रयस्त्रिप्रयोग्यतोऽविर्तिम्पाप्मानंमपृहत्य दैवी । सुर्सदंममध्यतः (५)

गुच्छुन्ति पृष्ठानि हि दैवीं स्र्सञ्जामि वा एतत्कुंविन्ति यत्रयंस्रयस्त्रिर्शा अन्वश्चो मध्येऽनिरुक्तो भवित् तेनाजाँम्यूर्ध्वानि पृष्ठानि भवन्त्यूर्ध्वाश्कुंन्दोमा उभाभ्यार् रूपाभ्यार्थ सुवर्गं लोकं यन्त्यसंत्रुं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छन्दोमा भवन्ति तेन स्त्रं देवतां एव पृष्ठैरवं रुन्थते पृश्च्छन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पृश्चंः (६)

छुन्दोमा ओर्जस्येव वीर्ये पृशुपु प्रति तिष्ठन्ति त्रयंस्रयस्त्रिष्ट्शा अवस्ताँद्भवन्ति त्रयंस्रयस्त्रिष्ट्शाः प्रस्तान्मध्ये पृष्ठान्युरो वै त्रयस्त्रिष्ट्शा आत्मा पृष्ठान्यात्मनं एव तद्यजंमानाः शर्म नह्यन्तेऽनाँत्ये बृहद्रथन्त्रराभ्यां यन्तीयं वाव रंथन्त्ररम्सौ बृहद्राभ्यामेव युन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्यांश्वसायंनी स्नुती ताभ्यांमेव (७)

सुवर्गं लोकं यंन्ति पराश्चो वा एते सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहिन्ति ये पंराचीनांनि पृष्ठान्युंपयन्ति प्रत्यङ्कंडहो भविति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयों लोक्यार्ं ऋद्धोत्तिष्ठन्ति त्रिवृताऽिधं त्रिवृत्तमुपं यन्ति स्तोमाना सम्पत्त्यै प्रभ्वाय ज्योतिरिग्निष्ठोमो भवत्ययं वाव स क्षयोऽस्मादेव तेन क्षयान्न यंन्ति चतुर्वि शतिरात्रो भविति चतुर्वि शतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरः सुंवर्गो लोकः संवथ्सर एव सुंवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्त्यथो चतुर्वि शत्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसङ्गायत्रियैव ब्रह्मवर्चसमवं रुन्थतेऽतिरात्राविभितो भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै॥ (८)

म्नुष्यंस्य मध्यतः पृशवस्ताभ्यांमेव संवथ्सरश्चतुंविं शतिश्च॥———[२] ऋक्षा वा इयमंलोमकांसीथ्साकांमयतौषंधीभिवंनस्पतिंभिः प्र जांयेयेति

सैतास्त्रिष्शत्ष् रात्रीरपश्यत्ततो वा इयमोषंधीभिर्वनस्पतिंभिः प्राजांयत् ये प्रजाकांमाः पृशुकांमाः स्युस्त एता आंसीर्न्प्रैव जांयन्ते प्रजयां पृशुभिरि्यं वा अंक्षुध्यथ्सैतां विराजमपश्यत्तामात्मन्धित्वान्नाद्यमवांरुन्द्वौषंधीः (९)

वन्स्पतींन्य्रजां पृश्न्तेनांवर्धत् सा जेमानंम्मिह्मानंमगच्छ् एवं विद्वारसं एता आसंते विराजमेवात्मन्धित्वाऽन्नाद्यमवं रुन्थते वर्धन्ते प्रजयां पृश्निर्जेमानंम्मिह्मानं गच्छन्ति ज्योतिरतिरात्रो भंवति सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये पृष्ठमः षड्हो भंवति षड्वा ऋतवः षद्वृष्ठानिं पृष्ठेरेवर्तून्न्वारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव (१०)

प्रतिं तिष्ठन्ति त्रयस्त्रिष्शाश्रंयस्त्रिष्शम्पं यन्ति यज्ञस्य सन्तंत्या अथौं प्रजापंतिर्वे त्रंयस्त्रिष्शः प्रजापंतिमेवा रंभन्ते प्रतिष्ठित्यै त्रिण्वो भवति विजित्या एकविष्शो भविति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्दंधते त्रिवृदंग्रिष्ठुद्भंवित पाप्मानंमेव तेन निर्देहन्तेऽथो तेजो वै त्रिवृत्तेजं पुवात्मन्दंधते पश्चद्श इंन्द्रस्तोमो भवितीन्द्रियमेवावं (११)

रुन्यते सप्तद्रशो भंवत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायन्त एकविर्शो भंवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवात्मन्दंधते चतुर्विर्शो भंवति चतुर्विरशतिरर्धमासाः संवथ्सरः संवथ्सरः संवथ्सरः स्वंगी लोकः संवथ्सर एव स्वंगी लोके प्रति तिष्ठन्त्यथी एष वै विषूवान् विषूवन्तो भवन्ति य एवं विद्वारसं एता आसंते चतुर्विर्शात्पृष्ठान्युपं यन्ति संवथ्सर एव प्रतिष्ठायं (१२)

देवतां अभ्यारोहिन्त त्रयिख्येष्शात्रयिख्येष्शमुपं यन्ति त्रयंख्रिष्शिद्दे देवतां देवतांस्वेव प्रितं तिष्ठन्ति त्रिण्वा भवतीमे वे लोकािखंणव पृष्वंव लोकेषु प्रितं तिष्ठन्ति द्वावंकिविष्शौ भवतः प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्दंधते बहुवं षोड्शिनों भवन्ति तस्माद्धहवं प्रजासु वृषाणो यदेते स्तोमा व्यतिषक्ता भवन्ति तस्मादियमोषधीभिर्वनस्पतिभिर्व्यतिषक्ता (१३)

व्यतिषज्यन्ते प्रजयां पृशुभिर्य एवं विद्वाश्सं एता आस्तेऽक्रंप्ता वा एते सुंवर्गं लोकं यन्त्युचावचान् हि स्तोमानुपयन्ति यदेत ऊर्ध्वाः क्रुप्ताः स्तोमा भवन्ति क्रुप्ताः एव सुंवर्गं लोकं यन्त्युभयोरेभ्यो लोकयौः कल्पते त्रिश्शदेतास्त्रिश्शदक्षरा विराडन्नं विराड्विराजैवान्नाद्यमवं रुन्धतेऽतिरात्राविभतों भवतोऽन्नाद्यंस्य परिगृहीत्यै॥ (१४)

ओषंधीः संवथ्सर पुवावं प्रतिष्ठाय व्यतिषुक्तैकान्नपंश्चाशर्च॥_____

प्रजापंतिः सुवर्गं लोकमैत्तं देवा येनयेन् छन्दसानु प्रायुंञ्जत् तेन् नाप्नुंवन्त एता द्वात्रिर्श्यत्र् रात्रीरपश्यन् द्वात्रिर्श्यदक्षरानुष्टुगानुष्टुभः प्रजापंतिः स्वेनैव छन्दंसा प्रजापंतिमास्वाभ्यारुह्यं सुवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वारसं एता आसंते द्वात्रिर्श्यदेता द्वात्रिर्श्यदक्षरानुष्टुगानुष्टुभः प्रजापंतिः स्वेनैव छन्दंसा प्रजापंतिमास्वा श्रियंं गच्छन्ति (१५)

श्रीर्हि मंनुष्यंस्य सुवर्गो लोको द्वात्रिर्श्यदेता द्वात्रिर्श्यदक्षरानुष्टुग्वागंनुष्टुफ्सर्वामेव वाचंमाप्नुविन्ति सर्वे वाचो विद्तारों भवन्ति सर्वे हि श्रियं गच्छंन्ति ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिर्न्तिरंक्षं गौर्सावायुरिमानेव लोकान्भ्यारौहन्त्यिभपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यिभपूर्वमेव सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहन्ति बृहद्रथन्तुराभ्यां यन्ति (१६)

ड्यं वाव रंथन्त्रम्सौ बृहद्यभ्यामेव युन्त्यथी अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै युज्ञस्यां अस्मायंनी स्नृती ताभ्यांमेव स्नृवर्गं लोकं यंन्ति परांश्चो वा एते सुंवर्गं लोकम्भ्यारोहिन्ति ये परांचस्त्र्यहानुंपयन्ति प्रत्यङ्क्ष्यहा भविति प्रत्यवंरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयौर्लोकयोर्ंऋद्धोत्तिष्ठन्ति द्वात्रिरंशदेतास्तासां यास्त्रिर्शत्रिर्था विराहन्नं विराह्विराज्ञैवान्नाद्यमवं रुन्यते ये द्वे अंहोरात्रे एव ते उभाभ्यारं रूपाभ्यारं सुवर्गं लोकं यंन्त्यतिरात्रावृत्भितों भवतः परिगृहीत्यै॥ (१७)

गुच्छुन्ति युन्ति त्रिर्शदंक्षरा द्वाविरंशतिश्च॥______

_[8]

द्वे वाव देवस्त्रे द्वांदशाहश्चेव त्रंयस्त्रिश्शदहश्च य एवं विद्वाश्संस्त्रयस्त्रिश्शदहमासंते साक्षादेव देवतां अभ्यारोहिन्ति यथा खलु वै श्रेयांन्भ्यारूढः कामयंते तथां करोति यद्यंविवध्यंति पापीयान्भवित यदि नाव्विध्यंति सदृद्ध एवं विद्वाश्संस्त्रयस्त्रिश्शदहमासंते वि पाप्मना भातृंव्येणा वंतन्तेऽहर्भाजो वा एता देवा अग्रु आहंरत्र् (१८)

अह्रेको ऽभंजताह्रेक्स्ताभिवैं ते प्रवाह्णार्ध्रुवन् य एवं विद्वारसंस्रयस्त्रिरशद्हमासंत्रे सर्व एव प्रवाह्णा्र्युवन्ति सर्वे ग्रामंणीयम्प्राप्नुवन्ति पञ्चाहा भवन्ति पञ्च वा ऋतवंः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रति तिष्ठन्त्यथो पञ्चाक्षरा पृद्धिः पाङ्को यज्ञ यज्ञमेवावं रुन्थते त्रीण्यांश्विनानि भवन्ति त्रयं इमे लोका एषु (१९)

एव लोकेषु प्रति तिष्ठन्त्यथो त्रीणि वै युज्ञस्यैन्द्रियाणि तान्येवावं रुन्धते विश्वजिद्भवत्यन्नाद्यस्यावंरुद्धौ सर्वपृष्ठो भवति सर्वस्याभिजित्यै वाग्वै द्वांदशाहो यत्पुरस्तौद्वादशाहमुपेयुरनौप्तां वाचमुपेयुरुप्दासुंकैषां वाख्स्यौदुपरिष्टाद्वादशाहमुपेयन्त्याप्तामेव वाचमुपेयिन्त् तस्मौदुपरिष्टाद्वाचा वंदामोऽवान्तुरम् (२०)

वै दंशरात्रेणं प्रजापंतिः प्रजा अंसृजत् यद्दंशरात्रो भवंति प्रजा एव तद्यजंमानाः सृजन्त एता १ ह वा उंदङ्कः शौंल्बायनः सृत्रस्यर्द्धिमुवाच् यद्दंशरात्रो यद्दंशरात्रो भवंति स्त्रस्यर्द्धा अथो यदेव पूर्वेष्वहंःसु विलोम क्रियते तस्यैवेषा शान्तिंद्धनीका वा एता रात्रयो यजंमाना विश्वजिथ्सहातिरात्रेण पूर्वाः षोडंश सहातिरात्रेणोत्तराः षोडंश य एवं विद्वा १ संस्वयित्व १ शर्षां द्वानीका प्रजा जांयतेऽतिरात्राव्यभितो भवतः परिंगृहीत्यै॥ (२१)

अहुरुन्नेष्वंवान्तर १ षोडंश सह सप्तदंश च॥

—[:,]

आदित्या अंकामयन्त सुवर्गं लोकिमियामेति ते सुवर्गं लोकं न प्राजानन्त्र सुवर्गं लोकमायन्त एतः षंट्रिःश्शद्रात्रमंपश्यन्तमाहंर्न्तेनायजन्त ततो वै ते सुवर्गं लोकम्प्राजानन्थ्सुवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वाः सः षट्गिःशद्रात्रमासंते सुवर्गमेव लोकम्प्र जानन्ति सुवर्गं लोकं यंन्ति ज्योतिरतिरात्रः (२२)

भ्वति ज्योतिरेव पुरस्ताँद्दधते सुवर्गस्यं लोकस्यानुंख्यात्ये षड्हा भंविन्ति षड्वा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठन्ति चत्वारों भविन्ति चतंस्रो दिश्वें प्रतिं तिष्ठन्त्यसंश्रं वा एतद्यदंछन्दोमं यच्छंन्दोमा भवन्ति तेनं सृत्रं देवतां एव पृष्ठेरवं रुन्धते पृश्वर्ष्ठन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानिं पृशवंश्छन्दोमा ओर्जस्येव (२३)

वीर्ये पृशुषु प्रतिं तिष्ठन्ति षद्गिरशद्भात्रो भेवित् षद्गिरशादक्षरा बृह्ती बार्ह्ताः पृशवों बृह्त्यैव पृशूनवं रुन्धते बृह्ती छन्दंसा् स्वारांज्यमाश्रुताश्रुवते स्वारांज्यं य एवं विद्वारसं षद्गिरशद्भात्रमासंते सुवर्गमेव लोकं यंन्त्यतिरात्राविभितो भवतः सुवर्गस्यं लोकस्य परिंगृहीत्यै॥ (२४)

अतिरात्र ओर्जस्येव षद्गिर्शशच॥——

=[६]

वसिष्ठो ह्तपुंत्रोऽकामयत विन्देयं प्रजाम्भि सौंदासान्भवेयमिति स एतमेंकस्मान्नपञ्चाशमेपश्यत्तमाहंर्त्तेनायजत् ततो वै सोऽविंन्दत प्रजाम्भि सौंदासानंभवद्य एवं विद्वारसं एकस्मान्नपञ्चाशमासंते विन्दन्ते प्रजाम्भि भ्रातृंव्यान्भवन्ति त्रयंस्त्रिवृतौं- ऽग्निष्टोमा भंवन्ति वर्ज्रस्यैव मुख्रु सङ् श्यंन्ति दशं पश्चद्रशा भंवन्ति पश्चद्रशो वर्ज्जः (२५)

वज्रमेव भ्रातृंव्येभ्यः प्र हंरन्ति षोडशिमद्दंशममहंभविति वज्रं एव वीर्यं दधित द्वादंश सप्तद्शा भवन्त्यन्नाद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तैर्जायन्ते पृष्ठ्यः षड्हो भविति षड्वा ऋतवः षदृष्ठानि पृष्ठेरेवर्तून्नवारोहन्त्यृतुभिः संवथ्सरन्ते संवथ्सर एव प्रति तिष्ठन्ति द्वादंशैकविष्शा भविन्ति प्रतिष्ठित्या अथो रुचंमेवात्मन्न (२६)

द्धते बृहवंः षोड्शिनों भवन्ति विजित्यै षडाँश्विनानिं भवन्ति षङ्घा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रतिं तिष्ठन्त्यूनातिरिक्ता वा एता रात्रंय ऊनास्तद्यदेकस्यै न पश्चाशदितिरिक्तास्तद्यद्भयंसीर्ष्टाचंत्वारिश्शत ऊनाच् खलु वा अतिरिक्ताच प्रजापितिः प्राजायत् ये प्रजाकांमाः पृश्चकांमाः स्युस्त एता आंसीर्न्प्रेव जांयन्ते प्रजयां पृश्चितिराजो वा एष युज्ञो यदेकस्मान्नपश्चाशो य एवं विद्वाश्से एकस्मान्नपश्चाशमासंते विराजमेव गंच्छन्त्यन्नादा भवन्त्यतिरान्नाविभितों भवतोऽन्नाद्यस्य परिगृहीत्यै॥ (२७)

वर्ज्र आत्मन्प्रजया द्वाविर्शतिश्च॥______[७]

संव्थ्यरायं दीक्षिष्यमाणा एकाष्ट्रकायां दीक्षेरन्नेषा वै संवथ्यरस्य पत्नी यदेकाष्ट्रकैतस्यां वा एष एता रात्रिं वसति साक्षादेव संवथ्यरमारभ्यं दीक्षन्त आर्तुं वा एते संवथ्यरस्याभि दींक्षन्ते य एकाष्ट्रकायां दीक्षन्तेऽन्तंनामानावृत् भवतो व्यस्तं वा एते संवथ्यरस्याभि दींक्षन्ते य एकाष्ट्रकायां दीक्षन्तेऽन्तंनामानावृत् भवतः फल्गुनीपूर्णमासे दींक्षेर्न्मुखं वा एतत् (२८)

संवथ्सरस्य यत्फंल्गुनीपूर्णमासो मुंख्त एव संवथ्सरमारभ्यं दीक्षन्ते तस्यैकैव निर्या यथ्साम्मेंघ्ये विषूवान्थ्सम्पद्यंते चित्रापूर्णमासे दीक्षेर्न्मुखं वा एतथ्संवथ्सरस्य यचित्रापूर्णमासो मुंख्त एव संवथ्सरमारभ्यं दीक्षन्ते तस्य न का चन निर्या भवित चतुर्हे पुरस्तात्पौर्णमास्यै दीक्षेर्न्तेषांमेकाष्टकार्यां क्रयः सम्पंद्यते तेनैकाष्टकां न छुम्बद्धंवन्ति तेषाम् (२९)

पूर्वपक्षे सुत्या सम्पंद्यते पूर्वपक्षम्मासां अभि सम्पंद्यन्ते ते पूर्वपक्ष उत्तिष्ठन्ति तानुत्तिष्ठंत् ओषंधयो वनस्पत्योऽनूत्तिष्ठन्ति तान्कंल्याणी कीर्तिरनूत्तिष्ठत्यराध्सुरिमे यजमाना इति तदनु सर्वे राध्रुवन्ति॥ (३०)

पृतच्छुम्बद्भुर्वन्ति तेषाञ्चतुंस्त्रि १शच॥_____

-[7]

सुवर्गं वा एते लोकं येन्ति ये स्त्रम्प्यन्त्यभीन्धंत एव दीक्षाभिंरात्मान १ अपयन्त उपसद्धिद्वाभ्यां लोमावं द्यन्ति द्वाभ्यान्त्वचं द्वाभ्यामसृद्वाभ्यांममा १ सं द्वाभ्यामस्थि द्वाभ्यांम्मु ज्ञानं मात्मदेक्षिणं वे स्त्रमात्मानं मेव दिक्षणां नीत्वा सुंवर्गं लोकं येन्ति शिखामनु प्र वंपन्त ऋद्या अथो रघीया १ सः सुवर्गं लोकमंयामेति॥ (३१)

सुवुर्गम्पंश्चा्शत्॥------[९]

ब्रह्मवादिनों वदन्त्यितिरात्रः पंरमो यंज्ञकतूनां कस्मात्तम्प्रंथममुपं युन्तीत्येतद्वा अंग्निष्टोमम्प्रंथममुपं युन्त्यथोक्थ्यंमथं षोड्शिन्मथातिरात्रमंनुपूर्वमेवैतद्यंज्ञकतूनुपेत्य तानालभ्यं परिगृह्य सोमंमेवैतित्यवंन्त आसते ज्योतिष्टोमम्प्रथममुपं यन्ति ज्योतिष्टोमो वै स्तोमानाम्मुखंम्मुख् एव स्तोमान्प्र युंअते ते (३२)

सङ्स्तृंता विराजम्मि सम्पंद्यन्ते द्वे चर्चावितं रिच्येते एकंया गौरितंरिक्त एक्यायुंरूनः सुंवर्गो वै लोको ज्योतिरूर्ग्वराद्वंवर्गम्व तेनं लोकं यंन्ति रथन्तरं दिवा भवंति रथन्तरं नक्तमित्यांहुर्ब्रह्मवादिनः केन् तदजामीतिं सौभुरं तृंतीयसवने ब्रह्मसामम्बृहत्तन्मध्यतो दंधित विधृंत्ये तेनाजांमि॥ (३३)

त एकान्नपंश्राशचं॥----[१०

ज्योतिष्टोमम्प्रथममुपं यन्त्यस्मित्रेव तेनं लोके प्रतिं तिष्ठन्ति गोष्टोंमं द्वितीयमुपं यन्त्यन्तिरक्ष एव तेन् प्रतिं तिष्ठन्त्यायुष्टोमं तृतीयमुपं यन्त्यमुष्मित्रेव तेनं लोके प्रतिं तिष्ठन्तीयं वाव ज्योतिंर्न्तिरक्षं गौर्सावायुर्यदेतान्थ्स्तोमानुप्यन्त्येष्वंव तल्लोकेषुं सन्निर्णः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ते सङ्स्तुंता विराजम् (३४)

अभि सम्पंचन्ते द्वे चर्चावितं रिच्येते एकंया गौरितंरिक्त एक्यायुंरूनः सुंवर्गो वै लोको ज्योतिरूर्ग्विराङ्क्तंमेवावं रुन्थते ते न क्षुधार्तिमार्च्छन्त्यक्षोधुका भवन्ति क्षुथ्संम्बाधा इव् हि स्त्रिणौंऽग्निष्टोमाव्भितः प्रधी ताबुक्थ्यां मध्ये नभ्यं तत्तदेतत्पंरियद्देवच्कं यदेतेनं (३५)

षुडुहेन् यन्ति देवचुक्रमेव समारोहन्त्यरिंध्यै ते स्वस्ति समश्रुवते षडुहेनं यन्ति षड्वा ऋतवं ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठन्त्युभ्यतोंज्योतिषा यन्त्युभ्यतं एव सुंवर्गे लोके प्रतितिष्ठन्तो यन्ति द्वौ षंड्हौ भंवत्स्तानि द्वाद्शाहानि सम्पंद्यन्ते द्वाद्शो वै पुरुषो द्वे स्वथ्यौँ द्वौ बाह् आत्मा च शिरंश्च चत्वार्यङ्गानि स्तनौँ द्वादशौ (३६)

तत्पुरुष्मनुं पूर्यावर्तन्ते त्रयंः षड्हा भवन्ति तान्यष्टाद्शाहानि सम्पंद्यन्ते नवान्यानि नवान्यानि नव व पुरुषे प्राणास्तत्प्राणाननुं पूर्यावर्तन्ते चत्वारंः षड्हा भवन्ति तानि चतुर्विश्शतिरहानि सम्पंद्यन्ते चतुर्विश्शतिरर्धमासाः संवथ्सरस्तथ्संवथ्सरमनुं पूर्यावर्तन्ते- ऽप्रतिष्ठितः संवथ्सर इति खलु वा आहुर्वर्षीयान्प्रतिष्ठाया इत्येतावृद्धे संवथ्सरस्य ब्राह्मणं यावन्मासो मासिमास्येव प्रतितिष्ठिन्तो यन्ति॥ (३७)

विराजमेतेनं द्वाद्शावेतावद्वा अष्टौ चं॥-----[११]

मेषस्त्वां पच्तेरंवत् लोहिंतग्रीवृश्छागैः शल्मलिर्वृद्धां पूर्णो ब्रह्मणा प्रुक्षो मेधेन न्युग्रोधेश्चमसैरुंदुम्बरं ऊर्जा गांयुत्री छन्दोंभिस्त्रिवृथ्स्तोमैरवन्तीः स्थावन्तीस्त्वावन्तु प्रियं त्वाँ प्रियाणां वर्षिष्ठमाप्यानां निधीनां त्वां निधिपतिर्थं हवामहे वसो मम॥ (३८)

मेषः षद्गिर्श्शत्॥——[१२]

कूप्याँभ्यः स्वाह्य कूल्याँभ्यः स्वाहां विक्र्याँभ्यः स्वाहांऽवृट्याँभ्यः स्वाह्य खन्याँभ्यः स्वाह्य हृद्याँभ्यः स्वाह्य स्वा

कूप्याँभ्यश्चत्वारि<u>*</u>शत्॥-----[१३]

अद्भाः स्वाह्य वहंन्तीभ्यः स्वाहां परिवहंन्तीभ्यः स्वाहां समृन्तं वहंन्तीभ्यः स्वाह्य शीघ्रं वहंन्तीभ्यः स्वाह्य शीभं वहंन्तीभ्यः स्वाह्यं वहंन्तीभ्यः स्वाहां भीमं वहंन्तीभ्यः स्वाहाऽम्भौभ्यः स्वाहा नभौभ्यः स्वाहा महौभ्यः स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (४०)

अ्द्य एकान्नित्रिर्शत्॥———[१४]

यो अर्वन्तुं जिघार्सति तमुभ्यंमीति वर्रुणः। पुरो मर्तः पुरः श्वा। अहं च त्वं चं वृत्रहुन्थ्सम्बंभूव सुनिभ्य आ। अरातीवा चिंदद्रिवोऽनुं नौ शूर मरसतै भुद्रा इन्द्रंस्य गुतयंः। अभि ऋत्वैन्द्र भूरध् ज्मन्न ते विव्यङ्गहिमान् रजारंसि। स्वेना हि वृत्र र शवंसा जुघन्थु न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते॥ (४१)

विविदद्वे चं॥______[१५]

नमो राज्ञे नमो वर्रुणाय नमोऽश्वाय नमेः प्रजापंतये नमोऽधिपत्ययेऽधिपतिर्स्यधिपतिं मा कुर्विधिपतिर्हं प्रजानां भूयासम्मां धेहि मिये धेह्युपाकृताय स्वाहाऽऽलब्धाय स्वाहां हुताय स्वाहां॥ (४२)

नम् एकान्नित्रिर्शत्॥-----[१

म्योभूर्वातो अभि वांतूस्रा ऊर्जस्वतीरोषंधीरा रिशन्ताम्। पीवंस्वतीर्जीवधंन्याः पिबन्त्ववसायं पृद्धते रुद्र मृड। याः सरूपा विरूपा एकंरूपा यासांमृग्निरिष्टा नामांनि वेदं। या अङ्गिरस्तपंसेह चुकुस्ताभ्यः पर्जन्य मिहु शर्म यच्छ। या देवेषुं तुनुवमैरंयन्त् यासार् सोमो विश्वां रूपाणि वेदं। ता अस्मभ्यम्पयंसा पिन्वंमानाः प्रजावंतीरिन्द्र (४३)

गोष्ठे रिरीहि। प्रजापंतिर्मह्मंमेता रराणो विश्वेदिवैः पितृभिः संविदानः। शिवाः सतीरुपं नो गोष्ठमाकुस्तासां वयं प्रजया स॰ संदेम। इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमंतिः स्वाहां मुहीमू पु सुत्रामाणम्॥ (४४)

कि स्विंदासीत्पूर्विचेतिः कि स्विंदासीद्भृहद्वयः। कि स्विंदासीत्पिशङ्गिला कि स्विंदासीत्पिलिप्पूला। द्यौरांसीत्पूर्विचेतिरश्वं आसीद्भृहद्वयः। रात्रिंरासीत्पिशङ्गिलाविरासीत्पिलिप् कः स्विंदेकाकी चेरित क उ स्विज्ञायते पुनः। कि स्विंद्धिमस्यं भेषुजं कि स् स्विंदावपनम्मृहत्। सूर्यं एकाकी चेरित (४५)

चन्द्रमां जायते पुनंः। अग्निर्हिमस्यं भेषुजम्भूमिंरावपंनम्महत्। पृच्छामिं त्वा पर्मन्तं पृथिव्याः पृच्छामिं त्वा भुवंनस्य नाभिम्ं। पृच्छामिं त्वा वृष्णो अश्वंस्य रेतः पृच्छामिं वाचः पर्मं व्योम। वेदिमाहुः पर्मन्तं पृथिव्या यज्ञमांहुर्भुवंनस्य नाभिम्ं। सोममाहुर्वृष्णो अश्वंस्य रेतो ब्रह्मैव वाचः पर्मं व्योम॥ (४६)

सूर्यं एकाकी चंरित पद्गंत्वारि श्रम्म॥————[१८]

अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां नयित कश्चन। स्सस्त्यंश्वकः। सुभेगे काम्पीलवासिनि सुवर्गे लोके सं प्रोर्ण्वांथाम्। आहमंजानि गर्भ्धमा त्वमंजासि गर्भ्धम्। तौ सह चृतुरंः पदः सम्प्र सारयावहै। वृषां वा॰ रेतोधा रेतों दधातूथ्सक्थ्यौर्गृदं धौह्यञ्जिमुदंञ्जिमन्वंज। यः स्त्रीणां जीवभोजनो य आसाम् (४७)

बिल्धावंनः। प्रियः स्त्रीणामंपीच्यंः। य आंसां कृष्णे लक्ष्मंणि सर्दिगृदिम्प्रावंधीत्। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। ऊर्ध्वामेंनामुच्छ्रंयताद्वेणुभारं गिराविंव। अथांस्या मध्यंमेधताः शीते वाते पुनिन्नंव। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। यद्धंरिणी यवमित्त न (४८)

पुष्टम्पशु मंन्यते। श्रूद्रा यदर्यंजारा न पोषांय धनायति। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। इयं यका शंकुन्तिकाहलुमिति सर्पति। आहंतं गुभे पसो नि जंल्गुलीति धाणिका। अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मां यभित कश्चन। ससस्त्यंश्वकः। माता चं ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्यं रोहतः। (४९)

प्र सुंलामीति ते पिता गुभे मुष्टिमंत १ सयत्। दुधिकाळणों अकारिषं जिष्णोरश्वंस्य वाजिनंः। सुर्भि नो मुखां कर्तप्र ण आयू १ षि तारिषत्। आपो हि ष्ठा मंयो भुवस्ता नं ऊर्जे दंधातन। महे रणांय चक्षंसे। यो वंः शिवतंमो रसस्तस्य भाजयतेह नंः। उश्तीरिव मातरंः। तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयांय जिन्वंथ। आपों जनयंथा च नः॥ (५०)

आसामित न रोहतो जिन्वंथ चत्वारिं च॥______[१९]

भूर्भुवः सुवर्वसंवस्त्वाञ्चन्तु गायत्रेण् छन्दंसा रुद्रास्त्वांञ्चन्तु त्रैष्ट्रंभेन् छन्दंसादित्यास्त्वांञ्चन्तु जागंतेन छन्दंसा यद्वातों अपो अगंमदिन्द्रंस्य तनुवंिम्प्रियाम्। एतः स्तोतरेतेनं पृथा पुन्रश्वमा वंतियासि नः। लाजी (३) ञ्छाची (३) न् यशों ममा (४)म्। यृव्याये गृव्यायां पृतद्देवा अन्नमत्तैतदन्नंमद्धि प्रजापते। युञ्जन्तिं ब्र्ध्रमंरुषं चरंन्तुं परि तुस्शुषंः। रोचंन्ते रोचना दिवि। युञ्जन्त्यंस्य काम्या हरी विपक्षसा रथें। शोणां धृष्णू नृवाहंसा। कृतुं कृण्वन्नंकृतवे पेशों मर्या अपेशसें। समुषद्विरजायथाः॥ (५१)

ब्रुप्नं पर्श्वविर्शतिश्व॥-----[२०]

प्राणाय स्वाहाँ व्यानाय स्वाहांऽपानाय स्वाहा स्नावंभ्यः स्वाहां सन्तानेभ्यः स्वाहा परिसन्तानेभ्यः स्वाहा पर्वभ्यः स्वाहां सुन्धानेभ्यः स्वाहा शरीरेभ्यः स्वाहां युज्ञाय स्वाहा दक्षिणाभ्यः स्वाहां सुवृगाय स्वाहां लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (५२)

प्राणायाष्ट्रावि १ शतिः॥______[२१

सिताय स्वाहाऽसिताय स्वाहाऽभिहिताय स्वाहाऽनीभिहिताय स्वाहां युक्ताय स्वाहा Н-ऽयुंक्ताय स्वाहा सुयुंक्ताय स्वाहोद्युंक्ताय स्वाहा विमुंक्ताय स्वाहा प्रमुंक्ताय स्वाहा वर्श्वते स्वाहां परिवर्श्वते स्वाहां सुंवर्श्वते स्वाहांऽनुवर्श्वते स्वाहोद्वर्श्वते स्वाहां युते स्वाहा धावंते स्वाहा तिष्ठते स्वाहा सर्वस्मै स्वाहां॥ (५३)

स्तायाष्टात्रि ५ शत्॥ ———[२२]

बृह्स्पितः श्रद्यथा वा ऋक्षा वै प्रजापंतिर्येनयेन द्वे वाव देवसूत्रे आंदित्या अंकामयन्त सुवुर्गं वसिष्ठः संवथ्सरायं सुवुर्गं ये सुत्रम्ब्रह्मवादिनोऽतिरात्रो ज्योतिष्ठोमं मेषः कूप्याभ्योऽज्यो यो नमों मयोभूः किश् स्विदम्बे भूः प्राणायं सिताय द्वाविश्शितः॥————[२३]

[बृह्स्पितिः प्रतितिष्ठन्ति वै दंशरात्रेणं सुवर्गं यो अर्वन्तुं भूस्त्रिप्रश्चाशत्॥53॥ बृह्स्पितिः सर्वस्मै स्वाहाँ॥]

॥पञ्चमः प्रश्नः॥

॥तैत्तिरीयसंहितायां सप्तमकाण्डे पश्चमः प्रश्नः॥

गावो वा एतथ्सत्रमांसताशृङ्गः सतीः शृङ्गाणि नो जायन्ता इति कामेनं तासां दश् मासा निषंण्णा आसन्नथ् शृङ्गाण्यजायन्त ता उदंतिष्ठन्नराथ्स्मेत्यथ् यासां नाजायन्त ताः संवथ्सरमाह्वोदंतिष्ठन्नराथ्स्मेति यासां चाजायन्त यासां च न ता उभयीरुदंतिष्ठन्नराथ्स्मेति गोसन्नं वै (१)

संवथ्सरो य एवं विद्वारसः संवथ्सरम्प्यन्त्यृध्वन्त्येव तस्मांत्तूपरा वार्षिकौ मासौ पर्त्वा चरति सुत्राभिंजित् ह्यं ह्यंस्यै तस्मांथ्संवथ्सर्सदो यत्किं चं गृहे क्रियते तदाप्तमवंरुद्धम्भिजितं क्रियते समुद्रं वा एते प्र प्लंबन्ते ये संवथ्सरम्प्यन्ति यो वै संमुद्रस्य पार्ं न पश्यंति न वै स तत् उदेति संवथ्सरः (२)

वै संमुद्रस्तस्यैतत्पारं यदंतिरात्रौ य एवं विद्वारसं संवथ्सरम्प्यन्त्यनाता एवोद्दं गच्छन्तीयं वै पूर्वोऽतिरात्रौऽसावृत्तरो मनः पूर्वो वागृत्तरः प्राणः पूर्वोऽपान उत्तरः प्ररोधंनम्पूर्व उदयंनमृत्तरो ज्योतिष्ठोमो वैश्वान्रौऽतिरात्रो भवित ज्योतिरेव पुरस्ताद्दधते सुवर्गस्य लोकस्यानुंख्यात्यै चतुर्विर्शः प्रायणीयो भवित चतुर्विरशितर्धमासाः (३)

संवथ्सरः प्रयन्तं एव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठन्ति तस्य त्रीणि च श्वतानिं षृष्टिश्चं स्तोत्रीया्स्तावंतीः संवथ्सरस्य रात्रंय उभे एव संवथ्सरस्यं रूपे आप्नुवन्ति ते सङ्स्थित्या अरिष्ट्या उत्तरेरहोभिश्चरन्ति षड्हा भवन्ति षड्वा ऋतवंः संवथ्सर ऋतुष्वेव संवथ्सरे प्रतिं तिष्ठन्ति गौश्चायुंश्च मध्यतः स्तोमौं भवतः संवथ्सरस्यैव तन्मिथुनम्मध्यतः (४)

द्धति प्रजननाय ज्योतिर्भितों भवित विमोर्चनमेव तच्छन्दा इस्येव तिह्नमोर्क युन्त्यथों उभयतौज्योतिष्व षडहेनं सुवर्गं लोकं यन्ति ब्रह्मवादिनों वदन्त्यासंते केनं युन्तीति देवयानेन पथेति ब्र्याच्छन्दा हिसे वै देवयानः पन्थां गायत्री त्रिष्टु ज्ञगंती ज्योतिर्वे गायत्री गौस्त्रिष्टु गायुर्जीगंती यदेते स्तोमा भवन्ति देवयानेनेव (५)

तत्पथा यंन्ति समानः सामं भवित देवलोको वै सामं देवलोकादेव न यंन्त्यन्याअन्या ऋचों भविन्ति मनुष्यलोको वा ऋचों मनुष्यलोकादेवान्यमन्यं देवलोकमभ्यारोहंन्तो यन्त्यभिवर्तो ब्रंह्मसामम्भविति सुवर्गस्यं लोकस्याभिवृत्त्या अभिजिद्धंवित सुवर्गस्यं लोकस्याभिजित्यै विश्वजिद्धंवित विश्वंस्य जित्ये मासिमासि पृष्ठान्युपं यन्ति मासिमास्यितिग्राह्मां गृह्मन्ते मासिमास्येव वीर्यं दधित मासां प्रतिष्ठित्या उपिरंष्टान्मासां पृष्ठान्युपं यन्ति तस्मांदुपिरंष्टादोषंधयः फलं गृह्णन्ति॥ (६)

गोस्त्रं वा एति संवथ्सरौंऽर्धमासा मिथुनम्मध्यतो देवयानेनैव वीर्यन्नयोदश च॥——[१]

गावो वा एतथ्स्त्रमांसताशृङ्गाः स्तीः शृंङ्गाणि सिषांसन्तीस्तासां दश् मासा निषंण्णा आस्त्रथ् शृङ्गाण्यजायन्त ता अंब्रुवृत्रराथ्यमोत्तिष्ठामाव तं कामंमरुथ्यमिह येन कामेन न्यषंदामेति तासांमु त्वा अंब्रुवृत्रर्था वा यावंतीर्वासांमहा एवेमौ द्वांदशौ मासौ संवथ्सर स्म्याद्योत्तिष्ठामेति तासांम् (७)

द्वाद्शे मासि शृङ्गांणि प्रावंतिन्त श्रृद्धया वाश्रंद्धया वा ता इमा यास्तूंप्रा उभय्यो वाव ता आधुंबन् याश्च शृङ्गाण्यसंन्वन् याश्चोर्जम्वारुंन्धतृश्चीति दृशसुं मासूँत्तिष्ठंत्रृश्चोति द्वादशसु य एवं वेदं पदेन् खलु वा एते यन्ति विन्दित् खलु वै पदेन् यन्तद्वा एतदृद्धमयंनुन्तस्मादितद्वोसिनं॥ (८)

तिष्ठामेति तासान्तस्माद्वे चं॥

-[2]

प्रथमे मासि पृष्ठान्युपं यन्ति मध्यम उपं यन्त्युत्तम उपं यन्ति तदांहुर्यां वै त्रिरेक्स्याह्नं उपसीदन्ति दहं वै सापंराभ्यां दोहाँभ्यां दुहेऽथ् कृतः सा धोँक्ष्यते यां द्वादंश् कृत्वं उपसीदन्तीति संवथ्सर सम्पाद्यौत्तमे मासि सकृत्पृष्ठान्युपेयुस्तद्यजमाना यज्ञं पशूनवं रुन्धते समुद्रं वै (९)

पुर्तेऽनवारमंपारम्प्र प्रंवन्ते ये संवथ्सरम्प्यन्ति यद्बंहद्रथन्तरे अन्वर्जेयुर्यथा मध्ये समुद्रस्यं प्रवम्नवर्जेयुस्तादक्तदन्थसर्गम्बृहद्रथन्तराभ्यामित्वा प्रंतिष्ठां गंच्छन्ति सर्वेभ्यो वै कामेभ्यः सुन्धिर्दुहे तद्यजमानाः सर्वान्कामानवं रुन्धते॥ (१०)

स्मुद्रं वै चतुंस्त्रिश्शच॥____

■[>]

समान्यं ऋचों भवन्ति मनुष्यलोको वा ऋचों मनुष्यलोकादेव न यंन्त्यन्यदंन्यथ्सामं भवित देवलोको वे सामं देवलोकादेवान्यमंन्यम्मनुष्यलोकम्प्रत्यवरोहंन्तो यन्ति जर्गतीमग्र उपं यन्ति जर्गतीं वे छन्दार्श्स प्रत्यवरोहन्त्याग्रयणं ग्रहां बृहत्पृष्ठानिं त्रयिश्वर्श् स्तोमास्तस्माञ्ज्यायार्थस्ं कनीयान्प्रत्यवरोहित वैश्वकर्मणो गृह्यते विश्वान्येव तेन कर्माणि यर्जमाना अवं रुन्थत आदित्यः (११)

गृह्यत् इयं वा अदितिर्स्यामेव प्रतिं तिष्ठन्त्युन्यौन्यो गृह्येते मिथुन्त्वाय् प्रजाँत्या अवान्तरं वै देशरात्रेणं प्रजापितः प्रजा अंसृजत् यद्देशरात्रो भवंति प्रजा एव तद्यजंमानाः स्जन्त एता ह वा उंदुङ्कः शौंल्बायनः स्त्रस्यर्द्धिमुवाच् यद्देशरात्रो यद्देशरात्रो भवंति स्त्रस्यर्द्धा अथो यदेव पूर्वेष्वहंःसु विलोम क्रियते तस्यैवैषा शान्तिः॥ (१२)

आदित्यस्तस्यैव द्वे चं॥—

[8]

यदि सोमौ स॰स्ंतौ स्यातांम्मह्ति रात्रिंयै प्रातरनुवाकमुपाकुंर्यात्पूर्वो वाचम्पूर्वो

देवताः पूर्वश्छन्दा रेसि वृङ्के वृषंण्वतीं प्रतिपदं कुर्यात्प्रातः सवनादेवैषामिन्द्रं वृङ्के ऽथो खल्बांहः सवनमुखेसंवनमुखे कार्येति सवनमुखाथ्संवनमुखादेवैषामिन्द्रं वृङ्के संवेशायोपवेशायं गायित्रयास्त्रिष्टभो जगत्या अनुष्टभं पङ्क्या अभिभूत्ये स्वाहा छन्दा रेसि वै संवेश उंपवेशश्छन्दों भिरेवैषाम् (१३)

छन्दारेसि वृङ्के सज्नीय् शस्यं विह्व्यरं शस्यंमगस्त्यंस्य कयाशुभीय् शस्यंमेतावृद्धा अस्ति यावंदेतद्यावंदेवास्ति तदंषां वृङ्के यदिं प्रातःसवने कुलशो दीर्येत वैष्ण्वीषुं शिपिवृष्टवंतीषु स्तुवीर्न् यद्वै यज्ञस्यांतिरिच्यंते विष्णुं तिच्छिंपिवृष्टमभ्यतिं रिच्यते तिद्वेष्णुः शिविपिष्टोऽतिंरिक्त पृवातिंरिक्तं दधात्यथो अतिंरिक्तेनैवातिंरिक्तमास्वावं रुन्धते यदि मध्यन्दिने दीर्येत वषद्वारनिधन् सामं कुर्युवंषद्वारो वै यज्ञस्यं प्रतिष्ठा प्रतिष्ठामेवेनंद्रमयन्ति यदिं तृतीयसवन एतदेव॥ (१४)

छन्दोभिरे्वेषामवैकान्नविर्श्यातिश्चं॥_____[५]

षुड्हैर्मासाँन्थ्सम्पाद्याहुरुथ्सृंजन्ति षड्हैर्हि मासाँन्थ्सम्पश्यंन्त्यर्धमाुसेर्मासाँन्थ्सम्पाद्याहुरुथ्सृं मासाँन्थ्सम्पश्यंन्त्यमावास्यया मासाँन्थ्सम्पाद्याहुरुथ्सृंजन्त्यमावास्यया हि मासाँन्थ्सम्पश्यंन्ति पौर्णमास्या मासाँन्थ्सम्पाद्याहुरुथ्सृंजन्ति पौर्णमास्या हि मासाँन्थ्सम्पश्यंन्ति यो वै पूर्ण आंसिञ्जति परा स सिञ्जति यः पूर्णादुदचंति (१५)

प्राणमंस्मिन्थ्स दंधाति यत्पौर्णमास्या मासौन्थ्सम्पाद्याहंरुथ्युजिन्तं संवथ्सरायैव तत्प्राणं दंधित तदनुं सृत्रिणः प्राणंनित यदहुर्नोथ्युज्ञयुर्यथा दित्रुरुपंनद्धो विपतंत्येव संवथ्सरा वि पंतेदार्तिमार्च्छंयुर्यत्पौर्णमास्या मासौन्थ्सम्पाद्याहंरुथ्युजिन्तं संवथ्सरायैव तदुंदानं दंधित तदनुं सृत्रिण उत् (१६)

अनुन्ति नार्तिमार्च्छंन्ति पूर्णमांसे वै देवाना स् सुतो यत्पौर्णमास्या मासान्थ्यम्पाद्याहं रुथ्युजन्तिं देवानांमेव तद्यज्ञेनं यज्ञम्प्रत्यवं रोहन्ति वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यत्षं डहसंतत् सन्तमथाहं रुथ्युजन्तिं प्राजापत्यम्पशुमालंभन्ते प्रजापंतिः सर्वा देवतां देवतांभिरेव यज्ञस् सं तन्वन्ति यन्ति वा एते सर्वनाद्ये उहंः (१७)

उथ्सृजन्तिं तुरीयं खलु वा एतथ्सवंनं यथ्सांत्राय्यं यथ्सांत्राय्यम्भवंति तेनैव सवंनात्र यन्ति समुप्हूयं भक्षयन्त्येतथ्सोमपीथा ह्येतर्हि यथायत्नं वा एतेषार्थं सवन्भाजों देवतां गच्छन्ति येऽहंरुथ्सृजन्त्यंनुसव्नं पुंरोडाशान्निर्वपन्ति यथायत्नादेव संवन्भाजों देवता अवं रुन्थतेऽष्टाकंपालान्प्रातःसव्न एकांदशकपालान्माध्यंन्दिने सवेने द्वादंशकपालाङ्स्तृतीयसव्ने छन्दाईस्येवास्वावं रुन्थते वैश्वदेवं चुरुं तृतीयसव्ने निर्वपन्ति वैश्वदेवं वै तृतीयसव्नन्तेनैव तृतीयसव्नान्न यंन्ति॥ (१८)

उदचृत्युद्येऽह्रंगुस्वा पश्चंदश च॥-----[६

उथ्मुज्या (३) न्नोथ्मुज्या (३) मितिं मीमा॰सन्ते ब्रह्मवादिनस्तद्वांहुरुथ्मुज्यंमेवेत्यंमावास्यां च पौर्णमास्यां चोथ्मुज्यमित्यांहुर्ते हि युज्ञं वहंत इति ते त्वाव नोथ्मुज्ये इत्यांहुर्वे अंवान्तरं युज्ञम्भेजाते इति या प्रथमा व्यष्टका तस्यांमुथ्मुज्यमित्यांहुरेष वै मासो विश्वर इति नादिष्टम् (१९)

उथ्मृंजेयुर्यदादिष्टमुथ्मृजेयुंर्याृदश्ये पुनः पर्याष्ट्रावे मध्ये षड्हस्यं सम्पद्येत षड्हैर्मासाँन्थ्सम्पाद्य यथ्संप्तममह्स्तस्मिन्नुथ्मृंज्येयुस्तद्ग्रये वसुमते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपयुरेन्द्रं दधीन्द्रांय मुरुत्वंते पुरोडाश्मेकांदशकपालं वैश्वदेवं द्वादंशकपालम्भ्रेवें वसुमतः प्रातःसवनं यद्ग्रये वसुमते पुरोडाशंमृष्टाकंपालं निर्वपन्ति देवतांमेव तद्भागिनीं कुर्वन्ति (२०)

सर्वनमष्ट्राभिरुपं यन्ति यदैन्द्रं दिष् भवतीन्द्रंमेव तद्भांगधेयान्न च्यांवयन्तीन्द्रंस्य वै मुरुत्वंतो मार्ध्यदिन् सर्वनं यदिन्द्राय मुरुत्वंते पुरोडाश्रमेकांदशकपालं निर्वपंन्ति देवतांमेव तद्भागिनीं कुर्वन्ति सर्वनमेकादशिम्रुरुपं यन्ति विश्वेषां वै देवानांमृभुमतां तृतीयसवनं यद्वेश्वदेवं द्वादंशकपालं निर्वपंन्ति देवतां एव तद्भागिनीः कुर्वन्ति सर्वनं द्वादशिभः (२१)

उपं यन्ति प्राजापृत्यम्पशुमा लंभन्ते युज्ञो वै प्रजापंतिर्युज्ञस्यानंनुसर्गायाभिवृर्त इतः षण्मासो ब्रह्मसामम्भविति ब्रह्म वा अभिवृर्ती ब्रह्मणेव तथ्सुंवर्गं लोकमंभिवृर्तयंन्तो यन्ति प्रतिकूलिमंव हीतः सुंवर्गो लोक इन्द्र ऋतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षां नो अस्मिन्युंरुहूत यामंनि जीवा ज्योतिंरशीम्हीत्यमुतं आयुता पण्मासो ब्रह्मसामम्भवत्ययं वै लोको ज्योतिं प्रजा ज्योतिंरिममेव तङ्कोकम्पश्यंन्तोऽभिवदंन्त आ यन्ति॥ (२२)

नार्दिष्टङ्कुर्वन्तिं द्वाद्शभिरितिं वि श्रातिश्चं॥———[७]

देवानां वा अन्तं जुग्मुषामिन्द्रियं वीर्यमपात्रामृत्तत्क्रोशेनावा रुन्धत् तत्क्रोशस्य

क्रोशृत्वं यत्क्रोशेन् चात्वांलस्यान्तें स्तुवन्तिं यज्ञस्यैवान्तें गृत्वेन्द्रियं वीर्यमवं रुन्धते स्त्रस्यद्यांहवनीयस्यान्तें स्तुवन्त्यग्निमेवोपंद्रष्टारं कृत्वर्द्धिमुपं यन्ति प्रजापंतेर्हृदंयेन हिव्धीने-उन्तः स्तुवन्ति प्रेमाणंमेवास्यं गच्छन्ति श्लोकेनं पुरस्ताथ्सदंसः (२३)

स्तुवन्त्यनुंश्लोकेन पृश्चाद्यज्ञस्यैवान्तं गृत्वा श्लोंकुभाजो भवन्ति न्वभिरध्वर्युरुद्गायित् नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधाति सर्वा ऐन्द्रियो भवन्ति प्राणेष्वेवेन्द्रियं दंधत्यप्रतिहृताभिरुद्गायित् तस्मात्पुरुषः सर्वाण्यन्यानि शीष्णोऽङ्गानि प्रत्यंचित् शिरं एव न पश्चंदशः रथन्तरम्भवतीन्द्रियमेवावं रुन्धते सप्तदशम् (२४)

बृहद्त्राद्यस्यावंरुद्धा अथो प्रैव तेनं जायन्त एकविर्शम्भद्रं द्विपदांसु प्रतिष्ठित्यै पत्नंय उपं गायन्ति मिथुन्त्वाय प्रजात्यै प्रजापतिः प्रजा अंसृजत् सोऽकामयतासाम्हर राज्यं परीयामिति तासारं राज्नेनैव राज्यं पर्येत्तद्रांजनस्यं राजन्त्वं यद्रांजनम्भवंति प्रजानामेव तद्यजमाना राज्यं परि यन्ति पश्चिव्रशम्भवति प्रजापतेः (२५)

आस्यैं पृञ्चभिस्तिष्ठंन्तः स्तुवन्ति देवलोकमेवाभि जंयन्ति पृञ्चभिरासींना मनुष्यलोकमेवाभि जंयन्ति दश् सम्पंद्यन्ते दशाँक्षरा विराडन्नं विराजैवान्नाद्यमवं रुन्धते पञ्चधा विनिषद्यं स्तुवन्ति पञ्च दिशों दिक्ष्वेव प्रतिं तिष्ठन्त्येकैकयास्तुंतया समायन्ति दिग्भ्य पुवान्नाद्यन् सम्भरन्ति ताभिरुद्गातोद्गायित दिग्भ्य पुवान्नाद्यम् (२६)

सम्भृत्य तेजं आत्मन्दंधते तस्मादेकः प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यवृत्यथो यथां सुपूर्ण उत्पितिष्यिञ्छिरं उत्तमं कुंकृत एवमेव तद्यजमानाः प्रजानांमृत्तमा भवन्त्यास्नदीमुंद्राता रोहिति साम्राज्यमेव गंच्छन्ति प्रेङ्खः होता नाकंस्यैव पृष्ठ रोहिन्ति कूर्चावंध्वर्युर्ब्रध्नस्यैव विष्ठपं गच्छन्त्येतावंन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यंथापूर्वं प्रति तिष्ठन्त्यथो आक्रमणमेव तथ्सेतुं यजमानाः कुर्वते सुवुर्गस्यं लोकस्य समष्ट्रौ॥ (२७)

सर्दसः सप्तदुशं प्रजापंतेर्गायति दिग्भ्य पुवान्नाद्यम्प्रत्येकांदश च॥-----[८]

अर्कोण वै संहस्रशः प्रजापंतिः प्रजा अंस्जत् ताभ्य इलाँन्देनेरां लूतामवांरुन्द्र यदर्काम्भवंति प्रजा एव तद्यजंमानाः स्जन्त इलाँन्दम्भवित प्रजाभ्यं एव सृष्टाभ्य इरां लूतामवं रुन्थते तस्माद्या समार्थ सन्त्र समृद्धं क्षोधंकास्ता समां प्रजा इष्ड् ह्यासामूर्जमाददंते या समां व्यृद्धमक्षोधुकास्ता समां प्रजाः (२८) न ह्यांसामिष्मूर्जमाददंत उत्क्रोदं कुंर्वते यथां बन्धान्मुंमुचाना उत्क्रोदं कुंर्वतं एवमेव तद्यजंमाना देवबन्धान्मुंमुचाना उत्क्रोदं कुंर्वत् इष्मूर्जमात्मन्दधांना वाणः शततंन्तुर्भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुंष्येवेन्द्रिये प्रतिं तिष्ठन्त्याजिं धांवन्त्यनंभिजितस्याभिजित्ये दुन्दुभीन्थ्समाघ्रंन्ति पर्मा वा एषा वाग्या दुन्दुभी पर्मामेव (२९)

वाच्मवं रुन्धते भूमिदुन्दुभिमा घ्रन्ति यैवेमां वाक्प्रविष्टा तामेवावं रुन्धतेऽथों हुमामेव जंयन्ति सर्वा वाचों वदन्ति सर्वांसां वाचामवंरुद्धा आर्द्रे चर्मुन्व्यायंच्छेते हन्द्रियस्यावंरुद्धा आन्यः क्रोशंति प्रान्यः शर्रसति य आक्रोशंति पुनात्येवैनान्थ्स स यः प्रशर्सति पूतेष्वेवान्नाद्यं दधात्यृषिंकृतं च (३०)

वा एते देवकृतं च पूर्वेर्मासैरवं रुन्धते यद्भूतेच्छदा सामानि भवन्त्युभयस्यावंरुद्धै यन्ति वा एते मिथुनाद्ये संवथ्सरमुंप्यन्त्यंन्तर्वेदि मिथुनौ सम्भवतस्तेनैव मिथुनान्न यंन्ति॥ (३१)

व्यृंद्धमक्षोधुकास्तार समां प्रजाः पंरमामेव चं त्रिर्शर्च॥———[९]

चर्मावं भिन्दन्ति पाप्मानंमेवैषामवं भिन्दन्ति मापं राथ्सीर्मातिं व्याथ्सीरित्यांह सम्प्रत्येवैषां पाप्मानमवं भिन्दन्त्युदकुम्भानंधिनिधायं दास्यों मार्जालीयं परि नृत्यन्ति पदो निंघ्नतीरिदम्मंधुं गायंन्त्यो मधु वै देवानां पर्ममृत्राद्यं पर्ममेवान्नाद्यमवं रुन्धते पदो नि प्रंन्ति महीयामेवैषुं दधित॥ (३२)

चर्मेकान्नपंश्राशत्॥———[१०]

पृथिव्यै स्वाहान्तिरिक्षाय स्वाहां दिवे स्वाहां सम्प्लोष्यते स्वाहां सम्प्लवंमानाय स्वाहां सम्प्लंताय स्वाहां मेघायिष्यते स्वाहां मेघायते स्वाहां मेघाताय स्वाहां मेघाय स्वाहां नीहाराय स्वाहां निहाकांये स्वाहां प्रास्चाय स्वाहां प्रचलाकांये स्वाहां विद्योतिष्यते स्वाहां विद्योतिमानाय स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्वाहां स्तनयंते स्वाहां स्वाहां

स्वाहांनुवर्षते स्वाहां शीकायिष्यते स्वाहां शीकायते स्वाहां शीकिताय स्वाहां प्रोषिष्यते स्वाहां प्रुष्णते स्वाहां परिप्रुष्णते स्वाहोंद्वहीष्यते स्वाहोंद्वहोताय

स्वाहां विष्णोष्यते स्वाहां विष्णवंमानाय् स्वाहा विष्णुताय् स्वाहांतपस्यते स्वाहातपंते स्वाहोग्रमातपंते स्वाह्ग्र्यः स्वाहा यज्ञंभ्यः स्वाहा सामभ्यः स्वाहाङ्गिरोभ्यः स्वाहा वेदेभ्यः स्वाहा गाथाभ्यः स्वाहां नाराशुर्सीभ्यः स्वाहा रैभीभ्यः स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा॥ (३४)

सुं वर्षते रैभीभ्यः स्वाहा द्वे चं॥-----[११]

दुत्वते स्वाहांऽदुन्तकांय स्वाहां प्राणिने स्वाहांऽप्राणाय स्वाहा मुखंवते स्वाहां-ऽमुखाय स्वाहा नासिंकवते स्वाहांऽनासिकाय स्वाहांऽक्षण्वते स्वाहांऽनिक्षिकाय स्वाहां कृणिने स्वाहांऽकृणिकाय स्वाहां शीर्षण्वते स्वाहांऽशीर्षकाय स्वाहां पृद्धते स्वाहां-ऽपादकाय स्वाहां प्राणते स्वाहाऽप्राणते स्वाहा वदंते स्वाहाऽवंदते स्वाहा पश्यंते स्वाहाऽपंश्यते स्वाहां शृण्वते स्वाहाऽशृणवते स्वाहां मनुस्विने स्वाहां (३५)

अमनसे स्वाहां रेतस्विने स्वाहांऽरेतस्कांय स्वाहां प्रजाभ्यः स्वाहां प्रजाननाय स्वाहा लोमविते स्वाहांऽलोमकांय स्वाहां त्वचे स्वाहाऽत्वक्कांय स्वाहा चर्मण्वते स्वाहांऽचम्कांय स्वाहां लोहितवते स्वाहांऽलोहिताय स्वाहां माश्सन्वते स्वाहांऽमाश्सकांय स्वाहा स्वावभ्यः स्वाहांऽस्ववकांय स्वाहांऽस्थन्वते स्वाहांऽनस्थिकांय स्वाहां मञ्जन्वते स्वाहांऽमञ्जकांय स्वाहांऽनङ्गाय स्वाहाऽत्मने स्वाहाऽनांत्मने स्वाहा सर्वस्मे स्वाहां॥ (३६)

मृनुस्विने स्वाहाऽनाँत्मने स्वाहा द्वे चं॥_______[१२]

कस्त्वां युनिक्त् स त्वां युनक्तु विष्णुंस्त्वा युनक्कस्य यृज्ञस्यर्ख्ये मह्मूष्ट् सन्नंत्या अमुष्मे कामायायुंषे त्वा प्राणायं त्वाऽपानायं त्वा व्यानायं त्वा व्यंष्ट्री त्वा रय्ये त्वा राधंसे त्वा घोषांय त्वा पोषांय त्वाराद्धोषायं त्वा प्रच्यंत्ये त्वा॥ (३७)

अग्नयें गायुत्रायं त्रिवृते राथंतराय वास्नतायाष्ट्राकंपाल इन्द्रांय त्रैष्ट्रंभाय पञ्चद्शाय बार्ह्तताय ग्रैष्मायेकांदशकपालो विश्वेंभ्यो देवेभ्यो जागंतेभ्यः सप्तद्शेभ्यों वैरूपेभ्यो वार्षिकेभ्यो द्वादेशकपालो मित्रावर्रुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविष्ट्रशाभ्यां वैराजाभ्यार्थ शार्दाभ्यां पयस्यां बृह्स्पतंये पाङ्कांय त्रिण्वायं शाक्रराय हैमन्तिकाय चुरुः संवित्र आंतिच्छन्दसायं त्रयस्त्रिष्ट्शायं रैवृतायं शैशिराय द्वादंशकपालोऽदित्यै विष्णुपत्न्ये चुरुर्ग्नयें वैश्वानुराय द्वादंश-

कपालोऽनुंमत्यै चरुः काय एकंकपालः॥ (३८)

अग्नयेऽदिंत्या अनुंमत्यै सप्तचंत्वारि १शत्॥

[88]

यो वा अग्नावृग्निः प्रिंह्यिते यश्च सोमो राजा तयोरिष आंतिथ्यं यदंग्नीषोमीयोऽधैष रुद्रो यश्चीयते यथ्मश्चितेऽग्नावेतानिं ह्वी १षि न निर्वपेदेष एव रुद्रोऽशाँन्त उपोत्थायं प्रजां पृशून् यजंमानस्याभि मन्येत यथ्मश्चितेऽग्नावेतानिं ह्वी १षि निर्वपंति भाग्धेयेनेवैन १ शमयति नास्यं रुद्रोऽशाँन्तः (३९)

उपोत्थायं प्रजां पृश्नून्भि मंन्यते दशं ह्वी १ षि भवन्ति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दश्मी प्राणानेव यर्जमाने दधात्यथो दशांक्षरा विराडन्नं विराज्येवान्नाचे प्रति तिष्ठत्यृतुभिर्वा पृष छन्दोभिः स्तोमैः पृष्ठैश्चेत्व्यं इत्यांहुर्यदेतानिं ह्वी १ षि निर्वपंत्यृतुभिरेवेनं छन्दोभिः स्तोमैः पृष्ठैश्चिन्ते दिशः सुषुवाणेनं (४०)

अभिजित्या इत्यांहुर्यदेतानि ह्वी १ वि निर्वपित दिशामिभिजित्या एतया वा इन्द्रें देवा अयाजयन्तस्मादिन्द्रस्व एतया मनुम्मनुष्यांस्तस्मांन्मनुस्वो यथेन्द्रों देवानां यथा मनुर्मनुष्यांणामेवम्भविति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजेते दिग्वंतीः पुरोनुवाक्यां भवन्ति सर्वांसां दिशामिभिजित्ये॥ (४१)

अशाँन्तः सुषुवाणेनैकंचत्वारि १शच॥______[१५]

यः प्राण्तो निमिष्तो महित्वैक इद्राजा जगतो बुभूवं। य ईशें अस्य द्विपद्श्वतुंष्पदः कस्मैं देवायं ह्विषां विधेम। उपयामगृंहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्यं ते द्यौर्महिमा नक्षंत्राणि रूपमांदित्यस्ते तेजस्तस्मैं त्वा महिम्ने प्रजापंतये स्वाहाँ॥ (४२)

यः प्रांणतो द्यौरादित्यौंऽष्टात्रिर्श्यत्॥————[१६]

य आंत्मदा बंलदा यस्य विश्वं उपासंते प्रशिष्ं यस्यं देवाः। यस्यं छायामृतं यस्यं मृत्युः कस्में देवायं ह्विषां विधेम। उपयामगृहीतोऽसि प्रजापंतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्यं ते पृथिवी मंहिमौषंधयो वनस्पतंयो रूपमृग्निस्ते तेजस्तस्मैं त्वा महिम्ने प्रजापंतये स्वाहाँ॥ (४३)

य आँत्मदाः पृथिव्यंग्निरेकान्नचंत्वारिर्षात्॥-----[१७]

आ ब्रह्मंन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जांयतामाऽस्मित्राष्ट्रे रांजन्यं इष्व्यः शूरों महार्थो जांयतान्दोग्ध्रीं धेनुर्वोढांऽनृङ्गानाशुः सिष्टः पुरंधिर्योषां जिष्णू रंथेष्ठाः सुभेयो युवाऽस्य यर्जमानस्य वीरो जांयतान्निकामेनिकामे नः पुर्जन्यो वर्षतु फुलिन्यो न ओषंधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नंः कल्पताम्॥ (४४)

आ ब्रह्मन्नेकंचत्वारि १शत्॥-

[१८]

आक्रान्ं वाजी पृथिवीम्प्रिं युजंमकृत वाज्यर्वाकान्ं वाज्यंन्तरिक्षं वायुं युजंमकृत वाज्यर्वा द्यां वाज्याऽक्रईंस्त सूर्यं युजंमकृत वाज्यर्वाप्निस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय वायुस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम् (४५)

पार्यादित्यस्ते वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सम्पारय प्राण्धृगंसि प्राणं में द॰ह व्यान्धृगंसि व्यानं में द॰हापान्धृगंस्यपानं में द॰ह चक्षुंरिस चक्षुर्मिये धेहि श्रोत्रंमिस श्रोत्रम्मियं धेह्यायुंर्स्यायुर्मियं धेहि॥ (४६)

वायुस्तें वाजिन् युङ्कनु त्वा रंभे स्वस्ति मा सन्निचंत्वारि १शच॥———[१९]

जिञ्च बीजं वर्ष्टां पर्जन्यः पक्तां सस्य स्प्रीपप्पला ओषंधयः स्वधिचर्णेय स्प्रसद्नोऽग्निः स्वध्यक्षम्न्तरिक्ष स्प्रपावः पर्वमानः सूपस्थाना द्यौः शिवम्सौ तपंन् यथापूर्वमहोरात्रे पंश्चद्शिनौऽर्धमासास्त्रिक्षशिनो मासौः क्रुप्ता ऋतवंः शान्तः संवथ्सरः॥ (४७)

जिज्ञ बीजुमेकेत्रि श्यत्॥_____

__[00]

आग्नेयोंऽष्टाकंपालः सौम्यश्चरुः सांवित्रोंऽष्टाकंपालः पौष्णश्चरू रौद्रश्चरुरुर्यये वैश्वान्राय् द्वादंशकपालो मृगाख्रे यदि नागच्छेंद्ग्नयेऽर्होमुचेऽष्टाकंपालः सौर्यम्पयों वाय्व्यं आज्यंभागः॥ (४८)

-[39]

अग्नयेऽ रेहोमुचेऽष्टाकंपाल इन्द्रांया रहोमुच एकांदशकपालो मित्रावरुंणाभ्यामागोमुग्भ्यां पयस्यां वायोसावित्र आंगोमुग्भ्यां चुरुरिश्वभ्यांमागोमुग्भ्यां धाना मुरुद्धां एनोमुग्भ्यां सप्तकंपालो विश्वभ्यो देवेभ्यं एनोमुग्भ्यो द्वादंशकपालोऽनुंमत्यै चुरुर्ग्नये वैश्वान्राय द्वादंशकपालो द्यावांपृथिवीभ्यांम रहोमुग्भ्यां द्विकपालः॥ (४९)

अग्नयेऽ ५ होमुचें त्रि ५ शत्॥_____

[२२]

अग्नये समंनमत्पृथिव्यै समंनम्द्यथाग्निः पृथिव्या समनमदेवम्मह्यंम्भुद्राः सन्नंतयः सं नंमन्तु वायवे समंनमदन्तिरक्षाय समंनम्द्यथां वायुर्न्तिरक्षेण सूर्याय समंनमद्दिवे समंनम्द्रथां स्वायये स्वायये स्वायये समंनम्द्रथां स्वायये स्वयं दिवा चन्द्रमंसे समंनम्द्रश्चः समंनम्द्रथां चन्द्रमा नक्षंत्रैर्वरुणाय समंनमदुद्धः समंनम्द्रथां (५०)

वर्रणोऽद्भिः साभ्रे समनमद्देचे समनम्द्रथा साम्रची ब्रह्मणे समनमत्क्षत्राय समनम्द्रथा ब्रह्म क्षेत्रण राज्ञे समनमद्विशे समनम्द्रथा राजां विशा रथाय समनम्दर्शेन्यः समनम्द्रथा रथोऽश्वैः प्रजापंतये समनमद्भेतेन्यः समनम्द्रथा प्रजापंतिर्भूतैः स्मनमद्वेवम्मह्यंन्भद्राः सन्नतयः सं नमन्तु॥ (५१)

अद्भाः समेनमुद्यथा मह्यं चृत्वारि च॥------[२३]

ये ते पन्थांनः सवितः पूर्व्यासोंऽरेणवो वितंता अन्तरिक्षे। तेभिनी अद्य पृथिभिः सुगेभी रक्षां च नो अधिं च देव ब्रूहि। नमोऽग्नये पृथिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यर्जमानाय देहि नमों वायवेंऽन्तरिक्षक्षितें लोकस्पृतें लोकम्स्मै यर्जमानाय देहि नमः सूर्याय दिविक्षितें लोकस्पृतें लोकम्स्मै यर्जमानाय देहि॥ (५२)

ये ते चतुंश्चत्वारिश्शत्॥______[२४]

यो वा अश्वंस्य मेध्यंस्य शिरो वेदं शीर्षण्वान्मेध्यों भवत्युषा वा अश्वंस्य मेध्यंस्य शिरः सूर्यश्चश्चुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रन्दिशः पादां अवान्तरिद्धाः पर्शवोऽहोरात्रे निमेषौ-ऽर्धमासाः पर्वाणि मासाः सन्धानान्यृतवोऽङ्गानि संवथ्सर आत्मा र्श्मयः केशा नक्षंत्राणि रूपन्तारंका अस्थानि नभों मार्सान्योषंधयो लोमांनि वनस्पत्यो वालां अग्निर्मुखं वैश्वान्रो व्यात्तम् (५३)

समुद्र उदरंमन्तिरिक्षम्पायुर्घावांपृथिवी आण्डौ ग्रावा शेपः सोमो रेतो यज्ञंञ्चभ्यते ति ह्योतते यिद्वेधूनुते तथ्स्तंनयित यन्मेहित तद्वेर्षित् वागेवास्य वागहुर्वा अश्वेस्य जायंमानस्य मिह्मा पुरस्तांज्ञायते रात्रिरेनम्मिह्मा पृश्चादनुं जायत एतौ वै मिह्मानावश्वंम्भितः सम्बंभूवतुरहयों देवानंबहुदर्वासुरान् वाजी गन्धवानश्वो मनुष्यांन्थ्समुद्रो वा अश्वेस्य योनिः

समुद्रो बन्धुं:॥ (५४)

व्यात्तंमवहुद्वादंश च॥-----[२५]

गावो गावः सिषांसन्तीः प्रथमे मासि संमान्यों यदि सोमौं षड्हैरुथ्सुज्या(३)ं देवानांमुक्येंण् चर्मावं पृथिव्ये दत्वते कस्त्वाग्रये यो वे यः प्राणतो य आत्मदा आ ब्रह्मन्नाऋाञ्जञ्जि बीजंमाभ्रेयौ-ऽष्टाकंपालोऽग्रयेऽ रहोम्चेऽष्टाकंपालोऽग्रये समनमुद्ये ते पन्थानो यो वा अश्वंस्य मेध्यंस्य शिरः प्रश्लंविरशतिः॥————[२६]

[गार्वः समान्यः सर्वनमष्टाभिर्वा एते देवकृतश्चाभिजित्या इत्यांहुर्वरुणोऽद्भिः साम्ने चतुंःपश्चाशत्॥54॥ गावो योनिः समुद्रो बन्धुः॥]